६-रीढ़ की हड्डी को सदा सीधा रखना चाहिए, कमर झुकाकर बैठने से मेरुदण्ड टेढ़ा हो जाता है और सुषुम्ना नाड़ी में प्राण का आवागमन होने में बाधा पड़ती है।

७-बिना बिछाये जमीन पर साधना करने के लिए न बैठना चाहिए। इससे साधना-काल में उत्पन्न होने वाली शारीरिक विद्युत जमीन में उतर जाती है। घास या पत्तों से बने हुए आसन सर्व-श्रेष्ठ हैं। कुश का आसन, चटाई, रस्सियों का बना फर्श सबसे अच्छा है। इसके बाद सूती आसनों का नम्बर है। ऊन के तथा चर्म के आसन तांत्रिक कार्यों में प्रयुक्त होते हैं।

८-माला तुलसी या चन्दन की लेनी चाहिए। रुद्राक्ष, लाल चन्दन, शङ्ख, मोती आदि को माला गायत्री के तान्त्रिक प्रयोगों में प्रयुक्त होती है।

६-प्रातःकाल दो घण्टे तड़के जप प्रारम्भ किया जा सकता है। सूर्य अस्त होने के १ घण्टे बाद तक जप समाप्त कर लेना चाहिए। १ घण्टा शाम को, २ घण्टे सवेरे कुल तीन घण्टों को छोड़ कर रात्रि के अन्य भागों में गायत्री की दक्षिणमार्गी साधना नहीं करनी चाहिए। तान्त्रिक साधनाऐं अर्धरात्रि के आस-पास की जा सकती हैं।

१०-साधना के लिए पाँच बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए-(अ) चित्त एकाग्र रहे, इधर-उधर न उछलता फिरे। यदि चित्त बहुत दौड़े तो उसे माता की सुन्दर छवि के ध्यान में लगाना चाहिए। (ब) माता के प्रति अगाध श्रद्धा और विश्वास हो, अविश्वासी और शङ्का शङ्कित मति वाले पूरा लाभ नहीं पा सकते। (स) दृढ़ता के साथ साधना पर अड़ा रहना चाहिए। अनुत्साह, मन उचटना, नीरसता प्रतीत होना, जल्दी लाभ न मिलना, अस्वस्थता तथा अन्य सांसारिक कठिनाइयों का मार्ग में

आना साधना के विघ्न हैं। इन विघ्नों से लड़ते हुए अपने मार्ग पर दृढ़तापूर्वक बढ़ते जाना चाहिए। (द) निरन्तरता साधना का मुख्य नियम है। अत्यन्त आवश्यक कार्य होने या विषम स्थिति आने पर भी किसी न किसी रूप में चलते-फिरते भी सही, पर माता की उपासना अवश्य करनी चाहिए, किसी भी दिन नागा या भूल न करनी चाहिए। (ह) समय को रोज-रोज न बदलना चाहिए, कभी सबेरे, कभी दोपहर, कभी तीन बजे तो कभी दस बजे, ऐसी अनियमितता ठीक नहीं। इन पाँचों नियमों के साथ की गई साधना बड़ी प्रभावशाली होती है।

११-कम से कम एक माला अर्थात् १०८ मन्त्र नित्य अवश्य जपने चाहिए, इससे अधिक जितने बन पड़ें उतने उत्तम हैं।

१२-किसी अनुभवी तथा सदाचारी को साधन गुरु नियुक्त करके तब साधना करनी चाहिए। अपने लिए कौन-सी साधना प्रयुक्त है इसका निर्णय उसी से कराना चाहिए। रोगी अपने रोग को स्वयं समझने और अपने आप दवा तथा परहेज का निर्णय करने में समर्थ नहीं होता उसे किसी वैद्य की सहायता लेनी पड़ती है। इसी प्रकार अपनी मनोभूमि के अनुकूल साधना-विधि बताने वाला तथा भूलों और कठिनाइयों का समाधान करने वाला साधना गुरु होना अति आवश्यक है।

१३-प्रातःकाल की साधना के लिए पूर्व की ओर मुँह करना चाहिए और शाम को पश्चिम की ओर मुँह रखना उचित है।

१४-देर तक एक पालती से, एक आसन से बैठा रहना

कठिन होता है इसलिये जब एक तरह से बैठे-बैठे पैर थक जावें तब उन्हें बदला जा सकता है। इसे बदलने में कोई दोष नहीं।

१५–मल-मूत्र-त्याग या किसी अनिवार्य कार्य के लिए साधना के बीच उठना ही पड़े तो शुद्ध जल से हाथ-मुँह धोकर तब दुबारा बैठना चाहिए और विक्षेप के लिए एक माला का अतिरिक्त जप प्रायश्चित्त स्वरूप करना चाहिए।

१६–यदि किसी दिन अनिवार्य कारण से साधन स्थगित करना पड़े तो दूसरे दिन एक माला अतिरिक्त जप दण्ड स्वरूप करना चाहिए।

१७–जन्म या मृत्यु के सूतक हो जाने पर शुद्धि होने तक माला आदि की सहायता से किया जाने वाला विधिवत् जप स्थगित रखना चाहिए, केवल मानसिक जप, मन ही मन चालू रख सकते हैं। यदि इस प्रकार का अवसर सवा लक्ष जप के अनुष्ठान-काल में आ जावे तो उतने दिनों अनुष्ठान स्थगित रखना चाहिए। सूतक-निवृत्त होने पर उसी संख्या से प्रारम्भ किया जा सकता है जहाँ से छोड़ा था। इस विक्षेप काल की शुद्धि के लिए एक हजार जप विशेष रूप से करना चाहिए।

१८–लम्बे सफर में होने, स्वयं रोगी हो जाने या तीव्र रोगी की सेवा में संलग्न रहने की दशा में स्नान आदि पवित्रता की सुविधा नहीं रहती। ऐसी दशा में मानसिक जप चालू रखना चाहिए। मानसिक जप बिस्तर पर पड़े-पड़े, रास्ता चलते या किसी पवित्र-अपवित्र दशा में किया जा सकता है।

१९–साधक का आहार-विहार सात्विक होना चाहिए। आहार में सतोगुणी, सादा, सुपाच्य, ताजे तथा पवित्र हाथों से बनाए हुए पदार्थ होने चाहिए। अधिक मिर्च, मसाले वाले तले हुए पकवान, मिष्ठान्न, बासी, बुरे, दुर्गन्धित, माँस, नशीले, अभक्ष, उष्ण, दाहक, अनीति उपार्जित, गन्दे मनुष्य द्वारा बनाये हुए,

तिरष्कारपूर्वक दिये हुए भोजन से जितना बचा सा सकेगा उतना ही अच्छा होगा।

२०-व्यवहार भी प्राकृतिक, धर्म-सङ्गत, सरल एवं सात्विक रह सके उतना ही अच्छा है। फैशनपरस्ती, रात्रि में अधिक जागना, दिन में सोना, सिनेमा, नाच-रङ्ग अधिक देखना, परनिन्दा, छिद्रान्वेषण, कलह, दुराचार, ईर्षा, निष्ठुरता, आलस्य, प्रमाद, मद, मत्सर आदि से जितना बचा जा सके बचने का प्रयत्न करना चाहिए।

२१-साधना के उपरान्त पूजा से बचे हुए अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य, फूल, जल, दीपक की बत्ती, हवन की भस्म आदि को यों ही जहाँ-तहाँ ऐसी जगह न फेंक देना चाहिए जहाँ वह पैरों तले कुचलती फिरे। किसी तीर्थ, नदी, जलाशय, देव-मन्दिर, कपास, जौ, चावल का खेत आदि पवित्र स्थानों पर विसर्जित करना चाहिए। चावल चिड़ियों के लिए डाल देना चाहिए। नैवेद्य आदि बालकों को बाँट देना चाहिए, जल को सूर्य के सम्मुख अर्घ चढ़ा देना चाहिये।

२२-जप इस प्रकार करना चाहिए कि कण्ठ से ध्वनि होती रहे, होठ हिलते रहें पर बैठा हुआ मनुष्य भी स्पष्ट रूप से सुन न सके।

२३-गायत्री माता की साधना चरण-वन्दना के समान है, वह कभी निष्फल नहीं होती। उलटा परिणाम भी नहीं होता है। भूल हो जाने से अनिष्ट होने की कोई आशङ्का नहीं। इसलिए निर्भय होकर प्रसन्न चित्त से उपासना करनी चाहिए। अन्य मन्त्र अविधिपूर्वक जपे जाने पर अनिष्ट करते हैं पर गायत्री में यह बात नहीं है। वह सर्व सुलभ, अत्यन्त सुगम और सब प्रकार सुसाध्य है। हाँ, तान्त्रिक विधि से की गई उपासना पूर्ण विधि-विधान के साथ होनी चाहिए। उसमें अन्तर पड़ना हानिकारक है

२५-माला जपते समय सुमेर (माला के आरम्भ का सबसे बड़ा दाना) का उल्लंघन न करना चाहिए। एक माला पूरी करके उसे मस्तिष्क तथा नेत्रों से लगाकर पीछे की तरफ उलटा ही वापिस कर लेना चाहिए। इस प्रकार माला पूरी होने पर हर बार उलट कर नया आरम्भ करना चाहिए। माला जपने में तर्जनी उँगली काम में नहीं ली जाती।

कोई बात समझ में न आती हो या सन्देह हो तो जवाबी पत्र भेजकर "गायत्री तपोभूमि", मथुरा से उसका समाधान कराया जा सकता है।

गायत्री की दैनिक साधना

गायत्री के लिए प्रातःकाल का समय सर्वोत्तम है। सूर्योदय से १ घण्टा पूर्व से लेकर १ घण्टा पश्चात् तक के दो घण्टे उपवास के लिए सर्वोत्तम हैं। शरीर को शुद्ध करके साधना पर बैठना चाहिए। साधारणतः स्नान द्वारा ही शरीर की शुद्धि होती है पर किसी विवशता, ऋतु प्रतिकूलता, यात्रा या अस्वस्थता की दशा में हाथ मुँह धोकर या गीले कपड़े से शरीर पोंछ कर भी काम चलाया जा सकता है। साधना के लिए एकान्त, खुली हुई हवा की ऐसी जगह ढूँढ़नी चाहिए जहाँ का वातावरण शांतिमय हो। कुश, खजूर, बेल आदि वनस्पतियों के बने हुए आसन उत्तम हैं। माला तुलसी या चन्दन की लेनी चाहिए। पालती मारकर सीधे-साधे ढङ्ग से बैठना चाहिए। पद्मासन आदि कष्टसाध्य आसन लगाकर बैठने से शरीर और मन दोनों को कष्ट होता है। रीढ़ की हड्डी को सीधा रख कर बैठना चाहिए। प्रातःकाल की साधना पूर्व की ओर और सायङ्काल की साधना के लिए पश्चिम की ओर मुँह करके बैठना चाहिए। पास में जल का भरा हुआ

पात्र रख लेना चाहिए और आरम्भ में ब्रह्म-सन्ध्या करनी चाहिए। ब्रह्म संध्या की रीति यह है—

(१) पवित्रीकरण—बाँए हाथ में जल लेकर उसे दाहिने हाथ में ले। गायत्री मन्त्र पढ़कर उस जल को सारे शरीर पर छिड़के।

२ आचमन—जल भरे हुए पात्र में से दाहिने हाथ की हथेली पर जल लेकर उसका तीन बार आचमन करें। आचमन के समय गायत्री मन्त्र पढ़ें। तीन आचमनों का तात्पर्य गायत्री की ह्रीं—सत्व प्रधान, श्रीं—समृद्धि प्रधान और क्लीं—बल प्रधान शक्तियों का मातृ दुग्ध की तरह पान करना है।

३ शिखा-बन्धन—आचमन के पश्चात् शिखा को जल से गीला करके इसमें ऐसी गाँठ लगानी चाहिये जो सिरा खींचने से खुल जाय। इसे आधी गाँठ कहते हैं। गाँठ लगाते समय गायत्री मन्त्र का उच्चारण करते जाना चाहिए। शिखा-बन्धन का उच्चारण प्रयोजन ब्रह्म रन्ध्र में स्थित शतदल चक्र की सूक्ष्म शक्तियों का जागरण करना है।

४. प्राणायाम—अ—स्वस्थ चित्त से बैठिए, मुख को बन्द कर लीजिये, नेत्रों को बन्द या अधखुला रखिए, अब साँस को धीरे-धीरे नासिका द्वारा भीतर खींचना आरम्भ कीजिए और "ॐ भूर्भुवःस्व" इस मन्त्र का मन ही मन उच्चारण करते चलिये और भावना कीजिये कि "विश्वव्यापी, दुख-नाशक, सुख स्वरूप ब्रह्म की चैतन्य प्राणशक्ति को मैं नासिका द्वारा आकर्षित कर रहा हूँ।" इस भावना को इस मन्त्र के साथ धीरे-धीरे साँस खींचिए और जितनी अधिक वायु भीतर भर सकें भर लीजिये।

ब—अब वायु को भीतर रोकिए और "तत्सवितुर्वरेण्यं" इस भाग का जप कीजिये साथ ही भावना कीजिए कि "नासिका द्वारा खींचा हुआ वह प्राण श्रेष्ट है। सूर्य के समान तेजस्वी है। इसका तेज, मेरे अङ्ग-प्रत्यङ्ग में, रोम-रोम में भरा जा रहा है।" इस भावना के साथ पूरक की अपेक्षा आधे समय तक वायु को रोक रखें।

स—अब नासिका द्वारा वायु को धीरे-धीरे निकालना आरंभ कीजिये और "भर्गो देवस्य धीमहि" इस मन्त्र भाग को जपिये तथा भावना कीजिए कि "यह दिव्य प्राण मेरे पापों को नाश करता हुआ विदा हो रहा है।" वायु को निकालने में प्रायः उतना समय लगाना चाहिए जितना कि वायु खींचने में लगा था।

द—जब भीतर की वायु बाहर निकल जावे तो जितनी देर वायु को भीतर रोक रखा था उतनी ही देर बाहर रोक रखें अर्थात् बिना साँस लिए रहें और "धियो योनः प्रचोदयात्" इस मंत्र को जपते रहें। साथ ही भावना करें कि "भगवती वेदमाता आद्यशक्ति गायत्री हमारी सद्बुद्धि को जाग्रत कर रही हैं।"

यह एक प्राणायाम हुआ। अब इसी प्रकार पुनः इन क्रियाओं की पुनरुक्ति करते हुए दूसरा प्राणायाम करें। सन्ध्या में यह पाँच प्राणायाम करने चाहिए, जिनमें शरीर स्थिर प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान नामक पाँचों प्राणों का व्यायाम, प्रस्फुरण और परिमार्जन हो जाता है।

५. न्यास—बाँए हाथ की हथेली पर जल लेकर दाहिने हाथ की पाँचों उँगलियाँ इकट्ठी कर उन्हें जल में डुबाकर निम्न प्रकार अङ्ग स्पर्श करें—

(१) ॐ भूर्भुवः स्वः—मूर्धाये। (२) तत्सवितुः—नेत्राभ्यां। (३) वरेण्यं—कर्णाभ्यां। (४) भर्गो—मुखाय। (५) देवस्य—कण्टाय।

(६) धीमहि–हृदयाय। (७) धियो योनः–नाभ्यै। (८) प्रचोद-यात–हस्त पादाभ्यां।

यह पञ्च कर्म पवित्रीकरण, आचमन, शिखाबन्धन, प्राणायाम, न्यास को पूरा करने के पश्चात् माता गायत्री और पिता आचार्य को ध्यान द्वारा मानसिक प्रणाम करना चाहिए। यदि दोनों चित्र हों तो केवल प्राणायाम करके अथवा धूप, अक्षत, नैवेद्य, पुष्प, चन्दन आदि माङ्गलिक द्रव्यों से पूजन करके जप आरम्भ कर देना चाहिए। कम से कम १०८ मन्त्रों की एक माला तो जपनी चाहिए इससे अधिक सुविधानुसार जितना हो सके उत्तम है। जप-काल में ध्यान-मुद्रा रखते हुए नेत्र अर्ध खुले रहने चाहिए। मस्तिष्क के मध्य में दीपक की लौ के समान तेज स्वरूप दिव्य शक्ति गायत्री का ध्यान करना चाहिए। इस तेज स्वरूप ज्योति के मध्य में कभी-कभी भगवती की मुस्कराती दिव्य मुखा-कृति साधक को दिखाई पड़ती है।

जप पूरा हो जाने पर भगवती को प्रणाम करके उनसे विसर्जित होने की प्रार्थना करनी चाहिए और उठकर उस समय सूर्य जिस दिशा में हो उस दिशा में जल का अर्घ दे देना चाहिए। यह नित्यप्रति की सर्व सुलभ साधना है। इसमें किसी विशेष प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं है पर जहाँ तक बन पड़े सात्विक आहार-बिहार रखना ही उचित है, क्योंकि माता सतोगुणी बालकों से ही प्रसन्न रहती है।

शक्ति का अकूत भण्डार अनुष्ठान

(यदि धन अपने पास हो तो उसके बदले में कोई भी वस्तु खरीदी जा सकती है। यदि शारीरिक बल अपने पास हो तो उससे किसी भी प्रकार का काम पूरा किया जा सकता है। यदि बुद्धि-बल अपने पास हो तो उससे कठिन से कठिन उलझनें सुलझाई जा सकती हैं। इसी प्रकार यदि (आत्म-बल अपने पास हो तो उससे जीवन को उन्नत बनाने, मनोकामनाऐं पूरी करने, सामने की उपस्थित कठिनाइयों को सरल बनाने एवं आपत्तियों से छूटने के कार्य सम्पन्न किये जा सकते हैं। गायत्री अनुष्ठान आत्म-बल-सञ्चय की विशेष प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया द्वारा जो आत्म-बल-सञ्चय होता है वह दैवी वरदान की तरह आपत्तियों का निवारण और सम्पत्तियों का आयोजन करने में बड़ी भारी सहायता करता है।

(जब कोई नया काम आरम्भ करना है, जब सांसारिक प्रयत्न असफल हो रहे हों, आपत्तियों के निवारण का मार्ग न दीखता हो, चारों ओर अन्धकार छा रहा हो, भविष्य चिन्ता-जनक दिखाई दे रहा हो, परिस्थितियाँ दिन-दिन बिगड़ती जा रही हों, सीधा करते उलटा परिणाम निकलता हो, स्वभावतः मनुष्य के हाथ-पैर फूल जाते हैं। ऐसे अवसरों पर अनुष्ठान की प्रक्रिया द्वारा गायत्री माता को पुकारना बहुधा सफल होते देखा गया है। (माता भी दिन भर लल्ला, बेटा कहकर उत्तर देती है। यह लाड़-प्यार चलता रहता है)। (पर जब कोई विशेष आवश्यकता पड़ती है, कष्ट होता है तो बालक विशेष बल पूर्वक विशेष स्वर से माता को पुकारता है। इस विशेष पुकार को सुन कर माता अपने कार्यों को छोड़कर साधक के पास

दौड़ी आती है और उसकी सहायता करती है। अनुष्ठान साधन की ऐसी ही पुकार है जिसमें विशेष बल एवं विशेष आकर्षण होता है। उस आकर्षण से गायत्री-शक्ति विशेष रूप से साधक के समीप एकत्रित हो जाती है और शक्ति को जिस कार्य में प्रयुक्त किया जाता है उसी में सफलता की सम्भावना बढ़ जाती है।)

अनुष्ठान किसी विशेष संख्या में मन्त्रों का जप, किसी विशेष अवधि में, किन्हीं विशेष नियमोपनियमों के साथ करने को कहते हैं। प्रायः इस प्रकार के अनुष्ठान किए जाते हैं—

((१) चौबीस दिन में चौरासी हजार मन्त्र का अनुष्ठान, (२) नौ दिन में चौबीस हजार का अनुष्ठान, (३) चालीस दिन में सवा लक्ष का अनुष्ठान, (४) सवा वर्ष [पन्द्रह मास] में चौबीस लाख का अनुष्ठान। २४ हजार से छोटा और २४ लक्ष से बड़ा अनुष्ठान नहीं होता। साधारणतः "ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्" यही मन्त्र जपा जाता है। पर किन्हीं विशेष प्रयोजनों के लिए व्याहृतियों से पहले या पीछे ह्रीं, श्रीं, क्लीं, हुँ, ऐं, ठं, यं आदि बीज अक्षर भी लगाये जाते हैं। बीज अक्षरों के प्रयोग के लिये किसी अनुभवी की सलाह लेना आवश्यक है। अशिक्षित, बहुधन्धी, कार्यव्यस्त, रोगी स्त्री-पुरुष या बालक केवल "ॐ भूर्भुवः स्वः" इस पञ्चाक्षरी मन्त्र से भी गायत्री का अनुष्ठान कर सकते हैं।)

(अनुष्ठान के दिनों में ब्रह्मचर्य से रहना आवश्यक है। बीच में किसी दिन स्वप्नदोष हो जाय तो उसके प्रायश्चित स्वरूप उस दिन एक माला अधिक जप लेनी चाहिए। शिर के

बाल नहीं कटाने चाहिए। ठोड़ी की हजामत अपने हाथ से बनाना चाहिए। चारपाई या पलँग का त्याग करके चटाई या तख्त पर सोना चाहिए। उनकी कठोरता कम करने के लिए ऊपर गद्दे बिछाए जा सकते हैं। आहार-विहार सात्विक रहना चाहिए। मद्य, माँस तो पूर्ण रूप से त्याग देना उचित है। अन्य नशीली, बासी, बुरी, गरिष्ठ, चटपटी, तामसिक, उष्ण, उत्तेजक वस्तुओं से बचने का यथा सम्भव प्रयत्न करना चाहिए। कुविचार, कुकर्म, विलासिता, अनीति आदि बुराइयों से वैसे तो सदा ही बचना चाहिए पर अनुष्ठान काल में इनका विशेष ध्यान रखना चाहिए। जन्म या मृत्यु का सूतक हो जाने पर सूतक-निवृत्ति तक अनुष्ठान स्थगित रखना चाहिए। शुद्धि होने पर उसी संख्या से आरम्भ किया जा सकता है जहाँ से बन्द किया था। इस विशेष काल के प्रायश्चित के लिए एक हजार मंत्र विशेष रूप से जपने चाहिए। अनुष्ठान काल में चाम के जूते के स्थान पर रबड़ के तले वाले कपड़े के जूते या लकड़ी की चट्टी प्रयोग करना उचित है। अपने शरीर और वस्त्रों को दूसरों से जहाँ तक हो सके कम ही स्पर्श होने देना चाहिये। उस अवधि में एक समय अन्नाहार, दूसरे समय फल या दूध लेकर अर्ध उपवास का क्रम चल सके तो बहुत उत्तम है। इसके अतिरिक्त उन नियमों का भी पालन करना चाहिए जो 'आवश्यक नियमों' के प्रकरण में लिखे गये हैं।

जितने दिन में जितने मन्त्र पूरे करने हों उनका हिसाब लगाकर यह देख लेना चाहिए कि प्रति दिन कितने मन्त्र जपने हैं। १०८ दाने की माला होती है उससे यह हिसाब लग जाता है कि कितनी मालाएँ नित्य जपनी हैं। मालाओं की गिनती याद रखने के लिए किसी स्लेट आदि पर पेन्सिल से रेखाएँ खींच

लेना चाहिये या गंगाजल में खड़िया मिट्टी सानकर उसकी गोलियाँ बना लेनी चाहिए। एक माला जप लेने पर एक गोली इस डिब्बे में से निकाल उस डिब्बे में डाल दी जाय। इस प्रकार जब सब गोली एक डिब्बे में हो जाँय तब समझना चाहिये कि जप पूरा हो गया। इस क्रम से जप की संख्या में भूल नहीं पड़ती ।)

अनुष्ठान के आरम्भ में पूजन करना चाहिए । शीशे में मढ़ी हुई गायत्री की तस्वीर या प्रतिमा को सामने रख कर धूप, दीप, नैवेद्य, चन्दन, पुष्प, जल आदि माँगलिक पदार्थों से पूजा करनी चाहिए। पूजा से पूर्व आह्वान मन्त्र पढ़ना चाहिए और प्रति दिन जप समाप्त करते समय विसर्जन मन्त्र पढ़ना चाहिये।

गायत्री आह्वान का मन्त्र-

आयातु वरदा देवी अक्षरं ब्रह्म वादिनी।
गायत्री छन्दसां माता ब्रह्मयोने नमोऽस्तुते ॥

गायत्री विसर्जन का मन्त्र--

उत्तमे शिखरे देवि भूम्यां पर्वत मूर्धनि।
ब्राह्मणेभ्योह्यनुज्ञानं गच्छ देवि यथासुखम् ॥

अनुष्ठान का पथ-प्रदर्शक एवं संरक्षक किसी आचार्य को ब्रह्म रूप में वरण करना चाहिए। अनुष्ठान भी एक यज्ञ है। यज्ञ में पुरोहित या ब्रह्मा न हो तो यह निष्फल होता है। इसी प्रकार अनुष्ठान का पुरोहित या ब्रह्मा नियुक्त करना आवश्यक है। यदि वरण किया हुआ ब्रह्मा नित्य उपस्थित न हो सके तो उसके चित्र को अथवा उसका प्रतिनिधि मानकर स्थापित किये

हुए नारियल की पूजा करनी चाहिए। गायत्री तथा ब्रह्मा रूपी आध्यात्मिक माता-पिताओं का पूजन करने के उपरान्त ब्रह्म सन्ध्या के पाँच कोष (आचमन, शिखाबन्धन, प्राणायाम, अघमर्षण, न्यास) करके जप आरम्भ कर देना चाहिए । जप के अन्त में आरती करनी चाहिये और बची हुई पूजा सामिग्री किसी पवित्र स्थान में तथा जल को सूर्य की ओर विसर्जन कर देना चाहिये । यदि प्रातः सायं दो बार अनुष्ठान करना हो तो प्रातःकाल के लिए अधिक संख्या में और सायंकाल के लिए उससे कम जप करना चाहिए । दोनों ही बार पूजन तथा सन्ध्या के उपरान्त जप होना चाहिए।

कई ग्रन्थों में ऐसा उल्लेख है कि शापमोचन, कवच, कीलक, अर्गल, मुद्रा के साथ जप करना और मुद्रा से दसवाँ भाग हवन, हवन से दसवाँ भाग तर्पण, तर्पण से दसवाँ भाग ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए। यह नियम तन्त्रोक्त रीति से किए हुए गायत्री पुरश्चरण के लिए हैं। इन पंक्तियों में वेदोक्त योग विधि से दक्षिण मार्गी साधना बताई जा रही है । इसमें अन्य विधियों की आवश्यकता तो नहीं है पर हवन और दान आवश्यक हैं। अनुष्ठान के अन्त में कम से कम १०८ आहुतियों का हवन अवश्य होना चाहिए। अधिक अपनी श्रद्धा के ऊपर निर्भर है। जिसे ब्रह्मा माना है उसके विसर्जन के समय दान, दक्षिणा, वस्त्र, पात्र, अन्न आदि से सत्कार करना चाहिए और थोड़ा बहुत ब्राह्मण-भोजन भी कराना चाहिए । यज्ञ के प्रसाद के रूप में अपने मित्रों तथा सद्वृत्ति वालों में प्रसाद रूप से कुछ वितरण करना चाहिए। प्रसाद रूप में वितरण करने के लिए हमारी छः छः आने वाली सस्ती पुस्तकें सबसे उत्तम हैं । गायत्री के २४ अक्षर एवं १४ पद हैं । तदनुसार अपनी श्रद्धा और

सामर्थ्य के अनुसार माला के एक-एक दाने पर एक-एक पुस्तक के हिसाब से १०८ पुस्तकें अथवा गायत्री के २४ अक्षरों के आधार पर २४ या १४ पदों के आधार पर कम से कम चौदह पुस्तकें तो अवश्य ही दान कर देनी चाहिए।)

(जो व्यक्ति स्वयं अनुष्ठान करने की स्थिति में नहीं हैं वे अनिष्ट-निवारण, मनोरथ-पूर्ति, सुख-शान्ति की रक्षा, आत्म-बल वृद्धि एवं पुण्य-सञ्चय के लिए किसी सत्पात्र ब्राह्मण को उसका पारिश्रमिक देकर अनुष्ठान करा सकते हैं। नित्य एक दो घण्टा जप के लिए किसी साधक को इसी आधार पर अपने लिए साधना करने के लिए नियुक्त कर देना भी उत्तम है।)

(अनुष्ठान के समय आसुरी शक्तियाँ अनेक विघ्न उपस्थित करके उस तपस्या को खण्डित करने का प्रयत्न करती हैं। भय, प्रलोभन तथा अनेक प्रकार की ऐसी गड़बड़ें उस समय में बहुधा आती हैं जिससे साधना ठीक प्रकार पूरी न हो सके। इसलिए किसी सुयोग्य अनुभवी साधक को अपनी साधना का संरक्षक नियुक्त कर लेना चाहिए। यज्ञों में ऐसे दृढ़ पुरुष नियत करने का शास्त्रीय विधान है। यह संरक्षक दृढ़ पुरुष आसुरी प्रकोपों का अपनी आत्मिक शक्ति द्वारा शमन करते हैं और जो भूल साधक से होती हैं उनका परिमार्जन करते हैं। अनुष्ठान की सूचना देने पर यह संरक्षण तथा अनुष्ठान में रही हुई त्रुटियों का दोष परिमार्जन का कार्य गायत्री तपोभूमि भी निःशुल्क कर देती है।

नवरात्रि की गायत्री-साधना

आश्विन और चैत्र के शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा से लेकर नवमी तक नवरात्रि में होती है। यह पुण्य पर्व गायत्री-साधना

के लिए बहुत शुभ है। इसमें २४ हजार का लघु अनुष्ठान किया जाय तो बहुत ही उत्तम है। अन्य किसी अवसर पर भी नौ दिन की यह लघु साधना की जा सकती है।

प्रातःकाल ब्रह्म मुहूर्त्त में उठकर शौच स्नान से निवृत्त होकर पूर्व की ओर मुँह करके आसन पर बैठना चाहिए। पास में जल-पात्र तथा साक्षी के लिए अग्नि रहना आवश्यक है। अग्नि को दीपक, अगरबत्ती, धूपबत्ती आदि के रूप में स्थापित रखना चाहिए। गायत्री एवं गुरु का चित्र सामने रखना चाहिए। आवाहन मन्त्र से माता का आवाहन करके धूप, दीप, अक्षत, नैवेद्य, जल, पुष्प आदि से उनको पूजना चाहिए। केवल माता की प्रतिमा हो, गुरु की न हो तो उसके स्थान पर नारियल को प्रतिनिधि स्थापित कर लेना चाहिए। यदि दोनों में से एक भी प्रतिमा न हो तो केवल मानसिक ध्यान द्वारा काम चलाया जा सकता है। जिन्हें ब्रह्म संध्या याद हो वे उसे करके तब जप आरम्भ करें। जिन्हें याद न हो वे आवाहन, पूजन के उपरान्त जप आरम्भ करदें।

नौ दिन में २४ हजार जप करना है। प्रतिदिन २६६७ मन्त्र जपने हैं। एक माला में १०० दाने माने जाते हैं। प्रतिदिन २७ मालाऐं जपने से यह संख्या पूरी हो जाती है। प्रायः तीन घंटे में इतनी मालाऐं आसानी से जपी जा सकती हैं। यदि एक साथ इतने समय लगातार जप करना कठिन हो तो अधिकांश भाग प्रातःकाल पूरा करके शेष भाग सायंकाल पूरा कर लेना चाहिए। जप समाप्त करके माता को प्रणाम करना चाहिए और विसर्जन मन्त्र से विसर्जन कर देना चाहिए। जल को सूर्य के सम्मुख अर्घ चढ़ादें। भोजन के समय भोग लगाने का तथा सन्ध्या समय आरती करने का भी क्रम रखना चाहिये।

इन दिनों जिससे जितनी तपश्चर्या सध सके उसे उतनी साधनी चाहिए। तपश्चर्या में मुख्य बात यह है–१–भूमि-शयन, २– जूते या छाते का त्याग, ३–शरीर पर कम वस्त्र, ४–हजामत न बनवाना एवं शृंगार-सामिग्रियों का त्याग, ५–अपना भोजन, जल, वस्त्र धोना आदि शारीरिक कार्य स्वयं करना, ६–धातु के बर्तनों का प्रयोग छोड़ना, ७–पशुओं की सवारी का त्याग, ८–ब्रह्मचर्य, ९–मौन, १०–उपवास। इनमें से जो तप जितनी मात्रा में जिससे हो सके उसे उतना करने का प्रयत्न करना चाहिए। जो लोग केवल एक समय फलाहार पर नहीं रह सकते वे दो बार ले सकते हैं। जिनके लिये यह भी कठिन है वे दोपहर को बिना नमक का एक अन्न से बना भोजन और शाम को दूध लेकर अपना अर्ध उपवास चला सकते हैं।

अन्तिम दिन २४० आहुतियों का हवन करना चाहिए। हर आहुति में कम से कम ३ माशे सामिग्री और एक माशे घी होना चाहिए।

अनेक प्रयोजनों में सफलता !

गायत्री सर्वोपरि मन्त्र है। भारतीय धर्म में इससे बड़ा और कोई मन्त्र नहीं है। जो काम अन्य किसी भी मन्त्र से हो सकते हैं वे सभी गायत्री मन्त्र से भी हो सकते हैं। दीर्घकालीन गायत्री-उपासना से साधक में आत्म-बल पर्याप्त मात्रा में संचित हो जाता है। तप-बल को विविध कार्यों में प्रयुक्त करके उससे अनेक लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं। स्मरण रखना चाहिए कि अपने पास जितनी बड़ी साधन की पूँजी होगी उसी अनुपात से लाभ होगा। कुछ विशेष प्रयोजनों के लिए विशेष प्रयोग नीचे दिये हैं—

(१) रोग-निवारण—स्वयं रोगी होने पर जिस स्थिति में रहना पड़े उसी में मन ही मन गायत्री का जप करना चाहिए एक मंत्र समाप्त होने पर दूसरा आरम्भ होने के बीच में एक 'बीज मन्त्र' का सम्पुट भी लगाते चलना चाहिए। सर्दी प्रधान (कफ) रोगों में 'ए' बीज मन्त्र, गर्मी प्रधान पित्त रोगों में 'ऐं' अपच एवं विष प्रधान (वात) रोगों में 'हुँ' बीज मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए। निरोग रहने के लिए हंस वाहिनी रक्त एवं हरीत वस्त्रा गायत्री का ध्यान करना चाहिए।

(दूसरों को निरोग करने के लिए भी इन्हीं बीज मन्त्रों का और इसी ध्यान का प्रयोग करना चाहिए। रोगी के पीड़ित अंगों पर उपरोक्त ध्यान और जप करते हुए हाथ फिराना जल अभिमन्त्रित करके रोगी पर मार्जन देना एवं छिड़कना चाहिये। इन्हीं स्थितियों में तुलसी पत्र और काली मिर्च गंगाजल में पीस कर दवा के रूप में देना, यह सब उपचार ऐसे हैं जो किसी भी रोगी पर किये जाँय उसे लाभ पहुँचाये बिना न रहेंगे।)

विष-निवारण—पीपल वृक्ष की समिधाओं से विधिवत हवन करके उसकी भस्म को सुरक्षित कर लेना चाहिये। अपनी नासिका का जो स्वर चल रहा है उसी हाथ पर थोड़ी-सी भस्म रखकर दूसरे हाथ से उसे अभिमन्त्रित करता चले और बीच में 'हुँ' बीज मन्त्र का सम्पुट लगावे तथा रक्तवर्ण अश्वारूढ़ा गायत्री का ध्यान करता हुआ उस भस्म को विषैले कीड़े के काटे हुए स्थान पर दो-चार मिनट मसले। पीड़ा को जादू की तरह आराम होता है।

सर्प के काटे हुए स्थान पर रक्त चन्दन से किए हुए

हवन की भस्म मलनी चाहिए और अभिमन्त्रित करके घृत पिलाना चाहिए। पीली सरसों अभिमन्त्रित करके उसे पीसकर दसों इन्द्रियों के द्वार पर थोड़ा-थोड़ा लगा देना चाहिये। ऐसा करने से सर्प-विष दूर हो जाता है।

(३) बुद्धि-वृद्धि—गायत्री प्रधानतः बुद्धि को शुद्ध, प्रखर और समुन्नत करने वाला मन्त्र है। मन्द बुद्धि, स्मरण-शक्ति की कमी वाले लोग इससे विशेष रूप से लाभ उठा सकते हैं। जो बालक परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाते हैं, पाठ ठीक प्रकार याद नहीं कर पाते उनके लिए निम्न उपासना बड़ी उपयोगी है।

सूर्योदय के समय की प्रथम किरणें पानी से भीगे हुए मस्तक पर पड़ने दें। पूर्व की ओर मुख करके अधखुले नेत्रों से सूर्य का दर्शन करते हुए आरम्भ में तीन बार ॐ का उच्चारण करते हुए गायत्री का जप करें। कम से कम एक माला (१०८ मन्त्र) अवश्य जपनी चाहिए। पीछे दोनों हाथों की हथेली का अग्र-भाग सूर्य की ओर इस प्रकार करें मानो आग पर ताप रहे हैं। इस स्थिति में बारह मन्त्र जप कर हथेलियों को मुख, नेत्र, नासिका, ग्रीवा, कर्ण, मस्तक आदि समस्त शिरो भागों पर फिराना चाहिए।

(४) राजकीय सफलता—किसी सरकारी कार्य, मुकदमा, राज्य स्वीकृति, नियुक्ति आदि में सफलता प्राप्त करने के लिए गायत्री का उपयोग किया जा सकता है। जिस समय अधिकारी के सम्मुख उपस्थित होना हो अथवा कोई आवेदन पत्र लिखना हो उस समय यह देखना चाहिए कि कौनसा स्वर चल रहा है। यदि दाहिना स्वर चल रहा हो तो पीत-वर्ण ज्योति का मस्तिष्क में ध्यान करना चाहिए और यदि बाँया स्वर चल रहा

हो तो हरे रङ्ग के प्रकाश का ध्यान करना चाहिए। मन्त्र में सप्त व्याहृतियाँ लगाते हुए (ॐ भूः भुवः स्वः तपः जनः महः सत्यम्) गायत्री मन्त्र का मन ही मन जप करना चाहिए। दृष्टि उस हाथ के अँगूठे के नाखून पर रखनी चाहिए जिसका स्वर चल रहा हो। भगवती की मानसिक आराधना प्रार्थना करते हुए राजद्वार में प्रवेश करने से सफलता मिलती है।

(५) दरिद्रता का नाश——दरिद्रता के नाश के लिए गायत्री की 'श्री, शक्ति की उपासना करनी चाहिए। मन्त्र के अंत में 'श्री' बीज का सम्पुट लगाना चाहिये। साधना-काल के लिए पीत वस्त्र, पीले पुष्प, पीला यज्ञोपवीत, पीला तिलक तथा पीला आसन उपयोग करना चाहिए। शरीर पर शुक्रवार को हल्दी मिले हुए तेल की मालिश करनी चाहिये और रविवार को उपवास करना चाहिए। पीताम्बरधारी, हाथी पर चढ़ी हुई गायत्री का ध्यान करना चाहिये। पीत-वर्ण लक्ष्मी का प्रतीक है, भोजन में भी पीली चीजें प्रधान रूप से लेनी चाहिये। इस प्रकार की साधना से धन की वृद्धि और दरिद्रता का नाश होता है।

(६) सुसन्तति की प्राप्ति—जिनके सन्तान नहीं होती हैं, होकर मर जाती हैं, रोगी रहती हैं, गर्भपात हो जाते हैं, केवल कन्यायें होती हैं, तो इन कारणों से माता-पिता को दुःख रहना स्वाभाविक है। इस प्रकार के दुःखों से भगवती की कृपा द्वारा छुटकारा मिल सकता है। इस प्रकार की साधना में स्त्री-पुरुष दोनों ही सम्मिलित हो सकें तो बड़ा अच्छा, एक पक्ष के द्वारा ही पूरा भार कन्धे पर लिए जाने से आंशिक सफलता ही मिलती है। प्रातःकाल नित्य-कर्म से निवृत्त होकर पूर्वाभिमुख होकर साधना पर बैठे। नेत्र बन्द करके श्वेत वस्त्राभूषण अलंकृत किशोर आयु वाली, कमल-पुष्प हाथ में लिये हुए गायत्री का

ध्यान करें। 'यं' बीज के तीन सम्पुट लगाकर गायत्री का जप चन्दन की माला पर करें।

नासिका से साँस खींचते हुए पेड़ू तक ले जानी चाहिए। पेड़ू को जितना वायु से भरा जा सके भरना चाहिए। फिर साँस रोक कर 'यं' बीज सम्पुटित गायत्री का कम से कम तथा अधिक से अधिक तीन बार जप करना चाहिए। फिर धीरे-धीरे साँस को निकाल देना चाहिए। इस प्रकार पेड़ू में गायत्री शक्ति का आकर्षण और धारणा करने वाला यह प्राणायाम दस बार करना चाहिए। तदनन्तर अपने वीर्य-कोष या गर्भाशय में शुभ्र वर्ण-ज्योति का ध्यान करना चाहिए। यह साधन स्वस्थ, सुन्दर, तेजस्वी, गुणवान, बुद्धिमान सन्तान उत्पन्न करने के लिए है।

इस साधना के दिनों में प्रत्येक रविवार को चावल, दूध, दही आदि की श्वेत वस्तुओं का ही भोजन करना चाहिये।

(७) शत्रुता का संहार—द्वेष, कलह, मुकदमाबाजी, मनमुटाव को दूर करने और अत्याचारी, अन्यायी, अकारण आक्रमण करने वाली मनोवृत्ति का संहार करने, आत्मा में तथा समाज में शांति रखने के लिए आवश्यक होते हैं। इनके लिए चार 'क्लीं' बीज मन्त्रों के सम्पुट समेत रक्त चन्दन की माला से पश्चिमाभिमुख होकर गायत्री का जप करना चाहिये। जप-काल में सिर पर यज्ञ-भस्म का तिलक लगाना तथा ऊन का आसन बिछाना चाहिए। लाल वस्त्र पहने, सिंहारूढ़, खड्ग-हस्ता, विकराल बदना दुर्गा वेषधारी गायत्री का ध्यान करना चाहिये।

जिन व्यक्तियों का द्वेष दुर्भाव निवारण करना हो उनका नाम पीपल के पत्ते पर रक्त चन्दन की स्याही और अनार की कलम से लिखना चाहिये। इस पत्ते को उलटा रखकर प्रत्येक मंत्र के बाद जल-पात्र में से एक छोटी चमची भर के जल लेकर उस पत्ते

पर डालना चाहिये । इस प्रकार १०८ मन्त्र नित्य जपने चाहिये । इससे शत्रु के स्वभाव का परिवर्तन होता है और उसकी द्वेष वाली सामर्थ्य घट जाती है ।

(८) भूत-बाधा की शांति—इसके लिए गायत्री हवन सर्वश्रेष्ठ है । तमोगुणी हवन सामिग्री से विधिपूर्वक यज्ञ करना चाहिये और रोगी को उसके निकट बिठा लेना चाहिए। हवन की अग्नि में तपाया हुआ जल रोगी को पिलाना चाहिये । बुझी हुई यज्ञ-भस्म सुरक्षित रख लेनी चाहिए। किसी रोगी को अचानक भूत-बाधा हो तो उस यज्ञ-भस्म को उसके हृदय, ग्रीवा, मस्तक, नेत्र, कर्ण, मुख, नासिका आदि पर लगाना चाहिए ।

(९) दूसरों को प्रभावित करना—जो व्यक्ति अपने प्रतिकूल हैं उन्हें अनुकूल बनाने के लिए, उपेक्षा करने वालों में प्रेम उत्पन्न करने के लिये गायत्री द्वारा आकर्षण क्रिया की जानी चाहिये ।

गायत्री का जप तीन प्रणव लगाकर जपना चाहिए और ऐसा ध्यान करना चाहिए कि अपनी त्रिकुटी (मस्तिष्क का मध्य भाग) में से एक नील वर्ण विद्युत तेज की रस्सी जैसी शक्ति निकलकर उस व्यक्ति तक पहुँचती है जिसे आपको आकर्षित करना है और उसके चारों ओर अनेक लपेट मारकर लिपट जाती है । इस प्रकार लिपटा हुआ वह व्यक्ति अर्द्ध तन्द्रिय अवस्था में धीरे-धीरे खिंचता चला आता है । आकर्षण के लिए यह ध्यान बड़ा प्रभावशाली है ।

किसी के मन में, मस्तिष्क में, उसके अनुचित विचार हटाकर अपने उचित विचार भरने हों तो ऐसा करना चाहिए कि शान्त चित्त होकर उस व्यक्ति को अखिल नील आकाश में अकेला सोता हुआ ध्यान करें और भावना करें कि उसके कुवि-

चारों को हटाकर उसके मन में सद्विचार भर रहे हैं। इस ध्यान-साधना के समय अपना शरीर भी बिलकुल शिथिल और नील वस्त्र से ढका हुआ होना चाहिए।

(१०) रक्षा कवच—किसी शुभ दिन उपवास रखकर केशर, कस्तूरी, जायफल, जावित्री, गोरोचन इन पाँच चीजों के मिश्रण की स्याही बनाकर अनार की लकड़ी से पाँच प्रणव संयुक्त गायत्री-मन्त्र बिना पालिश किये हुए कागज या भोजपत्र पर लिखना चाहिए। यह कवच चाँदी के तावीज में बन्द करके जिस किसी को धारण कराया जाय उसकी सब प्रकार रक्षा करता है। रोग, अकाल-मृत्यु, शत्रु, चोर, हानि, बुरे दिन, कलह, भय, राज-दंड, भूत-प्रेत, अभिचार आदि से यह कवच रक्षा करता है।

(११) प्रसूति-कष्ट-निवारण—काँसे की थाली में उपरोक्त प्रकार से गायत्री मन्त्र लिखकर उसे प्रसव-कष्ट से पीड़ित प्रसूता को दिखाया जाय और फिर पानी से धोकर उसे पिला दिया जाय तो कष्ट दूर होकर, सुखपूर्वक शीघ्र प्रसव हो जाता है।

(१२) बुरे मुहूर्त और शकुनों का परिहार—कभी-कभी ऐसे अवसर आते हैं कि कोई कार्य करना या कहीं जाना है, पर उस समय कोई शकुन या मुहूर्त ऐसे उपस्थित हो रहे हैं जिनके कारण आगे कदम बढ़ाते हुए झिझक होती है। ऐसे अवसरों पर गायत्री की एक माला जपने के पश्चात् कार्य आरम्भ किया जा सकता है। इससे सारे अनिष्टों और आशङ्काओं का समाधान हो जाता है और किसी अनिष्ट की सम्भावना नहीं रहती।

(१३) बुरे स्वप्नों के फल का नाश—कई बार ऐसे भयङ्कर स्वप्न दिखाई पड़ते हैं जिनसे स्वप्न-काल में भी बड़ा त्रास और दुःख मिलता है एवं जागने पर भी उनका स्मरण

करके दिल धड़कता है। ऐसे स्वप्न किसी अनिष्ट की आशङ्का का संकेत करते हैं। जब ऐसे स्वप्न हों तो एक सप्ताह तक प्रतिदिन दस-दस मालाऐं गायत्री-जप करना चाहिए और गायत्री का पूजन करना या कराना चाहिए। गायत्री सहस्रनाम या चालीसा का पाठ भी दुःस्वप्नों के प्रभाव को नष्ट करने वाला है।

इसके अतिरिक्त भी अनेकों प्रकार से गायत्री द्वारा अपना तथा दूसरों का आत्मिक एवं सांसारिक हित साधना किया जा सकता है।

महिलाओं के लिये विशेष साधनाएँ

स्त्रियाँ भी पुरुष की भाँति गायत्री साधनाऐं कर सकती हैं। जो साधनाऐं इस पुस्तक में दी गई हैं वे सभी उनके अधिकार क्षेत्र में हैं। परन्तु देखा गया है कि सधवा स्त्रियाँ जिन्हें घर के कार्य में विशेष रूप से व्यस्त रहना पड़ता है अथवा जिनके छोटे-छोटे बच्चे हैं और जिनके मल-मूत्र के अधिक सम्पर्क में रहने के कारण उतनी स्वस्थता नहीं रख सकतीं उनके लिये देर में पूरी करने वाली साधनाऐं कठिन हैं। वे संक्षिप्त साधनाओं से काम चलावें। जो पूरा गायत्री-मंत्र याद नहीं कर सकतीं वे संक्षिप्त में गायत्री-पञ्चाक्षरी मंत्र (ॐ भूर्भुवः स्वः) से काम चला सकती हैं। रजस्वला होने के दिनों उन्हें विधिपूर्वक साधना बन्द रखनी चाहिए। उन दिनों केवल मानसिक जप और ध्यान से काम चलाया जा सकता है। कोई अनुष्ठान चल रहा हो तो उन दिनों उसे रोक कर रज-स्थान के पश्चात् उसे पुनः चालू किया जा सकता है।

विविध प्रयोजनों के लिए कुछ साधनाऐं नीचे दी जाती हैं—

[१] मनोनिग्रह और ब्रह्म प्राप्ति के लिए—विधवा बहिनें आत्म-संयम, सदाचार, विवेक, ब्रह्मचर्य-पालन, इन्द्रिय एवं मन को वश में करने के लिये गायत्री-साधना को ब्रह्मास्त्र के रूप में प्रयोग कर सकती हैं। जिस दिन से यह साधना आरम्भ की जाती है उसी दिन से मन में शान्ति, स्थिरता, सद्बुद्धि और आत्म-संयम की भावना पैदा होती है। मन पर अपना अधिकार होता है। चित्त की चञ्चलता नष्ट होती है। विचारों में सद्गुण बढ़ जाता है। इच्छाऐं, रुचियाँ, क्रियाऐं, भावनाऐं सभी सतोगुणी, शुद्ध और पवित्र रहने लगती हैं। ईश्वर-प्राप्ति, धर्म-रक्षा, तपश्चर्या, आत्म-कल्याण और ईश्वर की आराधना में मन विशेष रूप से लगता है। धीरे-धीरे उसकी साध्वी, तपस्विनी, ईश्वर परायण एवं ब्रह्मवादिनी जैसी स्थिति हो जाती है। गायत्री के वेष में भगवान का उसको साक्षात्कार होने लगता है और ऐसी आत्म-शक्ति मिलती है जिसकी तुलना में सधवा रहने का सुख उसे नितांत तुच्छ दिखाई पड़ता है।

पुरुषों के लिए जो दैनिक नित्य साधना के नियम हैं वे ही स्त्री के लिए हैं। गायत्री सन्ध्या में वे शिखा-बन्धन के स्थान पर शिखा स्पर्श करलें, क्योंकि उनके बाल प्रायः बँधे रहते हैं यदि खुले हों तो जल्दी में उनका बँधना कठिन है। इसलिये स्पर्श ही उनके लिये पर्याप्त है।

[२] कुमारियों के लिये साधनाऐं—गायत्री का चित्र, प्रतिमा अथवा मूर्ति को किसी छोटे आसन या चौकी पर स्थापित करके उसकी पूजा वैसे ही करनी चाहिये जैसे अन्य देव-प्रतिमाओं की, की जाती है। प्रतिमा के आगे एक छोटी तस्तरी रख लेनी चाहिए और उसी में चन्दन, धूप, दीप, अक्षत, नैवेद्य,

पुष्प, जल, भोग आदि पूजा सामिग्री चढ़ानी चाहिए, आरती करनी चाहिये। मूर्ति के मुख पर चन्दन लगाया जा सकता है पर यदि चित्र है तो उसको चन्दन आदि नहीं लगाना चाहिए जिससे उसमें मैलापन न आवे। नेत्र बन्द करके ध्यान करना चाहिए और मन ही मन कम से कम २४ मन्त्र गायत्री के जपने चाहिए। इस प्रकार की गायत्री-साधना कन्याओं को उनके लिये अनुकूल वर, अच्छा घर तथा अचल सौभाग्य प्रदान करने में सहायक होती है।

(३) सधवाओं के लिये साधना—प्रातःकाल से लेकर मध्याह्न काल तक उपासना करनी चाहिए। जब तक साधन न किया जाय भोजन न करना चाहिए। हाँ जल पिया जा सकता है। शुद्ध शरीर, शुद्ध मन और वस्त्र से पूर्व की ओर मुँह करके बैठना चाहिए। केशर डालकर चन्दन अपने हाथ से घिसे और मस्तक, हृदय तथा कण्ठ पर तिलक छाप के रूप में लगावे। तिलक छोटे से छोटा भी लगाया जा सकता है। गायत्री की मूर्ति या चित्र की स्थापना करके उसकी विधिवत् पूजा करे। पीले रङ्ग का पूजा के सब कार्यों में प्रयोग करे। प्रतिमा का आवरण पीले वस्त्रों का रखे। पीले पुष्प, पीले चावल, बेसनी लड्डू आदि पीले खाद्य पदार्थों का भोग, केशर मिले चन्दन का तिलक, आरती के लिए पीला गो-घृत, गो-घृत न मिले तो उसमें केशर मिलाकर पीला कर लेना, चन्दन चूरा की धूप, इस प्रकार पूजा में पीले रङ्ग का अधिक प्रयोग करना चाहिए। नेत्र बन्द करके पीतवर्ण आकाश में पीले सिंह पर सवार, पीत वस्त्र पहने गायत्री का ध्यान करना चाहिए। पूजा के समय सब वस्त्र पीले न हो सकें तो कम से कम एक वस्त्र पीला अवश्य होना चाहिए। इस प्रकार पीतवर्ण गायत्री का ध्यान करते हुए कम से कम १०८ मन्त्र गायत्री

के जपने चाहिए। जब अवसर मिले तभी मन ही मन भगवती का ध्यान करती रहें। महीने की हर पूर्णमासी को व्रत रखना चाहिए। अपने नित्य आहार में एक चीज पीले रंग की अवश्य लेलें। शरीर पर कभी-कभी हल्दी का उबटन कर लेना अच्छा है। यह पीत-वर्ण साधना दाम्पत्ति जीवन को सुखी बनाने के लिए परम उत्तम है। इस साधना से घर में सुख-शांति की वृद्धि होती है और रोग, कष्ट, क्लेश मिटते हैं।

(४) सन्तान-सुख देने वाली उपासना---जो महिलायें गर्भवती हैं वे प्रायः सूर्योदय से पूर्व या रात्रि को सूर्यास्त के पश्चात् अपने गर्भ में गायत्री के सूर्य सदृश्य प्रचण्ड तेज का ध्यान किया करें और मन ही मन गायत्री जपें तो उनका बालक तेजस्वी, बुद्धिमान, चतुर, दीर्घजीवी तथा यशस्वी होता है।

प्रातःकाल कटि प्रदेश में भीगे वस्त्र रखकर शान्त चित्त से ध्यानावस्थित होना चाहिये और अपने गुह्य मार्ग में होकर गर्भाशय तक पहुँचता हुआ गायत्री का प्रकाश सूर्य जैसा ध्यान करना चाहिए। नेत्र बन्द रहें। कटि प्रदेश में तेज भरा हुआ अनुभव हो। मन ही मन जप चलता रहे। यह साधना शीघ्र गर्भ स्थापित करने वाली है। कुन्ती ने इसी साधना के बल से कुमारी अवस्था में ही गायत्री के दक्षिण भाग (सूर्य भगवान) को आकर्षित करके कर्ण को जन्म दिया था। यह साधना कुमारी कन्याओं को नहीं करनी चाहिये। साधना से उठ कर सूर्य को जल चढ़ाना चाहिये और अर्घ्य से बचा हुआ एक चुल्लू जल स्वयं पीना चाहिए। इस प्रयोग से वन्ध्याएं भी गर्भ धारण करती हैं, जिनके बच्चे मर जाते हैं या गर्भपात हो जाता है, उनका कष्ट मिटकर सन्तान होती है।

रोगी, कुबुद्धि, आलसी, चिड़चिड़े बालकों को गोदों में लेकर माताऐं हंसवाहिनी, गुलाबी कमल-पुष्पों से लदी हुई, शङ्ख, चक्र हाथ में लिए गायत्री का ध्यान करें और मन ही मन जप करें। माता के जप का प्रभाव गोदी में लगे बालक पर होता है और उसके शरीर तथा मस्तिष्क में आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ता है। छोटा बच्चा हो तो इस साधना के समय दूध पिलाती रहें। बड़ा बच्चा हो तो उसके सिर और शरीर पर हाथ फिराती रहें, बच्चों की शुभ कामना के लिए गुरुवार का व्रत उपयोगी है। साधना से उठकर जल का अर्घ्य सूर्य को चढ़ावें और पीछे से बचा हुआ थोड़ा सा बच्चों पर मार्जन की तरह छिड़क दें।

(५) किन्हीं विशेष आवश्यकताओं के लिए—अपने परिवार पर, परिजन पर, प्रियजनों पर आई हुई किसी आपत्ति के निवारण के लिए अथवा किसी आवश्यक कार्य में आई हुई किसी बड़ी रुकावट एवं कठिनाई को हटाने के लिए गायत्री-साधना के समान दैवी सहायता के माध्यम कठिनाई से मिलेंगे। कोई विशेष कामना मन में हो और उसके पूर्ण होने में भारी बाधाऐं दिखाई पड़ रही हों तो सच्चे हृदय से वेदमाता गायत्री को पुकारना चाहिए। माता जैसे अपने प्रिय बालक की पुकार सुनकर दौड़ी आती है वैसे ही गायत्री की उपासिकाऐं भी माता की अमित करुणा का प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त करती हैं।

नौ दिन का लघु अनुष्ठान, चालीस दिन का पूर्ण-अनुष्ठान इसी पुस्तक में अन्यत्र वर्णित है। तत्कालीन आवश्यकता के लिए इनका उपयोग करना या कराना चाहिए। नित्य की साधना में गायत्री चालीसा का पाठ महिलाओं के लिए बड़ा हितकर है।

❀ गायत्री की कुछ सिद्धियाँ ❀

अष्ट सिद्धियाँ, नव निद्धियाँ प्रसिद्ध हैं। उनके अतिरिक्त भी अगणित छोटी-बड़ी ऋद्धि-सिद्धियाँ होती हैं, वे साधना के परिपाक होने के साथ-साथ उगती, प्रगट होती और बढ़ती हैं। किसी विशेष सिद्धि की प्राप्ति के लिए चाहे भले ही प्रयत्न किया जाय पर युवावस्था आने पर जैसे यौवन के चिह्न अपने आप प्रस्फुटित हो जाते हैं उसी प्रकार साधना के परिपाक के साथ-साथ सिद्धियाँ अपने आप आती जाती हैं। गायत्री का साधक धीरे-धीरे सिद्धावस्था की ओर अग्रसर होता जाता है, उसमें अलौकिक शक्तियाँ प्रस्फुटित होती दिखाई पड़ती हैं। ऐसा देखा गया है कि जो लोग श्रद्धा और निष्ठापूर्वक गायत्री-साधना में दीर्घकाल तक तल्लीन रहे हैं उनमें यह विशेषताऐं विशेष रूप से परिलक्षित होती हैं--

१--उनका व्यक्तित्व आकर्षक, नेत्रों में चमक, वाणी में बल, चेहरे पर प्रतिभा, गम्भीरता तथा स्थिरता होती है, जिससे दूसरों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। जो व्यक्ति उनके सम्पर्क में आते हैं,वे उनसे काफी प्रभावित हो जाते हैं तथा उनकी इच्छानुसार आचरण करते हैं।

२--साधक को अपने अन्दर एक दैवी तेज की उपस्थिति प्रतीत होती है। वह अनुभव करता है कि उसके अन्तःकरण में कोई नई शक्ति काम कर रही है।

३--बुरे कर्मों से उनकी रुचि हटती जाती है और भले कर्मों में उनका मन लगता है। कोई बुराई बन पड़ती है तो उनके लिए बड़ा खेद और पश्चाताप होता है। सुख के समय वैभव में अधिक आनन्द न होना और दुःख,कठिनाई तथा विपत्ति में धैर्य खोकर किंकर्तव्य होकर विमूढ़ न होना उसकी विशेषता होती है।

४-भविष्य में जो घटनाएं घटित होने वाली हैं उनका उनके मन में पहले से ही आभास आने लगता है। आरम्भ में तो कुछ हल्का सा ही अन्दाज होता है पर धीरे-धीरे उस भविष्य का ज्ञान बिलकुल सही होने लगता है।

५-उसके शाप और आशीर्वाद सफल होते हैं। यदि उस अन्तरात्मा से दुखी होकर किसी को शाप देता है तो उस व्यक्ति पर भारी विपत्तियाँ आती हैं और प्रसन्न होकर जिसे वह सच्चे अन्तःकरण से आशीर्वाद देता है उसका मङ्गल होता है। उसके आशीर्वाद विफल नहीं होते।

६-वह दूसरों के मनोभावों को चेहरा देखकर ही पहचान लेता है। कोई व्यक्ति कितना ही छिपाये, उसके सामने वह भाव छिपते नहीं। वह किसी के भी गुण,दोषों,विचारों तथा आचरणों को पारदर्शी की तरह अपना सूक्ष्म दृष्टि से देख सकता है।

७-वह अपने विचारों को दूसरों के हृदय में प्रवेश कर सकता है। दूर रहने वाले मनुष्यों तक बिना तार व पत्र की सहायता से अपना सन्देश पहुँचा सकता है।

८-जहाँ वह रहता है उसके आस-पास वातावरण बड़ा शांत एवं सात्विक रहता है। उसके पास बैठने वालों को जब तक वे समीप रहते हैं अपने अन्दर एक अद्भुत शांति, सात्विकता तथा पवित्रता अनुभव होती है।

९-गायत्री-साधकों की मनोभूमि साफ होती जाती है। उनमें अनेक गुप्त बातों के रहस्य अपने आप स्पष्ट होने लगते हैं। इसी तथ्य को गायत्री-दर्शन या वार्तालाप भी कह सकते हैं। इस प्रकार हर एक साधक माता के समीप पहुँच सकता है और वह अपनी आत्मिक स्थिति के अनुरूप स्पष्ट उत्तर प्राप्त कर सकता है (वह तरीका यह है कि एकान्त स्थान में शांत चित्त

होकर आराम से, शरीर को ढीला करके बैठें। चित्त को चिन्ता से रहित रखें, शरीर और वस्त्र शुद्ध हों। नेत्र बन्द करके प्रकाश ज्योति या हंसवाहिनी के रूप में हृदय स्थान पर गायत्री-शक्ति का ध्यान करें और मन ही मन अपने प्रश्न को भगवती के सम्मुख बार-बार दुहरावें। यह ध्यान दस मिनट करने के उपरान्त तीन लम्बी साँस इस प्रकार खींचें मानो अखिल वायु-मंडल में व्याप्त महाशक्ति द्वारा प्रवेश करके अन्तःकरण के कण-कण में व्याप्त हो गई हैं। अब ध्यान बन्द कर दीजिए। मन को सब प्रकार के विचारों से शून्य कर दीजिए। अपनी ओर से कोई भी विचार न उठावें। मन और हृदय सर्वथा विचार-शून्य हो जाना चाहिए।)

इस शून्यावस्था में स्तब्धता को भङ्ग करती हुई अन्तःकरण में स्फुरणा होती है, जिसमें अनायास ही कोई अचिन्त्य भाव उपज पड़ता है। यकायक कोई विचार अन्तरात्मा में इस प्रकार उद्‌भुत हाता है मानो किसी अज्ञात शक्ति ने यह उत्तर सुझाया हो। पवित्र हृदय जब उपरोक्त साधना द्वारा और भी अधिक दिव्य पवित्रता से परिपूर्ण हो सकता है तो सूक्ष्म दैवी शक्ति जो व्यष्टि अन्तरात्मा और समष्टि परमात्मा में समान रूप से व्याप्त है उसके पवित्र हृदय-पटल पर अपना कार्य करना आरम्भ कर देती है और शङ्काओं का उत्तर मिल जाता है जो पहले बहुत विवादास्पद, सन्देहयुक्त एवं रहस्य बने हुए थे। इस प्रक्रिया से भगवती वेदमाता गायत्री साधक से वार्तालाप करती है और उसकी अनेकों जिज्ञासाओं का समाधान करती है। यह क्रम यदि व्यवस्थापूर्वक बढ़ता रहे तो आगे चलकर उस शरीर रहित दिव्य माता से उसी प्रकार वार्तालाप करना सम्भव हो सकता है जैसे कि जन्म देने वाली नर-तन-धारी माता से बातें करना संभव और सुगम होता है।)

एक वर्ष की साधना—

एक वर्ष तक गायत्री की नियमित उपासना का व्रत लेने को 'सहस्रांशु साधना' कहते हैं। इसका नियम इस प्रकार है—

१-प्रतिदिन १० माला का जप, २-प्रतिदिन रविवार को उपवास [जो फल दूध पर न रह सकें वे एक समय बिना नमक का अन्नाहार लेकर भी अर्ध उपवास कर सकते हैं] ३-पूर्णिमा या महीने के अन्तिम रविवार को १०८ या कम से कम २४ आहुतियों का हवन करें। सामिग्री न मिलने पर केवल घी की आहुतियाँ गायत्री मन्त्र के साथ कर सकते हैं, ४-मन्त्र-लेखन-प्रतिदिन कम से कम २४ गायत्री मन्त्र एक कापी पर लिखना, ५-स्वाध्याय-गायत्री साहित्य का थोड़ा बहुत स्वाध्याय नित्य करके अपने गायत्री सम्बन्धी ज्ञान को बढ़ाना, ६-ब्रह्म संदीप-दूसरों को गायत्री साहित्य पढ़ने की तथा उपासना करने की प्रेरणा एवं शिक्षा देना। अपनी पुस्तकें दूसरों को पढ़ने देकर उनका ज्ञान बढ़ाना एवं नये गायत्री-उपासक उत्पन्न करना। इन छः नियमों को एक वर्ष नियम पूर्वक पालन किया जाय तो उसका परिणाम बहुत ही कल्याण-कारक होता है। यह साधना बहुत कठिन नहीं है। प्रतिदिन डेढ़ घंटा आधा-आधा समय प्रातः सायं दोनों समय देने से साधना आसानी से चल सकती है। कभी जप, हवन, उपवास आदि के नियत समय पर कठिनाई आ जाय तो उसकी पूर्ति आगे-पीछे हो सकती है।

जो लोग एक वर्ष की साधना का व्रत लें, वे इसकी सूचना हमें दे दें तो उनकी साधना में रहने वाली त्रुटियों का दोष परि-मार्जन होता रहेगा। साल भर के लिखे हुए मन्त्रों की कापी मथुरा भेज देनी चाहिये। वर्ष के अन्त में यथाशक्ति हवन, दान, पुण्य, गौ, ब्राह्मण या कन्याओं को भोजन कराना चाहिए। यह एक वर्ष की साधना आध्यात्मिक और सांसारिक दृष्टि से बहुत ही उत्तम परिणाम उत्पन्न करती देखी गई है।

जीवन को सुख-शान्तिमय बनाने वाला साहित्य

(मूल्य प्रत्येक पुस्तक का छः—छः आना है)

१—सूर्यचिकित्सा विज्ञान २-प्राणचिकित्सा विज्ञान ३-स्वस्थ बनने की विद्या ४-भोग में योग ५-बुद्धि बढ़ाने के उपाय ६-आसन और प्राणायाम ७-तुलसी के अमृतोपम गुण ८-महान जागरण ९-तुम महान हो १०-घरेलू चिकित्सा ११-दीर्घ जीवनके रहस्य १२-नेत्रों की प्राकृतिक चिकित्सा १३-स्वप्न दोष की मनोवैज्ञानिक चिकित्सा १४-दूधकी आश्चर्यजनक शक्ति १५-उन्नति का मूलमन्त्र ब्रह्मचर्य १६-उपवासके चमत्कार १७-स्त्री रोग चिकित्सा १९-बालरोग चिकित्सा २०-कब्ज की चिकित्सा २१-निरोग जीवन का राजमार्ग २२-चिरस्थाई यौवन २३-सौन्दर्य बढ़ाने के ठोस उपाय २४-मनुष्य शरीर की बिजली के चमत्कार २५-पुत्र-पुत्री उत्पन्न करने की विधि २५-हमारी पारिवारिक समस्याएँ २६-मन चाही सन्तान २७-दाम्पत्ति जीवन का सुख २८-हमारी आन्तरिक शत्रु २९-क्याखायें ? क्योंखायें ? कैसेखायें ? ३०-हमारे सभ्यताके कलङ्क ३१-धनवान बनने के गुप्त रहस्य ३२-मरने के बाद हमारा क्या होता है ? ३३-मित्रभाव बढ़ानेकी कला ३४-आकृति देखकर मनुष्य की पहिचान ३५-हमें स्वप्न क्यों दीखते हैं ? ३६-विचार करने की कला ३७-हम वक्ता कैसे बन सकते हैं ? ३८-सफलताके तीन साधन ३९-जिंदगी कैसे जिएँ ४०-प्रसिद्धि और समृद्धि ४१-ईश्वर कौन है ? कहाँ है ? कैसा है ? ४२-क्या धर्म ? क्या अधर्म ? ४३-ईश्वर और स्वर्ग प्राप्ति का सच्चा मार्ग ४४-भारतीय संस्कृति का बीज मंत्र यज्ञोपवीत ४५-यज्ञोपवीत द्वारा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति ४६-मैं क्या हूँ ? ४७-वशीकरण की सच्ची सिद्धि ४८-ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग ।

'अखण्ड-ज्योति' प्रेस, मथुरा ।

लेखक-
श्रीराम शर्मा आचार्य
गायत्री तपोभूमि, मथुरा।

ॐ भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि
धियो योनः प्रचोदयात्।

प्रकाशक-
"अखण्ड ज्योति" प्रेस, मथुरा।

प्रथम बार] सन १९५८ [मूल्य ।)

❀ ॐ ❀

गायत्री से योग-साधना

—:-(८)-:—

तैत्तिरेयोपनिषद् की तृतीय वल्ली (भृगु वल्ली) में एक बड़ी ही महत्वपूर्ण आख्यायिका आती है। उसमें पंच कोशों की साधना पर मार्मिक प्रकाश डाला गया है।

वरुण के पुत्र भृगु ने अपने पिता के निकट जाकर प्रार्थना की, कि "अधीहि भगवो ब्रह्मेति" अर्थात् हे भगवान्! मुझे ब्रह्मज्ञान की शिक्षा दीजिए।

वरुण ने उत्तर दिया—"यतो व इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्य भिसं विशति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्मेति।" अर्थात्—हे भृगु! जिससे समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जीवित रहते हैं, और अन्त में जिसमें विलीन हो जाते हैं तू उस ब्रह्म को जानने की इच्छा कर।

पिता के आदेशानुसार पुत्र ने, उस ब्रह्म को जानने के लिए तप आरम्भ कर दिया। दीर्घकालीन तप के उपरान्त भृगु ने अन्नमय जगत (स्थूल संसार) में फैली हुई ब्रह्म की विभूति को जान लिया और वह पिता के पास पहुँचा।

भृगु ने वरुण से फिर कहा—"अधीहि भगवो ब्रह्मेति" अर्थात् हे भगवन! मुझे ब्रह्म ज्ञान की शिक्षा दीजिए।

वरुण ने उत्तर दिया—"तपसी ब्रह्म विजिसासत्व तपो ब्रह्मेति" अर्थात् हे पुत्र, तू तप करके ब्रह्म को जानने का प्रयत्न कर, क्योंकि ब्रह्म को तप द्वारा ही जाना जाता है।

भृगु ने फिर तपस्या की और "प्राणमय जगत" की ब्रह्म विभूत को जान लिया। और फिर वह पिता के पास पहुँचा। वरुण ने फिर उसे तप द्वारा ब्रह्म को जानने का उपदेश किया।

पुत्र ने पुनः कठोर तप किया और "मनोमय जगत" की ब्रह्म विभति का अभिज्ञान प्राप्त कर लिया। पिता ने उसे फिर तप में लगा दिया। अब उसने विज्ञानमय जगत की ईश्वरीय विभूति को प्राप्त कर लिया। अन्त में पाँचवी बार भी पिता ने उसे तप में ही प्रवृत्त किया और भृगु ने उस आनन्दमयी विभूति को भी उपलब्ध कर लिया।

'आनन्दमय' जगत की अन्तिम सीढ़ी पर पहुँचने से किस प्रकार पूर्ण ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है इसका वर्णन करते हुए तैत्तिरेयोपनिषद् की तृतीयवल्ली के पांचवे मन्त्र में बताया गया है कि—

"आनन्दो ब्रह्मेति विजानात्-आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, आनन्देन जातानि, जीवन्ति आनन्दं प्रयन्त्यभि संविशन्तीति। सैषा भार्गवी वारुणी विद्या परमेव्योम न प्रतिष्ठिता।"

अर्थात उस (भृगु) ने जाना कि आनन्द ही ब्रह्म है। आनन्द से ही सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर आनन्द से ही जीवित रहते हैं और अन्त में आनन्द में ही विलीन हो जाते हैं।

उपनिषद्कार ने उपरोक्त आख्यायिका में ब्रह्मानन्द, परमानन्द, आत्मानन्द में ही ब्रह्मज्ञान का अन्तिम लक्ष बताया है। आनन्दमयजगत में, कोश में, पहुँचने के लिये तप करने का संकेत किया है। कोशों की सीढ़ियाँ जैसे जैसे पार होती जाती हैं वसे ही वैसी ब्रह्म की की उपलब्धि निकट आती जाती है।

गायत्री द्वारा इन्हीं पाँच कोशों की साधना को अलंकारिक

भाषा में गायत्री के पांच मुख कहा गया है और इसी से गायत्री को पंचमुखी भी माना गया है और तदनुसार उसकी आकृतियाँ भी बनाई गई हैं। इस लिये हम नीचे गायत्री के पाँच मुखों पर विशेष रूप से प्रकाश डालकर पंच कोशों की साधना का रहस्य समझायें गे। यह पंच कोश का साधना योग-साधन का बहुत बड़ा अंग है जिसके द्वारा मनुष्य आध्यात्म जगत के समस्त रहस्यों का ज्ञाता बन जाता है।

गायत्री के पाँच मुख

गायत्री को पंचमुखी कहा गया है। पंचमुख शङ्कर की भाँति गायत्री भो पंचमुखी है। पुराणों में ऐसा वर्णन कई जगह आया है। जिसमें वेदमाता गायत्री को पाँच मुख वाली कहा गया है। अधिक मुख, हाथ पाँव वाले देवताओं का होना कुछ अटपटा सा लगता है। इसलिए बहुधा इस सम्बन्ध में संदेह प्रकट किया जाता है। चार मुख वाले ब्रह्माजी, पाँच मुख वाले शिवजी, छै मुख वाले कार्तिकेय जी बताए गए हैं। चतुर्भुज विष्णु, अष्टभुजी दुर्गा, दशमुखी गणेश प्रसिद्ध हैं। ऐसे उदाहरण कुछ और भी हैं। रावण के दश सिर और बीस भुजाऐं भी प्रसिद्ध हैं। सहस्त्रबाहु की हजार भुजा और इन्द्र के हजार नेत्रों का वर्णन है।

देव-दानवों के अधिक मुख और अधिक अङ्ग ऐसी रहस्यमय पहेली हैं जिनमें तत्सम्बन्धी प्रमुख तथ्यों का रहस्य सन्निहित होता है। इस विलक्षणता के कारण जिज्ञासु का कौतूहल बढ़ता है, वह सोचता है ऐसी विचित्रता क्यों हुई? इस प्रश्न पहेली का बुझौअल करने के निमित्त जब वह अन्वेषण करता है तब पता चल जाता है कि इस बहाने कैसे महत्वपूर्ण तथ्य उसे ज्ञात होते हैं। अध्यात्म कक्षा का विद्यार्थी भी अधिक मुख वाले

देवताओं को समझाने के लिए जब उत्सुक होता है तो उसे वे अद्भुत बातें सहज ही विदित हो जाती हैं जो इस दिव्य महाशक्ति से सम्बद्ध हैं।

गायत्री, सुव्यवस्थित जीवन का, धार्मिक जीवन का, अविच्छिन्न अङ्ग है तो उसे भली प्रकार समझना, उसके मर्म, रहस्य, तथ्य और उपकरणों को जानना भी आवश्यक है। गायत्री-विद्या के जिज्ञासुओं और प्रयोक्ताओं को अपने विषय से भली प्रकार परिचित होना चाहिए अन्यथा उसकी सफलता का क्षेत्र अवरुद्ध हो जायगा। ऋषियों ने गायत्री के पाँच मुख बनाकर हमें बताया है कि इस महाशक्ति के अन्तर्गत पाँच तथ्य ऐसे हैं जिनको जान कर और उनका ठीक प्रकार अवगाहन करके संसार-सागर के सभी दुस्तर दुरितों से पार हुआ जा सकता है।

गायत्री के पाँच मुख वास्तव में उसके पाँच भाग हैं। १-ॐ, २-भूर्भुवःस्वः, ३-तत्सवितुर्वरेण्यम्, ४-भर्गो देवस्य धीमहि, ५—धियो योनः प्रचोदयात। यज्ञोपवीत के भी पाँच भाग हैं-तीन लड़े, चौथी मध्य ग्रन्थियाँ, पांचवें ब्रह्मग्रन्थि। पाँच देवता प्रसिद्ध हैं—ॐ अर्थात् गणेश, व्याहृति अर्थात् भवानी, गायत्री का प्रथम चरण-ब्रह्मा, द्वितीय चरण-विष्णु, तृतीय चरण-महेश, इस प्रकार यह पाँच देवता गायत्री के प्रमुख शक्ति पुञ्ज कहे जा सकते हैं।

गायत्री के इन पाँच भागों में वे सन्देश छिपे हुए हैं जो मानव-जीवन की बाह्य एवं आन्तरिक समस्याओं को हल कर सकते हैं। हम क्या हैं, किस कारण जीवन धारण किये हुए हैं, हमारा लक्ष्य क्या है, अभाव ग्रस्त और दुखी रहने का कारण क्या है, सांसारिक सम्पदाओं की और आत्मिक शांति की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है, कौन बन्धन हमें जन्म-मरण के चक्र

में बाँधे हुए हैं, किस उपाय से छुटकारा मिल सकता है, अनन्त आनन्द का उद्गम कहाँ है, विश्व क्या है, संसार का और हमारा क्या सम्बन्ध है, जन्म मृत्यु के त्रासदायक चक्र को कैसे तोड़ा जा सकता है आदि जटिल प्रश्नों के सरल उत्तर उपरोक्त पंचको में मौजूद है।

गायत्री के पाँच मुख असंख्यों सूक्ष्म रहस्य और तत्व अपने भीतर छिपाये हुए हैं। उन्हें जानने के बाद मनुष्य को इतनी तृप्ति हो जाती है कि कुछ जानने लायक बात उसे सूझ नहीं पड़तों। महर्षि उद्दालक ने उस विद्या की प्रतिष्ठा की थी, जिसे जानकर और कुछ जानना शेष नहीं रह जाता, वह विद्या गायत्री विद्या ही है। चार वेद और पाँचवाँ यज्ञ यह पाँचों ही गायत्री के पाँच मुख हैं जिनमें समस्त ज्ञान विज्ञान और धर्म-कर्म, बीज रूप से केन्द्रीभूत हो रहा है।

शरीर पाँच तत्वों से बना हुआ है और आत्मा के पाँच कोष हैं। मिट्टी, पानी, हवा और आकाश के सम्मिश्रण से देह बनती है। गायत्री के पाँच मुख बताते हैं कि यह शरीर और कुछ नहीं केवल पंच भूतों के जड़ परमाणुओं का सम्मिश्रण मात्र है। यह हमारे लिए अत्यन्त उपयोगी औजार, सेवक एवं वाहन है। अपने आपको शरीर समझ बैठना भारी भूल है। इस भूल को ही माया या अविद्या कहते हैं। शरीर का एवं संसार का वास्तविक रूप समझ लेने पर जीव मोह-निद्रा से उठता है और चय, स्वामित्व एवं भोगों की बाल-क्रीड़ा से मुँह मोड़कर आत्म कल्याण की ओर लगता है। पाँच मुखों का एक सन्देश यह है—पंचतत्त्वों से बने पदार्थों को केवल उपयोग की वस्तु समझें। उनमें लिप्त, तन्मय, आसक्त एवं मोहग्रस्त न हों।

पाँच मुखों का दूसरा संकेत आत्मा के कोषों की ओर है।

जैसे शरीर के ऊपर बनियान, कुर्ता, वासकट, कोट और ओवर कोट, एक के ऊपर एक पहन लेते हैं वैसे ही आत्मा के ऊपर पाँच आवरण चढ़े हुए हैं इन पाँचों को १—अन्नमय कोश, २—प्राणमय कोश, ३—मनोमय कोश, ४—विज्ञान मय कोश, ५—आनन्द मय कोश कहते हैं। इन पाँचों परकोटों के किले में जीव बन्दी बना हुआ है। जब इसके फाटक खुल जाते हैं, तो आत्मा बन्धन मुक्त हो जाता है।

यों तो गायत्री के पाँच मुखों में अनेक पंचकों के अद्भुत रहस्य छिपे हुए हैं। पर इन सबकी चर्चा इस पुस्तक में नहीं हो सकती। यहाँ तो हमें इन पंच कोशों पर ही कुछ प्रकाश डालना है। कोष खजाने को भी कहते हैं। आत्मा के पास यह पाँच खजाने हैं इनमें से हर एक में बहुमूल्य सम्पदाएं भरी पड़ी हैं। जैसे धन कुबेरों के यहाँ नोट रखने की, चांदी रखने की, सोना रखने की, जवाहरात रखने की, हुन्डी चैक आदि रखने की जगह अलग २ होती हैं वैसे ही आत्मा के पास भी यह पाँच खजाने हैं। सिद्ध किये हुए पाचों कोषों के द्वारा ऐसी अगणित सम्पदाएं सुख सुविधाएं मिलती हैं। जिनको पाकर इसी जीवन में स्वर्गीय आनन्द की उपलब्धि होती है योगी लोग इसी आनन्द के लिए तप करते हैं और देवता लोग नर-तन धारण के लिए इसी आनन्द को तरसते रहते हैं। कोशों में सदुपयोग अनन्त आनन्द का उत्पादक है और उनका दुरुपयोग पांच परकोटों वाले कैदखाने के रूप में बन्धनकारक बन जाता है।

पंच कोषों का उपहार प्रभु ने हमारी अनन्त सुख सुविधाओं के लिए दिया है। यह पाँच सवारियाँ हैं जो हमें चाहे जहाँ सैर करा लाती हैं, वह पाँच हथियार हैं जो अनिष्ट रूपी शत्रुओं को विनाश और आत्म-संरक्षण करने के लिए अतीव

उपयोगी हैं, यह पाँच वस्त्र हैं जो असुविधा से बचाते और शोभा को बढ़ाते हैं। यह पाँच शक्तिशाली सेवक हैं जो हर घड़ी आज्ञा-पालन के लिए प्रस्तुत रहते हैं। इन पाँच खजानों में अटूट सम्पदा भरी पड़ी है। इस पंचामृत का ऐसा स्वाद है कि जिसकी बूँदें चखने के लिए मुक्त हुई आत्माएं लौट-लौट कर नर-तन में अवतार लेती रहती हैं।

बिगड़ा हुआ अमृत विष हो जाता है। स्वामिभक्त कुत्ता पागल हो जाने पर अपने पालने वालों को ही संकट में डाल देता है। सड़ा हुआ अन्न विष्ठा कहलाता है, जीवन का आधार रक्त जब सड़ने लगता है तो दुर्गन्धित पीव बनकर वेदनाकारक फोड़े के रूपमें प्रकट होता है। पंच कोषों का विकृत रूप भी हमारे लिये ऐसा ही दुखदायी होता है। नाना प्रकार के पाप-तापों, क्लेश-कलहों, दुख-दुर्भाग्यों, चिन्ता-शोकों, अभाव-दारिद्रों और पीड़ा-वेदनाओं से तड़पते हुए मानव इस प्रकृति के ही शिकार हो रहे हैं। सुन्दरता और दृष्टि-ज्योति के केन्द्र नेत्रों में जब विकृति आजाती है, दुखने लगते हैं, तो सुन्दरता एक ओर रही, उलटी उन पर चिथड़े की पट्टी बँध जाती है, सुन्दर दृश्य देखकर मनो-रंजन करना तो दूर रहा, दर्द के मारे मछली की तरह तड़-पना पड़ता है। आनन्द के उद्गम पाँच कोशों की विकृति ही जीवन को दुखी बनाती है, अन्यथा ईश्वर का राजकुमार जिस दिव्य रथ में बैठ कर जिस नन्दन वन में आया है उसमें आनन्द ही आनन्द होना चाहिये। दुख-दुर्भाग्य का कारण इस विकृति के अतिरिक्त और हो ही नहीं सकता।

पाँच तत्व, पाँच कोश, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, पाँच उपप्राण, पाँच तन्मात्राऐं, पाँच यज्ञ, पाँच देव, पाँच योग, पाँच अग्नि, पाँच अंग, पाँच वर्ण, पाँच स्थिति, पाँच

अवस्था, पाँच शूल, पाँच क्लेश आदि अनेक पंचक गायत्री के पाँच मुखों से सम्बन्धित हैं। इसको सिद्ध करने वाले पुरुषार्थी व्यक्ति ऋषि, राजर्षि, ब्रह्मर्षि, महर्षि, और देवर्षि कहलाते हैं। आत्मोन्नति की पाँच कक्षाएं हैं। पाँच भूमिकाऐं हैं, उनमें से जो जिस कक्षा की भूमिका को उत्तीर्ण कर लेता है वह उसी श्रेणी का ऋषि बन जाता है। किसी समय भारत भूमि ऋषियों की भूमि थी। पर आज तो लोगों ने उस 'पंचामृत' का तिरस्कार कर रखा है और इसी से बुरी तरह प्रपंच में फँसकर क्लेशों से क्लेशित हो रहे हैं।

गायत्री द्वारा कुण्डलिनी जागरण

शरीर में अनेक साधारण और अनेक असाधारण अङ्ग हैं। असाधारण अङ्ग, जिन्हें 'मर्म स्थान' भी कहते हैं, केवल इसीलिए मर्म स्थान नहीं कहे जाते कि वे बहुत सुकोमल एवं उपयोगी होते हैं, वरन् इसलिये भी कहे जाते हैं कि इनके भीतर गुप्त आध्यात्मिक शक्तियों के महत्वपूर्ण केन्द्र होते हैं। इन केन्द्रों में वे बीज सुरक्षित रूप से रखे रहते हैं जिनका उत्कर्ष, जागरण हो जाय तो मनुष्य कुछ से कुछ बन सकता है। उसमें आत्मिक शक्तियों के स्रोत उमड़ सकते हैं और उस उभार के फलस्वरूप वह ऐसी अलौकिक शक्तियों का भण्डार बन सकता है, जो साधारण लोगों के लिये "अलौकिक आश्चर्य" से कम प्रतीत नहीं होती।

ऐसे मर्म स्थलों में मेरुदण्ड का, रीढ़ की हड्डी का प्रमुख स्थान है। वह शरीर की आधार शिला है। यह मेरुदण्ड छोटे-छोटे तेंतीस अस्थिखंडों से मिलकर बना है। इस प्रत्येक खंड में तत्व-दर्शियों को ऐसी विशेष शक्तियाँ परिलक्षित होती हैं, जिनका सम्बन्ध दैवी शक्तियों से है। देवताओं में जिन शक्तियों का केन्द्र होता है, वे शक्तियाँ भिन्न-भिन्न रूप से मेरुदण्ड के इन अस्थि

खण्डों में पाई जाती हैं, इसलिये यह निष्कर्ष निकाला गया है कि मेरुदण्ड तेतीस देवताओं का प्रतिनिधित्व करता है। आठ वसु, बारह आदित्य, ग्यारह रुद्र, इन्द्र और प्रजापति इन तेतीसों की शक्तियाँ उसमें बीज रूप से उपस्थित रहती हैं।

इस पोले मेरुदण्ड में शरीर-विज्ञान के अनुसार अनेकों नाड़ियों हैं और वे विविध कार्यों में नियोजित रहती हैं। आध्यात्म विज्ञापन के अनुसार उसमें तीन प्रमुख नाड़ियां हैं—(१) इड़ा, (२) पिङ्गला, (३) सुषुम्ना। यह तीन नाड़ियाँ मेरुदंड को चीरने पर प्रत्यक्ष रूप में आँखों द्वारा नहीं देखी जा सकतीं, इनका सम्बन्ध सूक्ष्म जगत से है। यह एक प्रकार का विद्युत प्रवाह है, जैसे बिजली से चलने वाले यन्त्रों में 'नैगेटिव' और 'पाजेटिव,' (ऋण और धन) धाराऐं दौड़ती हैं और उन दोनों का जहाँ मिलन होता है, वहीं शक्ति पैदा हो जाती है। इसी प्रकार इड़ा को 'नैगेटिव,' पिङ्गला को 'पाजेटिव' कह सकते हैं। इड़ा को चन्द्र नाड़ी और पिङ्गला को सूर्य-नाड़ी भी कहते हैं। मोटे शब्दों में इन्हें ठण्डी और गरम धाराऐं कहा जा सकता है। दोनों के मिलने स जो तीसरी शक्ति उत्पन्न होती है, उसे सुषुम्ना कहते हैं। प्रयाग में गङ्गा और यमुना मिलती हैं। इस मिलन से एक तीसरी सूक्ष्म सरिता और विनिर्मित होती है, जिसे सरस्वती कहते हैं। इस प्रकार दो नदियों से त्रिवेणी बन जाती है मेरुदण्ड के अन्तर्गत भी ऐसी आध्यात्मिक त्रिवेणी है। इड़ा, पिङ्गला की दो धाराऐं मिलकर सुषुम्ना की सृष्टि करती हैं और एक पूर्ण त्रिवर्ग बन जाता है।

यह त्रिवेणी ऊपर मस्तिष्क के मध्य केन्द्र से-ब्रह्मरन्ध्र से-सहस्रार कमल से—सम्बन्धित है और नीचे मेरुदण्ड का जहाँ नुकीला अन्त है, वहां लिङ्ग मूल और गुदा के बीच के 'सीवन'

स्थान की सीध में पहुँचकर रुक जाती है यही इस त्रिवेणी का आदि अन्त है।

सुषुम्ना नाड़ी के भीतर एक और त्रिवर्ग है। उसके अन्तर्गत भी तीन अत्यन्त सूक्ष्म धाराएें प्रवाहित होती हैं, जिन्हें व्रज्रा, चित्रणी और ब्रह्मनाडी कहते हैं। जैसे केले के तने को काटने पर उसमें एक के भीतर एक परत दिखाई पड़ता है, वैसे ही सुषुम्ना के भीतर व्रज्रा है, व्रज्रा के भीतर चित्रणी है और चित्रणी के भीतर ब्रह्मनाड़ी है यह ब्रह्म नाड़ी अन्य सब नाड़ियों का मर्मस्थल केन्द्र एवं शक्तिसार है। इस मर्म की सुरक्षा के लिये ही उस पर इतने परत चढ़े हुए हैं।

यह ब्रह्मनाड़ी मस्तिष्क के केन्द्र में ब्रह्मरन्ध्र में पहुँच कर हजारों भागों में चारों ओर फैल जाती है, इसी से उस स्थान को सहस्रदल कमल कहते हैं। विष्णु जी की शय्या शेषजी के सहस्र फनों पर होने का अलङ्कार भी इस सहस्रदल कमल से ही लिया गया है। भगवान् बुद्ध आदि अवतारी पुरुषों के मस्तक पर एक विशेष प्रकार के गुच्छलकदार बालों का अस्तित्व हम उनकी मूर्तियों अथवा चित्रों में देखते हैं। यह इस प्रकार के बाल नहीं हैं वरन् सहस्रदल कमल का कलात्मक चित्र है। यह सहस्रदल सूक्ष्म लोकों से, विश्वव्यापी शक्तियों से सम्बन्धित है। रेडियो-ट्रान्समीटर से ध्वनि-ग्राहक और ध्वनि-विस्तारक तन्तुफैलाये जाते हैं, जिन्हें 'ऐरियल' कहते हैं। इन तन्तुओं के द्वारा सूक्ष्म आकाश में ध्वनि को फेंका जाता है और बहती हुई तरङ्गों को पकड़ा जाता है। मस्तिष्क का 'एरियल' भी सहस्रार कमल है, उसके द्वारा परमात्म-सत्ता की अनन्त शक्तियों को सूक्ष्म लोक में से पकड़ा जाता है। जैसे भूखा अजगर जब जागृत होकर लम्बी साँसें खींचता है तो आकाश में उड़ते पक्षियों को अपनी तीव्र शक्ति से

जकड़ लेता है और वे मन्त्रमुग्ध की तरह खिचते हुए अजगर के मुँह में चले जाते हैं। उसी प्रकार जागृत हुआ सहस्रमुखी शेषनाग-सहस्रार कमल अनन्त प्रकार की सिद्धियों को लोक-लोकान्तरो से खींच लेता है। जैसे कोई अजगर जब क्रुद्ध होकर विषैली फुँसकार मारता है तो एक सीमा तक वायुमण्डल को विषैला कर देता है, उसी प्रकार जागृत हुए सहस्रार कमल द्वारा शक्तिशाली भावना-तरंगें प्रवाहित करके साधारण जीव जन्तुओं एवं मनुष्यों को ही नहीं वरन् सूक्ष्म लोकोंकी आत्माओं को भी प्रभावित और आकर्षित किया जा सकता है। शक्तिशाली ट्रांसमीटर द्वारा किया हुआ अमेरिका का ब्राडकास्ट भारत में सुना जाता है। शक्तिशाली सहस्रार द्वारा निक्षेपित भावना-प्रवाह भी लोक-लोकान्तरो के सूत्रतत्वों को हिला देता है।

अब मेरुदन्ड के नीचे भाग को, मूल को लीजिये सुषुम्ना के भीतर रहने वाली तीन नाड़ियों में सबसे सूक्ष्म ब्रह्मनाड़ी मेरुदन्ड के अन्तिम भाग के समीप एक काले वर्ण के षट्कोण वाले परमाणु से लिपट कर बँध जाती है। छप्पर को मजबूत बाँधने के लिए दीवार में खूँटे गाढ़ते हैं और उन खूँटों में छप्पर से सम्बंधित रस्सी को बाँध देते हैं। इसी प्रकार उस षट्कोण कृष्ण वर्ण परमाणु से ब्रह्म नाड़ी को बाँधकर इस शरीर से प्राणों के छप्पर को जकड़ देने की व्यवस्था की गई है।

इस कृष्णवर्ण, षट् कोण परमाणु को अलङ्कारिक भाषा में कूर्म कहा गया है, क्योंकि उसकी आकृति कछुए जैसी है। पृथ्वी कूर्म भगवान पर टिकी हुई है, इस अलङ्कार का तात्पर्य जीवन-गृह के कूर्म आधार पर टिके हुए होने से है। शेषनाग के फन पर पृथ्वी टिकी हुई है, इस उक्ति का आधार ब्रह्मनाड़ी की वह आकृति है, जिसमें वह इस कूर्म से लिपट कर बैठी हुई है, और

जीवन को धारण किये हुए है। यदि वह अपना आधार त्याग दे तो जीवन-भूमि के चूर-चूर होजाने में क्षण भर की भी देर न समझनी चाहिये।

कूर्म से ब्रह्मनाड़ी के गुन्थल स्थल को आध्यात्मिक भाषा में 'कुन्डलिनी' कहते हैं। जैसे काले रङ्ग के आदमी का नाम कलुआ भी पड़ जाता है, उसी प्रकार कुण्डलाकार बनी हुई इस आकृति को'कुन्डलिनी कहा जाता है। यह साढ़े तीन लपेटे उस कूर्म में लगाये हुये है है और मुंह नीचे को है। विवाह संस्कारों में इसी की नकल करके 'भाँवरि या फेरे' होते हैं। साढ़े तीन (सुविधा की दृष्टि से चार) परिक्रमा किये जाने और मुँह नीचा रखे जाने का विधान उस कुन्ड के आधार पर ही रखा गया है क्योंकि भावी जीवन-निर्माण की व्यवस्थित आधार शिला, पति पत्नी की कूर्म और ब्रह्मनाड़ी का मिलन, वैसा ही महत्व पूर्ण है जैसा कि शरीर और प्राण को जोड़ने में कुन्डलिनी का महत्व है।

योगियों में अनेकों प्रकार की अद्‌भुत शक्तियाँ होने के वर्णन और प्रमाण हमें मिलते हैं। योग की ऋद्धि-सिद्धियों की अनेकों गाथाऐं सुनी जाती हैं। उनसे आश्चर्य होताहै और विश्वास नहीं होताकिं यह कहाँतक ठीक है। पर जो लोग विज्ञानसे परिचित हैं, उनके लिए इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। जिस प्रकार परमाणु की शोधमें प्रत्येक देशके वैज्ञानिक व्यस्त है,उसी प्रकार पूर्वकाल में अध्यात्मिक विज्ञान वेत्ताओं ने,तत्वदर्शी ऋषियों नेमानव-शरीर के अन्तर्गत एक बीज परमाणु की अत्यधिक शोध की थी। दो परमाणुओं को तोड़ने,मिलाने या स्थानान्तरित करने का सर्वोत्तम स्थान कुण्डलिनी केन्द्र में होता है, क्योंकि अन्य सब जगह ही चैतन्य परमाणु गोल और चिकने होते हैं, पर कुण्डलिनी में यह

मिथुन लिपटा हुआ है। जैसे यूरेनियम और प्लेटोनियम धातु में परमाणुओं का गुन्थन कुछ ऐसे टेढ़े-तिरछे ढङ्ग से होता है कि उनका तोड़ा जाना अन्य पदार्थों के परमाणुओं की अपेक्षा अधिक सरल है, उसी प्रकार कुण्डलिनी स्थिति स्फुल्लिङ्ग परमाणुओं की गतिविधि को इच्छानुकूली संचालित करना अधिक सुगम है। इसीलिये प्राचीन काल में कुण्डलिनी जागरण की उतनी ही तत्परता से शोध हुई थीं, जितनी कि आजकल परमाणु विज्ञान के बारे में हो रही हैं। इन शोधों, परीक्षणों और प्रयोगों के फलस्वरूप उन्हें ऐसे कितने ही रहस्य भी करतलगत हुए थे जिन्हें आज "योग के चमत्कार" नाम से पुकारते हैं। थियोसोफीकल सोसाइटी की संस्थापिका मैडम ब्लैवेटस्की ने कुण्डलिनी शक्ति के बारे में काफी खोज-बीन की है। वे लिखती हैं-"कुन्डलिनी विश्वव्यापी सूक्ष्म विद्युत शक्ति है, जो स्थूल बिजली की अपेक्षा कहीं अधिक शक्तिशाली है, इसकी चाल सर्प की चाल की तरह टेढ़ी है, इससे इसे सर्पाकार कहते हैं। प्रकाश एक लाख पिचासी हजार मील की सैकिंड चलता है, पर कुण्डलिनी की गति एक सैकिंड में ३४५००० मील।" पाश्चात्य वैज्ञानिक इसे "स्प्रिट फायर" अथवा "सरपेन्टलपावर" कहते हैं। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध अंगरेज दार्शनिक सर जानवुडरफ ने भी बहुत विस्तृत विवेचन किया है।

कुण्डलिनी की रक्षा के लिए उस पर छः ताले लगे हैं, जो छः चक्र कहलाते हैं। इन चक्रों का वेधन करके जीव कुण्डलिनी के समीप पहुँच सकता है और उसका यथोचित उपयोग करके जीवन-लाभ प्राप्त कर सकता है। सब लोगों की कुण्डलिनी साधारण सुप्त अवस्था में पड़ी रहती है। पर जब उसे जगाया जाता है तो वह अपने स्थान पर से हट जाती है और उस लोक में

प्रवेश कर जाने देती है जिसमें परमात्मा शक्तियों की प्राप्ति हो जाती है। बड़े-बड़े गुप्त खजाने जो प्राचीनकाल से भूमि में छिपे पड़े होते हैं उन पर सर्प की चौकीदारी पाई जाती है। खजाने के मुख पर कुण्डलीदार सर्प बैठा रहता है और चौकीदारी किया करता है। देवलोक भी ऐसा ही खजाना है जिसके मुख पर षट्-कोण कूर्म की शिला रखी हुई है और शिला से लिपटी हुई भयङ्कर सर्पिणी कुण्डलिनी बैठी है। यह सर्पिणी अधिकारी पात्र की प्रतीक्षा में बैठी होती है। जैसे ही कोई अधिकारी उसके समीप पहुँचता है। वह उसे रोकने या हानि पहुँचाने की अपेक्षा अपने स्थान से हट कर उसको रास्ता दे देती है और उसका कार्य समाप्त हो जाता है।

मस्तिष्क के ब्रह्मरन्ध्र में बिखरे हुए सहस्रदल भी साधारणतः उसी प्रकार प्रसुप्त अवस्थामें पड़े रहते हैं जैसे कि कुण्डलिनी सोया करती है। इतने बहुमूल्य यन्त्रों और कोषों के होते हुए भी मनुष्य साधारणतः बड़ा दीन, दुर्बल, तुच्छ, क्षुद्र, विषय-विकारों का गुलाम बनकर कीट-पतंगों जैसा जीवन व्यतीत करता रहता है और दुख-दरिद्र की दासता में बँधा हुआ फड़फड़ाता रहता है। पर जब इन यन्त्रों और रत्नागारों से परिचित होकर उनके उपयोग को जान लेता है, उन पर अधिकार कर लेता है तो वह परमात्मा के सच्चे उत्तराधिकारी की समस्त योग्यताओं और शक्तियों से सम्पन्न हो जाता है। कुण्डलिनी जागरण से होने वाले लाभों के सम्बन्ध में योग शास्त्रों में बड़ा विस्तृत और आकर्षक वर्णन है। उस सब की चर्चा न करके यहाँ इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि कुण्डलिनी शक्ति के जागरण से इस विश्व में जो कुछ है वह सब कुछ मिल सकता है, उसके लिये कोई वस्तु अप्राप्य नहीं रहती।

षट्चक्रों का वेधन

कुण्डलिनी के शक्ति मूल तक पहुँचने के मार्ग में छः फाटक है अथवा यों कहना चाहिये कि छः ताले लगे हुए हैं। यह फाटक या ताले खोलकर ही कोई जीव उस शक्ति-केन्द्र तक पहुँच सकता है। इन छः अवरोधों को आध्यात्मिक भाषा में 'षट् चक्र' कहते हैं।

सुषुम्ना के अन्तर्गत रहने वाली तीन नाड़ियों में सबसे भीतर स्थित ब्रह्मनाड़ी से यह छः चक्र सम्बन्धित हैं। माला के सूत्र में पिरोये हुए कमल-पुष्पों से इनकी उपमा दी जाती है। मूलाधार चक्र योनि की सीध में, स्वाधिष्ठान चक्र पेडू की सीध में, मणिपूर चक्र नाभि की सीध में, अनाहत चक्र हृदय की सीध में, विशुद्धाख्य चक्र कंठ की सीध में और आज्ञा चक्र भृकुटि के मध्य में अवस्थित हैं। उनसे ऊपर सहस्रार कमल है।

सुषुम्ना तथा उसके अन्तर्गत रहने वाली चित्रिणी आदि नाड़ियाँ इतनी सूक्ष्म हैं कि उन्हें साधारण नेत्रों से देख सकना कठिन है। फिर उनसे सम्बन्धित यह चक्र तो और भी सूक्ष्म हैं, किसी शरीर को चीर-फाड़ करते समय इन चक्रों को नस-नाड़ियों की तरह स्पष्ट रूप से नहीं देखा जा सकता, क्योंकि हमारे चर्म-चक्षुओं की वीक्षण शक्ति बहुत ही सीमित है। शब्द की तरंगें, वायु के परमाणु तथा रोगों के कीटाणु हमें आँखों से दिखाई नहीं पड़ते तो भी उनके अस्तित्व से इनकार नहीं किया जा सकता। इन चक्रों को योगियों ने अपनी योग-दृष्टि से देखा है और उनका वैज्ञानिक परीक्षण करके महत्वपूर्ण लाभ उठाया है और उसके व्यवस्थित विज्ञान का निर्माण करके योग-मार्ग के पथिकों के लिये उसे उपस्थित किया है।

'षट् चक्र' एक प्रकार की सूक्ष्म ग्रन्थियाँ हैं जो ब्रह्मनाड़ी

के मार्ग में बनी हुई हैं। इन चक्र-ग्रन्थियों में जब साधक अपने ध्यान को केन्द्रित करता है तो उसे वहाँ की सूक्ष्म स्थित का बड़ा विचित्र अनुभव होता है। वे ग्रन्थियाँ गोल नहीं होतीं वरन् उनमें इस प्रकार कोंण निकले होते हैं, जैसे पुष्प में पंखुड़ियाँ होती हैं। इन कोण या पंखुड़ियों को 'पद्मदल' कहते हैं। यह एक प्रकार के तन्तु गुच्छक हैं।

शरीर पञ्चतत्वों का बना हुआ है। इन तत्वोंके न्यूनाधिक संमिश्रण से विविध अंग-प्रत्यंगोंका निर्माण और उनका कार्य-संचालन होता है। जिस स्थान में तत्व की जितनी आवश्यकता है. उससे न्यूनाधिक हो जानेपर वह अंग रोगग्रस्त होजाता है। तत्वों का यथा स्थान, यथा मात्रा में होना ही निरोगता का चिन्ह समझा जाता है। चक्रों में भी एक-एक तत्व की प्रधानता होती है, जिस में जो तत्व प्रधान होता है वही उसका 'तत्व' कहा जाता है।

ब्रह्मनाड़ी की पोली नलीमें होकर वायुका अभिगमन होता है तो चक्रों के सूक्ष्म छिद्रों के आघात से उसमें एक वैसी ही ध्वनि होती है, जैसी कि वंशी में वायु का प्रवेश होने पर छिद्रों के आघात से ध्वनि उत्पन्न होती हैं। चक्रों में वायु की चाल में भी अन्तर होता है। जैसे वात, पित्त, कफ की नाड़ी कपोत, मंडूक सर्प, कुक्कुट आदि की चाल से चलती है। उस चाल को पहचान कर वैद्य लोग अपना कार्य करते हैं। उसी प्रकार प्रत्येक चक्र में रक्ताभिसरण और वायु अभिगमन के संयोग से एक विशेष चाल परिलक्षित होती है। यह चाल किसी चक्रमें हाथीके समान मन्दगामी किसी में मगर की तरह डुबकी मारने वाली, किसी में हिरन की सी छलाँग मारने वाली, किसी में मेंढ़े की तरह फुदकने वाली, होती है उस चाल के चक्रों का वाहन कहते हैं।

पञ्च-तत्वों के अपने अपने गुण होते हैं। पृथ्वी का गंध,

जल का रस, अग्नि का रूप, वायु का स्पर्श और आकाश का शब्द गुण होता है। चक्रों में तत्त्वों की प्रधानता के अनुरूप उनके गुण भी प्रधानता में होते हैं। यही चक्रों के गुण हैं।

यह चक्र अपनी सूक्ष्म शक्ति को वैसे तो समस्त शरीर में प्रवाहित करते हैं, पर एक ज्ञानेन्द्रिय और एक कर्मेन्द्रिय से उनका सम्बन्ध विशेष रूप से होता है। सम्बन्धित इन्द्रियों को वे अधिक प्रभावित करते हैं। चक्रों के जागरण के चिन्ह उन इन्द्रियों पर तुरन्त परिलक्षित होते हैं। इसी सम्बन्ध विशेष के कारण वे इन्द्रियाँ चक्रों की इन्द्रियाँ कहलाती है।

उपरोक्त परिभाषाओं को समझ लेने के उपरान्त प्रत्येक चक्र की निम्न जानकारी को ठीक प्रकार समझ लेना पाठकों के लिए सुगम होगा। अब छहों चक्रों का परिचय नीचे दिया जाता है—

मूलाधार चक्र—

स्थान-योनि (गुदा के समीप)। वर्ण-लाल। लोक-भू लोक। दलों के अक्षर—वँ, शँ, षँ, सँ,। तत्व-पृथ्वी। तत्व बीज—लं। वाहन—ऐरावत हाथी। गुण—गन्ध। देव-ब्रह्मा, देव शक्ति—डाकिनी। यन्त्र—चतुष्कोण। ज्ञानेन्द्रिय—नासिका। कर्मेन्द्रिय-गुदा। ध्यान का फल-वक्ता, मनुष्यों के श्रेष्ठ, सर्व विद्या विनोदी, आरोग्य, आनन्द चित्त, काव्य और लेखन की सामर्थ्य।

स्वाधिष्ठान चक्र—

स्थान—पेड़ू (शिश्न के सामने) दल—छै। वर्ण-सिंदूर। लोक-भुवः। दलों के अक्षर-बँ, मँ, रँ, लँ,। तत्व—जल। तत्व बीज-बँ। बीज का वाहन-मगर। गुण-रस। देव-विष्णु। देव शक्ति-डाकिनी। यन्त्र-चन्द्रकार। ज्ञानेद्रिय-रसना। कर्मेन्द्रिय—

लिंग। ध्यान का फल—अहंकारादि विकारों का नाश, श्रेष्ठ योग, मोह निवृति, रचना शक्ति ।

मणिपूर चक्र—

स्थान—नाभि। दल—दश। वर्ण-नील। लोक—स्वः। दलों के अक्षर- डं, ढं, णं, तं, थं, द, धं, नं, पं, फं,। तत्व बीज—रं। बीज का वाहन—मेंढ़ा। गुण—रूप। देव-वृद्ध रुद्र। देव शक्ति—लाकिनी। यन्त्र—त्रिकोण। ज्ञानेन्द्रिय-चक्षु। कर्मेन्द्रिय-चरण। ध्यान का फल-संहार और पालन की सामर्थ्य, वचन—सिद्धि।

अनाहत चक्र—

स्थान—हृदय। दल—बारह। वर्ण अरुण। लोक—महः। दलों के अक्षर—कं, खं, गं, घं, ङं, चं, छं, जं, झं, टं, ठं,। तत्व-वायु। देव शक्ति— काकिनी। यन्त्र षट्कोण। ज्ञानेन्द्रिय-त्वचा कर्मेन्द्रिय-हाथ। फल-स्वामित्व, योग सिद्धि, ज्ञान जागृति, इन्द्रिय—जय, परकाया प्रवेश।

विशुद्धाख्य चक्र—

स्थान—कण्ठ। दल—सोलह। वर्ण धूम्र। लोक—जनः। दलों के अक्षर 'अ' से लेकर 'अः' तक सोलह अक्षर। तत्व—आकाश। तत्व बीज—हं। वाहन-हाथी। गुण—शब्द। देव—पञ्चमुखी सदा शिव। देवशक्ति-शाकिनी। यन्त्र-शून्य(गोलाकार) ज्ञानेन्द्रिय—कर्ण। कर्मेन्द्रिय वाक्। ध्यान फल—चित्त शांति, त्रिकाल दर्शित्व, दीर्घ जीवन, तेजस्विता, सर्वहित परायणता।

आज्ञा चक्र—

स्थान—भ्रूमध्य। दल-दो। वर्ण—श्वेत। दलों के अक्षर-ह, क्षं। तत्व-मह। तत्व बीज ॐ। बीज का वाहन-नाद। वेद-ज्योतिर्लिंग। देवशक्ति—हाकिनी। यन्त्र-लिंगाकार। लोक-तपः। ध्यान फल—सर्वार्थ साधन।

षट्चक्रों में उपरोक्त छः चक्र ही आते हैं। परन्तु सहस्रार कमल या सहस्र दल को भी कोई-कोई योग सातवाँ शून्य चक्र मानते हैं। उसका भी वर्णन नीचे दिया जाता है।

शून्य चक्र—

स्थान—मस्तक। दल—सहस्र। दलों के अक्षर अं से क्षं तक की पुनरावृत्तियाँ। लोक-सत्य। तत्व-तत्वों से अतीत। बीज तत्व-[:] विसर्ग। बीज का वाहन—विन्दु। देव—परब्रह्म। देव शक्ति— महाशक्ति। यन्त्र पूर्णचन्द्रवत्। प्रकाश—निराकार। ध्यान फल—भक्ति, अमरता, समाधि, समस्त ऋद्धि—सिद्धियों का करतलगत होना।

पाठक जानते हैं कि कुण्डलिनी शक्ति का स्रोत है। वह हमारे शरीर का सबसे अधिक समीप चैतन्य स्फुलिंग है, उसमें बीज रूप से इतनी रहस्यमत शक्तियाँ गर्भित हैं, जिनकी कल्पना तक नहीं हो सकती। कुण्डलिनी शक्ति के इन छः केन्द्रों में, षट्-चक्रों में भी उसका काफी प्रकाश है। जैसे सौर मण्डल में नौ ग्रह हैं, सूर्य उनका केन्द्र है और चन्द्रमा, मङ्गल आदि उससे सम्बन्ध होने के कारण सूर्य की परिक्रमा करते हैं। वे सूर्य की उष्मा, आकर्षणी, विलयिनी आदि शक्तियों से प्रभावित और ओत-प्रोत रहते हैं। वैसे ही कुण्डलिनी की शक्तियाँ चक्रों में भी प्रसारित होती रहती हैं। एक बड़ी तिजोरी में जैसे कई छोटे-छोटे दराज हैं, जैसे मधु मक्खी के एक बड़े पत्ते में छोटे-छोटे अनेक छिद्र होते हैं, और उनमें भी कुछ अंश भरा रहता है वैसे ही कुण्डलिनी की कुछ शक्ति का प्रकाश चक्रों में भी होता है चक्रों के जागरण के साथ साथ उनमें सन्निहित कितनी ही रहस्यमय शक्तियाँ भी जा पड़ती हैं। उनका संक्षिप्त सा संकेत ऊपर चक्रों में ध्यान फल में बताया गया है।

गायत्री की दस भुजाएें

गायत्री आत्मोन्नति का, आत्म-बल बढ़ाने का सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। सांसारिक सम्पत्तियाँ उपार्जन करना जिस प्रकार आवश्यक समझा जाता है उसी प्रकार गायत्री- साधना द्वारा आत्मिक पूँजी बढ़ाने का प्रयत्न भी निरन्तर जारी रहना चाहिये, दोनों दिशाओं में साथ २ संतुलित विकास होगा तो स्वस्थ उन्नति होगी, किंतु यदि केवल मात्र धन या भोग के सञ्चय में ही लगा रह गया तो निश्चित है कि वह कमाई मनोविनोद के लिये अपने पास इकट्ठी भले ही दीखे पर उससे वास्तविक सुख की उपलब्धि तनिक भी न हो सकेगी । जो सांसारिक वस्तुओं का समुचित लाभ उठाना चाहता है, उसे चाहिये कि आत्मोन्नति के लिये भी उतना ही प्रयत्न करे। भौतिक और आत्मिक उन्नति का समन्वय ही जीवन में सुस्थिर शाँति की स्थापना कर सकता है। हम धन कमाऐं, विद्या पढ़ें और उन्नतियाँ करें पर यह न भूलें कि इसका वास्तविक लाभ तभी मिल सकेगा जब आत्मोन्नति के लिऐ भी समुचित साधना की जा रही हो ।

१—स्वास्थ्य २—धन ३— विद्या ४ चतुरता ५—सहयोग यह पाँच सम्पतियाँ इस संसार में होती हैं। इन्हीं पाँच के अन्तर्गत समस्त प्रकार के वैभव आजाते हैं। इसी प्रकार पाँच कोषों की परमार्जित स्थिति ही पाँच आध्यात्मिक सम्पदाऐं हैं। अन्नमय, प्राणमय,मनोमय,विज्ञानमय,और आनंदमय यह पाँच कोष आध्यात्मिक शक्तियों के पाँच भंडार हैं। इन कोषों पर जो अधिकार कर लेता है उसकी अन्तः चेतना का पंचीकरण हो जाता है और १—आत्मज्ञान२— आत्म-दर्शन३—आत्मअनुभव४—आत्म-लाभ५—आत्म-कल्याण। यहपाँच आध्यात्मिकसम्पदाए प्राप्त हो जाती हैं।

गायत्री के चित्र में दस भुजाऐं दिखाई गई हैं । पाँच बांई ओर, पांच दाहिनी ओर। बाँई ओर की पांच भुजाऐं सांसा-

रिक सम्पत्तियाँ हैं और दाहिनी ओर की पाँच भुजायें पाँच आत्मिक शक्तियाँ हैं। गायत्री उपासक इन दसों लाभों को प्राप्त करके रहता है।

१—'आत्मज्ञान' का अर्थ है—अपने को जान लेना, शरीर और आत्मा की भिन्नता को भली प्रकार समझ लेना और शारीरिक लाभों को आत्म लाभ की तुलना में उतना ही महत्व देना जितना कि दिया जाना उचित है। आत्म ज्ञान होने से मनुष्य का 'असंयम' दूर हो जाता है। आत्म ज्ञानी इन्द्रिय भोगों की उपयोगिता अनुपयोगिता का निर्णय आत्म लाभ की दृष्टि से करता है इसलिए वह स्वभावत संयमी रहता है और शरीर से सम्बन्ध रखने वाले दुःखों से बचा रहता है दुर्बलता रोग एवं कुरूपता का कष्ट उसे नहीं भोगना पड़ता।

२—'आत्म दर्शन' का तात्पर्य है अपने स्वरूप का साक्षात्कार करना। साधना द्वारा आत्मा के प्रकाश का जब साक्षात्कार होता है तब प्रीति प्रतीति, श्रद्धा निष्ठा और विश्वास भावना बढ़ती है। कभी भौतिक बादी कभी अध्यात्वादी होने की डवां-डोल मनोदशा स्थिर हो जाती है और ऐसे गुण, कर्म, स्वभाव, प्रकट होने लगते हैं जो एक आत्म दृष्टि वाले व्यक्ति के लिए उचित हैं। इस आत्म दर्शन की द्वितीय भूमिका में पहुँचने पर दूसरों को जानने, समझने और उन्हें प्रभावित करने की सिद्धि मिल जाती है।

३—'आत्म अनुभव' कहते हैं, अपने वास्तविक स्वरूप का क्रियाशील होना अपने अध्यात्म ज्ञान के आधार पर ही भावना का होना। आत्म अनुभव से सूक्ष्म प्रकृति की गतिविधि मालूम करने की सिद्धि मिलती हैं। किसका क्या भविष्य बन रहा है? भूतकाल में कौन, क्या कर रहा है? किस कार्य में दैवी प्रेरणा

क्या है ? क्या उपद्रव और उत्पन्न होने वाले हैं ? लोक के लोकान्तरों में क्या हो रहा है ? कब कहाँ क्या वस्तु उत्पन्न और नष्ट होने वाली है आदि ऐसी अदृश्य एवं अज्ञात् बातें जिन्हें साधारण लोग नहीं जानते उन्हें आत्मानुभव की भूमिका में पहुँचा हुआ व्यक्ति भली प्रकार जानता है।

४—'आत्म लाभ' का अभिप्राय है—अपने में पूर्ण आत्म तत्व की प्रतिष्ठा। जैसे भट्टी में पड़ा हुआ लोहा तप कर अग्नि वर्ण का लाल हो जाता है वैसे ही इस भूमिका में पहुँचा हुआ सिद्ध पुरुप दैवी तेज पुंज से परिपूर्ण हो जाता है। आत्मा और परमात्मा की, अनेक दिव्य शक्तियों से उसका सम्बन्ध हो जाता है। परमात्मा की एक २ शक्ति का प्रतीक एक २ देवता है। यह देवता अनेक ऋद्धि-सिद्धियों का अधिपति है। यह देवता जैसे विश्व ब्रह्मांड में व्यापक हैं वैसे ही मानव शरीर में भी है। विश्व ब्रह्मांड का ही एक छोटा सा रूप यह पिंड देह है। इस पिंड देह में जो दैवी शक्तियों के गुह्य संस्थान हैं वे आत्म लाभ करने वाले के लिए प्रकट एवं प्रत्यक्ष हो जाते हैं और वह उन दैवी शक्तियों से इच्छानुकूल कार्य ले सकता है।

५—'आत्म कल्याण' का अर्थ है—जीवन मुक्ति सहज समाधि, कैवल्य, अक्षय आनन्द, ब्रह्म निर्माण, स्थित प्रज्ञांवावस्था, परमहंस गति, ईश्वर प्राप्ति। इस पञ्चम भूमिका में पहुँचा हुआ साधक ब्राह्मी भूत होता है। इसी पञ्चम भमि में पहुँची हुई आत्मायें ईश्वर की मानव प्रतिमूर्ति होती हैं। उन्हें देव दूत, अवतार, पैगम्बर, युग, निर्माता, प्रकाश स्तम्भ, आदि नामों से पुकारते हैं उन्हें क्या सिद्धि मिलती है इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि कोई चीज ऐसी नहीं जो आनन्द के वे स्वामी होते हैं, ब्रह्मानन्द परमानन्द एवं आत्मानन्द में बड़ा और कोई

सुख इस त्रिगुणात्मक प्रकृति में सम्भव नहीं, यही सर्वोच्च लाभ आत्म कल्याण की भूमिका में पहुँचे हुए को प्राप्त हो जाता है।

दश भुजी गायत्री की पाँच भुजाऐं सूक्ष्म और पाँच स्थूल हैं। निष्काम उपासना करने वाले माता के सूक्ष्म हाथों से आशीर्वाद पाते हैं और सकाम उपासकों को स्थूल हाथों से प्रसाद मिलता है। असंख्यों व्यक्ति ऐसे हैं जिन्होंने माता की कृपा से सांसारिक सम्पत्तियाँ प्राप्त की हैं और अपनी दुर्गम कठिनाइयों से त्राण पाया है। स्वास्थ्य, धन, विद्या, चतुरता और सहयोग यह पाँच सांसारिक सम्पत्तियाँ पञ्च मुखी माता की स्थूल भुजाओं से मिलती हैं।

ऐसे कितने ही अनुभव हमारे सामने हैं जिससे लोगों ने साधारण गायत्री साधना द्वारा आशा जनक सांसारिक सफलताएँ प्राप्त की हैं। जिनके घर में रोग घुस रहा था, बीमारी की पीड़ा सहते सहते और डाक्टरों का घर भरते-भरते जो कातर हो रहे थे, उन्होंने रोग मुक्ति के वरदान पाये। क्षय सरीखे प्राण घातक रोग की मृत्यु शय्या पर से उठकर खड़े हो गये। कइयों को तो जन्मजात पैतृक रोगों तक से छुटकारा मिला। कितने ही बेकार, दरिद्र और अयोग्य व्यक्ति अच्छी जीविका के अधिकारी बन गये। साधन हीन और मन्द बुद्धियों ने उच्च कोटि की विद्वता पाई। प्रतिभा हीन और अविकसित लोग चतुर, बुद्धिमान, कलाकार, शिल्पी, गुणवान्, प्रतिभावान, सर्वप्रिय, नेता और यशस्वी बन गये। जिनको सब ओर से तिरस्कार अपमान, द्वेष, संघर्ष और असहयोग ही मिलता था उनको घर और बाहर सर्वत्र, प्रेम, सहयोग, सद्भाव तथा मधुर व्यवहार प्राप्त होने लगा।

स्वास्थ्य और धन की ही भाँति दशभुजी गायत्री की

तीसरी स्थूल भुजा का प्रसाद 'विद्या' के रूप में मिलता है। मन्द बुद्धि, कूढ़ मगज, भुलक्कड़, मूर्ख, अदूरदर्शी, सिड़ी, सनकी एवं अर्ध विक्षिप्त मनुष्यों को बुद्धिमान, दूरदर्शी, तीव्र बुद्धि, विवेकवान् बनते देखा गया है। जिनकी मस्तिष्क दशा को देखकर हर कोई यह भविष्यवाणी करता था कि यह अपना पेट भी न भर सकेगा उन लोगों का मस्तिष्क और भाग्य ऐसा पलटा कि वे कुछ से कुछ हो गये, लोग उनकी सलाह लेकर काम करने में अपनी भलाई समझने लगे।

चातुर्य पूर्ण कामों का आरम्भ करते समय शारदा का, सरस्वती का आह्वान वन्दन और पूजन करने की प्रथा है। कारण यही है कि बुद्धि तत्व में माता की कृपा से एक ऐसी सूक्ष्म विशेषता बढ़ जाती है जिससे वे विशिष्ट बातें आसानी से हृदयंगम हो जाती है। चित्र कला, संगीत कविता, संभाषण लेखन, शिल्प, रसायन, चिकित्सा, शिक्षण, नेतृत्व अन्वेषण परीक्षण, निर्णय, दलाली, प्रचार, व्यवसाय, खेल, प्रतिद्वन्दता, कूटनीति आदि कितनी बातें ऐसी हैं जिनमें विशेष सफलता वही पा सकता है जिसकी बुद्धि में सूक्ष्मता हो। मोटी अक्ल से इस प्रकार के कामों में लाभ नहीं होता। ऐसा कुशाग्र सूक्ष्म वेधी चातुर्य गायत्री माता के पुण्य प्रसाद के रूप में प्राप्त होता है, ऐसी श्रद्धा रखने के कारण ही ऐसे लोग अपने कार्यों को आरम्भ करते हुए शारदा वन्दन करते हैं।

गायत्री की स्थूल पाँच भुजाओं में पाँचवी भुजा का प्रसाद सहयोग है। यह जिसे मिलता है वह स्वयं विनम्र, मधुर भाषी, प्रसन्न चित्त, हँस मुख, उदार दयालु, उपकारी सहृदय, सेवा भावी, निरहङ्कारी, बन जाता है यह विशेषताऐं उसमें बड़ी तेजी से बढ़ती हैं फलस्वरूप उसके सम्पर्क में जो भी कोई आता

है वह उसका वे पैसे का गुलाम बन जाता है। ऐसे स्वभाव के मनुष्य के स्त्री, पुत्र, भाई, भतीजे चाचा ताऊ सभी अनुकूल, सहायक और प्रशंसक रहते हैं। घर भर में उनका मान सत्कार होता है और सब कोई उनकी सुविधा का ध्यान रखते हैं। घर में हो या बाहर, बाजार में, रिश्तेदारी में, मित्रों में, परिचितों में सर्वत्र उसे प्रभु, सत्कार और सहयोग प्राप्त होता है। ऐसे स्वभाव के व्यक्ति कहीं भी मित्र विहीन नहीं रहते। वे जहाँ भी रहते हैं वहीं उन्हें प्रेमी, प्रशंसक, मित्र, सहायक और सहयोगी प्राप्त हो जाते हैं।

दाहिनी और बांई, सूक्ष्म और स्थूल, गायत्री की दस भुजाऐं साधक को प्राप्त होने वाली पांच आत्मिक और पांच भौतिक सिद्धियाँ हैं। यह दस सिद्धियाँ ऐसी हैं जिनके द्वारा यही जीवन अगले जीवन की पूर्व भूमिका है। यदि मनुष्य आज सन्तुष्ट है तो कल भी उसे सन्तोष ही उपलब्ध होगा यदि आज उसे कल्याण का अनुभव होता है तो कल भी कल्याण ही मिलेगा। सत्पुरुष अकसर दुस्साहस पूर्ण और वर्तमान वातावरण से भिन्न कार्यक्रम अपनाते हैं इसलिए वाह्य दृष्टि से उन्हें कुछ असुविधाऐं दिखाई देती हैं परन्तु उनकी आन्तरिक स्थिति पूर्ण प्रसन्न और सन्तुष्ट होती है। ऐसी दशा में यह भी निश्चित है कि उनका अगला जीवन भी पूर्णता, प्रसन्नता एवं सन्तोष की भूमिका में और भी अधिक विकसित होगा और आज की वाह्य कठिनाइयाँ भी कल तक स्थिर न रहेंगी।

गायत्री द्वारा विविध योग साधनायें

योग का मुख्य उद्देश्य आत्मा का परमात्मा के सन्निकिट होता है। इसके अनेक मार्ग ऋषियों और महर्षियों ने देश, काल और पात्र के अनुसार खोज कर निकाले हैं। किसी में शारीरिक

विधियों को प्रधानता दी है, किसी में मानसिक वृत्तियों को वशीभूत करने पर जोर दिया है, किसी ने ज्ञान का साधन प्रधान माना है तो किसी ने ध्यान पर जोर दिया है। इसी प्रकार जप-योग, मंत्र-योग, लय-योग, नाद-योग, स्वर-योग आदि कितनी ही प्रणालियाँ आत्मा को ऊँचा उठा कर परमात्मा तक पहुँचाने की निकाली गई हैं। इनका कुछ परिचय नीचे दिया जाता है।

(१) हठयोग का मुख्य उद्देश्य शारीरिक अङ्गों और इन्द्रियों पर नियंत्रण प्राप्त करके सांसारिक विषयों से विरत होना और इस उपाय से मनको एकाग्र करते हुये समाधि द्वारा ईश्वर की प्राप्ति करना माना गया। इसके यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि—ये आठ अंग वतलाये हैं। इनमें से यम और नियम तो प्रत्येक प्रकार के योग तथा साधना में अनिवार्य हैं। क्योंकि जव तक शरीर और मनको निर्मल और शुद्ध नहीं वनाया जाता तव तक किसी प्रकार की आध्यात्मिक उन्नति की वात सोचना ही व्यर्थ है। इस लिये हठयोग का आरंभ आसन से समझा जाता है। हठयोग के अनेक आसन स्वास्थ्य-रक्षा के उत्कृष्ट साधन माने गये हैं और आज कल अनेक शिक्षा-संस्थाओं में वालकों और नवयुवकों को उनका अभ्यास कराया जाता है। आसन में स्थिरता प्राप्त होने से मनुष्य का मन भी स्थिर होने लगता है।

हठयोग के तीन 'वन्ध' भी बड़े प्रभावशाली हैं। 'मूलवन्ध' से वीर्य का अधःप्रवाह रुक कर प्राण की ऊर्द्ध्वगति होती है और रक्त संचार की गति ठीक रहती है। 'जालन्धर बंध' से पैर के अँगूठे से लेकर ब्रह्मरंध्र तक सोलह स्थानों की नाड़ियों पर प्रभाव पड़ता है और श्वसि-प्रश्वास की क्रिया पर अधिकार होता है। 'उड्डियान बंध' से जीवनी-शक्ति बढ़कर दीर्घायु प्राप्त होती है।

सुषुम्ना नाड़ी का द्वार खुलता है और स्वधिष्ठान चक्र में चेतना आने से वह जागृत होने योग्य हो जाता है।

इसी प्रकार २५ प्रकार की मुद्राओं का वर्णन भी हठयोग में आता है। इनके द्वारा शरीर और मन में अनेक प्रकार की उपयोगी शक्तियों का निवास होता है। महामुद्रा में दाहिना और बायाँ पैर क्रमशः लम्बा करके और मस्तक को घुटने से लगाकर प्राणायाम किया जाता है। इसके फल से अहङ्कार, अविद्या, भय, द्वेष, मोह आदि पंच क्लेश दायक विकारों का शमन होता है। भगन्दर, बवासीर, संग्रहणी, प्रमेह आदि रोग दूर होते हैं, शरीर का तेज बढ़ता है और वृद्धावस्था दूर हटती है।

खेचरी-मुद्रा—जीभ को लम्बी करके उसे उलटना और तालू के गड्ढे में जिह्वा का अग्रभाग लगा देना खेचरी मुद्रा कहलाता है। इसके लिये शहद और काली आदि लगाकर जीभ को बाहर की तरफ सूंता या खींचा जाता है। अथवा जीभ के नीचे के नाड़ी तन्तुओं को क्रमशः काटकर उसे लम्बी बनाया जाता है। इसके प्रभाव से कपाल-गह्वर में होकर प्राण-शक्ति का संचार होने लगता है और सहस्रदल कमल में अवस्थित अमृत-निर्झर झरने लगता है, जिससे दिव्य आनन्द की प्राप्ति होती है। प्राण की ऊर्द्ध गति होजाने से मृत्यु-काल में जीव ब्रह्मरन्ध्र में होकर ही प्रयाण करता है, इसलिये उसे मुक्ति या स्वर्ग की सद्-गति प्राप्त होती है।

विपरीत करणी मुद्रा—मस्तक को जमीन पर रख कर दोनों हाथों को उसके समीप रखना और पैरों को ऊपर की तरफ सीधा करना इसको विपरीत करणी मुद्रा कहते हैं। शीर्षासन भी इसी का नाम है। इसके साधन से मस्तिष्क को बड़ी शक्ति प्राप्त होती है।

इसी प्रकार षट्मुखी, शाम्भवी, अगोचरी, भूचरी, नमोमुद्रा, शक्तिचालनी, ताड़गी, माण्डवी वैश्वानरी, वायवी, काकी, भुजंगनी आदि अनेक योग-मुद्राएँ हैं जिनके द्वारा नाना प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त की जा सकती है।

हठयोग के प्राणायाम में श्वास को भीतर खीचते हुए क्रमशः पूरक, कुम्भक और रेचक करना पड़ता है। प्राणायाम के लोम-विलोम, सूर्य-भेदन, उज्जायी, शीतकारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्छा, प्लाविनी ये नौ भेद हैं। इनके द्वारा श्वास-प्रश्वास पर नियंत्रण होकर अनेक व्याधियों का निराकरण और शरीरस्थ शक्तियों को जागृत किया जा सकता है।

आत्मानुभूतियोग—आत्मा के सूक्ष्म अन्तराल में, अपने आपके सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान मौजूद है। वह अपनी घोषणा सदैव इस प्रकार रहती रहती है कि जिससे बुद्धि भ्रमित न हो और अपने स्वरूप को न भूले। थोड़ा ध्यान देने पर आत्मा की इस वाणी को हम स्पष्ट रूप से सुन सकते हैं और उस पर निरन्तर ध्यान देने से आत्मा का साक्षात्कार भी कर सकते हैं।

प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व, नित्यकर्म से निवट कर पूर्व को मुख करके किसी शान्त स्थान में वैठिये। मेरुदण्ड सीधा रहे। नेत्र वन्द रखिये और स्वाभाविक रीति से श्वास लीजिये। जब नासिका द्वारा वायु भीतर प्रवेश करने लगे, तो सूक्ष्म कर्णेन्द्रिय को सजग करके ध्यान पूर्वक श्रवण कीजिए कि वायु के साथ-साथ 'सो' की सूक्ष्म ध्वनि हो रही है। जब तक वायु भीतर रहे तब तक 'अ' और जब वाहर निकलने लगे तो 'हं' की ध्वनि का अनुभव कीजिये। साथ ही हृदय-स्थित सूर्य-चक्र के प्रकाश विन्दु में आत्मा के तेजोमय स्वरूप की भावना कीजिये। इस प्रकार 'सोऽहं' (यह मैं हूँ) का अजपाजाप होने लगेगा।

'सोऽहं' साधना की उन्नति जैसे-जैसे होती जाती है, वैसे ही वैसे विज्ञानमय कोष का परिष्कार होता जाता है। आत्म-ज्ञान बढ़ता है और धीरे-धीरे आत्म-साक्षात्कार की स्थिति निकट आती चलती है। आगे चलकर सांस पर ध्यान जमना छूट जाता है और केवल मात्र सूर्य-चक्र में विशुद्ध ब्रह्मतेज के ही दर्शन होते हैं। उस समय समाधि कीसी अवस्था होजाती है और क्रमशः साधक ब्राह्मी स्थिति का अधिकारी होजाता है।

स्वर-योग—विज्ञानमय कोश वायु-प्रधान होने के कारण, उसमें वायु-संस्थान विशेष रूप से सजग रहता है। इस वायु-तत्व पर अगर अधिकार प्राप्त कर लिया जाय तो अनेक प्रकार से अपना हित सम्पादन किया जा सकता है। स्वर-शास्त्र के अनुसार श्वास-प्रश्वास के भागों को नाड़ियां कहते हैं जिनकी संख्या शरीर में ७२०० हैं। इनको नसें न समझना चाहिये, स्पष्टतः यह प्राण-वायु के आवागमन के मार्ग हैं। इनमें तीन—इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना प्रधान नाड़ियाँ हैं। इड़ा, को 'चन्द्रनाड़ी' भी कहते हैं, जिसका संस्थान बांये नथुनेमें है। पिंगलाको 'सूर्यनाड़ी' कहते हैं, जो दाहिने नथुने में है। सुषुम्ना को 'वायु' कहते हैं जो दोनों नथुनों के मध्य में है। जिस प्रकार संसार में सूर्य और चन्द्र नियमित रूप से अपना-अपना कार्य करते हैं, उसी प्रकार इड़ा, पिङ्गला भी मनुष्य जीवन में अपना-अपना कार्य नियमित रूप से करती हैं। जैसा सब जानते हैं चन्द्र का गुण शीतल और सूर्य का उष्ण है। यही गुण इड़ा और पिङ्गला नाड़ियों के हैं। इस लिये विवेक पूर्ण और स्थाई कार्य चन्द्रस्वर में करने से विशेष सफलता मिलती है। इसी प्रकार उत्तेजित, आवेश, और जोश के साथ करने से कार्यों के लिये सूर्य-स्वर लाभदायक कहा गया है। कभी-कभी इड़ा और पिङ्गला दोनों नाड़ियां रुककर सुषुम्ना

चलने लगती है, अर्थात् दोनों नथुनों से एक सी गति से श्वास चलता है वह समय आत्मिक चिन्तन के लिये श्रेष्ठ माना गया है। ऐसे समय में मानसिक विकार प्रायः दब जाते हैं और गहरे आत्मिक भाव का थोड़ा बहुत उदय अवश्य होता है। ऐसे समय में दिये हुए शाप या वरदान कुछ न कुछ फलीभूत अवश्य होते हैं क्योंकि उनके साथ आत्म तत्व का सम्मिश्रण होता है।

नाद योग—'शब्द' को ब्रह्म कहा है क्योंकि ईश्वर और जीव को एक शृंखला में बाँधने का काम शब्द द्वारा ही होता है। सृष्टि की उत्पत्ति का प्रारम्भ भी शब्द से हुआ है। पंच तत्वों में सबसे पहले आकाश बना आकाश को तन्मात्रा शब्द है। अन्य समस्त पदार्थों की भाँति शब्द भी दो प्रकार का है सूक्ष्म और स्थूल। सूक्ष्म शब्द को विचार कहते हैं और स्थूल शब्द को नाद।

ब्रह्मलोक से हमारे लिये ईश्वरीय शब्द-प्रवाह सदैव प्रवाहित होता है। ईश्वर हमारे साथ वार्तालाप करना चाहता है पर हममें से बहुत कम लोग ऐसे हैं जो उसे सुनना चाहते हैं या सुनने की इच्छा करते हैं। ईश्वर निरन्तर एक ऐसी विचार धारा प्रेरित करता है जो हमारे लिये अतीव कल्याणकारी होती है, उसको यदि सुना और समझा जा सके तथा उसके अनुसार मार्ग निर्धारित किया जा सके तो निस्संदेह जीवनोद्देश्य की ओर द्रुत गति से अग्रसर हुआ जा सकता है। यह विचार धारा हमारी आत्मा से टकराती है।

हमारा अंतःकरण एक रेडियो की तरह है जिसकी ओर यदि अभिमुख हुआ जाय, अपनी वृत्तियों को अंतर्मुख बनाकर आत्मा में प्रस्फुटित होने वाली दिव्य विचार लहरियों को सुना जाय, तो ईश्वरीद वाणी हमें प्रत्यक्ष में सुनाई पड़ सकती है। इसी को आकाश वाणी कहते हैं।

ईश्वर उनके लिए बिलकुल समीप होता वे ईश्वर की बातें सुनते हैं और अपनी उससे कहते हैं। इस दिव्य मिलन के लिए हाड़ माँस के स्थूल नेत्र या कानों का उपयोग करने की आवश्यकता नहीं पड़ती आत्मा की समीपता में बैठा हुआ अंतःकरण अपनी दिव्य इन्द्रियों की सहायता से इस कार्य को आसानी से पूरा कर लेता है। यह अत्यन्त सूक्ष्म ब्रह्म शब्द, विचार तब तक धुँधले रूपमें सुनाई पड़ता है जब तक कषाय कल्मष आत्मामें बने रहते हैं। जितनी आन्तरिक पवित्रता बढ़ती जाती है, उतने ही यह दिव्य संदेश बिलकुल स्पष्ट रूप से सामने आते हैं। आरम्भ में अपने लिए कर्तव्य का बोध होता है, पाप पुण्य का संकेत होता है, बुरा कार्य करते समय अन्त में भय, घृणा, लज्जा, संकोच, आदि का होना तथा उत्तम कार्य करते समय आत्म संतोष, प्रसन्नता, उत्साह होना इसी स्थिति का बोधक है।

यह दिव्य सन्देश आगे चल कर भूत, भविष्य, वर्तमान की सभी घटनाओं को प्रगट करता है, किसके लिए क्या भवतव्य बन रहा है और भविष्य में किस के लिए क्या घटना घटित होने वाली है यह सब कुछ उसे प्रगट हो जाता है। और भी ऊँची स्थिति पर पहुँचने पर उसके लिए सृष्टि के सब रहस्य खुल जाते हैं।

ऊपर जिन सब योग-मार्गों का वर्णन किया गया है वे सब गायत्री-योग के अन्तर्गत ही हैं और गायत्री-साधना करने वाला व्यक्ति उन सबमें सफलता प्राप्त कर सकता है। गायत्री के चौबीस अक्षरों में संसार का समस्त ज्ञान-विज्ञान बीजरूप से मौजूद है। इसके अतिरिक्त सद्बुद्धि को दिव्य मार्ग से अ:तकरण प्रतिष्ठित करने की शक्ति भी उसमें पाई जाती है। सद्बुद्धि ही मानव जीवन में सबसे बड़ी सम्पदा अथवा शक्ति है। जिसके

पास यह शक्ति होगी वह कभी किसी क्षेत्र में असफल नहीं हो सकता। विशेष कर आध्यात्मिक शक्ति का तो गायत्री भंडार ही है। इस लिए जो व्यक्ति आत्मोन्नति की दृष्टि से उसकी साधना करेंगे उन्हें कभी निराश नहीं होना पड़ेगा। ऊँची से ऊँची योग-विधियाँ और दैवी शक्तियाँ गायत्री-साधक को सहज ही हस्तगत हो जाती हैं।

जीवन को सुख-शान्तिमय बनाने वाला साहित्य

(मूल्य प्रत्येक पुस्तक का छः-छः आना है)

१-सूर्यचिकित्सा विज्ञान २-प्राणचिकित्सा विज्ञान ३-स्वस्थ बनने की विद्या ४-भोग में योग ५-बुद्धि बढ़ाने के उपाय ६-आसन और प्राणायाम ७-तुलसी के अमृतोपम गुण ८-महान जागरण ६-तुम महान हो १०-घरेलू चिकित्सा ११ दीर्घ जीवन के रहस्य १२-नेत्रों की प्राकृतिक चिकित्सा १३-स्वप्न दोष की मनोवैज्ञानिक चिकित्सा १४-दूध की आश्चर्यजनक शक्ति १५-उन्नति का मूलमन्त्र ब्रह्मचर्य १६-उपवास के चमत्कार १७-स्त्री रोग चिकित्सा १८-बालरोग चिकित्सा १६-कब्ज की चिकित्सा २०-निरोग जीवन का राजमार्ग २१-चिरस्थाई यौवन २२-सौन्दर्य बढ़ाने के ठोस उपाय २३—मनुष्य शरीर की बिजली के चमत्कार २४-पुत्र-पुत्री उत्पन्न करने की विधि २५-हमारी पारिवारिक समस्याएं २६-मनचाही सन्तान २७-दाम्पत्ति जीवन का सुख २८-हमारे आन्तरिक शत्रु २६-क्या खायें ?क्यों खायें ? कैसे खायें ? ३०-हमारे सभ्यता के कलङ्क ३१-धनवान बनने के गुप्त रहस्य ३२-मरने के बाद हमारा क्या होता है ? ३३-मित्रभाव बढ़ाने की कला ३४-आकृति देखकर मनुष्य की पहिचान ३५-हमें स्वप्न क्यों दीखते हैं ? ३६-विचार करने की कला ३७-हम वक्ता कैसे बन सकते हैं ? ३८-सफलता के तीन साधन ३६—जिंदगी कैसे जिएँ ४०—प्रसिद्धि और समृद्धि ४१-ईश्वर कौन है ? कहाँ है ? कैसा है ? ४२—क्या धर्म ? अधर्म ? ४३-ईश्वर और स्वर्ग प्राप्ति का सच्चा मार्ग ४४-भारतीय संस्कृति का बीज मंत्र यज्ञोपवीत ४५-यज्ञोपवीत द्वारा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति ४६-मैं क्या हूँ ? ४७-वशीकरण की सच्ची सिद्धि ४८-ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग ।

'अखण्ड-ज्योति' प्रेस, मथुरा ।

लेखक-
श्रीराम शर्मा आचार्य
गायत्री तपोभूमि, मथुरा ।

ॐ भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि
धियो योनः प्रचोदयात् ।

प्रकाशक-
"अखण्ड ज्योति" प्रेस, मथुरा

प्रथम वार] सन् १९५८ [मूल्य ।)

गायत्री महात्म्य

महापुरुषों द्वारा गायत्री महिमा का गान

हिन्दू-धर्म में अनेक मान्यताएँ प्रचलित हैं। विविध सिद्धान्तों के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी मतभेद भी हैं। पर गायत्री-मन्त्र की महिमा एक ऐसा तत्व है जिसे सभी शास्त्रों ने, सभी सम्प्रदायों ने, सभी ऋषियों ने एक स्वर से स्वीकार किया है।

अथर्ववेद—१६-७१-१ में गायत्री की स्तुति की गई है, जिसमें उसे आयु, प्राण, शक्ति, कीर्ति, धन और ब्रह्मतेज प्रदान करने वाली कहा गया है।

विश्वामित्र का कथन है—गायत्री के समान चारों वेदों में कोई मन्त्र नहीं है। सम्पूर्ण वेद, यज्ञ, दान, तप, गायत्री-मन्त्र की एक कला के समान भी नहीं हैं।

भगवान मनु का कथन है—'ब्रह्माजी ने तीनों वेदों का सार तीन चरण वाला गायत्री-मन्त्र निकाला।' गायत्री से बढ़कर पवित्र करने वाला और कोई मन्त्र नहीं है। जो मनुष्य नियमित रूप से तीन वर्ष तक गायत्री का जप करता है वह ईश्वर को प्राप्त करता है। जो द्विज दोनों सन्ध्याओं में गायत्री जपता है वह वेद पढने के फल को प्राप्त करता है। अन्य कोई साधना करे या न करे केवल गायत्री-जप से ही सिद्धि पा सकता है। नित्य एक हजार जप करने वाला पापों से वैसे ही छूट जाता है जैसे केंचुली से सर्प छूट जाता है। जो द्विज गायत्री की उपासना नहीं करता वह निन्दा का पात्र है।

योगिराज याज्ञवल्क्य कहते हैं—'गायत्री और समस्त वेदों को तराजू में तोला गया। एक ओर षटअङ्गों समेत वेद और दूसरी ओर गायत्री को रखा गया। वेदों का सार उपनिषद् है, उपनिषदों का सार व्याहृतियों समेत गायत्री है। गायत्री वेदों की जननी है, पापों का नाश करने वाली है, इससे अधिक पवित्र करने वाला अन्य कोई मन्त्र स्वर्ग और पृथ्वी पर नहीं है। गङ्गा के समान कोई तीर्थ नहीं, केशव से श्रेष्ठ कोई देव नहीं, गायत्री से श्रेष्ठ मन्त्र न हुआ न आगे होगा। गायत्री जान लेने वाला समस्त विद्याओं का वेत्ता और श्रेष्ठ श्रोत्रिय हो जाता है। जो द्विज गायत्री परायण नहीं वह वेदों का पारङ्गत होते हुए भी शूद्र के समान है, अन्यत्र किया हुआ उसका श्रम व्यर्थ है। जो गायत्री नहीं जानता ऐसा व्यक्ति ब्राह्मणत्व से च्युत और पापयुक्त हो जाता है।

पाराशरजी कहते हैं—'समस्त जप सूक्तों तथा वेम-मन्त्रों में गायत्री-मन्त्र परम श्रेष्ठ है। वेद और गायत्री की तुलना में गायत्री का पलड़ा भारी है। भक्तिपूर्वक गायत्री जपने वाला परममुक्त होकर पवित्र बन जाता है। वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास पढ़ लेने पर भी जो गायत्री से हीन है उसे ब्राह्मण न समझना चाहिए।

शङ्ख ऋषि का मत है—'नरकरूपी समुद्र में गिरते हुए को हाथ पकड़कर बचाने वाली गायत्री ही है। उससे उत्तम वस्तु स्वर्ग और पृथ्वी पर कोई नहीं है। गायत्री का ज्ञाता निस्संदेह स्वर्ग को प्राप्त करता है।

शौनिक ऋषि का मत है—'अन्य उपासनाएं करे चाहे न करे, केवल गायत्री-जप से द्विज जीवन-मुक्त हो जाता है। सांसा-

रिक और पारलौकिक समस्त सुखों को पाता है। सङ्कट के समय दस हजार जप करने से विपत्ति का निवारण होता है।

अत्रि ऋषि कहते हैं—गायत्री आत्मा का परम शोधन करने वाली है। उसके प्रभाव से कठिन दोष और दुर्गुणों का परिमार्जन हो जाता है। जो मनुष्य गायत्री-तत्व को भली प्रकार समझ लेता है उसके लिए संसार में कोई सुख शेष नहीं रह जाता।

महर्षि व्यासजी कहते हैं—'जिस प्रकार पुष्पों का सार शहद, दूध का सार घृत है उसी प्रकार समस्त वेदों का सार गायत्री है। सिद्ध की हुई गायत्री कामधेनु के समान है। गङ्गा शरीर के पापों को निर्मल करती है, गायत्री रूपी ब्रह्मगङ्गा से आत्मा पवित्र होती है। जो गायत्री को छोड़कर अन्य उपासनाऐं करता है वह पक्वान्न को छोड़कर भिक्षा माँगने वाले के समान मूर्ख है। काम्य सफलता तथा तप की सिद्धि के लिए गायत्री से श्रेष्ठ और कुछ नहीं है।'

भारद्वाज ऋषि कहते हैं—'ब्रह्मा आदि देवता भी गायत्री का जप करते हैं। वह ब्रह्म साक्षात्कार कराने वाली है। अनुचित काम करने वालों के दुर्गुण गायत्री के कारण छूट जाते हैं। गायत्री से रहित व्यक्ति शूद्र से भी अपवित्र है।'

चरक ऋषि कहते हैं—'जो ब्रह्मचर्यपूर्वक गायत्री की उपासना करता है और आँवले के ताजे फलों का सेवन करता है वह दीर्घजीवी होता है।'

नारदजी की उक्ति है—'गायत्री भक्ति का ही रूप है। जहाँ भक्ति-रूपा गायत्री है वहाँ श्री नारायणजी का निवास होने में कोई सन्देह नहीं करना चाहिए।'

वशिष्ठजी का मत है—'मन्दगति, कुमार्गगामी और

अस्थिर मति भी गायत्री के प्रभाव से उच्च पद को प्राप्त करते हैं फिर सद्गति होना निश्चित है। जो पवित्रता और स्थिरतापूर्वक गायत्री की उपासना करते हैं वे आत्म-लाभ करते हैं।'

गौतम ऋषि का मत है कि—'योग का मूल आधार गायत्री है। गायत्री से ही सम्पूर्ण योगों की साधना होती है।'

महर्षि उद्दालक कहते हैं—'गायत्री में परमात्मा का प्रचण्ड तेज भरा हुआ है। जो इस तेज को धारण करता है उसका वैभव अतुलनीय हो जाता है।'

देव-गुरु बृहस्पतिजी का मत है—देवत्व और अमृत्व की आदि जननी गायत्री है। इसे प्राप्त करने के पश्चात् और कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता।

शृङ्गी ऋषि की उक्ति है—'ज्ञान-विज्ञान का आदि स्रोत गायत्री है। जो इसमें है उससे अधिक संसार में और कुछ नहीं है।'

उपरोक्त अभिमतों से मिलते-जुलते अभिमत प्रायः सभी ऋषियों के हैं। इससे स्पष्ट है कि कोई भी ऋषि अन्य विषयों में चाहे आपस का मतभेद रखते रहे हों पर गायत्री के बारे में उन सब में समान श्रद्धा रहती थी और वे सभी उपासना में उसका प्रथम स्थान रखते थे। शास्त्रों में, धर्म ग्रन्थों में, स्मृतियों में, पुराणों में गायत्री की महिमा तथा साधना पर प्रकाश डालने वाले सहस्रों श्लोक भरे पड़े हैं। इन सबका संग्रह किया जाय तो एक बड़ा भारी गायत्री-पुराण ही बन सकता है।

वर्तमान शताब्दी के आध्यात्मिक तथा दार्शनिक महापुरुषों ने भी गायत्री के महत्व को उसी प्रकार स्वीकार किया है जैसा कि प्राचीन काल के तत्वदर्शी ऋषियों ने किया था। आज का युग बुद्धि और तर्क का, प्रत्यक्षवाद का युग है। इस शताब्दी

के प्रभावशाली गण्यमान्य व्यक्तियों की विचारधारा केवल धर्म-ग्रन्थों या परम्पराओं पर आधारित नहीं रही है। उन्होंने बुद्धि-वाद, तर्कवाद और प्रत्यक्षवाद को अपने विचार और कार्यों में प्रधान स्थान दिया है। ऐसे महापुरुषों को भी गायत्री-तत्व सब दृष्टिकोणों से परखने पर खरा सोना प्रतीत हुआ है। नीचे उनमें से कुछ के विचार देखिए –

महात्मा गांधी कहते हैं—'गायत्री - मन्त्र का निरन्तर जप रोगियों को अच्छा करने और आत्माओं की उन्नति के लिए उप-योगी है। गायत्री का स्थिर चित्त और शांत हृदय से किया हुआ जप आपत्ति-काल के सङ्कटों को दूर करने का प्रभाव रखता है।'

लोकमान्य तिलक कहते हैं--'जिस बहुमुखी दासता के बन्धनों में भारतीय प्रजा जकड़ी हुई है उसका अन्त राजनैतिक संघर्ष करने मात्र से न हो जायगा। उसके लिए आत्मा के अन्दर प्रकाश उत्पन्न होना चाहिये जिससे सत् और असत् का विवेक हो, कुमार्ग को छोड़कर श्रेष्ठ मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिले। गायत्री मन्त्र में यही भावना विद्यमान है।'

महामना मदनमोहन मालवीयजी ने कहा था--ऋषियों ने जो अमूल्य रत्न हमें दिए हैं उनमें से एक अनुपम रत्न गायत्री से बुद्धि पवित्र होती है। ईश्वर का प्रकाश आत्मा में आता है। इस प्रकाश से असंख्य आत्माओं को भव-बन्धन से त्राण मिला है। गायत्री में,ईश्वर परायणता में श्रद्धा उत्पन्न करने की शक्ति है। साथ ही वह भौतिक अभावों को दूर करती है। गायत्री की उपा-सना करना ब्राह्मणों के लिए तो अत्यन्त आवश्यक है। जो ब्राह्मण गायत्री-जप नहीं करता वह अपने कर्तव्य धर्म छोड़ने का अपराधी होता है।

रवीन्द्रनाथ टैगौर कहते हैं—'भारतवर्ष को जगाने वाला

जो मन्त्र है वह इतना सरल है कि एक ही श्वास में उसका उच्चारण किया जा सकता है। वह है—गायत्री मन्त्र। इस पुनीत मन्त्र का अभ्यास करने में किसी प्रकार के तार्किक ऊहापोह, किसी प्रकार के मतभेद अथवा किसी प्रकार के बखेड़े की गुञ्जायश नहीं है।

योगी अरविन्द घोष ने कई जगह गायत्री-जप करने का निर्देश किया है। उन्होंने बताया है कि गायत्री में ऐसी शक्ति सन्निहित है जो महत्वपूर्ण कार्य कर सकती है। उन्होंने कइयों को साधना के तौर पर गायत्री का जप बताया है।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस का उपदेश है—'मैं लोगों से कहता हूँ कि लम्बे-लम्बे साधन करने की उतनी जरूरत नहीं है। इस छोटी सी गायत्री की साधना करके देखो। गायत्री का जप करने से बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ मिल जाती हैं। यह मन्त्र छोटा है पर इसकी शक्ति भारी है।'

स्वामी विवेकानन्द का कथन है—'राजा से वही वस्तु माँगी जानी चाहिए जो उसके गौरव के अनुकूल हो। परमात्मा से माँगने योग्य वस्तु सद्बुद्धि है। जिस पर परमात्मा प्रसन्न होते हैं उसे सद्बुद्धि प्रदान करते हैं। सद्बुद्धि से सत् मार्ग पर प्रगति होती है और सत् कर्म से सब प्रकार के सुख मिलते हैं। जो सत् की ओर बढ़ रहा है उसे किसी प्रकार के सुख की कमी नहीं रहती। गायत्री सद्बुद्धि का मन्त्र है। इसलिए उसे मन्त्रों का मुकुटमणि कहा गया है।'

जगद्गुरु शङ्कराचार्यजी का कथन है—'गायत्री की महिमा का वर्णन करना मनुष्य की सामर्थ्य से बाहर है। बुद्धि का शुद्ध होना इतना बड़ा कार्य है जिसकी समता संसार के और किसी काम से नहीं हो सकती। आत्मबल प्राप्त करने की दिव्य दृष्टि शुद्ध बुद्धि से प्राप्त होती है उसका प्रेरक गायत्री-मन्त्र है।

उसका अवतार दुरितों को नष्ट करने और ऋत के अभिवर्धन के लिए हुआ है।'

स्वामी रामतीर्थ ने कहा है--'राम को प्राप्त करना सबसे बड़ा काम है। गायत्री का अभिप्राय बुद्धि का काम रुचि से हटा कर राम-रुचि में लगा देना है। जिसकी बुद्धि पवित्र होगी वही राम को प्राप्त करने का काम कर सकेगा। गायत्री पुकारती है कि बुद्धि में इतनी पवित्रता होनी चाहिए कि वह काम को राम से बढ़कर न समझे।'

महर्षि रमण का उपदेश है--'योग-विद्या के अन्तर्गत मन्त्र-विद्या बड़ी प्रबल है, मन्त्रों की शक्ति से अद्भुत सफलताऐं मिलती हैं। गायत्री मन्त्र ही है, जिससे आध्यात्मिक और भौतिक दोनों प्रकार के लाभ मिलते हैं।'

स्वामी शिवानन्दजी कहते हैं--'ब्राह्म मुहूर्त में गायत्री का जप करने से चित्त शुद्ध होता है और हृदय में निर्मलता आती है। शरीर निरोग रहता है, स्वभाव में नम्रता आती है, बुद्धि सूक्ष्म होने से दूरदर्शिता बढ़ती है और स्मरण शक्ति का विकास होता है। कठिन प्रसङ्गों में गायत्री द्वारा दैवी सहायता मिलती है। उसके द्वारा आत्म-दर्शन हो सकता है।'

काली कमली वाले बाबा विशुद्धानन्दजी कहते थे--गायत्री ने बहुतों को सुमार्ग पर लगाया है। कुमार्गगामी मनुष्य की पहले तो गायत्री की ओर रुचि ही नहीं होती। यदि ईश्वर-कृपा से हो भी जाय तो वह कुमार्गगामी नहीं रहता। गायत्री जिसके हृदय में वास करती है उसका मन ईश्वर की ओर जाता है। विषय-विकारों की व्यर्थता उसे भली प्रकार अनुभव होने लगती है। कई महात्मा गायत्री का जप करके परम सिद्ध हुए हैं। परमात्मा की शक्ति ही गायत्री है। जो गायत्री के निकट जाता है

वह शुद्ध होकर रहता है। आत्म-कल्याण के लिए मन की शुद्धि आवश्यक है। मन की शुद्धि के लिए गायत्री-मन्त्र अद्भुत है। ईश्वर-प्राप्ति के लिए गायत्री-जप को प्रथम सीढ़ी समझना चाहिए।

दक्षिण भारत के प्रसिद्ध आत्मज्ञानी टी० सुब्बाराव कहते हैं—'सविता नारायण की देवी प्रकृति को सावित्री कहते हैं। आदि-शक्ति होने के कारण इसको गायत्री कहते हैं। गीता में इसका वर्णन 'आदित्य वर्ण' कहकर किया गया है। गायत्री की उपासना करना योग का सबसे प्रथम अङ्ग है।'

श्री स्वामी करपात्रीजी का कथन है—'जो गायत्री के अधिकारी हैं उन्हें नित्य नियमित रूप से उसका जप करना चाहिए। द्विजों के लिए गायत्री का जप एक अत्यन्त आवश्यक धर्मकृत्य है।'

गीता-धर्म के व्याख्याता श्री स्वामी विद्यानन्दजी कहते हैं—'गायत्री बुद्धि को पवित्र करती है। बुद्धि की पवित्रता से बढ़कर जीवन में और दूसरा लाभ नहीं है। इसलिए गायत्री एक बहुत बड़े लाभ की जननी है।'

सर राधाकृष्णन् कहते हैं—'यदि हम इस सार्वभौमिक प्रार्थना गायत्री पर विचार करें तो हमें मालूम होगा कि यह हमें वास्तव में कितना ठोस लाभ देती है। गायत्री हम में फिर से जीवन का स्रोत उत्पन्न करने वाली आकुल प्रार्थना है।'

प्रसिद्ध आर्य समाजी महात्मा सर्वदानन्दजी का कथन है—'गायत्री-मन्त्र द्वारा प्रभु का पूजन सदा से आर्यों की रीति रही है। ऋषि दयानन्द ने भी उसी शैली का अनुसरण करके संध्या का विधान तथा वेदों के स्वाध्याय का प्रयत्न करना बताया है। ऐसा करने से अन्तःकरण की शुद्धि तथा बुद्धि निर्मल होकर

मनुष्य का जीवन अपने तथा दूसरों के लिए हितकर हो जाता है। जितना भी इस शुभ कर्म में श्रद्धा और विश्वास हो उतना ही अविद्या आदि क्लेशों का ह्रास होता है। जो जिज्ञासु गायत्री-मन्त्र को प्रेम और नियमपूर्वक उच्चारण करते हैं उनके लिए यह संसार-सागर में तरने की नाव और आत्म-प्राप्ति की सड़क है।'

आर्यसमाज के जन्मदाता श्री दयानन्दजी गायत्री के श्रद्धालु उपासक थे। ग्वालियर के राजासाहब से स्वामी जी ने कहा था कि भागवत सप्ताह की अपेक्षा गायत्री-पुरश्चरण अधिक श्रेष्ठ है। जयपुर के सच्चिदानन्द, हीरालाल रावल, घोड़लसिंह आदि को गायत्री-जप की विधि सिखाई थी। मुलतान में उपदेश के समय स्वामीजी ने गायत्री-मन्त्र का उच्चारण किया और कहा कि--यह मन्त्र सबसे श्रेष्ठ है। चारों वेदों का मूल यही गुरु-मन्त्र है। आदि काल में सभी ऋषि-मुनि इसी का जप किया करते थे। स्वामीजी ने कई स्थानों पर विशाल गायत्री अनुष्ठानों का आयोजन कराया था, जिनमें चालीस तक की संख्या में विद्वान ब्राह्मण बुलाये गये। यह जप पन्द्रह दिन तक चले थे।

इस प्रकार वर्तमान शताब्दी के अनेकों गण्यमान्य बुद्धि-वादी महापुरुषों के अभिमत हमारे पास संग्रहीत हैं। उन पर विचार करने से इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि गायत्री उपासना कोई अन्धविश्वास जन्य परम्परा नहीं है, वरन् उसके पीछे आत्मोन्नति करने वाले ठोस तत्वों का बल है। इस महान् शक्ति को अपनाने का जिसने भी प्रयत्न किया है उसे लाभ ही मिला है। गायत्री-साधना कभी भी निष्फल नहीं जाती।

गायत्री भूलोक की कामधेनु है। यह आत्मा की समस्त क्षुधा-पिपासाओं को शांत करती है। भव-बन्धनों के जन्म-मृत्यु के चक्र से छुड़ाने की सामर्थ्य के परिपूर्ण होने के कारण उसे

अमृत भी कहते हैं। गायत्री को स्पर्श करने वाला कुछ से कुछ हो जाता है, इसलिए उसे पारसमणि भी कहा गया है। चाहे कोई गृहस्थ हो या विरक्त, गायत्री-उपासना सब के लिए समान रूप से लाभदायक है। गायत्री-उपासना प्रत्येक द्विज का अनिवार्य धार्मिक कृत्य है। उसकी उपेक्षा करना अपने परम पुनीत धार्मिक कर्तव्य से च्युत होना है।

अभाव, कष्ट, विपत्ति, चिंता एवं निराशा की घड़ियों में गायत्री का आश्रय लेने से तुरन्त शांति मिलती है। माता की कृपा प्राप्त होने से पर्वत के समान दीखने वाले सङ्कट राई के समान हलके हो जाते हैं और अन्धकार में भी आशा की किरणें प्रकाशवान् होती हैं। गायत्री को सर्व शक्तिमान्, सर्व सिद्धि-दायिनी और सर्व कष्ट विनाशिनी कहा गया है।

अथ गायत्री महात्म्य

गायत्री की महिमा को वेद, शास्त्र, पुराण सभी वर्णन करते हैं। अथर्व वेद में गायत्री की स्तुति की गई है, जिसमें इसे आयु, प्राण, शक्ति, पशु, कीर्ति, धन और ब्रह्मतेज प्रदान करने वाली कहा है।

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्॥

(अथर्ववेद-१९-७१-१)

अथर्ववेद में स्वयं वेद भगवान ने कहा है—

मेरे द्वारा स्तुति की गई, द्विजों को पवित्र करने वाली वेदमाता गायत्री आयु, प्राण, शक्ति, पशु, कीर्ति, धन, ब्रह्मतेज उन्हें प्रदान करे।

यथामधु च पुष्पेभ्यो घृतं दुग्धाद्रसात्पयः ।
एवं हि सर्ववेदानां गायत्री सार मुच्यते ॥
—व्यास

जिस प्रकार पुष्पों का सारभूत मधु, दूध का घृत, रसों का सारभूत दूध है उसी प्रकार गायत्री-मन्त्र समस्त वेदों का सार है ।

तदित्यृचः समो नास्ति मन्त्रो वेदाचतुष्टये ।
सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च दानानि च तपांसि च ।
समानि कलया प्राहुर्मुनयो नतदित्यृचः ॥
—विश्वामित्रः

गायत्री मन्त्र के समान मन्त्र चारों वेदों में नहीं है । सम्पूर्ण वेद, यज्ञ, दान, तप, गायत्री मन्त्र की एक कला के समान भी नहीं हैं ऐसा मुनि लोग कहते हैं ।

गायत्री चन्दसां मातेति ॥ २ ॥

—महानारायणोपनिषद् । १५ । १

गायत्री वेदों की माता अर्थात् आदि कारण है ।

त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादम्पादमदूदुहत् ।
तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठो प्रजायति ॥
—मनु० अ० २।७७

परमेष्ठी प्रजापति ब्रह्माजी ने तीन ऋचा वाली गायत्री के तीनों चरणों को तीन वेदों से सारभूत निकाला ।

गायत्र्यास्तु परन्नास्ति शोधनं पापकर्मणाम् ।
महाव्याहृति संयुक्ता प्रणवेन च संजपेत् ॥
—सम्वर्त स्मृ० श्लो० २१८

पाप को नाश करने में समर्थ गायत्री के समान अन्य कोई मन्त्र नहीं है, अतः प्रणव तथा महाव्याहृतियों सहित गायत्री-मन्त्र का जाप करे।

नान्नतोयं समं दानं न चाहिंसा परं तपः।
न गायत्री समं जाप्यं न व्याहृति समं हुतम्॥

सूत संहिता यज्ञ वैभव खण्ड अ० ६।३०

अन्न और जल के समान दान, अहिंसा के समान तप, गायत्री के समान जप, व्याहृति के समान अग्निहोत्र कोई भी नहीं है।

हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे।
तस्मात्तामभ्यसेन्नित्यं ब्राह्मणो हृदये शुचिः॥

गायत्री नरक रूपी समुद्र में गिरते हुए को हाथ पकड़ कर बचाने वाली है अतः द्विज नित्य ही पवित्र हृदय से गायत्री का अभ्यास करे अर्थात् जपे।

गायत्री चैव वेदाश्च तुलया समतोलयन्।
वेदा एकत्र सांगास्तु गायत्री चैकतः स्थिता॥

—योगी याज्ञवल्क्य

गायत्री और समस्त वेदों को तराजू में तोला गया। षट् अङ्गों सहित वेद एक ओर रखे गये और गायत्री को एक ओर रखा गया।

सारभूतास्तु वेदानां गुह्योपनिषदो मताः।
ताभ्यः सारस्तु गायत्री तिस्रो व्याहृतयस्तथा॥

—योगी याज्ञ०

वेदों का सार उपनिषद् हैं और उपनिषदों का गायत्री और तीनों महाव्याहृतियाँ हैं।

गायत्री वेदजननी गायत्री पापनाशिनी।
गायत्र्यास्तु परन्नास्ति दिविचेह च पावनम्॥

गायत्री वेदों की जननी है। गायत्री पापों को नाश करने वाली है। गायत्री से अन्य कोई पवित्र करने वाला मन्त्र स्वर्ग और पृथ्वी पर नहीं है।

तद्यथाग्निर्देवानां, ब्राह्मणो मनुष्याणां।
बसन्तऋतुनामवं गायत्री छन्दसाम्॥

(गोपथ ब्राह्मण)

जिस प्रकार देवताओं में अग्नि, मनुष्यों में ब्राह्मण, ऋतुओं में बसन्त ऋतु श्रेष्ठ है, उसी प्रकार समस्त छन्दों में गायत्री श्रेष्ठ है।

अष्टादशसु विद्यासु मीमांसाति गरीयसा।
ततोऽपि तर्क शास्त्राणि पुराणां तेभ्य एव च॥
ततोऽपि धर्मशास्त्राणि तेभ्यो गुर्वी श्रुतिः द्विज।
ततोऽप्युपनिषच्छ्रेष्ठा गायत्री च ततोऽधिका॥
दुर्लभ सर्वमन्त्रेषु गायत्री प्रणवान्विता।

—बृह० सं० भा०

अठारह विद्याओं में मीमांसा अत्यन्त श्रेष्ठ है। मीमांसा से तर्कशास्त्र श्रेष्ठ है और तर्कशास्त्र से पुराण श्रेष्ठ हैं।

पुराणों में भी धर्मशास्त्र श्रेष्ठ हैं, हे द्विज! धर्मशास्त्रों से वेद श्रेष्ठ हैं और वेदों में उपनिषद् श्रेष्ठ हैं और उपनिषदों से गायत्री-मन्त्र अत्यधिक श्रेष्ठ है।

प्रणव युक्त यह गायत्री समस्त वेदों में दुर्लभ है।

नास्ति गङ्गा समं तीर्थं न देवाः केशवात्परः।
गायत्र्यास्तु परं जप्यं न भूतं न भविष्यति ॥

—वृ० यो० यज्ञ० अ० १०।७६

गङ्गाजी के समान कोई तीर्थ नहीं है, केशव से श्रेष्ठ कोई देव नहीं है। गायत्री-मन्त्र के जप से श्रेष्ठ कोई जप न आज तक हुआ और न होगा।

सर्वेषां जप सूक्तानामृचाश्च यजुषां तथा।
साम्नां चैकाक्षरादीनां गायत्री परमो जपः ॥

—वृ० पाराशर० स्मृति अ० ४।४

समस्त जप सूक्तों में, ऋग्यजु सामवेदों में तथा एकाक्षरादि मन्त्रों में गायत्री-मन्त्र का जप परम श्रेष्ठ है।

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामाः परन्तपाः।
सावित्र्यास्तु परन्नास्ति पावनं परमं स्मृतम् ॥

—मनु० स्मृति० अ० २।८३

एकाक्षर अर्थात् 'ओ३म्' परब्रह्म है। प्राणायाम परम तप है और गायत्री-मन्त्र से बढ़कर पवित्र करने वाला कोई भी मन्त्र नहीं है।

गायत्र्या परमं नास्ति दिवि चेह न पावनम्।
हस्तत्राणप्रदादेवी पततां नरकार्णवे ॥

—शङ्ख स्मृति० अ० १२।२५

नरक रूपी समुद्र में गिरते हुए को हाथ पकड़ कर बचाने वाली गायत्री के समान पवित्र करने वाली वस्तु या मन्त्र पृथ्वी पर तथा स्वर्ग में भी नहीं है।

गायत्री चैव वेदाश्च ब्रह्मणा तोलिता पुरा ।
वेदेभ्यश्च चतुर्भ्यो गायत्र्यतिगरीयसी ॥

—बृ० पाराशर स्मृति अ० ५।१६

प्राचीनकाल में ब्रह्माजी ने गायत्री को वेदों से तोला। परन्तु चारों वेदों से गायत्री का पल्ला भारी रहा।

सोमादित्यान्वयः सर्वे राघवाः कुरवस्तथा ।
पठन्ति शुचयो नित्यं सावित्रीं परमां गतिम् ॥

—महाभारत अनु० पर्व० अ० १५।७८

हे युधिष्ठिर! सम्पूर्ण चन्द्रवंशी, सूर्यवंशी, रघुवंशी तथा कुरुवंशी नित्य ही पवित्र होकर परमगतिदायक गायत्री-मन्त्र का जप करते हैं।

बहुना किमिहोक्तेन यथावत् साधु साधिता ।
द्विजन्मानामियं विद्या सिद्धा कामदुधास्मृता ॥

यहाँ पर अधिक कहने से क्या लाभ? अच्छी प्रकार सिद्धि की गई यह गायत्री विद्या द्विज जाति को कामधेनु कहा गया है।

सर्व वेदोधृतः सारो मन्त्रोऽयं समुदाहृतः ।
ब्रह्मादेव्यादि गायत्री परमात्मा समीरितः ॥

यह गायत्री-मन्त्र समस्त वेदों का सार कहा गया है। गायत्री ही ब्रह्मा आदि देवता है। गायत्री ही परमात्मा कही गई है।

या नित्या ब्रह्मगायत्री सैवगङ्गा न संशयः ।
सर्व तीर्थमयी गंगा तेन गंगा प्रकीर्तिता ॥

—गायत्री तन्त्र

गङ्गा सर्व तीर्थमय होने से 'गङ्गा' कहलाती है। वह गङ्गा ब्रह्म गायत्री का ही रूप है।

सर्वशास्त्र मयीगीता गायत्री सैव निश्चिता।
गयातीर्थं न गोलोकं गायत्री रूप मद्भुतम् ॥

—गायत्री तन्त्र

गीता में सब शास्त्र भरे हुए हैं। वह गीता निश्चय ही गायत्री रूप है। गया तीर्थ और गौलोक यह भी गायत्री के ही रूप हैं।

अशुचिर्वा शुचिर्वापि गच्छन् तिष्ठन् यथा तथा।
गायत्रीः प्रजपेद्धीमान् जपात् पापान्निवर्तते ॥

— गायत्री तन्त्र

अपवित्र हो अथवा पवित्र हो, चलता हो अथवा बैठा हो अथवा जिस भी स्थिति में हो, बुद्धिमान मनुष्य गायत्री का जप करता रहे। इस जप के द्वारा पापों से छुटकारा होता है।

मननात् पापतस्त्राति मननात् स्वर्ग मश्नुते।
मननात् मोक्ष माप्नोति चतुर्वर्ग मयोभवेत् ॥

—गायत्री तन्त्र

गायत्री का मनन करने से पाप छूटते हैं, स्वर्ग प्राप्त होता है और मुक्ति मिलती है तथा चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) सिद्ध होते हैं।

गायत्री तु परित्यज्य अन्य मन्त्रामुपासते।
सिद्धान्नं च परित्यज्य भिक्षामटिति दुर्मति ॥

जो गायत्री को छोड़कर दूसरे मन्त्रों की उपासना करता

है, वह दुर्बुद्धि मनुष्य पकाये हुए अन्न को छोड़कर भिक्षा के लिए घूमने वाले पुरुष के समान है ॥ ४३ ॥

नित्यनैमित्तिके काम्ये तीये तप वर्धने ।
गायत्र्यास्तु परं नास्ति इहलोके परत्र च ॥ २ ॥

नित्य, नैमित्तिक, काम्य की सफलता तथा तप की वृद्धि के लिए इस लोक तथा परलोक में गायत्री से बढ़कर कोई नहीं है ।

सावित्री जापतो नित्यः स्वर्ग माप्नोति मानव ।
तस्मात् सर्व प्रयत्नेन स्नानः प्रयतमानसः ।
गायत्रीं तु जपेद्भक्त्या सर्व पाप प्रणाशिनीम् ॥

—शंख स्मृति

गायत्री-मन्त्र जानने वाला मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त करता है । इसी कारण समस्त प्रयत्नों से स्नान कर स्थिर चित्त हो समस्त पाप नाश करने वाली गायत्री का जप करे ।

गायत्री जाप के लाभ

गायत्री जाप करने से कितना महत्वपूर्ण लाभ होता है, इसका कुछ आभास निम्नलिखित थोड़े से प्रमाणों से जाना जा सकता है । ब्राह्मण के लिए तो इसे विशेष रूप से आवश्यक कहा है, क्योंकि ब्राह्मणत्व का सम्पूर्ण आधार सद्बुद्धि पर निर्भर है और वह सद्बुद्धि गायत्री के बताये हुए मार्ग पर चलने से मिलती है ।

सर्वेषां वेदानां गुह्योपनिषत्सार भूतां ततो गायत्री जपेत् ।

(छांदोग्य परिशिष्टम्)

गायत्री समस्त वेदों का और गुह्य उपनिपदों का सार है। इसलिए गायत्री मन्त्र का नित्य जप करे।

सर्व वेद सारभूता गायत्र्यास्तु समर्चना।
ब्रह्मदयोऽपि सन्ध्यायां तां ध्यायन्ति जपन्ति च॥

—दे० भा० स्कं० १६ अ० १६।१५

गायत्री-मन्त्र का आराधन समस्त वेदों का सारभूत है। ब्रह्मादि देवता भी सन्ध्याकाल में गायत्री का ध्यान करते हैं और जप करते हैं।

गायत्री मात्र निष्णातो द्विजो मोक्षमवाप्नुयात्॥

—दे० भा० स्कं० १२ अ० ८।६०

गायत्री-मात्र की उपासना करने वाला भी ब्राह्मण मोक्ष को प्राप्त होता है।

एहिकामुष्मिकं सर्वं गायत्री जपतो भवेत्।

—अग्निपुराण

गायत्री जपने वाले को सांसारिक और पारलौकिक समस्त सुख प्राप्त हो जाते हैं।

योऽधीतेऽहन्यहन्येतां त्रीणिवर्षाण्यतन्द्रितः।
स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः स्वमूर्तिवान्॥

—मनुस्मृति २।८२

जो मनुष्य तीन वर्ष तक प्रतिदिन गायत्री-मन्त्र जपता है, वह अवश्य ब्रह्म को प्राप्त करता है और वायु के समान स्वेच्छाचारी होता है।

कुर्यादन्यन्न वा कुर्यात् इति प्राह मनुः स्वयं।
अक्षय मोक्षमवाप्नोति, गायत्री मात्र जापनात्॥

—शौनकः

इस प्रकार मनुजी ने स्वयं कहा है कि अन्य देवताओं की उपासना करे या न करे, केवल गायत्री के जप से द्विज अक्षय मोक्ष को प्राप्त होता है।

बहुना किमिहाक्तेन यथावत् साधु साधिता ।
द्विजन्मानामियं विद्या सिद्धिः कामदुधास्मृता ॥

(शारदायां)

यहाँ पर अधिक कहने से क्या ? अच्छी प्रकार उपासना की गई गायत्री द्विजों के मनोरथ पूर्ण करने वाली कही गई है।

एतया ज्ञातया सर्वं वाङ्मयं विदितं भवेत् ॥
उपासितं भवेत्तेन विश्वं भुवन सप्तकम् ॥

—योगी याज्ञ०

गायत्री के जान लेने से समस्त विद्याओं का वेत्ता हो जाता है और उसने केवल गायत्री की ही उपासना नहीं की अपितु सात लोकों की भी उपासना करली ।

ओंकार पूर्विकस्तिस्त्रो गायत्रीं यश्च विंदति ।
चरितब्रह्मचर्यश्च स वै श्रोत्रिय उच्यते ॥

—योगी याज्ञ०

जो ब्रह्मचर्य पूर्वकर ओंकार, महाव्याहृतियों सहित गायत्री मन्त्र का जप करता है वह श्रोत्रिय है।

एतदक्षरमेतां जपन व्याहृति पूर्वकाम् ।
सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेद पुण्येन मुच्यते ॥

—मनुस्मृति अ० २।७८

जो ब्राह्मण दोनों सन्ध्याओं में प्रणवव्याहृति पूर्वक गायत्री मन्त्र का जप करता है, वह वेदों के पढ़ने का फल प्राप्त करता है।

गायत्रीं जपते यस्तु द्वौ कालौ ब्राह्मणः सदा ।
असत्प्रतिगृहीतोपि स याति परमां गतिम् ।।

—अग्निपुराण

जो ब्राह्मण सदा सायङ्काल और प्रातःकाल गायत्री का जप करता है वह ब्राह्मण अयोग्य प्रतिगृह लेने पर भी परम गति को प्राप्त होता है।

सकृद्यादि जपेद्विद्वान् गायत्रीं परमात्तरीम ।
तत्त्वणात् संभवेत्सिद्धिर्ब्रह्म सायुज्यमाप्नुयात ।।

—गायत्री पुरश्चरण–२८

श्रेष्ठ अक्षरों वाली गायत्री को विद्वान यदि एक बार भी जपे तो तत्त्वण सिद्धि होती है और वह ब्रह्म की सायुज्यता को प्राप्त करता है।

जप्येनैव तु संसिद्धयेत् ब्राह्मणो मात्र संशयः ।
कुर्यादन्यन्नवा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ।।

—मनु० ६७

ब्राह्मण अन्य कुछ करे या न करे, परन्तु वह केवल गायत्री जप से ही सिद्धि पा सकता है।

कुर्यादन्यन्नवा कुर्यादनुष्ठानादिकं तथा ।
गायत्री मात्र निष्ठस्तु कृत्यकृत्यो भवेद्विजः ।।

—गायत्री तन्त्र ।८

अन्य अनुष्ठानादिक करे या न करे, गायत्री मात्र की उपासना करने वाला द्विज कृतकृत्य हो जाता है।

सन्ध्यासु चार्घ्य दानं च गायत्री जपमेव च ।
सहस्त्रत्रितयं कुर्वन्सुरै पूज्यो भवेन्मुने ।।

—गायत्री तन्त्र श्लोक ६

हे मुने सन्ध्याकाल में सूर्य को अर्घ्यदान और तीन हजार नित्य गायत्री जपने मात्र से पुरुष देवताओं में भी पूजनीय हो जाता है।

यदक्षरैक संसिद्धेः स्पर्धते ब्राह्मणोत्तमः।
हरिशङ्कर कंजोत्थ सूर्योचन्द्र हुताशनैः॥

—गायत्री पुर० ११

गायत्री के एक अक्षर की सिद्धिमात्र से हरि, शङ्कर, ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि देवता भी साधक से स्पर्धा करने लगते हैं।

दस सहस्रमभ्यस्ता गायत्री शोधिनी परा।

लघु अत्रि संहिता

दस हजार जपी हुई गायत्री परम शोधन करने वाली है।

सर्वोपाञ्चैव पापानां संकरे समुपस्थिते।
दशसाहस्रिकाभ्यासो गायत्र्याः शोधनंपरम्॥

समस्त पापों को तथा सङ्कटों को दस हजार गायत्री का जप नाश करके परम शुद्ध करने वाला है।

गायत्री मेव यो ज्ञात्वा सम्यगश्चोच्यते पुनः॥
इहामुत्र च युज्योऽसौ ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्॥

—व्यास

जो गायत्री को भली प्रकार जानकर उसका उच्चारण करता है, वह इस लोक और परलोक में ब्रह्म को सायुज्यता को प्राप्त करता है।

मोक्षय च मुमुक्षूणां श्री कामानांश्रियेसदा ।
विजयाम युयुत्सूनां व्याधि नानामरोगकृत् ॥ १ ॥

—गायत्री पञ्चाङ्ग १

गायत्री-साधना से मुमुक्षुओं को मोक्ष मिलेगा, श्री कामियों को श्री का, युद्धेच्छुओं को विजय तथा व्याधिग्रस्तों को निरोगता प्राप्त होगी ।

वश्याय वश्य कामानां विद्यायै वेदकामिनाम् ।
द्रविणाय दरिद्राणां पापनां पाप शान्तये ॥ २८ ॥

वशीकरण करने वालों को वशीकरण होंगे, वेदार्थियों को विद्या, दरिद्रियों को धन, पापियों के पाप की शान्ति हो जाती है ।

वादिनां वाद विजये कवीनां कविता प्रदम् ।
अन्नाय क्षुधितानां च स्वर्गाय नाक मिच्छताम् ॥ ३९

शास्त्रार्थियों को शास्त्र विजय, कवियों को काव्य लाभ, भूखों को अन्न तथा स्वर्गेच्छुओं को स्वर्ग ।

पशुभ्यः पशुकामानां पुत्रभ्य पुत्रकामिणाम् ।
क्लेशिनां शोक शान्त्यर्थं नृणां शत्रुभयाय च ॥४०॥

पशु इच्छुओं को पशु, पुत्रार्थियों को पुत्र, क्लेशियों को शोक-शान्ति, शत्रु-भय वालों को अभय मिलता है ।

अष्टादशसु विद्यासु मीमांसाऽस्ति गरीयसी ।
ततोऽपि तर्क शास्त्राणि पुराणां तेभ्य एव च ॥ ५

अठारह विद्याओं में मीमांसा श्रेष्ठ है उससे श्रेष्ठ तर्क-शास्त्र तथा पुराण उससे भी श्रेष्ठ कहे हैं ।

ततोऽपि धर्म शास्त्राणि तेभ्यो गुर्वी श्रुतिनृप ।
ततोह्यु पनिषत् श्रेष्ठा गायत्री च ततोधिका ।। ६ ।।

धर्मशास्त्र उनसे भी श्रेष्ठ है तथा हे राजन् ! उनसे भी श्रेष्ठ श्रुतियाँ कही गई हैं। उन श्रुतियों से भी श्रेष्ठ उपनिषद् हैं और उपनिषदों से भी गरीयसी गायत्री कही गई है।

तां देवी मुपतिष्ठन्ते ब्राह्मण ये जितेन्द्रियाः ।
सूर्य्य लोकं ते प्रयान्ति क्रमान्मुक्तिञ्च पार्थिवः ।। १ ।।

—पद्म पुराणम् ।

जो इन्द्रियजित ब्राह्मण इस गायत्री की उपासना करते हैं। हे पार्थिव ! अवश्य ही सूर्य-लोक को प्राप्त होते हैं तथा क्रमशः मुक्ति को भी प्राप्त करते हैं।

सावित्री सार मात्रोऽपि वरं प्रियः सुमन्त्रितः ।। २ ।।

चारों वेदों का सारभूत सावित्री को विधि सहित जानने वाला ब्राह्मण श्रेष्ठ है।

गायत्रीं जपते यस्तु त्रिकालं ब्राह्मणः सदा ।
अर्थी प्रतिग्रही वापि सगच्छेत्परमांगतिम् ।। ३ ।।

जो ब्राह्मण गायत्री को त्रिकाल में जपता है वह माँगने वाला या दान देने वाला (अग्रह्य दान को ग्रहण करने वाला) ही क्यों न हो वह भी परम गति को प्राप्त हो जाता है।

गायत्रीं जपते यस्तु कल्पमुत्थापयो द्विजः ।
सलिम्पति न पापेन पद्म पत्र मिवाम्भसा ।।

जो ब्राह्मण उठकर गायत्री का जप करता है वह जल में कमल पत्र की भाँति पाप-ग्रस्त नहीं होता।

अर्थोऽयं ब्रह्म सूत्राणां भारताथ विनिर्णयः ।
गायत्री भाष्य रूपोऽसौ वेदार्थ परिवृंहिताः ॥

—मत्स पुराण

गायत्री का अर्थ ब्रह्म सूत्र है। गायत्री का निर्णय महाभारत है, गायत्री का अर्थ वेदों में हुआ है।

जपन हि पावनी देवीं गायत्रीं वेदमातरम् ।
तपसः भावितो देव्या ब्राह्मणः पूतः किल्विषः ॥

—कूर्म पुराण

ब्राह्मण वेद-जननी पवित्र गायत्री को जपता हुआ अनेक पापों से मुक्त हो जाता है।

गायत्री ध्यान पूतस्य कलां नहिति षोडशीम् ।
एवं किल्विष युक्तस्य विनिर्दहति पातकम् ॥

—कूर्म पुराण

गायत्री के ध्यान से पवित्र हुई सोलह कलाओं का कोई मूल्यांकन नहीं हो सकता। इस प्रकार पाप-युक्त के पापों को शीघ्र ही दहन कर देती है।

उभे सन्ध्ये ह्युपासीत तस्मान्नित्यं द्विजोत्तम ।
छन्दस्तस्यास्तु गायत्रं गायत्री त्युच्यते ततः ॥

—मत्स्य पुराण

द्विज श्रेष्ठ ! गायत्री का छन्दानुसार दोनों सन्ध्याकाल में ध्यान करना चाहिए।

गान करने वाले का यह त्राण करती है इसीलिए इसे गायत्री कहा है।

गायन्तं त्रायते यस्मात् गायत्री तु ततः स्मृता ।
मरीचे ! कारणात्तस्मात् गायत्री कीर्तिता मया ॥

—लंकेश तन्त्र

हे मारीच ! गान करने वाले का त्राण करती है इसी हेतु मैंने इसे गायत्री कहा है ।

ततः बुद्धिमताश्रेष्ठ नित्यं सर्वेषुकर्मसु ।
सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रो शिरसासह ॥
जपन्ति ये सदा तेषां न भयं विद्यते क्वचित् ।
दशकृत्वः प्रजसा सा रात्र्यह्नायि कृतं लघु ॥

—नारद पुराण

बुद्धिमानों में श्रेष्ठ, अपने नित्य नियमित सभी कार्यों को करते हुए व्याहृतियों सहित तथा प्रणव के उच्चारण सहित गायत्री को जो पुरुष सदा जपते हैं उनको कहीं भी भय नहीं है । दस बार जपने से रात्रि तथा दिन के लघु दोषों का निवारण होता है ।

काम कामी लभेत् कामान् गति कामश्च सद्गतिम् ।
अकामः सम वाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥

कामाभिलाषी को काम की प्राप्ति होती है और जो मोक्ष की आकांक्षा करते हैं, उन्हें सद्गति प्राप्त होती है । जो पुरुष निष्काम भाव से गायत्री की उपासना करते हैं, वे विष्णु के परम पद को ही प्राप्त हो जाते हैं ।

त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादं पादमदूदुहत् ।
तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः ॥

परमेष्ठी पितामह ब्रह्माजी ने एक-एक वेद से सावित्री के एक पद की रचना की, इस प्रकार तीन वेदों से तीन पदों का सृजन किया।

एतदक्षर मेकाञ्च जपन् व्याहृति पूर्विकाम् ।
सन्धायोर्वदविद्विप्रो वेद पुण्येन युज्यते ॥

व्याहृति पूर्वक इस गायत्री को दोनों सन्ध्याकाल में जपता हुआ ब्राह्मण वेद पढ़ने के पुण्य को प्राप्त होता है।

इयमेव स व्याहृतिका ब्रह्म पद प्राप्ते द्वाररूपं ।
तस्मात्प्रत्यहं ब्राह्मणो व्याहृतिपूर्विकेयं अध्ययनीया ॥

यह गायत्री ब्रह्मपद की प्राप्ति का द्वार है अतः ब्राह्मण को व्याहृतिपूर्वक प्रतिदिन इसका अध्ययन (मनन) करना चाहिए।

योऽधीतेऽहन्य हन्ये तान्त्रीणिवर्षाण्यतन्द्रितः
स ब्रह्म परमभ्येति वायु भूतः ख मूर्तिमान् ॥

जो इस गायत्री को तन्द्रा रहित (आलस्य को छोड़कर) तीन वर्ष तक नियमित रूप से जपता है वह ब्रह्म को निस्सन्देह उपलब्ध हो जाता है।

तत् पापं प्रणुदत्याशु नात्र कार्या विचारणा ।
शतं जप्त्वा तु सा देवी पापौघ शमनी स्मृता ॥

इसमें सन्देह नहीं करना चाहिए कि उन पापों का शीघ्र ही निवारण हो जाता है। सौ बार जप करने पर यह गायत्री पापों के समूह का विनाश कर देती है।

विधिना नियतं ध्यायेत प्राप्नोति परमं पदम् ।
यथा कथञ्चिज्जपिता गायत्री पाप हारिणी ।
सर्व्व काम प्रदा प्रोक्ता पृथक्कर्म्मसु निष्ठिता ।।

विधि पूर्वक नियत ध्यान करने पर परम गति की प्राप्ति होती है जिस किसी भी प्रकार जपी हुई गायत्री पापों का विनाश करती है, भिन्न-भिन्न कार्यों के उद्देश्य से किया हुआ जप भी अभीष्टों की सिद्धि कर देता है ।

गायत्री से पाप और दुःखों से निवृत्ति

गायत्री साधना से सब पापों की और सब दुःखों की निवृत्ति के, अनेक प्रमाण मिलते हैं जिनमें से कुछ नीचे दिए जाते हैं—

ब्रह्म हत्यादि पापानि गुरूपि च लघूनि च ।
नाशयन्त्यचिरेणैव गायत्री जापतो द्विजः ।।

—पद्म पुराण

गायत्री जपने वाले के ब्रह्महत्यादि सभी पाप, छोटे हों चाहे बड़े हों शीघ्र ही समस्त नष्ट हो जाते हैं ।

गायत्री जपकृद्भक्त्या सर्व पापैः प्रमुच्यते ।

—पाराशर

भक्तिपूर्वक गायत्री जपने वाला समस्त पापों से छूट जाता है ।

सर्व पापानि नश्यन्ति गायत्री जपतो नृम् ।

—भविष्य पुराण

गायत्री जपने वाला समस्त पापों से छूट जाता है ।

गायत्र्यष्ट सहस्रं तु जापं कृत्वा स्थिते रवौ।
मुच्यते सर्व पापेभ्यो यदि न ब्रह्मदा भवेत् ॥

—अत्रि स्मृति ३-१५

सूर्य के समक्ष खड़े होकर यदि गायत्री का आठ हज़ार जप करे तो वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। यदि ब्रह्म अर्थात् ज्ञानी पुरुषों की निन्दा करने वाला न हो, तो।

सहस्र कृत्वस्त्वभ्यस्य वहिरेतत्रिकं द्विजः।
महतोप्येनसो मासात्त्वचे वाहिर्विमुच्यते ॥

—मनुस्मृति अ० २।७६

एकान्त स्थान में प्रणव, महाव्याहृति पूर्वक गायत्री का एक हज़ार जप करने वाला द्विज बड़े से बड़े पाप से ऐसे छूट जाता है जैसे केंचुली से सर्प छूट जाता है।

जना यैस्तरति तानि तीर्थानि।

जिनसे पुरुषों के पाप दूर हो जाते हैं और वे इस संसार से तर जाते हैं उनको तीर्थ कहते हैं। गायत्री–इन तीन अक्षरों में वही तीर्थ विद्यमान हैं—ग=गङ्गा। य=यमुना। त्र = त्रिवेणी समझनी चाहिये।

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वाङ्गना गमः।
महानि पातकान्यानि, स्मरणान्नशमाप्नुयात् ॥

—गायत्री पु० २२

गायत्री के स्मरण मात्र से ब्रह्म-हत्या, सुरापान, चोरी, गुरु-स्त्री गमन आदि अन्य महापातक भी नष्ट हो जाते हैं।

ए एतां वेद गायत्रीं पुन्यांसवगुणान्विताम् ।
तत्वेन भरतश्रेष्ठ ! स लोके न प्राणश्यति ॥

—महा० भा० भीष्म० प० अ० १४।१६

हे युधिष्ठिर ! जो मनुष्य तत्वपूर्वक सर्वगुण सम्पन्न पुण्य गायत्री को जान लेता है, वह संसार में दुखित नहीं होता है।

गायत्री निरतं हव्य कव्येषु विनियोजयेत् ।
तस्मिन्न तिष्ठते पापमविन्दु रिव पुष्करे ॥

गायत्री जपने वालों को ही पितृकार्य तथा देवकार्य में बुलाना चाहिए, क्योंकि गायत्री उपासक में पाप उस प्रकार नहीं रहता जैसे कमल के पत्ते पर पानी की बूँद नहीं ठहरती।

गायत्रीमपठेद्विप्रो न स पापेनलिप्यते ।

—लघु अत्रि संहिता

जो द्विज गायत्री को जपता है वह पाप से युक्त नहीं होता।

चरक संहिता में गायत्री-साधना के साथ आँवला सेवन करने से दीर्घ जीवन का वर्णन किया है।

सावित्रीं मनसा ध्यायन् ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।
सम्वत्सरान्तां पौषों वा माघीं वा फाल्गुनीं तिथिम् ॥

—चरक चिकित्सा० आंव० रसा० श्लो० ६

मन से गायत्री का ब्रह्मचर्य पूर्वक एक वर्ष तक ध्यान करता हुआ वर्ष के उपरान्त में पौष मास अथवा माघ मास की अथवा फाल्गुन मास की किसी शुभ तिथि में तीन दिन क्रमशः उपासना कर उपरान्त आँवले के वृक्ष पर चढ़, जितने आँवले खायगा उतने ही वर्ष मनुष्य जीवित रहेगा।

यदिहवा अप्येवं विद्वहित्र प्रतिगृहणानि न हैव तद् गायत्र्या एकं च न पदं प्रति । स य इमाणं स्त्रींल्लोकान् पूर्णान् प्रतिगृह्णीयात सो स्वा एतत्प्रथमं पदमवाप्नुयादश्च यावतीयं त्रयो विद्या यस्तावत्प्रति गृह्णीयात् सोऽस्या एतत द्वितीय पदमवाप्नुयादथ यावदिद प्राणि यस्तावत् प्रतिगृह्णीयात् सोऽस्याः एतत्तृतीयं पदमवाप्नुयात् अथास्याः एतदेव तुरीयं दर्शनं पदं परोरजाय एप तपति-नैव केनचनाप्यं कुत उ एतावत्प्रतिगृह्णीयात ।

—बृ० ५ । १४ । ५-६

गायत्री को सर्वात्मक भाव से जपने वाला मनुष्य यदि बहुत ही प्रतिगृह लेता है तो भी उस प्रतिगृह का दोप गायत्री के प्रथम पाद उच्चारण के समान भी नहीं होता है । यदि समस्त तीनों लोकों को प्रतिगृह में लेवे तो उसका दोप प्रथम पाद उच्चारण से नष्ट हो जाता है । यदि तीनों वेदों का प्रतिगृह लेवे तो उसका दोष द्वितीय पाद में नष्ट हो जाता है । यदि संसार के समस्त प्राणियों को भी प्रतिगृह से लेवे तो उसका दोप तृतीय पाद में नाश हो जाता है, अतः गायत्री जपने वाले को कोई हानि नहीं पहुँचती । गायत्री का चौथा पद चौथा परब्रह्म है, इसके सदृश दुनियाँ में कुछ भी नहीं है ।

यदान्हात्कुरुते पापं तदन्हात्प्रतिमुच्यते ।
यद्रात्रियात्कुरुते पापं तद्रात्रियात्प्रतिमुच्यते ॥

—तै० आ० प्र० १० अ० ३४

हे गायत्री ! तुम्हारे प्रभाव से दिन में किये पाप दिन में

ही नष्ट हो जाते हैं और रात्रि में किये पाप रात्रि में. ही नष्ट हो जाते हैं।

गायत्रीं तु परित्यज्य येऽन्य मन्त्रमुपासते।
मुण्डकरावै ते ज्ञेया इतिवेदविदोविदुः॥

जो गायत्री-मन्त्र को त्याग अन्य मन्त्र की उपासना करते हैं वे नास्तिक हैं ऐसा वेदवेत्ताओं ने कहा है।

गायत्रीं चिन्तयेद्यस्तु हृदपद्मे समुपस्थिताम्।
धर्माधर्म विनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम्॥

जो मनुष्य हृदय कमल बैठी गायत्री का चिन्तन करता है,वह धर्म-अधर्म के द्वन्द से छूटकर परम गति को प्राप्त होता है।

सहस्र जप्त्वा सा देवी ह्युपपातक नाशिनी।
लक्ष्य जाप्ये तथा तच्च महापातक नाशिनी॥
कोटि जाप्येन राजेन्द्र! यदिच्छतितदाप्नुयात्॥

एक सहस्र जप करने से गायत्री उपपातकों का विनाश करती है। एक लाख जप करने से महापातकों का विनाश होता है। एक करोड़ जप करने से अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है।

गायत्री उपेक्षा की भर्त्सना

गायत्री को जानने वाले अथवा जानने पर भी उसकी उपासना न करने वाले द्विजों की शास्त्रकारों ने कड़ी भर्त्सना की है और उन्हें अधोगामी बताया है। इस निन्दा में इस बात की चेतावनी दी है कि जो आलस्य या अश्रद्धा के कारण गायत्री साधना में ढील करते हों, उन्हें सावधान होकर इस श्रेष्ठ उपासना में प्रवृत्त होना चाहिए।

गायत्र्युपासना नित्या सर्ववेदैः समीरिता ।
यस्या विनात्वधः पातो ब्राह्मणस्यास्ति सर्वथा ॥

—देवी भागवत स्कं० १२। अ० ८।६

गायत्री की उपासना नित्य ही समस्त वेदों में वर्णित है। जिस गायत्री के बिना सर्व प्रकार से ब्राह्मण की अधोगति होती है।

गायत्रीं यः परित्यज्य चान्यमन्त्रमुपासते ।
न साफल्यमवाप्नोति कल्पकोटिः शतैरपि ॥

—बृ० सन्ध्या भाष्ये

जो गायत्री मन्त्र को छोड़कर अन्य मन्त्र की उपासना करता है, वह करोड़ों जन्मों में भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकता है।

गायत्री रहितो विप्र शूद्रादपि शुचिर्भवेत् ।
गायत्री ब्रह्म तत्वज्ञः सम्पूज्यस्तु द्विजोत्तमः ॥

गायत्री से रहित ब्राह्मण शूद्र से भी अपवित्र है। गायत्री रूपी ब्रह्म तत्व को जानने वाला सर्वत्र पूज्य है।

उपलभ्य च सावित्रीं नोपतिष्ठेत यौद्विजः ।
काले त्रिकाल सप्ताहात् स पतन्नात्र संशयः ॥

गायत्री-मन्त्र को जानकर जो द्विज इसका आचरण नहीं करता अर्थात् इसे त्रिकाल में नहीं जपता उसका निश्चय पतन हो सकता है।

गायत्री तपोभूमि—एक महान् धर्म संस्थान

गायत्री तपोभूमि, मथुरा शहर से १ मील आगे—वृन्दावन रोड पर परम शांतिमय वातावरण में बना हुआ एक सुन्दर आश्रम है, जहाँ गायत्री माता का भव्य मन्दिर, भारतवर्ष के लगभग २४०० तीर्थों के जल-रज का एक तीर्थ सम्मेलन-गृह, १२५ करोड़ हस्तलिखित गायत्री-मन्त्रों का संग्रह-कक्ष, निवास के लिए २३ कमरे, एक प्रवचन हाल, तीन बड़ी यज्ञशालाएें, प्रधान यज्ञशाला में कभी न बुझने दी जाने वाली अखण्ड-अग्नि की स्थापना, नित्य गायत्री-मन्त्र की एक हजार आहुतियों का हवन, तुलसी का उपवन, हजारों धार्मिक पुस्तकों का विशाल पुस्तकालय, लगभग ६० पत्र-पत्रिकाऐं आने वाला वाचनालय, बिना मूल्य चिकित्सा के लिए कल्प चिकित्सालय यह सब देखकर कोई भी दर्शक संस्था की गति-विधियों का सहज ही अनुमान लगा सकता है। गायत्री तपोभूमि में सदा अनेक धार्मिक भावना वाले व्यक्ति शिक्षा, तीर्थ-यात्रा, साधना, तपश्चर्या एवं विभिन्न कठिनाइयों के सम्बन्ध में आचार्यजी से परामर्श करने आते हैं। आगन्तुकों को तपोभूमि में निवास, भोजन आदि की समुचित सुविधा प्राप्त होती है।

गायत्री तपोभूमि द्वारा देश भर में गायत्री महायज्ञों एवं सांस्कृतिक सम्मेलनों की शृंखला भी चलाई जा रही है। सन् '५६ और '५७ में १००० बड़े गायत्री महायज्ञ तथा सांस्कृतिक सम्मेलन करने का निश्चय किया था। सो उस संकल्प से भारतवर्ष के कोने-कोने से हजारों यज्ञ हुए जिनमें से १०१ कुण्डों वाले, २५ कुण्डों वाले, ९ कुण्डों वाले विशाल यज्ञों की संख्या १००० थी। इनमें से कुछ यज्ञों में तो ५० हजार तक जनता एकत्रित हुई। ये यज्ञ अ० भा० गायत्री-परिवार की देश में फैली हुई १२०० शाखाओं द्वारा सम्पन्न हुये थे। इन यज्ञों और सम्मेलनों का उद्देश्य जनता में धर्म, सदाचार, नैतिकता,

लेखक—
श्रीराम शर्मा आचार्य
गायत्री तपोभूमि, मथुरा।

ॐ भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि
धियो योनः प्रचोदयात्।

प्रकाशक—
"अखण्ड ज्योति" प्रेस, मथुरा।

प्रथम बार] सन् १९५८ [मूल्य ।)

गायत्री द्वारा सङ्कट-निवारण

गायत्री बड़ी चमत्कारी साधना है। इसके द्वारा मनुष्य को साधारण लौकिक और पारलौकिक लाभ तो प्राप्त होते ही हैं, और अनेक मनोकामनाओं की पूर्ति भी होती है; पर अनेक समय इसके प्रभावसे मनुष्यकी इस प्रकार रक्षा होजाती है कि उसे दैवी चमत्कार के सिवाय और कुछ नहीं कहा जा सकता। कारण यही है कि इस साधना के कारण साधक में कुछ दैवी तत्वों का भी विकास हो जाता है जो ऐसी आकस्मिक आवश्यकता अथवा सङ्कट के समय अदृश्य रूप से उसके सहायक बनते हैं। प्रायः यह भी देखा गया है कि जो व्यक्ति साधना करके अपने मन और अन्तर को शुद्ध तथा निर्मल बना लेते हैं और ईर्षा-द्वेष के भावों को त्याग कर दूसरों के प्रति कल्याण की भावना रखते हैं, उनकी रक्षा दैवीशक्तियाँ स्वयं भी करती है। इस पुस्तक में अनेक गायत्री उपासकों के जो अनुभव दिये गये हैं उनसे यह भली प्रकार प्रमाणित होता है कि जिन लोगों को गायत्री माताके आदेशानुसार आत्मशुद्धि और जगत के मङ्गल की भावना को अपना लिया है, उनकी रक्षा बड़ी-बड़ी आयात्रियों से भी सहज में हो जाती है।

श्री० मदनगणेश रामदेव पूना से लिखते हैं—मेरे गाँव से तीन कोश की दूरी पर श्री सुन्दरा देवी का स्थान है। यह हमारे प्रान्त का सुप्रसिद्ध स्थान है। मैं इसे गायत्री माता का ही रूप मानता हूँ। एक दिन मैंने दर्शन करने का निश्चय लिया। वर्षा ऋतु थी। जिस दिन प्रातः जाने का विचार निश्चित था उसके

रात में ही काफी वर्षा हुई थी, अतः हमारे साथ जाने वालों में से सभी ने, पहाड़ की चढ़ाई और फिसलन के भय से अपना निश्चय बदल लिया। मैंने उस दिन दर्शन करने का अविचल सङ्कल्प कर लिया था अतः मैं प्रातः ही जाने की सारी तैयारी करके माता के चरणों में प्रणाम कर गायत्री जपते हुए चल पड़ा। गांव के अनेकों व्यक्तियों ने वर्षा के समय जल की धारा में बह जाने तथा पहाड़ से फिसल गिरने का भय, जो कि वास्तविक ही था, मुझे दिखाया पर मैंने अपने मातृ दर्शन का निश्चय बदलना अनुचित समझा और प्रस्थान कर ही दिया। सभी खिसक गये पर मेरे साले (पत्नी के भाई) ने बड़े ही साहस और प्रेम से मेरा साथ दिया। तीन माईल चलने के उपरान्त शेष तीन माईल पहाड़ की ही चढ़ाई चढ़नी पड़ती है। पहाड़ पर चढ़ने के प्रथम एक सरिता की धारा को पार करना पड़ता है, यह धारा कभी सूखती नहीं। इस नदी में वर्षा के जल से सहसा ही वेग से बाढ़ आती है और पार होने वालों को बहा ले जाती हैं। हम दोनों ने भोजनादि सामान, वस्त्र एवं पूजा स्वाध्याय की वस्तु शिर पर रक्खीं औह नदी में उतर पड़े। नदी का लगभग अधिकाँश भाग पार कर चुके कि सहसा ही भयङ्कर वेग से नदी में बाढ़ आयी। हम दोनों माता का स्मरण करते हुए किसी भांति किनारे पर आगये। उलट कर देखा तो चार पुरुष उस भयङ्कर प्रवाह में बहते हुए जारहे थे, जिन्हें अपना प्राण देकर भी बचाने का उपाय नहीं था।

माता की कृपा से इस मृत्युधारा से हम दोनों ऊपर निकल आये। अब आगे दो पहाड़ों के मध्य से होकर जाने का पथ था। हम लोगों ने आगे चलने के लिये सोचा और पहाड़ के ऊपर दृष्टि दौड़ाई। देखा तुरन्त ही घनघोर बादलों से घिरकर पहाड़, रात से भी अधिक श्याम बन गया और मूसलाधार वर्षा होकर फिर

आकाश स्वच्छ हो गया। कुछ ही देर फिर बादलों के दल, वही घनघोर कालिमा, और पुनः प्रकाश का आगमन। यह क्रम वहाँ निरन्तर चल रहा था। देख कर एक बार चित्त काँप उठा पर माता की सहायता की याद आते ही फिर साहस से भर उठा और आगे की ओर चल दिए। वर्षा के कारण भयङ्कर आवाज के साथ पहाड़ के शिखरों से अनेकों धारा बहती चली जाती हैं। हमने ऐसी भयावह स्थिति देखने की तो कोई बात ही नहीं, कल्पना भी अपने जीवन में नहीं की थी। माता की कृपा की आशा से ही आगे बढ़ते जा रहे थे। कुछ दूर जाने के बाद देखा कि आगे मन्दिर तक जाने के लिये अत्यधिक वर्षा के कारण कोई भी रास्ता नहीं रह गया था। फिर पीछे की ओर देखा तो अब लौटने का भी उपाय नहीं था। तब हम दोनों ने भी निश्चय किया कि यदि हमें मरना ही बदा है तो माता के दर्शनों के लिए चलते हुए ही हम प्रसन्न हृदय से मौत का भी आलिङ्गन कर लेंगे पर दर्शन किये बिना हर्गिज नहीं लौटेंगे। गायत्री जप करते हुए हम रास्ते से ५० गज ऊपर चढ़ते हुए ही चलने लगे। कभी कभी ऊपर की जल सीधे हमारे शिर पर गिरती थी, उस समय हृदय में माँ की याद लिये साहस पूर्वक पत्थर पकड़ते हुए हम पार कर जाते थे। माता की कृपा से उस समय हमारे हृदयों में इतना उत्साह उमड़ा पड़ता था कि इससे चौगुने सङ्कट का भी हम लोग सामना करने में जरा भी नहीं घबराते—वरन् और भी हमारा साहस एवं उत्साह बढ़ जाता।

अब एक मील की दूरी रह गयी थी। बारिस भी क्रमशः हलकी होती जा रही थी। कुछ दूर बढ़ने पर देखा कि एक भयङ्कर पहाड़ी सर्प दौड़ता हुआ हमारी ओर ही आ रहा था। हम लोग कहाँ भागते, खड़े रहे, वह दौड़ता आया हमें कुछ भी बिना क्षति

पहुँचाये नजदीक से ही निकल गया। अब हम मन्दिर में पहुँच चुके थे। मन्दिर के पुजारी जी ने हम लोगों के इस समय पहुँचने की बात असम्भव मान कर अत्यन्त आश्चर्य किया और हम लोगों को तब आश्चर्य हुआ जब कि हमने मन्दिर पहुँच कर देखा कि सिवाय ऊपरी वस्त्र के, उसमें बन्धी पूजा सामग्री, भोजन सामान (आंटा आदि) तथा पुस्तकें, सम्पूर्ण की सम्पूर्ण सूखी ही थीं।

वर्षा पड़ जाने पर हम निर्विघ्न रूपेण घर वापस लौटे।

श्री बैजनाथ प्रसाद सौनकिया, दिगौड़ा से लिखते हैं—पूज्य आचार्य जी ने मुझे चैत्र नवरात्रि में गायत्री तपोभूमि मथुरा आने का अनुग्रह प्रसाद दिया था, पर मैं प्रारब्ध वश उत्पन्न परिस्थिति को लांघ कर वहाँ नहीं जा सका। फिर भी गायत्री माता की अज्ञात प्रेरणा से हम चौदह उपासकों ने मिलकर दिगौड़ा के जगदम्बा मन्दिर में २४००० चौबीस हजार मन्त्र जपने का संकल्प प्रत्येक ने लिया और निष्ठा सहित जप करने लगे। प्रति दिन उस मन्दिर में बैठ कर अपना–अपना जप पूरा कर सभी घर जाते।

३१ मार्च (१६५५) को जप करने के उपरान्त मैं घर आया तो दोपहर हो गया था। धूप तीखी हो रही थी। मैंने शीघ्रता के विचार से उस दिन केवल चावल पका लेने का ही निश्चय किया, रसोई घर में बैठ चूल्हा जलाया और चावल सिद्ध होने के बाद मैंने सोचा कि केवल भात कैसे खाया जायगा, अतः अन्दर से थोड़ा गुड़ ले आना चाहिये। मेरे बगल में ही लालटेन रखा हुआ था। मैंने लैम्प जलाया और उसे लेकर गुड़ लेने चला। उस समय मुझे इसकी जरा भी सुध नहीं थी कि यह दोपहर है और इस समय लैम्प जलाने में आश्चर्य तो यह कि उस घर में जाते और आते समय मैंने अब तक कभी रात में भी प्रकाश का सहारा

नहीं लिया और आज दिन को लैम्प जला कर, गुड़ लाने जा रहा था। जब गुड़ वाले घर के देहली पर गया तो देखा कि उसके प्रवेश द्वार पर एक सर्प बैठा है, जैसे किसी की प्रतिज्ञा कर रहा हो। मैंने जैसे ही सर्प को घर के दरवाजे पर बैठा हुआ देखा कि मुझे अचानक ही दिन को लैम्प जलाना, और गयात्री माता की कृपा का एक साथ ही ज्ञान हुआ और सर्प को देखकर भागने के स्थान मैं में ठठाकर हँस पड़ा और उल्लास में भर कर ताली पीटने लगा। सर्प महाराज पता नहीं किधर भाग गये।

उस दिन स्थानीय सभी उपासकों ने मिलकर एक सभा का आयोजन किया और उस सभा में गायत्री माता का गुण गान किया गया।

मैं यह सदैव सोचा करता हूँ कि यदि गायत्री माता की कृपा से मैंने दोपहर में लैम्प जलाने की मूर्खता न की होती, तो आज मैं अकाल मृत्यु ग्रस्त होकर किसी अन्य ही लोक का भोग कर रहा होता।

श्री० शिव शङ्कर शर्मा, कामठी से लिखते हैं—माताकी कृपा की अनेक घटनाएं मेरे जीवनमें अवश्य घटीं। पर सबसे आश्चर्य कारी चमत्कारी यही घटना है जिसमें मेरे प्राण बचा लिए गए। सर्प दंशन से बच जानाः वृक्ष गिरते समय उससे बच निकलना और—इञ्जिन से कटते-कटते बच जाना ये भी मेरे जीवन में आश्चर्य घटना ही है पर मुझे सब अधिक आश्चर्य और माता की साक्षात करुणा दीख पड़ती है।

उस दिन बंगले से लौटा आ रहा था, सहसा ही पथ में जोरों का तूफान आया। घोर अन्धकार छा गया। मैं सायकिल लेकर आगे बढ़ता ही गया। रास्ते में पल्टनों की छावनी पड़ती थी, मैं सन्तरी की ओर बढ़ता जा रहा था। उसने कई बार आवाजें

भी दीं पर मैं सुन न सका। कुछ निकट जाने पर देखा सन्तरी मेरी ओर बन्दूक सीधा किये खड़ा है। मैं देखते ही हठात् रुका और कहा मैं तो यहीं का ठेकेदार हूँ। सन्तरी ने कहा कि अब तो हमने भी तुम्हें पहचान लिया है, पर जिस समय उस तूफान में कई बार आवाज देने पर भी तुम नही रुके, उस समय मैंने सरकारी अनुशासन के अनुसार दो बार तुम्हारे ऊपर बन्दूक चलाई, आश्चर्य कि दोनों बार घोड़ा दबाने पर भी बन्दूक न छूटी। तुम्हारे सौभाग्य ने तुम्हारा प्राण बचा लिया। माता की याद करते ही मेरा हृदय गद्‌गद् हो उठा और वहाँ से अश्रु पुष्प मातृ चरणों पर चढ़ता हुआ घर आया।

श्री दत्तात्रेय पुरुषोत्तम हरदास ए. एम. आई. टी. इटारसी से लिखते हैं—उपनयन संस्कार के थोड़ेही दिन बाद मैंने उपासना को व्यर्थ की भावुकता तथा अनर्थक-पुरुपार्थ समझकर त्याग दिया कुछ दिन उपरान्त मैंने "प्राचीन भारत में शिक्षा की प्रणाली" एक अँग्रेजी पुस्तक पढ़ी और उसने मुझे गायत्री उपासना में प्रवृत्त कर दिया। फिर पू० आचार्य रामशर्मा लिखित गायत्री विज्ञानादि ग्रन्थ पढ़ कर तो मैं इसका अनुरक्त बन गया।

मैं सरकारी कर्मचारी हूँ। मेरे कुछ ईर्ष्यालु-साथियों ने मुझे स्थान-च्युत या स्थानान्तरित करने के लिए षड्यन्त्र रचा। हमारे उच्चाधिकारियों के पास मेरी झूठ-मूठकी-बनी-बनाई अनेकों शिकायतें लिख भेजी। उसी समय मेरी परिवारिक स्थिति भी सङ्कट पूर्ण होगई। वारिस के दिनथे। बच्चे सभी मोतीझरा से आक्रांत थे। मुझे जरा भी चैन नहीं था। चिन्ता से जर्जर हो रहा था। एकदिन अत्यन्त पीड़ित होकर माता से विनय किया—"माँ! मुझे इन सङ्कटों से अब उबार ले।" उसी रात स्वप्न में एक दिव्य स्त्री

के रूप में माता का दर्शन हुआ, मुझे कहा—"तुम्हारा स्थानान्तर रुक जायगा, चिंता छोड़ दो।"

आश्विन—नवरात्रि का अवसर आया। मैं अनुष्ठान में संलग्न हो गया। उसी बीच सहसा उच्च अधिकारी का आदेश पत्र मिला—जिसमें मेरा स्थानान्तर लिखा था. मैं हतप्रभ हो गया। सोचने लगा—क्या वह स्वप्न मेरी कल्पना था ?

पुनः उसी रात में दिव्य तेजोमयी माता ने स्वप्न में आश्वासन दिया "घबड़ाओ नहीं, बदली तुम्हारी नहीं, तेरे विद्वेषियों की ही होगी।"

एक सप्ताह के बाद ही मेरे सारे ईर्ष्यालु मित्र, वहाँ से स्थानान्तरित कर दिये गये और मैं आज भी उसी स्थान पर काम करता हुआ दिनानुदिन प्रकाश और आनन्द का बढ़ता हुआ स्वरूप अपने में पा रहा हूँ।

श्री गोमतीबाई दुवे, दमोह से लिखती हैं—एकबार मैं रसोई बना रही थी। मेरे अनजाने में साड़ी में आग लग गई। आधी साड़ी जलने के बाद मुझे पता लगा—पर मेरे अङ्ग के किसी भाग में जरा आँच न आई।

दूसरी बार मैं बाहर गृहकार्य में संलग्न थी। खाट पर छोटी बच्ची सो रही थी। रजाई का एक कोना नीचे लटक रहा था। सहसा घर की बड़ी बच्ची ने एक धधकते हुए अङ्गारे से भरे तसले को ले जाकर खाट के नीचे रख दिया और चली आई। रजाई का वह भाग तसले से सटा हुआ था, पर अग्नि के स्पर्श से जरा सा ही अलग था। यह गायत्री माता की ही कृपा थी जो वह अबोध शिशु जलने से बच सकी।

हमारे पड़ोस के एक दम्पति निःसन्तान थे। अनेक उपाय किये जा चुके थे, पर कोई परिणाम नहीं हुआ। एक दिन वह नारी मर्म-

हित-हृदय लिये मेरे पास आई और अपनी सारी व्यथा कह सुनाई। मैंने माता का स्मरण कर गायत्रीसे अभिमन्त्रित कर उसे जल मिला दिया और उसे भी जप करने के लिए निवेदन किया। आज वह सन्तानवती बन गईहै। इस घटनासे मैं स्वयं ही आनंद विभोर हूँ। अन्तर देश में जो कुछ देख और पा रही हूँ—वह लिख नहीं सकती केवल भाव दृष्टि देख-देख मुग्ध हो रही हूँ।

श्री मदनलाल जोशी, गंगधर से लिखते हैं—अखण्ड ज्योति ने मुझे, बिना किसी आवश्यकता के—खींच कर गायत्री उपासना में प्रवृत कर दिया और शायद यह अकारण ही दया करने वाली माता की अपार करुणा थी, जिसके कारण मैं भविष्य में आने वाले अटल संकट से निस्तार पा सका।

दुर्भाग्यपूर्ण प्रारब्ध के कारण मेरे दुश्मनों ने पुलिस को पक्ष में कर लिया और मेरे ऊपर ऐसे अभियोग लगाये, कि जिसकी सफलता होने में मेरा सर्वनाश उपस्थित था। एक सप्ताह के अन्दर मुकद्दमों की जटिलता इतनी बढ़ गई कि मैं दुश्चिन्ता के कारण सो नहीं सकता था। रुपयों तथा उच्च पद स्थित साथियों की सहायता लेने का विचार मन में उत्पन्न हुआ, पर उसी समय अन्तर में एक आवाज आई—"अपना हित चाहते हो तो सारे भरोसों को छोड़कर गायत्री उपासना करो।" उसी दिन मैंने विधि पूर्वक उपासना प्रारम्भ करदी। इस सप्ताह में मुझे चिंता से नींद नहीं आती थी, पर उपासना करने की रात्रि में इतनी निश्चिन्तता का बोध हुआ कि मैं सूर्य्योदय तक बेखबर पड़ा रहा। कलक्टर साहब से मिलने की प्रेरणा हुई। जाकर मिला।

माता के अनुग्रह से,उन विद्वेषियों को पाँच-पाँच सौ रुपये का मुचलका देना पड़ा। हथकड़ियाँ पहननी पड़ी। इतने पर भी उन लोगों के अन्तर की द्वेषाग्नि शान्त नहीं हुई थी, उन लोगों ने पाँच

सात गुण्डों को रुपये का प्रलोभन देकर अप्रगट रूप से मुझे सताने की योजना बनाई। मेरा अनुष्ठान चल ही रहा था कुछ दिन बाद मुकद्दमेमें मेरी शानदार विजय हुई,उसीसमय मुझे बदल कर गंगधार आ जाना पड़ा। मन में आया, इस परदेश में शायद गुण्डों को मेरे ऊपर आघात करने का अनुकूल अवसर न मिल जाय? पर माता की कृपा! एक गुण्डे की माताजी बीमार पड़ गई, उसके रुपये उसी में खर्च होने लगे। दो गुण्डों को मारपीट केस में सजा हो गई और शेष यों ही ठण्डे हो गये।

आप सोच सकते हैंकि यदि मैंने गायत्री उपासना का आश्रय न लिया, होता तो आज मैं जेल में पड़ कर सड़ता रहता और जीविका के भी लाले पड़ जाते। माता की असीम कृपा से सारे उलझनों से बाहर निकल कर आज हम निर्द्वन्द भाव से अपना काम करते हुए जीवन यापन कर रहे हैं।

श्री ए० पी श्री वास्तव, गार्ड, सी० रेलवे, दमोह स्टेशन से लिखते है—मैं ऐक माल गाड़ी का गार्ड था। दमोह जंक्शन से कटनी जंक्शन तक मेरे ऊपर संरक्षण का उत्तर दायित्व था। एक बार लगभग साढ़े सात बजे रात में सलैया स्टेशन पर एक डिब्बे से चोरों ने चोरी करली। मैंने उसी समय,ये बातें सभी को जता दी, तार भी कर दिया। फिर भी छः महीने के उपरान्त हमारे विभाग वालोंने मुझे 'गार्ड' पद से च्युत कर 'नम्बर टेकर बनाने बनाने का प्रयत्न किया। पुलिस विभाग वालों ने झूठा लांछन लगाने का षड्यन्त्र किया, पर उन सबों की सारी चेष्टायें व्यर्थ हो गयीं। मैंने अपने भाई शारदा कान्त के कहने तथा बीना ड्रायवर भगवती दीन जी जो एक अनुभवी गायत्री उपासक हैं, के निर्दे-शानुसार, स्वयं गायत्री उपासना प्रारम्भ कर दीया। थोड़े दिनों के उपरान्त मैंने अपील की और माता की कृपा से ये सङ्कट विनष्ट हो

गये और जिन लोगों ने द्वेषवश, बिना अपराध के मुझे गड्ढे में ढकेलने का प्रयत्न किया था,वे स्वयं ही दण्डित होकर अपना फल भुगत रहे हैं। अब तो माता की कृपा से मेरे ऊपर आये सङ्कट अनायास ही टल जाया करते हैं।

श्री श्रीराम, कोलसा, आजमगढ़ से लिखते हैं—यद्यपि हमने बहुतों से सुना था कि गायत्री बड़ा शक्ति शाली मन्त्र है, पर उसे जीवन में प्रत्यक्ष देखने का अवसर नहीं आया था। पर अ.ग.मी वर्षों से एक गायत्री उपासक श्री मन्नूलाल जी के साथ रहकर जो कुछ देखा और अनुभव कर सका, वह इसलिए छापने की इच्छा हुई कि यह पढ़कर यदि एक भी व्यक्ति गायत्री माता का आश्रय ग्रहण कर अपना कल्याण कर लेंगे तो मैं अपने को कृतार्थ समझूँगा।

दानापुर के श्री रामदास धोबी की पत्नी को प्रेत लगता था। एक बार मेरे सामने एक व्याकुल आदमी मन्नूलाल जी को बुलाने आया। मैंने उस बुलाने वाले से उसकी छटपटी का कारण पूछा—उसने बताया कि वर्षों से रामदास की पत्नी को प्रेत लग रहा है। जब वह आता है तो इसके हाथ पैर ऐंठ से जाते हैं, आँखें उलट जाती हैं तथा शरीर मुर्दे समान स्थिर और ठण्डा हो जाता है। उत्सुकता वश मैं भी मन्नूलाल जी के साथ गया। इन्होंने जाकर गायत्री माता का ध्यान किया और उपरान्त प्रार्थना की कि हे माता। इस गरीब दुखियारी के कष्ट हर ले। मैं पन्द्रह दिन तक इसके लिए १० माला गायत्री महामन्त्र का जप और अन्त में उसका हवन करूँगा। उनकी प्रार्थना मात्र से वह औरत तुरत ही अपनी स्वाभाविक दशा को प्राप्त हो गई और फिर उसे प्रेतावेश नहीं आया।

श्रीशिव प्रसाद शुक्ल समदा, घुमनी से लिखते हैं—मैं प्रथम

साधारण रूप से गायत्री उपासना कर लिया करता था। मैं प्रतिष्ठापूर्ण-स्थिति प्राप्तकर अपना सुखद-जीवन व्यतीत कर रहा था। सहसा ही एक व्यक्ति ने वह स्थान अधिकृत करने के लिये, मुझे उस स्थान से च्युत करने के लिये भयंकर षडयंत्र किया। मैंने विचार किया—देखा, उसका षडयंत्र सफल होकर मुझे प्रतिष्ठा और जीविका दोनों से वञ्चित कर देगा। ऐसा अनुभव करते ही मैं व्याकुल हो उठा पर अपनी यह अन्तः व्यथा किससे कहता? चिन्ता से प्राण-मन आच्छन्न हो रहे थे। नींद का कहीं पता नही था। ठीक मध्य निशा थी। सभी सो चुके थे। सोचा, इस महान् संकट का निवारण, सिवाय गायत्री माता को छोड़कर और कौन करने वाला है? इतना सोचते ही मेरी आँखों से धारा बह निकली। घन्टों तक उस निस्तब्ध-निशा में माँ के आगे रोता रहा। हिचकियाँ बँध गयीं। रोते हुए मुझे कब नींद आ गयी—कुछ याद न रहा। तुरत देखता हूं, मेरी माता जो स्वर्गीया हो चुकी हैं, मेरे सामने खड़ी होकर कह रही हैं—'बेटा! चिन्ता क्यों कर रहे हो? दुःख छोड़ो और यह माला लो। सवालक्ष गायत्री जपने से तेरे सङ्कट स्वतः ही निवृत्त हो जाँयगे।'

तुरन्त ही आँखें खुलीं। देखा—कहीं कोई नहीं था। ब्राह्मी मुहूर्त्त उपस्थित था। मैंने समझ लिया कि माता के रूप में स्वयं गायत्री माता ही थी। और मैं उठकर आदेश पालन की तैयारी में लग गया।

सवालक्ष का दो अनुष्ठान किया। एकबार पुनीति सरयू नदी के तट पर बैठकर भगवान राम की जन्म भूमि अयोध्या में और दूसरी बार ऋषि-मुनि सेवित, पुण्य सलिला भागीरथी के पावन-पुलिन पर स्थिर होकर ऋषिकेश में और मेरी प्रतिष्ठा एवं अन्य स्थितियाँ पूर्व के रूप में रहते हुए ही उज्वल और गहरी हो गयी

हैं। षड्‌यन्त्रकारी महोदय अपना दिवस—"नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं।" का अनुभव लेते हुए काट रहे हैं।

श्री अम्बाराम पन्ढरीसा, भावसार से लिखते हैं—शुक्रवार ता० ८-४-५५ के दोपहर की घटना है। "श्री गायत्री आश्रम, खण्डवा" का साइनबोर्ड फ्रेम निर्माण कर्त्ता की दूकान से लाने जा रहा था। दूकान समीप थी। मैं गायत्री स्मरण में आनन्द मग्न होता सा जा रहा था। वहाँ, एक मदोन्मत्त साँड़, जो बिना अपराध के ही सामने वालों को अपनी झोंक में, सींग से उठा कर फेंक देने का अभ्यासी था, मेरे पीछे जोरों से दौड़ता हुआ आया और मेरी पीठ में सींग लगाया। किन्तु न जाने माँ गायत्री ने उसके अन्तर में कौन सी प्रेरणा दी कि मेरे शरीर का स्पर्श करते ही वह पीछे हट गया और मुझे छोड़, मेरी बगल से आगे आकर एक सायकिल वाले को जोरोंसे ठोकर दे दिया। उस बिचारे को चोट तो लगी किन्तु कोई विशेष खतरा नहीं हुआ।

यह घटना क्षण मात्र में ही हो गई। मैं सोचता हूँ, यदि उस समय मैं गायत्री का स्मरण नहीं कर रहा होता, तो वह उन्मत्त सांड़, मेरा कचूमर निकाल देता और मैं किसी अन्य ही लोक का वासी हो गया होता।

आज माता के प्रति मेरा हृदय कृतज्ञता से भरा हुआ है, सोचता हूँ मैं अब इस जीवन को गायत्री माता की सेवा में समर्पित कर सकूँ तो मेरे और शायद सबों के लिये बड़ा ही कल्याणकारी सिद्ध हो।

श्री शिवशङ्कर शर्मा, शिवपुरी से लिखते हैं—लगभग दो वर्ष हुये, मुझे अखण्ड ज्योति पढ़ने को मिली। उससे प्रभावित होकर मैं अखण्ड ज्योति का ग्राहक बना। आचार्य जी से अपने जीवन को सफल बनाने का मार्ग पूछा। उन्होंने श्रद्धापूर्वक

गायत्री उपासना करने का आदेश दिया। मैंने तदनुसार माता की उपासना आरम्भ करदी। माता की कृपा से मेरे स्वभाव एवं विचारों में सात्त्विकता का संचार हुआ और मन में अत्यधिक शान्ति उत्पन्न हुई छबढ़ा निवासी श्री भेरुलाल जी की पत्नी गंगाबाई को भूत बाधा सताया करती थी। उसने मुझसे कहा। मैंने आचार्य जी का नाम ले गायत्री से उसे झाड़ा लगाया और मन्त्र से अभिमन्त्रित जल पिलाया। इस प्रकार गायत्री माता की महान अनुकम्पा से उसको भूत बाधा से छुटकारा मिल गया। एक दिन अचानक श्री कल्याण प्रसाद की धर्मपत्नी फूल कुंवारी को भूत का सामना करना पड़ा जिससे वह बेहोश हो गई। मैं पहुँचा और उसको गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित जल पिलाया एवं उसी से झाड़ा लगाया। कुछ मिनटों के बाद वह पूर्ण स्वस्थ हो गई। माता की उपासना का ऐसा ही फल होता है।

श्री जगदीश स्वामी कटनी से लिखते हैं—लगभग दो वर्ष हुए मुझे "अखण्ड ज्योति" पत्रिका पढ़ने को मिली। मैं इस पत्रिका से ऐसा प्रभावित हुआ कि इसका ग्राहक बन गया। मैंने परम पूज्य आचार्य जी द्वारा बताए हुये नियमानुसार गायत्री उपासना प्रारम्भ कर दी। प्रारम्भ में मन नहीं लगता था, अब उन्हीं की कृपा से स्थिरता बढ़ रही है। दैवयोग से आपस में कुछ कलह हो जाने से मुझे दो मुकदमों में फँसना पड़ा। कुछ महीनों के बाद मुकदमा समाप्त हुये और फैसले में असफलता मेरे भाग में आई। मैं दुःखी रहने लगा। मैंने गुरुदेव को पत्र लिखा और संकट निवृत्ति के लिये प्रार्थना की। उन्होंने अधिक श्रद्धा एवं विश्वास के साथ गायत्री साधना में लग जाने को कहा। मैंने तदनुसार संकल्प सहित उपासना बढ़ा दी। माता की कृपा से मुझे साहस बढ़ा। प्रेरणावश मुकदमों की अपील कर दी कुछ माह

बाद तारीख पड़ी। मुकद्दमा नये सिरे से चलाये गये। सच्चाई प्रगट हो गई और अन्त में मुझे सफलता प्राप्त हुई।

श्री नन्द किशोर तिवारी, धवोली (सागर) लिखते हैं—तपोभूमि के महायज्ञ की पूर्णाहुति करके घर लौटा जा रहा था। मेरे गुरुवर गायत्री के परम उपासक श्री परमा नन्द मिश्र जी साथ ही थे। बीना स्टेशन पर उतरकर वे प्लेटफार्म पर बैठकर सन्ध्या करने लगे,—मैं उसी जगह खड़ा रहा। उसी समय एक ठेला पर चार बारूद की पेटी ट्रेन से उतार कर कुली लिये आ रहा था। सहसा एक पेटी फूट गई और स्टेशनमें आग लग गई। गुरुदेव के निकट ही छः व्यक्ति अत्यधिक जल गये जिनमें तीन अस्पताल में जाकर मर गये। मेरा सारा वस्त्र और शिखा तक जल गये—शरीर में दो जगह थोड़े थोड़े जलने के निशान बन गये, पर मेरे गुरुदेव को जरा सी आंच भी न आयी उनके निकट के अन्य काफी जलगये। मैं खड़ाहाकर माताकी संरक्षण लीला आँखें फाड़कर देख रहाथा।

श्री भगवान सिंह (एकलवारा) मनावर, (धार), अपना अनुभव लिखते हैं—मैंने अबतक करीब साढ़े पन्द्रह लाख गायत्री मन्त्र जप किया है। इससे मैं दानव से मानव, दरिद्रता तथा डाइजेक्शन की बीमारी मुक्त हुआ हूँ। ३० अक्टूबर १९५६ को मैं अपने मकान के ऊपरी छत पर बैठकर भोजन कर रहा था। अचानक मकान के नीचे का खम्भा टूट जाने से सारा मकान गिर गया। मैं भी उसके साथ ही ऊपर से नीचे गिरा। दीवारें गिरीं, चाँदनी के पत्तरे गिरे, पाट—खपड़े आदि सब ही मेरे ऊपर गिरे, पर न तो मुझे कुछ चोट आई, और कुछ लगा ही। गाँव के लोग दौड़े आये और मुझे सुरक्षित देखकर सभी गायत्री माता का जय-जयकार करने लगे।

श्री शिव शङ्कर मिश्रा, कामठी नागपुर से लिखते है— कुछ समय पहले की बात है कि मेरे मामा सख्त बीमार हो गये और

कई महीने रुग्णावस्था में रहकर स्वर्गवासी हुए। मृत्यु होने के करीब २० दिन पहिले डाक्टर ने उनको नागपुर ले जाकर परीक्षा करानेकी राय दी। इसके लिए अस्पताल की बीमार ले जाने वाली मोटर का प्रबन्ध एक दिन पहले ही करलिया गया। मामा ने मुझे बुलाकर कहा कि तुम्हें मेरे साथ चलना है सो देर न लगाना, मोटर सुबह ठीक सात बजे आजायगी। मैं चलने को कहकर घर आकर सो गया। मुझे स्वप्न में यह मालूम हुआ कि कल मोटर दुर्घटना होगी। परन्तु उस पर ज्यादा ध्यान न देकर मैंने यह समझा कि कहीं से दुर्घटना का समाचार सुनने में आयेगा। मैं सुबह यथा संभव जल्दी उठा और नित्य नियम के अनुसार गायत्री जप व हवन करने लगा। इतने में मोटर नागपुर से आगई। दो बार मामा का लड़का बुलाने आया कि मामा और ड्राइवर जल्दी कर रहे हैं। घर के लोग भी नाराज हो रहे थे कि इस समय पूजा लेकर बैठ गये, जाते नहीं। पर मैंने निश्चय किया कि नित्य नियम पूरा करके जाऊँगा। इस कारण मैं कुछ देर में पहुँचा और मामा को लिटा कर नागपुर आया और वहाँ उनकी जाँच कराई। लौटते समय अस्पताल से कुछ दूरी पर फल लेने को उतरा। फिर मैं जब बैठने लगा कि मोटर चलदी और मैं धड़ाम से जमीन पर गिरा वह ऐसी जगह थी कि जहाँ बड़ी तेज चढ़ाई थी। अगर मोटर जरा भी पीछे को सरकती तो मेरी हड्डियाँ चूर २ कर देती और अगर आगे निकल जाती तो ऊपर से आते हुए सैकड़ों रिक्शों और ताँगे, मोटर आदि से दबकर मैं चटनी बन जाता। गिरने से मुझे चोट तो काफी लगी, पर लोगों ने उठाकर मोटर में लिटा दिया। घर पहुँच कर भी मुझ से स्वयं नहीं चला गया और लोगों ने ही घर में भीतर पहुँचाया। पन्द्रह बीस दिन बाद मैं कुछ चलने फिरने लायक हुआ। गायत्री माताने मुझसे पहले ही दुर्घटना की सूचना देकर सावधान किया और मेरे असावधानी करने पर भी मेरी

प्राण-रक्षा की। यह उनकी अपार कृपा का प्रमाण है।

श्री भागीरथ जी हरदिया, कसरावद अपने अनुभव की घटना लिखते हैं—मेरे यहाँ भाई एवं बहन की शादी थी। मैं अपने दो साथियों के संग पानी की कोठी भरने के लिए कुएँ पर जारहा था साथ मेंमेरी बुआ का आठ वर्ष का लड़का भी था। एक पत्थर पर गाड़ी के चढ़ जाने के कारण वह आठ सात मन भारी कोठी उस बालकपर गिरपड़ी और बालक गिरकर चक्केके नीचे आगया। उसके पेट पर से चक्का निकल गया। लड़के को वमन होने लगा और छटपटा कर कराहने लगा। मैं व्याकुल होकर माता की प्रार्थना कर रहाथा। तुरंत बालक को डाक्टर के यहाँ लेकर गया। डाक्टर ने भली भाँति जाँचकर कहा—लड़का अब पूरा स्वस्थ है। सभी आचर्श्य में थे कि इतनी भारी गाड़ी का भार सहकर वह कैसे पूरा स्वस्थ रह सका ! मैं विवाह अवसर पर इस महाविघ्न से बचा लेने के लिये माता को धन्यवाद दे रहा था।

अतर्रा (बांदा) से श्री रामसिंहजी लिखते हैं—मैं मोटर ठेला से इलाहाबाद होता हुआ कानपुर से अतर्रा आ रहा था। दुभाग्य से अतर्रा से २८ मील पर हमारा मोटर ठेला उलट गया। ठेले में १७० मन वजन भरा था। मोटर उलटने से ड्राइवर तो ५ मिनट के अन्दर मर गया। दूसरे आदमी का पैर टूट गया। मुझे गायत्री माता ने बचाया। सिर में मामूली चोट आई। एक ही जगह बैठे हुये लोगों में से मेरा इस प्रकार बच जाना माता का अनुग्रह ही है।

श्री गंगाप्रसादसिंह जी बरिया घाट (मिर्जापुर) से लिखते हैं—ता० ६ सितम्बर ५४ को दिन के ३॥ बजे वर्षा हो रही थी, घर में सब भाई भतीजे चार पाई पर बैठे थे। अचानक घर पर आकाश से भयङ्कर गड़गड़ाहट के साथ बिजली गिरी। औरतें जोर से रोने लगीं मेरे मुँह से गायत्री माता की पुकार निकली।

बिजली गिरने से छप्पर की खपडैल टूट गई घर में धुआँ भर गया, बारूद की सी तेज गंध आरही थी, दीवाल व नीचे की जमीन जहाँ लड़के बैठे थे बुरी तरह फट गई, मकान से सटा हुआ नीम का पेड़ जल गया। इतना सब होते हुए भी घर के किसी व्यक्ति को कोई क्षति न पहुँची। जहाँ सब लोग बैठे थे, ठीक उनके नीचे की जमीन का बिजलीके भयङ्कर प्रहार से फटना और किसी का बाल भी बांका न होना सभी दर्शकों के लिए एक आश्चर्य की बात थी। तब से हम लोगों को गायत्री माता पर अनेक गुनी श्रद्धा बढ़ गई है ।

श्रीदेवीशङ्कर शुक्ल, श्योपुर कलाँ लिखते हैं—अखण्ड-ज्योति से सम्पर्क जोड़ने के बाद मैं गायत्री उपासना करने लगा था। मैं प्रति दिन सायकिल पर एक पुल पार करते हुये पढ़ाने जाया करता था। वर्षा का मौसम था। पुल के बगल में जो मुड्डियाँ लगी हुई थीं, वह बरसात में टूट फूट गयी थीं। पुल के नीचे पत्थरों के ढेर थे। एक दिन वेतन लेकर वापिस आ रहा था। अचानक पुल पर से सायकिल फिसली और अगला चक्का किनारे पर जाकर नीचे लटक गया। प्राण सङ्कट के अवसर पर मैंने गायत्री माता का स्मरण किया और स्मरण करते ही मेरा एक पैर एक मुड्डी पर स्थिर हो गया और उसी क्षण एक हाथ से मैंने सायकिल का पिछला चक्का पकड़ लिया। इस भाँति सायकिल सहित मेरी रक्षा माता की कृपा से हो गयी, नहीं तो दोनों के चकनाचूर होने में पल मात्र की देरी थी ।

श्री पूरनमल जी गौतम, कोटा से लिखते हैं—मैं मोटर ड्राइवर हूँ। गत मास सांगोद जाते समय धानाहोड़ा गाँव के पास एक दुर्घटना हुई। तीन औरतें आपस में ठठोली करती हुई सड़क पर चली जा रही थी। जैसे ही मोटर बराबर आई कि

एक औरत ने दूसरी को धक्का मारा जो मोटरके पहिये के बिलकुल आगे आगई। मैंने बहुत बचाया मगर उस के मडगार्ड की ठोकर लग गई और वह पहिये के नीचे आ गई। मैंने सोचा एक पहिये के नीचे कुचली तो भी यदि पीछे के पहिये से बच जावे तो शायद इस की जान बच जाय। माता का नाम लेकर गाड़ी तेजी से घुमाई। लारी बबूल के पेड़ से टकराई। मैं बुरी तरह घबरा रहा था कि औरत भी मरी गाड़ी भी टूटी। जब नीचे उतरा तो देखा कि वह औरत मोटर के नीचे से खुद ही निकल कर बाहर आ रही है। औरत के हाथ पैरों के जिन जेवरों पर हो कर पहिया गुजरा था वे तो टूट गये पर उसको जरा भी चोट न आई। लारी में ठसाठस भरी हुई सवारियों में से भी किसी का बाल बांका न हुआ। माता की इस कृपा को जितना धन्यवाद किया जाय कम है।

दिगौड़ा (टीकमगढ़) से श्री गोविन्द दास भार्गव सूचित करते हैं-श्री ब्रह्मचारी जी की प्रेरणा से ललितपुर जिला झांसी में एक विशाल यज्ञ का आयोजन किया गया। यज्ञ की पूर्णाहुति बड़े उत्साह पूर्वक हुई। पूर्णाहुति के उपरान्त सभी नर-नारी अपने २ घर वापिस जाने लगे। इसी बीच में अचानक एक कुत्ता हवन कुण्ड में आ गिरा। यह दुर्घटना देखकर सभी लोग परेशान थे। परन्तु एक पंडित जी साहस पूर्वक हवन कुण्ड में सीढ़ी लगाकर घुस गए, तत्काल उन्होंने उस कुत्ते को बाहर निकाला। कुत्ता एवं पंडित जी पूर्ण सुरक्षित थे, यह दृश्य देखकर सभी लोग वेद माता की दया का अनुभव करके प्रसन्न चित्त थे। वह कुत्ता आज कल ब्रह्मचारी जी के साथ ही रहता है। माता का ऐसा प्रत्यक्ष अनुभव देखकर सभी जन समूह प्रभावित हुआ।

सुश्री प्रेमलता गुप्ता, मसूरी से माता के वात्सल्य का वर्णन

करती हुई लिखती हैं—गायत्री उपासक श्री वानप्रस्थी जी मेरे सम्बन्धी हैं। एकबार उनके यहाँ आने पर उनके पास का गायत्री साहित्य मैंने खूब अध्ययन किया। गायत्री के प्रत्यक्ष चमत्कार पढ़ कर गायत्री उपासना की इच्छा प्रबल हो उठी। तभी से उपासना करने लग गयी।

हमारे निवास स्थान से जङ्गल लगा हुआ ही है। मैं जब जप करने बैठती तो एक पड़ोसी का कुत्ता भी आकर बैठ जाता और जप समाप्त होने पर चला जाता। एक दिन छत पर बैठ ब्राह्मी मुहुर्त्त में मैं जप कर रही थी। वह कुत्ता भी आकर बैठ गया। जङ्गल होने से जंगली जानवरों का भय सदा हमें लगा ही रहता है। उस दिन सहसा एक बघेरा आया और कुत्ते पर ताक लगा ही रहा था कि उसके मालिक ने उसे पुकारा और वह तुरन्त भागा चला गया। उस बघेरे की दृष्टि बच्चे और मेरे ऊपर थी मेरे तो प्राण सूख गये। मैंने माँ से प्रार्थना की—माँ तेरे सिवाय अब इस क्षण में रक्षा का कोई उपाय नहीं। ठीक दूसरे ही क्षण बघेरे ने हम लोगों पर एक बार दृष्टि डाली—कूद कर झाड़ी में छिप गया। माता के चरणों में, मैं न्यौछावर हूँ।

श्री सुधाराम महाजन बिलासपुर से लिखते हैं—गत मास कार्यवश रायपुर से कवर्धा जाने को 'बस' में सवार हुआ। शायद भावी दुर्घटना की पूर्व सूचना मुझे अव्यक्त रूप से हो रही थी, इससे रायपुर के "वेटिंग रूम" में ही मैंने चालीसा के पांच पाठ कर डाले। मोटर में भी मानसिक जप चल रहा था। लगभग १४ मील निकल जाने पर अचानक मोटर का अगला चक्का टूटकर अलग जा गिरा। हमारी गाड़ी बगल के खड्डे की ओर बढ़ चली और सभी यात्रियों की आँखों के आगे अँधेरा छा गया। ड्राइवर ने कुशलता से ब्रेक लगाई और किसी भी यात्री

को तनिक भी धक्का न लगते हुए गाड़ी सड़क के किनारे ऐसे रुक गई मानो किसी ने टेक लगाकर खड़ी कर दी हो। ईश्वर का नाम लेते हुए सभी यात्री उतर पड़े। लोग कह रहे थे कि गाड़ी में कोई नेक आदमी जरूर है, जिसके कारण सब बाल-बाल बच गये।

श्री ज० मा० गवली, थाना (बम्बई) माता की कृपा का वर्णन करते हैं—नौकरी से घर वापिस आ रहा था। स्टेशन पहुँचकर चलती ट्रेन पकड़ने की कोशिश की। हैंण्डल पकड़कर पांवदान पर खड़ा ही हुआ था कि मेरे हाथ से हैंण्डल छूट गया और मैं गाड़ी के नीचे लुढ़क गया। पर पता नहीं कैसे मेरे गिरते ही गाड़ी सहसा रुक गई और मैं थोड़ी सी चोट मात्र खाकर बाल-बाल बच गया। लोग मेरे भाग्य की सराहना कर रहे थे और मैं प्राण रक्षिका अपनी इष्ट देवी गायत्री माता की याद में आँसू बहा रहा था।

श्री रामकिसन वडाले, मालेगांव (नासिक) लिखते हैं—गणेश उत्सव की तैयारी में मैं सीन बनाने में लगा हुआ था। एक बिजली का तार वहाँ नीचे लगा हुआ था। अचानक मेरे हाथ का पंजा उस तार पर जा पड़ा और चिपक गया। बिजली का करंट मेरे सारे शरीर में फैल गया और मेरे प्राणों को खींचने लगा। मेरे बड़े भाई और मित्र गण भी वहीं थे, पर कुछ नहीं कर सके। मेरा प्राण जाने ही वाला था—मैंने माता को व्याकुलता से याद किया। बोलने की सामर्थ्य थी ही नहीं। याद करते ही जिस होल्डर में से यह वायर आया हुआ था, वह होल्डर टूट कर नीचे गिर पड़ा और मेरे प्राण बच गये। ठीक उसी क्षण में होल्डर का गिर पड़ना माता की साक्षात् कृपा नहीं तो क्या है?

डेरापुर (कानपुर) से श्री सतीशचन्द्र लिखते हैं—इसी नवरात्रि में जबकि मेरा २४००० का अनुष्ठान चल रहा था, एक दिन मैं खेत में ट्रैक्टर चलाने गया और भूल से नेकर आदि न पहिन कर धोती ही पहने रहा। न मालूम कैसे धोती का एक अंश साइलैंसर पर पहुँच गया और उसमें भयंकर आग लग गई। मुझे गर्मी जान पड़ी पर मैं उस तरफ ध्यान न देकर खेत जोतता रहा। पर जब एक दम लौ उठी तो मैं घबराकर चलते हुए ट्रैक्टर से कूदकर अलग खड़ा हो गया। उसी समय आग अपने आप बुझ गई। पर ट्रैक्टर चलता जा रहा था। मैं दौड़ा पर एक झाँखर से टकराकर गिर पड़ा, जिससे बहुत से काँटे मेरे बदन में लग गये। पर इस ओर ध्यान न देकर मैं उठा और दौड़ कर उसका स्विच बन्द किया। कितनी भीषण दुर्घटना हो जाती यदि मैं ट्रैक्टर को रोक न पाता। दस हजार रुपये का ट्रैक्टर और मैं वहीं पर समाप्त हो जाते। माता ने हमें सब तरह से बचा लिया। मेरे शरीर पर पाँच-सात छालों के अतिरिक्त कोई हानि नहीं हुई।

श्री फूलवती शर्मा देहरादून से लिखती हैं—मेरे मन में अनायास ही गायत्री उपासना के प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ था और नित्य प्रेम से माता की आराधना किया करती थी। एक बार मेरे पतिदेव एक ऊँचे पहाड़ पर गये थे, चढ़ने का रास्ता संकीर्ण और खतरों से भरा था। सँभल-सँभल कर पग रखना पड़ता था, पर पता नहीं क्या होनहार था। सारी सावधानता के वर्तते हुये भी आखिर इनके पैर फिसल ही गए। मीलों की ऊँचाई थी। शरीर के चकनाचूर हो जाने के सिवाय और कोई बात नहीं हो सकती थी, पर माता को अपनी बेटी का सौभाग्य सिन्दूर जो बचाना था। थोड़ी दूर तक गिरने पर वे बीच में ही अटक गए,

जैसे किसी ने उन्हें अपनी गोद में ले लिया हो : केवल हाथ में थोड़ी चोट आयी, सुरक्षित होकर आकर मुझ से मिले। उस माता के चरणों में हजार-हजार न्यौछावर हूँ।

श्री बसन्ती लाल श्रीवास्तव, भितरवा (म० प्र०) से लिखते हैं—एकबार मैं अपने गाँव की एक पहाड़ी नदी में तैर रहा था। अकस्मात् गहरे पानी में चला गया और पानी के तेज बहाव में बहने लगा यह देखकर मेरे साथ के अन्य युवक डरकर गाँव को भाग गये। इतने में ऊपर से पानी भी बरसने लगा। मैं १५ मिनट तक बहते-बहते एक ऐसे स्थान पर पहुँचा जहाँ नदी का पानी १७५ फीट ऊपर से नीचे की तरफ बड़े वेग से गिरता था। यह देखकर मेरे भीतर शून्यता छा गई और मेरी जबान बन्द हो गई। मेरे मन में एकाएक यह भाव आया कि गायत्री माता मेरे प्राण ले। मैं इतना ही संकल्प कर पाया कि ठीक उसी जगह जा पहुँचा जहाँ से नदी नीचे गिरती थी। आधी मिनट में ही मेरी यह संसारयात्रा समाप्त होने वाली थी, पर अचानक मैं एक बड़े पत्थर से जाकर रुका जो पानी में एक हाथ डूबा हुआ था। वहाँ मैं बड़े आराम से बैठ गया। मैं नहीं कह सकता था कि मुझे किस प्रकार यह भान हुआ कि यहाँ चट्टान है और इससे मैं बच जाऊँगा।। उस दिन से गायत्री माता का जप ही मेरे जीवन का प्रधान कार्य बना हुआ है।

श्री० शेरसिंहजी प्रधानाध्यापक बेसिक स्कूल, कानाखजड़ी (अजमेर) से लिखते हैं—ता० १६-५-५५ को मैं अजमेर रोड पर दो मोटरों के बीच साइकिल समेत दब गया था, पर गायत्री माता की कृपा से मेरी प्राण रक्षा होगई। वह घटना मुझे और मेरे अफसरों को अब भी याद है। इसी प्रकार ता० ६-१२-५६ को एक शेर ने दो अन्य आदमियों को चीर डाला। मैं भी बन्दूक लेकर वहाँ

गया, शेर को घायल कर दिया, पर वह जख्मी होकर भी मेरे ऊपर टूट पड़ा। शेर के दोनों अगले पंजे मेरे कन्धों पर थे और मुँह गले पर। मैं जखमी तो हो गया और मेरा गर्म कोट शेर के पंजे से फट गया, पर गायत्री माता ने मेरी प्राण-रक्षा की। मेरे पीछे दो आदमी और खड़ेथे वे भी भाग गये। उस समय का दृश्य सच-मुच ही एक चमत्कार था।

श्री राम कुमार शर्मा, कनवास (कोटा) माता की रक्षा शक्ति के बारे में लिखते हैं:—दीपावली के दूसरे दिन राजस्थान में बैल पूजा का उत्सव खूब धूमधाम से मनाया जाता है। इस उल्लास में पटाखे, बन्दूक और गाड़ी में बाँधकर छोटी तोपें भी छोड़ी जाती हैं। मैं उस उत्सवमें शामिल होने जा रहा था। एक जगह गाड़ी में बंधे तोप में १०-१२ मुट्ठी बारूद भरकर उसमें बत्ती जलाई जा चुकी थी। बत्ती जलाने वाले आग लगाकर वहाँ से दूर हट गये थे। मैं तोप के करीब तीन हाथ फासले पर अनजाने चला गया था—मुझे देखते ही मेरे परिचित हटने की ध्वनि में चिल्ला उठे-तबतक तोप छूटगई और मुझे जोरका धक्का लगा। सिर घूमगया। दिल धड़-धड करने लगा। मैं बैठ गया पर माता की याद करना नहीं भूला। सभी मेरी रक्षा हो जाने पर आश्चर्यित थे। मुझे उस धक्के के सिवाय और कोई भी चोट नहीं पहुँची थी।

श्री राजवंशजी, मसौढ़ी (पटना), माता के वात्सल्य का वर्णन करतेहैं—हमारे अनेकों संतान मरे हुए पैदा हुए और कुछ ने दुनियाँ को एकबार देखकर सदा के लिये आँखें बन्द करलीं व्यथा से सन्तप्त हम सभी माता की प्रार्थना करते रहते थे। इस वार १७ फरवरी ५६ के मध्यान्ह में अस्पताल में मेरी धर्मपत्नी ने माता की कृपा से संरक्षित पुत्ररत्न प्रसव किया। हम लोग उल्ल-सित हो उठे। अस्पताल से डिस्चार्ज होने पर चाची जी के साथ

बच्चे सहित उसकी मा गाड़ी पर घर जा रही थी कि एक दूसरी गाड़ी जोरों से टकरा गयी। यह गाड़ी उलट कर टूट-फूट गयी। मैंने समझ लिया यह बच्चा भी गया—पर माता ने गाड़ी उलटने के समय ही जच्चा बच्चा सहित हमारी चाची को करीब ६ फीट दूर फेंक दिया। हलकी सी चोट लगी और सभी तरह से सुरक्षित ही रहे। गाड़ी से इतनी दूर फेंके जाने एवं सुरक्षा में हम साक्षात माता की कृपा का दर्शन कर गद्‌गद् हो रहे थे।

श्री कपिलदेव पाण्डेय, मिर्जापुर लिखते हैं—'मेरे पड़ोस के श्री सदानन्द जी सपत्नीक गायत्री उपासना करते हैं। एक दिन रात में उनके घर में चोर घुसा। उनके वस्त्रादि उठा ले गया। खड़खड़ सुन कर उनकी पत्नी की भी नींद टूट गयी और उसने पति को जगाया। आवाज सुन चोर भी शीघ्रता से भाग गया। उन लोगों ने देखा—वस्त्र गायब थे। पुनः वे लोग सो गये। उनकी पत्नीको स्वप्न हुआ कि तुम्हारा वस्त्र चोर नहीं ले जा सका है। तुरन्त लैम्प जला कर खोजने से घर के पीछे सभी वस्त्र मिल गये।

श्री गोकुलचन्द शर्मा, मोडक (कोटा) सपरिवार प्राण रक्षा की कृपा के बारे में लिखते हैं—कृष्णाष्टमी की दूसरी रात में हम लोग पति, पत्नी एवं बच्चों सहित एक कत्तलपोश तिवारी के नीचे सो रहे थे। अचानक दरवाजे का पत्थर टूट जाने से वह पत्थर और उसके ऊपर का कत्ताल सभी एक साथ ही नीचे गिर पड़े, जिस पलंग और खाट पर हम लोग सोये थे वह चूर चूर हो गये। हमारे ऊपर भी कत्तलों के ढेर थे, पर हम लोग बाल बाल सुरक्षित थे। सभी लोग गायत्री माता की आश्चर्य भरी रक्षा की सराहना कर रहे थे। हम लोग बाहर निकल कर कृतज्ञता के आँसुओं से भर रहे थे।

श्री वेणीप्रसाद जी ट्रालीमैन, चिचौंड़ा (बैतूल) गायत्री मन्त्र की शक्ति के बारे में लिखते हैं—मैं एक दिन निमौटी गांव जारहा था। रास्ते में वर्धा नदी किनारे साँप के डसने से एक गाय छटपटा रही थी। बहुत लोग अनेक उपचार कर रहे थे, पर कोई लाभ नजर नहीं आता था। मैं गायत्री जपता तो था, पर उसका प्रयोग कभी नहीं किया था। उस समय अन्तर से प्रेरणा पाकर मैंने थोड़ा-सा जल मंगा कर गायत्री मंत्र से अभिमंत्रित कर गाय को पिला दिया। शेष उसके शरीर पर छिड़क दिया। जल छिड़कते ही गाय एक दम उठ कर खड़ी हो गयी। फिर अभिमंत्रित जल पिलाने पर वह चरने लग गयी। इस मन्त्र शक्ति को देख मेरे सहित सभी लोग चकित हो रहे थे।

श्री कृष्णाराम हरिभाऊ धोन्डे, वापी। (गुजरात) से लिखते हैं—हम लोक वापी से ३० मील दूर घने जंगल में एक आवश्यक काम के लिए बैलगाड़ी में जा रहे थे। रात अंधेरी थी, जंगल बहुत घना था। इस सुनसान में डाकुओं ने हमें घेरा और गाड़ी रोकली। हमारे पास कुछ धन भी था। बहुत घबराहट हुई। अन्त में माता का नाम लेकर गाड़ी के बैलों को जोर से भगाया, उन कमजोर बैलों में न जाने कहां से इतनी ताकत आई कि इशारा देते ही घुड़दौड़ करने लगे। डाकू बराबर दो मील तक पीछा करते रहे पर पकड़ न सके। अन्त में पुलिस स्टेशन आगया, वहां आकर हम लोगों ने शरण ली और जान बचाई। माता जिसकी रक्षा करती है उसे कौन मार सकता है?

श्री दुर्गालालजी रिटायर्ड मजिस्ट्रेट बूँदी से लिखते हैं—गायत्री उपासना से मेरी अनेकों उलझनें दूर हुई हैं। पेन्शन मिलने में बड़ी कठिनाइयां थीं वे हल हुईं। ज्येष्ठ पुत्र की आजीविका संबंधी समस्या सुलझी। कन्या के प्रसव काल में

जो प्राण घातक संकट उपस्थित था वह टला। पौत्री की अत्यंत भयंकर ज्वर एवं मूर्छा से जीवन रक्षा हुई। इस प्रकार मैंने अपने जीवन में गायत्री मंत्र के प्रयोग द्वारा अनेक चमत्कारी लाभ होते देखे हैं।

श्री विश्वनाथ पाण्डेय, दानापुर (पटना) लिखते हैं—मैं एक वार अपनी छोटी वहिन के यहां आरा गया था। वहां उस पर प्रेत का आक्रमण हुआ करता था। उस दिन भी हुआ। उसकी सास ने कहा—बेटा! सुना है तुम गायत्री जपते हो, सो जरा अपनी वहन को जाकर देखो। मैंने गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित जल के छींटे मारे। वह झूमने लगी—कुछ देर बाद अपने होश में आ गई। शाम को फिर आक्रमण हुआ। तब मैंने अपने बड़े भाई को, जो निष्ठावान गायत्री उपासक हैं, बुला लाने के लिये एक आदमीको दानापुर भेजा। वे खबर मिलते ही यज्ञ भस्म लिये यथा शीघ्र आये। उनके आने पर वह आक्रमित दशा में थीं। उन्होंने भस्म लगाकर अभिमंत्रित अच्छतों के छींटे मारे। अच्छत लगते ही वह मूर्छित हो गयी। फिर होश में आ गयी। उनके श्वसुर ने डाक्टरों से हिस्ट्रीया रोग कह कर वहुत इलाज कराये थे—पर कभी आराम नहीं हुआ। भाईजी के द्वारा आक्रमण दूर होने पर फिर कभी भूत लौट कर नहीं आया। अब वह पूरी स्वस्थ है।

श्री व्रजगोपाल शर्मा, सवाँसा अपने जीवन में सुख-शान्ति पाने के विषय में लिखते हैं—मैं चारों ओर शत्रुओं से घिरा था। सभी मेरी बुराई करने की ताक में रहते। मुझे जरा भी चैन नहीं था। प्रशंसा सुन कर ही मैं भी गायत्री तपोभूमि गया था। वहां से अनुष्ठान करके लौटने के बाद ही मेरे सारे दुश्मन ठण्डे हो गये। मैं उसी प्राइमरी स्कूल के साधारण अध्यापक से

अनायास प्रधानाध्यापक बना दिया गया। आज हम सभी तरह से सुखी हैं और दुश्मन के बदले दोस्तों से घिरे रहते हैं। ऐसी माता के चरणों पर हम सदा न्यौछावर हैं।

श्री नर्मदाशंकर ब्रह्मचारी राजकोट से लिखते हैं—"कुछ समय पहले मैं 'सीतालानु कालापड़' नामक काठियावाड़ के एक गाँव में गया था। वहाँ मेरे दो मित्र बल्लभदास और जमनादास नाम के रहते हैं। उन दोनों की स्त्रियों पर अमरेली के किसी पापी ब्राह्मण का आवेश होता था, जिससे घर भर को बड़ा कष्ट था। इसके लिए सैकड़ों उपाय कराये पर कोई फल न निकला। जमनादास की माता ने मुझे भी सब हाल सुनाया और विलाप करने लगी। मैंने उनको विश्वास दिलाया कि वेद माता गायत्री के प्रयोग से सब प्रकार की बाधा दूर हो सकती है। तब मैंने उनको पंचात्तर मन्त्र का १०८ जप नित्य करने को बताया और अपने मन में संकल्प किया मैं इसके निमित्त सवालक्ष जप का अनुष्ठान करूँगा और इस अवसर पर नमक, मिर्च, तेल आदि त्याग कर केवल सात्विक भोजन करूँगा। यह सब कहके मैं तो दूसरे दिन की गाड़ी से राजकोट वापस आ गया। वहाँ जब उन स्त्रियों को भूत बाधा हुई तो जमनादास ने गायत्री मन्त्र पढ़ कर पानी पिला दिया। वह भूत कहने लगा "मैं जाता हूँ"—"मैं जाता हूँ।" तब से वे सब कुशल से रहने लगे।

कचनरा मन्डी (पो० नवाबगंज, बरेली) से श्री विद्याराम गंगवार लिखते हैं—मैं ता० १५-८-५७ को फावड़ा लेकर अपने खेत पर बाँध बाँधने गया। एक बाँध बाँध कर दूसरी तरफ जा रहा था कि एक साँप ने पैर में डस लिया। मैंने उसे फावड़े के नीचे दबा दिया और ४ खेत की दूरी पर लाठी लेने गया। वहाँ से लौटा तो साँप को वहीं पाया और लाठी से मार दिया। इसके

बाद गायत्री मन्त्र से वहाँ चीरा दिया और मन्त्र पढ़कर बन्द लगा दिया। उस समय मुझे ठीक होश नहीं था, पर शाम तक माता की दया से मैं बिल्कुल चङ्गा हो गया।

दानापुर कैन्ट (पटना) के श्री त्रियुगी नारायण केसरी लिखते हैं—मेरे यहां एक जमीदार के लड़के को सदैव ही कभी-कभी ऐक प्रेत आकर परेशान करता था। कभी २ तो ऐसा प्रतीत होता था कि उसका जीवन भी खतरे में है। ऐसी दशा देखकर मुझे बड़ी दया आई। एक दिन अचानक ही यह घटना मेरे ही समक्ष हो गई। मैंने तत्काल ही गायत्री मन्त्र अभि-मन्त्रित कर जल का छींटा मारा एवं थोड़ा सा जल पिला भी दिया। अब वह प्रेत बाधा सदा के लिये दूर हो गई है।

शाहदरा (देहली) से श्री राधेश्याम गुप्ता लिखते हैं—अभी दो मास पहले मैं हनुमानजी के दर्शन करके वापिस आ रहा था कि ट्रक से मेरी साइकिल की टक्कर हो गई। ट्रक का पहिया मेरे पैर पर से उतर गया। साइकिल टूट गई पर मुझको कतई चोट नहीं आई। यह गायत्री उपासना का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसी प्रकार मेरे दस वर्ष से सन्तान नहीं होती थी अब माता की उपासना और प्रार्थना करने से पुत्र उत्पन्न हुआ। गायत्री जप द्वारा मैंने कितने ही लोगों के बुरे व्यसन छुड़ा दिये।

श्री हरगोविन्द त्रिपाठी बीसापुर (सुल्तानपुर) से लिखते हैं—मैं लगातार ३ वर्ष से माता की उपासना कर रहा हूँ। वैसाख सुदी पञ्चमी सं० २०१४ को माताजी का दिन था। हवन के बाद रात्रि में चालीसा का पाठ व रामचरित मानस पर प्रवचन हुआ। घर के सभी व्यक्ति हवन-स्थल में ही थे कि घर में चोरों ने सेंध लगाना शुरू किया। हवन से आकर हम सब लोग सो गये और उधर चोरों ने सेंध पूरी करके भीतर घुसने

की तैयारी की। उसी समय मेरी माताजी की नींद टूट गई और चोर भाग गये। यह सब गायत्री माता के प्रभाव से ही हो सका यह हम सबका विश्वास है।

श्री रतनसिंह गोहेल मिठापुर (सौराष्ट्र) से लिखते हैं—गत-व मेरे एक मित्र की मृत्यु मोटर दुर्घटना से हो गई थी। मुझे अनुभव हुआ कि उन की आत्मा अशान्त है और गायत्री उपासना का पुण्य फल चाहती है। मैंने उस आत्मा की शान्ति और सद्‌गति के लिये जप आरम्भ किया। बहुत दिन बाद फिर उस आत्मा का प्रत्यक्ष हुआ तो उसने बताया कि उस गायत्री जप से उसे पूर्ण शान्ति मिली है। उसकी एक कामना-वासना जो और शेष थी उसे पूर्ण करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। गायत्री माता जीवित और मृत सभी को शांति देती हैं।

श्री ब्रजवल्लभ जी, दिगौड़ा से लिखते हैं—इस बार जब हमारे गाँव की फसल तैयार हो चुकी थी ऐसे काले बादल उठे कि हम सब का हृदय काँप उठा। क्योंकि ऐसे समय ओला पड़ने की पूरी आशंका रहती है। उस समय हम सब सत्संग में बैठे थे। हमने वहीं माता से प्रार्थना की कि 'रक्षा करो'। माता ने प्रार्थना सुनली और थोड़ा-सा पानी और जरा से ओले गिरकर आकाश खुल गया। माता कृपा न करती तो सैकड़ों किसानों का सर्वनाश हो जाता।

श्री हरदयालु जी श्रीवास्तव, गोहाँड (हमीरपुर) माता की दयालुता का वर्णन करते हुए कहते हैं-मेरा ज्येष्ठ पुत्र घरसे वैरागी बनकर चुपचाप निकल गया। १५ महीने उसकी खोज करते बीत गए—कहीं पता न चला। सब तरफ से निराश होकर मैंने एक मात्र गायत्री माता का अञ्चल पकड़ लिया। सोलहवें मासमें अचानक ही उसका पूरा पता हमें मिला। पता मिलते ही हम कुछ सज्जनों के साथ वहाँ गये। उसने लौटना स्वीकार कर लिया।

गेरुवा वस्त्र छोड़ कर गृहस्थ के रूप में हमारे साथ आकर रहने लगा। हमारे प्रयत्न और आशा से अधिक सफलता मिलने का कारण एक मात्र माता की ही कृपा है।

श्री जगदीश प्रसाद भट्ट अध्यापक (पाला,मैहर बुन्देलखण्ड) से लिखते हैं कि मई १९५७ में मुझे रक्त-पित्त रोग का बड़े जोरों से दौरा हुआ। रक्त-स्राव अधिक मात्रा में होने से मैं एक दम निर्बल हो गया। मेरी दशा देखकर घर के सब लोग घबड़ाने लगे। पर मैंने उनको धीरज बँधाया और गायत्री उपासना करने को कहा। इस पर सब बच्चे और स्त्री गायत्री जप करने लगे। माता की कृपा से एक सप्ताह के भीतर ही मेरा रोग पूर्णतया शांत होकर इस संकट से छुटकारा मिला।

पं० नत्थूलाल जी निगोही (शाहजहाँपुर) से लिखते हैं—ता० ६ सितम्बर को ग्राम महमदपुर (जि० पीलीभीत)के पंण्डित सुखलाल को एक भयानक सर्प ने टाँग में काट लिया। लोगों ने केवल गायत्री मंत्र पढ़कर बन्द लगा दिये और इसीसे झाड़ फूँक भी की। सुखलाल पहले तो बेहोश होगया,पर तीसरे दिन गायत्री के प्रभाव से ही बिलकुल स्वस्थ हो गया। जो कोई चाहे महमदपुर के किसी भी व्यक्ति से इस घटना की सचाई की जाँच कर सकते हैं।

श्री जगत राम पस्तोर टीकमगढ़ (म० प्र०) से लिखते हैं—मेरी पाठशाला के समीप एक ट्रक ड्राइवर गिट्टी डालते थे, उनसे परिचय हो गया। एकदिन वे टीकमगढ़ वापस जा रहे थे कि मुझ से रास्ते में भेंट हो गई। ट्रक को ठहराकर वे कहने लगे कि—"चलो, टीकमगढ़ चलते हो।" मैं आन्तरिक इच्छा न होतेहुए ट्रक में बैठ गया। ट्रक के पिछले भाग में १६ बेलदार थे और मेरी बगल में सामने की सीट पर ट्रक- मालिक के एक रिश्तेदार थे। ड्राइवर नशे में था और उसने कई बार ट्रक को गलत चलाने के

बाद अन्त में एक बिजली के खम्भे से टकरा ही दिया। जिस समय ट्रक टकराया मैंने माता से रक्षा की प्रार्थना की और आश्चर्य है कि ट्रक में सवार १६ व्यक्तियों में मैं ही ऐसा था जिसके जरा भी चोट नहीं आई थी।

हाँसलपुर गाँवसे भूतपूर्व जेल वार्डर श्रीपंचमसिंहजी लिखते हैं—डोल-ग्यारस के अवसर पर रात के समय ग्राम-निवासी 'रुक्मिणी-हरण' नाटक कर रहे थे। वहाँ कुँए के चबूतरे पर बैठकर ७-८ वर्षकी एक कन्या खेल रहीथी। वह अचानक कुँएमें गिर गई। आठ-दस मिनट बाद जबउसे ऊपर निकाला गया तो बेहोश थी। यह देखकर मैंने कहा'—'हे वेदमाता यह कन्या होश में आ जाय तो तेरी १०० माला फेरूँगा।" थोड़ी ही-देर में उसे होश हो गया और सब लोग वेदमाता की जय-जयकार करने लगे।

चाँपा (बिलासपुर) से वैद्य पुनीराम जो लिखते हैं—एक सज्जन, जो जाति के सुनार हैं, प्रेत बाधा के कारण बड़ा दुःख पा रहे थे। भूत सब चीजों को अस्त-व्यस्त कर देता था, जिससे अनेक बार पति-पत्नी में लड़ाई भी हो जाती थी। उन्होंने किसी से गायत्री-मंत्र का चमत्कारिक गुण सुनकर स्वयं ही जैसे बना वैसे ही गायत्री-उपासना आरम्भ करदी और एक दिन रात के सात बजे हजार आहुति का हवन करने भी बैठ गये। जिस समय रात के १० बजे तो सफेद साड़ी पहिने एक काली-सी स्त्री खिड़की के पास प्रगट हुई और बोली—"मैं जाती हूँ, मुझे स्थान बतलाओ, अब मैं यहाँ एक पल भर नहीं ठहर सकती।" पर वे हवन करते ही रहे और नतीजा यह हुआ कि घण्टे भर बाद वह प्रेत-छाया अदृश्य हो गई। तब से उस घर में शांति है।

श्री कन्छोदी लाल यादव (सागर) से लिखते हैं—मेरी माता के गले में कैंसर हो गया था। तकलीफ के कारण वे छटपटाती थीं। सिविल सर्जन और अन्य डाक्टर रोग को असाध्य बतला

चुके थे। लोगों ने दूसरे बड़े शहर में जाकर इलाज कराने की सलाह दी। पर मैंने कहीं न जाकर गायत्री माता की शरण ली और इसके लिए सवालक्ष का पुरश्चरण किया। माता की कृपा से वह भयंकर रोग शीघ्र ही अच्छा हो गया।

श्री रामअवतार शर्मा, हस्वा से लिखते हैं—मेरे एक सम्बन्धी पर मुकद्दमा चल रहा था विरोधी पक्ष के सबूत बहुत ही प्रबल हो रहे थे। सबों का विश्वास था कि अब यह फाँसी से किसी भाँति बच नहीं सकता। स्वयं मेरा भी यही विश्वास था नजदीक के सम्बन्धी होने के कारण मुझे भी उनके प्रति बड़ी ममता थी। हम ने इस सम्मुख प्राप्त मृत्युसे बचने के लिये एक मात्र गायत्री माता की शरण लेना सर्वोपयुक्त समझा और उसी की उपासना में जुट गये। सभी को आश्चर्य है कि अपने पक्ष के प्रमाण कमजोर होते हुए भी कैसे माता ने उसे बचा लिया।

श्री मदनलाल जी, पोस्टमैक अटरू (कोटा) माता के प्रेम का वर्णन करते हैं—मेरी जमीन का कुछ हिस्सा दूसरे व्यक्ति के यहाँ रहन था। मैं छः वर्ष से प्रयत्न करता आ रहा था कि वह जमीन छोड़ दे और अपने रहन की रकम ले ले, पर वह किसी भाँति राजी नहीं हुआ। माता की प्रेरणा से मैंने उसके ऊपर मुकद्दमा चलाया। दो ही पेशी बाद उस व्यक्ति ने मुझसे समझौता कर लिया और ज़मीनके साथ रहन की रकमभी छोड़ दी। इसमें भय-क्षेप नहींथा, स्नेह भरे चित्त सेही उसने इस वर्ताव को पूरा किया।

[और भी हजारों व्यक्ति ऐसे मौजूद हैं जो गायत्री की शक्ति का ऐसाही अनुभव कर चुके हैं। इनमें अविश्वास की कोई बात नहीं है। भगवान सदैव अपने भक्तोंकी रक्षा करतेहैं, और निष्पाप व्यक्तियों को दैवी सहायता मिला करती है। गायत्री-साधना द्वारा मनुष्य के पापों और विकारों का नाश बहुत शीघ्रता से होता है और वह दैवी शक्तियों का कृपा पात्र बन जाता है।]

जीवन को सुख-शान्तिमय बनाने वाला साहित्य

(मूल्य प्रत्येक पुस्तक का छः-छः आना है)

१-सूर्यचिकित्सा विज्ञान २-प्राणचिकित्सा विज्ञान ३-स्वस्थ बनने की विद्या ४-भोग में योग ५-बुद्धि बढ़ाने के उपाय ६-आसन और प्राणायाम ७-तुलसी के अमृतोपम गुण ८-महान जागरण ६-तुम महान हो १०-घरेलू चिकित्सा ११-दीर्घ जीवनके रहस्य १२-नेत्रों की प्राकृतिक चिकित्सा १३-स्वप्न दोष की मनोवैज्ञानिक चिकित्सा १४-दूधकी आश्चर्यजनक शक्ति १५-उन्नति का मूलमन्त्र ब्रह्मचर्य १६-उपवासके चमत्कार १७-स्त्री रोग चिकित्सा १६-बालरोग चिकित्सा २०-कब्ज की चिकित्सा २१-निरोग जीवन का राजमार्ग २२-चिरस्थाई यौवन २३-सौन्दर्य बढ़ाने के ठोस उपाय २४-मनुष्य शरीर की बिजली के चमत्कार २५-पुत्र-पुत्री उत्पन्न करने की विधि २५-हमारी पारिवारिक समस्यायें २६-मन चाही सन्तान २७-दाम्पत्ति जीवन का सुख २८-हमारी आन्तरिक शत्रु २६-क्याखायें ? क्योंखायें ? कैसेखायें ? ३०-हमारे सभ्यताके कलङ्क ३१-धनवान बनने के गुप्त रहस्य ३२-मरने के बाद हमारा क्या होता है ? ३३-मित्रभाव बढ़ानेकी कला ३४-आकृति देखकर मनुष्य की पहिचान ३५-हमें स्वप्न क्यों दीखते हैं ? ३६-विचार करने की कला ३७-हम वक्ता कैसे बन सकते हैं ? ३८-सफलताके तीन साधन ३६-जिंदगी कैसे जिएँ ४०-प्रसिद्धि और समृद्धि ४१-ईश्वर कौन है ? कहाँ है ? कैसा है ? ४२-क्या धर्म ? क्या अधर्म ? ४३-ईश्वर और स्वर्ग प्राप्ति का सच्चा मार्ग ४४-भारतीय संस्कृति का बीज मंत्र यज्ञोपवीत ४५-यज्ञोपवीत द्वारा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति ४६-मैं क्या हूँ ? ४७-वशीकरण की सच्ची सिद्धि ४८-ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग।

'अखण्ड-ज्योति' प्रेस, मथुरा।

लेखक-
श्रीराम शर्मा आचार्य
गायत्री तपोभूमि, मथुरा ।

ॐ भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात् ।

प्रकाशक-
"अखण्ड ज्योति" प्रेस, मथुरा

म वार] सन् १९५८ [मूल्य

गायत्री के जगमगाते हीरे

ॐ—ईश्वरीय सत्ता का तत्व ज्ञान।

ओमित्येव सुनामध्येय मनघं विश्वात्मनो ब्रह्मणः
सर्वेष्वेव हितस्य नामसु बसोरेतत्प्रधानं मतम्।
यं वेदा निगदन्ति न्याय निरतं श्रीसच्चिदानन्दकम्
लोकेशं समदर्शिनं नियमिनं चाकार हीनं प्रभुम्॥

अर्थ—जिसको वेद न्यायकारी, सच्चिदानन्द, संसार का स्वामी, समदर्शी, नियामक और निराकार कहते हैं, जो विश्व की आत्मा है, उस ब्रह्म के समस्त नामों से श्रेष्ठ नाम, ध्यान करने योग्य "ॐ" यह मुख्य नाम माना गया है।

गायत्री-मन्त्र के प्रारम्भ में 'ॐ' लगाया जाता है। 'ॐ' परमात्मा का प्रधान नाम है। ईश्वर को अनेक नामों से पुकारा जाता है। "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" उस एक ही परमात्मा को ब्रह्मवेत्ता अनेक प्रकार से कहते हैं। विभिन्न भाषाओं और सम्प्रदायों में उसके अनेक नाम हैं। एक-एक भाषा में ईश्वर के पर्यायवाची अनेक नाम हैं फिर भी वह एक ही है। इन नामों में ॐ को प्रधान इसलिए माना है कि प्रकृति की सञ्चालक सूक्ष्म गति-विधियों को अपने योग-बल से देखने वाले ऋषियों ने समाधि लगाकर देखा है कि प्रकृति के अन्तराल में प्रतिक्षण एक ध्वनि उत्पन्न होती है जो 'ॐ' शब्द से मिलती-जुलती है। सूक्ष्म प्रकृति इस ईश्वरीय नाम का प्रतिक्षण जप और उद्घोष करती है इसलिए अकृत्रिम, दैवी, स्वयं घोषित, ईश्वरीय नाम सर्वश्रेष्ठ कहा गया है।

आस्तिकता का अर्थ है—सतोगुणी, दैवी, ईश्वरीय,

परमार्थिक भावनाओं को हृदयङ्गम करना। नास्तिकता का अर्थ है— तामसी, आसुरी, शैतानी, भोगवादी, स्वार्थपूर्ण वासनाओं में लिप्त रहना। यों तो ईश्वर भले-बुरे दोनों तत्वों में है पर जिस ईश्वर की हम पूजा करते हैं, भजते हैं, ध्यान करते हैं, वह ईश्वर सतोगुण का प्रतीक है। ईश्वर की प्रतिष्ठा, पूजा, उपासना, प्रशंसा, उत्सव, समारोह, कथा, यात्रा, लीला आदि का तात्पर्य है सतोगुण के प्रति अपना अनुराग प्रकट करना, उसको हृदयङ्गम करना, उसमें तन्मय होना। इस प्रकृया से हमारी मनोभूमि पवित्र होती है और हमारे विचार तथा कार्य ऐसे हो जाते हैं जो हमारे व्यक्तिगत तथा सामूहिक जीवन में स्थायी सुख-शान्ति की सृष्टि करते हैं। ईश्वर उपासना का महा प्रसाद साधक की अन्तरात्मा में सतोगुण की वृद्धि के रूप में, तत्क्षण मिलना आरम्भ हो जाता है।

गायत्री गीता के उपरोक्त प्रथम श्लोक में ईश्वर की अन्य अनेक विशेषताऐं बताई गई हैं। वह न्यायकारी, समदर्शी, नियामक तथा निराकर है। विश्व की आत्मा है। विश्व के समस्त प्राणियों में आत्मा रूप से वह निवास करता है। मन,बुद्धि,चित्त, अहङ्कार का अन्तःकरण चतुष्टय विकृत हो जाने से अज्ञान और माया का, स्वार्थ और भाग का, मैल बढ़ जाने से अनेकों मनुष्य कुविचारों और कुकर्मों में ग्रस्त देखे जाते हैं, फिर भी उनका अन्तरात्मा ईश्वर का अंश होने के कारण भीतर से उन्हें सन्मार्ग पर चलने का आदेश देता रहता है। यदि उस अन्तरात्मा की पुकार को सुना जाय, उसके संकेतों पर चला जाय तो बुरे से बुरा मनुष्य भी थोड़े समय में श्रेष्ठतम महात्मा बन सकता है। गीता में भगवान ने कहा है कि— "सब छोड़कर मेरी शरण में आ मैं तुझे सब पापों से मुक्त कर

दूँगा।" अन्तरात्मा की, परमात्मा की शरण में जाने से, आत्म-समर्पण करने से, दैवी प्रेरणाओं को हृदयङ्गम करने से मनुष्य ईश्वर का सच्चा भक्त बनता है। भक्त तो भगवान का प्रत्यक्ष रूप है।

गायत्री का प्रथम अक्षर ॐ हमें इन्हीं सब बातों की शिक्षा देता है। यह ईश्वर का सर्वश्रेष्ठ नाम है, इसके उच्चारण से सूक्ष्म प्रकृति आत्म-चेतना के साथ सम्बन्धित होने की साधना अपने आप होती चलती है। यह ईश्वर का स्वयंघोषित सबसे छोटा नाम है। साथ ही गायत्री गीता ने बताया है कि वह ईश्वर न्यायकारी, प्रभु समदर्शी, अविनाशी, चैतन्य, आनन्द-स्वरूप, नियम रूप, निराकार एवं विश्व-आत्मा है। इन नामों में जो महत्वपूर्ण तत्व-ज्ञान छिपा हुआ है उसे जानकर उसको आचरण रूप से लाकर हमें ॐ की उपासना करनी चाहिए।

'ॐ' में तीन अक्षर मिले हुए हैं अ, उ, म्। अ, का अर्थ है आत्म-परायणता, शरीर के विषयों से मन हटाकर आत्मानन्द में रमण करना। उ, का अर्थ है--उन्नति अपने को शारीरिक, मानसिक, आर्थिक एवं आत्मिक सम्पत्तियों से सम्पन्न करना। म, का अर्थ है—महानता, क्षुद्रता, संकीर्णता, स्वार्थ-परता, इन्द्रिय लोलुपता को छोड़ कर प्रेम, दया, उदारता, सेवा, त्याग, संयम एवं आदर्श के आधार पर जीवन-यापन की व्यवस्था बनाना। इन तीनों अक्षरों में जो शिक्षा है उसे अपनाकर व्यवहारिक रूप से "ॐ" की, ईश्वर की उपासना करनी चाहिए।

भूः—सर्वत्र अपना ही प्राण बिखरा पड़ा है

भूर्वै प्राण इति ब्रुवन्ति मुनयो वेदान्त पारङ्गता।
प्राणः सव विचेतनेषु प्रसृतः सामान्य रूपेण च ॥
एतेनैव विसिद्ध्यते हि सकलं नून समानं जगत्।
दृष्टव्यं सकलेषु जन्तुषु जनै नित्यंहृतश्चात्मवम् ॥

अर्थ—-मनन करने वाले मुनि लोग प्राण को भूः कहते हैं, यह प्राण सव में समष्टि रूप से फैला हुआ है। इससे सिद्ध है कि यहाँ सव समान हैं। अतएव सव मनुष्यों और प्राणियों को अपने समान ही समझना चाहिए।

हम शरीर हैं इस भावना से भावित होकर लोग वही कार्य करते हैं जो शरीर को सुख देने वाले हैं, आत्मा के आनंद की प्रायः सर्वदा उपेक्षा की जाती रहती है। यही माया अविद्या, भ्रांति, वन्धन में बाँधने वाली है। मैं वस्तुतः कौन हूँ ? मेरा स्वार्थ, सुख और आनन्द किन वातों में निर्भर है ? मेरे जीवन का उद्देश्य एवं लक्ष क्या है ? इन प्रधान प्रश्नों की लोग उपेक्षा करते हैं और निरर्थक वाल-क्रीड़ाओं में उलझे रहकर मानव-जीवन के महत्वपूर्ण क्षणों को यों ही गँवा देते हैं।

गायत्री के 'भूः' शब्द में वताया गया है कि हम शरीर नहीं प्राण हैं—आत्मा है। जव प्राण निकल जाता है तो शरीर इतना अस्पर्श एवं विपाक्त हो जाता है उसे जल्द से जल्द जलाने, गाढ़ने या किसी अन्य प्रकार से नष्ट करने की आवश्यकता अनुभव होती है। आत्मा के संसर्ग से ही यह हाड़, माँस, मल-मूत्र आदि घृणित वस्तुओं से वना हुआ शरीर सुख, यश, वैभव, प्रतिष्ठा का माध्यम रहता है जव वह संयोग विछुड़ जाता है तो

लाश, पशुओं के मृत शरीर के समान भी उपयोगी नहीं रहती।

हम प्राण हैं—आत्मा हैं। ज्ञान सञ्चय करने से पूर्व हमें अपने आपको जानना चाहिए। सुख-सामिग्री इकट्ठा करने का प्रयत्न करने से पूर्व यह देखना चाहिए कि आत्मा को सुख-शांति किन वस्तुओं से मिल सकती है। समृद्धि, यश, प्रतिष्ठा, पद आदि सञ्चित करने से पूर्व यह सोचना चाहिए कि आत्म-गौरव, आत्म-सम्मान, आत्मोन्नति का केन्द्र कहाँ है? शरीर को प्रधानता देना और आत्मा की उपेक्षा करना यह भौतिकवाद है। आत्मा को प्रधानता देना और शरीर की उचित रक्षा करना यह आत्म-वाद है। गायत्री कहती है कि हम आत्मा हैं इसलिए हमारा सर्वोपरि स्वार्थ आत्म-परायण में है, हमें आत्मवादी बनना चाहिए और आत्म-कल्याण, आत्म-चिन्तन, आत्मोन्नति एवं आत्म-गौरव की सबसे अधिक चिन्ता करनी चाहिए।

आत्म-कल्याण का मुख्य लक्षण सबमें अपनेपन का दर्शन करना है। विश्वव्यापी प्राण एक है, प्राणिमात्र में एक ही आत्मा निवास कर रही है, एक ही नाव में सब सवार हैं, एक ही नदी की सब तरंगें हैं, एक ही सूर्य के सब प्रतिबिम्ब हैं, एक ही जलाशय के सब बुलबुले हैं, एक ही माला के सब दाने हैं, सबमें एक ही प्रकाश जगमगा रहा है। सम्पूर्ण समाज शरीर है हम सब उसके अङ्ग मात्र हैं। आत्मा एक मनुष्य की होती है, सम्पूर्ण प्राणियों की विश्वव्यापी परम विस्तृत जो आत्मा है उसे परमात्मा या विश्वात्मा कहते हैं। नर-नारायण, जनता-जनार्दन, विराट-स्वरूप विश्वनाथ, सर्वेश्वर, सर्वान्तर्यामी आदि शब्दों में यही भाव भरा हुआ है कि एक ही चैतन्य तत्व प्राणिमात्र में समाया हुआ

है। इसलिए सब आपस में सम्बन्धित हैं, सब आपस में पूर्ण आत्मीय हैं, पूर्णतया एक हैं।

गायत्री की शिक्षा है कि अपनी आत्मा को सबमें और सबकी आत्मा को अपने में समाई हुई देखो। अपना वही लाभ स्वीकार करो जो समाज के लाभ का एक भाग है। अपने जिस कार्य से औरों की हानि होती है, बहुसंख्यक नागरिकों पर जिसका बुरा प्रभाव पड़ता है ऐसा लाभ सर्वथा त्याज्य है।

गायत्री का भूः शब्द बार-बार हमारे लिए आदेश करता है कि हम शरीर नहीं आत्मा हैं। इसलिए आत्म-कल्याण के लिए, आत्मोन्नति के लिए, आत्म-गौरव के लिए, प्रयत्नशील रहें और समाज-सेवा द्वारा विराट पुरुष, विश्व-मानव, परमात्मा की पूजा करें।

भुवः—कर्मयोग की शिक्षा।

भुवर्नाशो लोके सकल विपदां वै निगदितः।
कृतं कार्यंकर्त्तव्यमिति मनस्या चास्य करणम्।
फलाशा मर्त्यो ये विदधति न वै कर्म निरताः।
लभन्ते नित्यं ते जगति हि प्रसादं सुमन साम्॥

अर्थ—संसार में समस्त दुखों का नाश ही भुवः कहलाता है। कर्तव्य-भावना से किया गया कार्य ही कर्म कहलाता है। परिणाम के सुख की अभिलाषा को छोड़कर जो कर्म करते हैं वह मनुष्य सदा प्रसन्न रहते हैं।

गायत्री का भुवः शब्द हमें कर्म-योग का सन्देश देता है, क्योंकि इसी आधार पर समस्त प्रकार के दुखों से छुटकारा पाया

जा सकता है। मनुष्य नाना प्रकार की आशाऐं, तृष्णाऐं, लालसाऐं, कामनाऐं किया करता है। वे इतनी अनियन्त्रित और अवास्तविकता होती हैं कि उनकी पूर्ति लगभग असम्भव रहती है। एक इच्छा की पूर्ति भी हो जाय तो वह तुरन्त ही अपना रूप बढ़ाकर और बड़ी हो जाती है। इस प्रकार वह मनुष्य सदा अभाव-ग्रस्त 'दीन' एवं इच्छुक ही बना रहता है। तृप्ति का आनन्द उससे दूर ही रहता है।

वस्तुओं और परिस्थितियों में सुख ढूँढ़ना एक प्रकार की मानसिक मृग-तृष्णा है। शरद ऋतु में जब भूमि के क्षार फूल कर ऊपर आ जाते हैं तो प्यासा मृग उन्हें दूर से पानी समझता है पर पास जाने से उसे अपने भ्रम का पता चलता है और अभीष्ट वस्तु न पाकर दुखी तथा निराश होता है। फिर उसे दूसरी जगह ऐसा ही भ्रम जल दिखाई पड़ता है वहाँ भी दौड़ता और निराश होता है। इसी उलझन में पड़ा हुआ वह भारी कष्ट सहता रहता है। यही दशा तृष्णाग्रस्त फल लोभी मनुष्यों की होती है। यद्यपि उन्हें भगवान बहुत कुछ देता है पर उस प्रभु प्रसाद को प्राप्त करने के सौभाग्य से प्रसन्न होने का अवकाश ही नहीं मिलता, उधर ध्यान ही नहीं जाता ताकि सन्तोष अनुभव कर सकें।

आगे बढ़ना, उन्नति करना, अधिक उत्तम स्थिति प्राप्त करना, ऊपर उठना, विकसित होना जीव का स्वाभाविक धर्म है। इस धर्म कर्त्तव्य को पालन किये बिना कोई प्राणी चैन से नहीं बैठता, जो इस दिशा में प्रयत्न नहीं कर रहा है उसकी आत्मा हर घड़ी चोंटती रहेगी और वह मन्द आत्म-हत्या का कष्ट सदा ही भोगता रहेगा। इसलिए लोभ और तृष्णा से प्रेरित होकर नहीं आत्म-धर्म को पालन करने के लिए हमें अपनी शारीरिक,

मानसिक, आर्थिक, सामाजिक एवं आत्मिक उन्नति करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहना चाहिए। कर्तव्य के लिए पूरी शक्ति पूरी दिलचस्पी और सावधानी से तत्परता पूर्वक लगे रहना कर्मयोगी के आनन्द का केन्द्र उसकी क्रिया प्रणाली होती है। वह अपने सत्प्रयत्नों में हर घड़ी आत्म-सम्मान और आत्म-सन्तोष का रसास्वादन करता है।

कर्मयोगी अनुद्विग्न रहता है। वह जरा-जरा से हानि-लाभ में मानसिक सन्तुलन को नष्ट नहीं होने देता। हर्ष-शोक उसके लिए समान है, हानि-लाभ में, सफलता-असफलता में उसे मानसिक विक्षोभ नहीं होता, क्योंकि उसका केन्द्र बिन्दु कर्म है। यदि अपना कर्तव्य पालन किया जा रहा है तो असफलता में दुखी या सफलता में हर्षोन्मत्त होने का कोई कारण नहीं। फल देने वाली शक्ति दूसरी है, हम तो अपना कर्तव्य पूरा करें यह भावना स्थिति प्रज्ञ की है, अनाशक्त योगी की है। जो इस दृष्टिकोण से सोचता है वह सदा प्रसन्न ही रहता है। दुख या कष्ट में भी उसे अप्रसन्नता का कोई कारण दिखाई नहीं पड़ता।

गायत्री का 'भुवः' शब्द हमें कर्मयोगी बनाता है। इस आदेश को शिरोधार्य करने वाला कर्म-बन्धन में नहीं फँसता इसलिए जीवन मुक्ति सदा उसके करतलगत रहती है।

स्वः—स्थिरता और स्वस्थता का संदेश।

स्वरेषो वै शब्दो निगदति मनः स्थैर्य करणम्।
तथा सौख्यं स्वास्थ्यं ह्युपदिशति चित्तस्य बलतः॥

निमग्नस्य सत्यव्रत सरसि चा चञ्चुत् उत् ।
त्रिधां शांतिञ्च भिक्षु वि च लभते संयम रतः ॥४॥

अर्थ--'स्वः' यह शब्द मन की स्थिरता का निर्देश करता है। चञ्चल मन को स्थिर और स्वस्थ रखो यह उपदेश देता है। सत्य में निमग्न रहो यह कहता है। इस उपाय से संयमी पुरुष तीनों प्रकार की शान्ति प्राप्त करते हैं।

जीवन में आये दिन दुरङ्गी घटनाऐं घटित रहती हैं। आज लाभ है तो कल नुकसान, आज बलिष्ठता है तो कल बीमारी, आज सफलता है तो कल असफलता। दिन-रात का चक्र जैसे निरन्तर घूमता है वैसे ही सुख-दुख का, सम्पत्ति-विपत्ति का, उन्नति-अवनति का पहिया भी घूमता रहता है। यह हो नहीं सकता कि सदा एक सी स्थिति रही आवे। जो बना है वह बिगड़ेगा, जो बिगड़ा है वह बनेगा, स्वासों के आवागमन का नाम ही जीवन है। साँस चलना बन्द हो जाय तो जीवन भी समाप्त हो जायगा। सदा एक सी स्थिति बनी रहे, परिवर्तन बन्द हो जाय तो संसार का खेल ही खतम हो जायगा। एक के लाभ में दूसरे की हानि है और एक की हानि में दूसरे का लाभ। एक शरीर की मृत्यु ही दूसरे शरीर का जन्म है। यह मीठे और नमकीन हानि और लाभ के दोनों ही स्वाद भगवान ने मनुष्य के लिये इसलिये बनाये हैं कि वह दोनों के अन्तर और महत्व को समझ सके।

गायत्री के 'स्वः' शब्द में मानव प्राणी को शिक्षा दी गई है। मन को अपने में अपने अन्दर स्थिर रखो। अपने भीतर दृढ़ रहो। घटनाओं और परिस्थितियों को जल-तरंगें समझो उनमें क्रीड़ा-कल्लोल का आनन्द लो। अनुकूल और प्रतिकूल दोनों ही स्थितियों का रसास्वादन करो, किन्तु उनके कारण अपने को

उद्विग्न, अस्थिर, असन्तुलित मत होने दो, जैसे सर्दी-गर्मी की परस्पर विरोधी ऋतुओं को हम प्रसन्नतापूर्वक सहन करते हैं। उन ऋतुओं के दुष्प्रभाव से बचने के लिए वस्त्र, पङ्खा, अँगीठी, शर्बत, चाय आदि की प्रतिरोधात्मक व्यवस्था कर लेते हैं वैसे ही सुख-दुख के अवसरों पर भी उनकी उत्तेजना का शमन करने योग्य विवेक तथा कार्य-क्रम की हमें व्यवस्था कर लेनी चाहिए। कमल सदा पानी में रहता है पर उसके पत्ते जल से ऊपर ही रहते हैं, उसमें डूबते नहीं। इसी प्रकार साक्षी द्रष्टा, निर्लिप्त, अनासक्त एवं कर्मयोगी की विचार-धारा अपनाकर हर परिस्थिति को, हर चढ़ाव-उतार को देखें और उसमें कडुये-मीठे रसों का हँसते-हँसते रसास्वादन न करें।

गायत्री का 'स्वः' शब्द बताता है कि इन हर्ष-शोक की बाल-क्रीड़ाओं में न उलझे रहकर हमें आत्म-परायण होना चाहिए। 'स्व' को पहचानना चाहिए। आत्म-चिन्तन, आत्म-विश्वास, आत्म-गौरव, आत्म-निष्ठा, आत्म-साधन, आत्म-उन्नति, आत्म-निर्माण यह वह कार्य है जिनमें हमें इच्छा-शक्ति, कल्पना-शक्ति एवं क्रिया-शक्ति का उपयोग होना चाहिए, क्योंकि अन्दर का मूल्य केन्द्र, उद्गम स्रोत, आत्मा ही है।

आत्म स्थित मनुष्य का अन्तस्थल स्वस्थ होने से वह सदा प्रसन्न रहता है। उसके चहरे पर प्रसन्नता नाचती रहती है। चहरा सदा मुसकराता हुआ, हँसता हुआ, खिलखिलाता हुआ दिखाई देता है। उसकी वाणी से मधु टपकता रहता है और बोलने में फूल झड़ते हैं। स्नेह, आत्मीयता, नम्रता, सौजन्य एवं हित कामना का सम्मिश्रण होते रहने से उसकी वाणी ही सरल एवं हृदय-ग्राही हो जाती है।

स्वस्थ आत्मा में स्थिति शक्ति बालकों की तरह सरल छल

प्रतिममता, आत्मीयता, दया एवं सहानुभूति होती है। वह किसी से नहीं कुढ़ता, न किसी का बुरा चाहता है। ईश्वर पर विश्वास होने से वह भविष्य के बारे में आशावादी और निर्भय रहता है। फलस्वरूप अप्रसन्नता उसके पास नहीं फटकती और आनन्द एवं उल्लास से उसका अन्तःकरण भरा रहता है। यह आनन्दमयी स्थिति उसकी मुखाकृति एवं वाणी से हर घड़ी छलकती रहती है। गायत्री का 'स्वः' शब्द हमें ऐसी ही स्वस्थता की ओर ले जाता है।

तत्—मृत्यु से मत डरिये।

ततो वैनिष्पत्तिः स श्रुविमतिमान् परिडतवरः
विजानन् गुह्यं जीवन मरणयोयस्तुनिखिलम् ॥
अनन्ते संसारे विचरति भयासक्ति रहितः।
तथा निर्माणं वैनिजगति विधीनां प्रकुरुते ॥

गायत्री गीता के उपरोक्त श्लोक में गायत्री-मन्त्र के प्रथम पद 'तत्' की विवेचना करते हुए बताया है कि—"इस संसार में वही बुद्धिमान है जो जीवन और मरण के रहस्य को जानता है। भय एवं आसक्ति रहित होकर जीता है और उसी आधार पर अपनी गति-विधियों का निर्माण करता है।"

देखा जाता कि लोग जीवन से बहुत अधिक प्यार करते हैं और मृत्यु से बहुत डरते हैं। फाँसीघर की कोठरियों में रहने वाले कैदियों और असाध्य रोगों के निराश रोगियों से मिलते रहने के अनेक अवसर प्राप्त होते हैं। उनके अन्तस्थल की दशा को, वेदना को समझ सकने के कारण हम यह जानते हैं कि लोग

मृत्यु से कितना डरते हैं। कभी खतरे की सम्भावना आवे सिंह, व्याघ्र, सर्प, चोर, डाकू, भूत, अन्धकार आदि का भय सामने आने पर प्राण संकट अनुभव करके लोग थर-थर काँपने लगते हैं होश-हवाश उड़ जाते हैं, मृत्यु चाहे प्रत्यक्ष रूप से सामने न हो पर उसकी कल्पना मात्र से इतना भय मालूम होता है, जो मृत्यु के वास्तविक कष्ट से किसी प्रकार कम नहीं होता।

विनाशात्मक परिस्थितियाँ हर एक के जीवन में रहती हैं क्योंकि वे आवश्यक, स्वाभाविक, सृष्टि क्रम के अनुकूल एवं अनिवार्य हैं। परन्तु लोग उनसे बुरी तरह डरते हैं। विपत्ति आने पर तो डरते ही हैं पर अनेक बार विपत्ति की आशङ्का, सम्भावना, कल्पना मात्र से भयभीत होते रहते हैं इस प्रकार जीवन का अधिकांश भाग घबराहट और दुःख में व्यतीत होता है। यहाँ यह आश्चर्य होता है कि विनाश जब जीवन का एक स्वाभाविक एवं अनिवार्य अंग है तो लोग उससे इस प्रकार डरते क्यों हैं कि धनी, निर्धन, सम्पन्न और विपन्न सभी का जीवन असन्तोष, अतृप्ति, खिन्नता, चिन्ता, निराशा आदि से भरा रहता है। पूर्ण सुखी मनुष्य ढूँढ़ निकालना आज असम्भव नहीं तो कष्टसाध्य अवश्य है।

पर मृत्यु में डरने की कोई बात नहीं। जैसे नया वस्त्र पहनने में, नई जगह जाने में स्वभावतः एक प्रसन्नता होती है वैसी ही प्रसन्नता मृत्यु के सम्बन्ध में भी होनी चाहिए। आत्मा एक यात्री के समान है। उसे विविध स्थानों, व्यक्तियों, परिस्थितियों के साथ सम्बन्ध स्थापित करते हुए वैसी ही प्रसन्नता होनी चाहिए जैसी कि सैर-सपाटा करने के लिए निकले हुए सैलानी लोगों को होती है।

मरने से डरने का कारण हमारा अज्ञान है। परमात्मा

के इस सुन्दर उपवन में एक से एक मनोहर वस्तुऐं हैं। यह यात्रियों के मनोरञ्जन की सुव्यवस्था है, पर वह यात्री जो इन दर्शनीय वस्तुओं को अपनी मान बैठता है उन पर स्वामित्व प्रकट करता है, उन्हें छोड़ना नहीं चाहता, अपनी मूर्खता के कारण दुख का ही अधिकारी होगा। इस संसार का हर पदार्थ, हर परमाणु तेजी के साथ बदल रहा है। इस गतिशीलता का नाम ही जीवन है। यदि वस्तुओं का उत्पादन, विकास और विनाश का क्रम टूट जाय तो यह संसार एक निर्जीव जड़ पदार्थ बनकर रह जायगा। यदि इसे आगे चलते रहना है, तो निश्चय ही उत्पादन, परिवर्तन और नाश क्रम अनिवार्यतः जारी रहेगा। शरीर चाहे हमारा अपना हो, अपने प्रियजन का हो, उदासीन का हो या शत्रु का हो, निश्चय ही परिवर्तन और मृत्यु को प्राप्त होगा। इस जीवन-मृत्यु के अटल नियम को न जानने के कारण ही मृत्यु जैसी अत्यन्त साधारण घटना के लिए हम रोते, चिल्लाते, छाती कूटते, भयभीत होते और दुख मनाते हैं।

गायत्री का आरम्भिक पद 'तत्' हमें यही शिक्षा देता है कि मृत्यु से डरो मत, उससे डरने की कोई बात नहीं। डरने की बात है हमारा गलत दृष्टिकोण, गलत कार्य-क्रम। यदि हम अपने कर्तव्य पर प्रतिक्षण सजगता पूर्वक आरूढ़ रहें तो न हमारी न किसी दूसरे की मृत्यु हमारे लिए कष्टकारक होगी।

सवितुः—शक्तिशाली एवं तेजस्वी बनिये

सवितुस्तु पदं वितनोतिध्रु वं मनुजोबलवान् सवितेतिभवेत्।
विषया अनुभूतिपरिस्थितय, श्चसदात्मन एवगणोदतिसः॥

अर्थ--गायत्री का 'सविता' पद यह बतलाता है कि मनुष्य को सूर्य के समान बलवान होना चाहिए और "सभी विषयों की अनुभूतियाँ तथा परिस्थितियाँ अपने अन्दर हैं" ऐसा मानना चाहिए।

परिस्थितियों का जन्मदाता मनुष्य स्वयं है। हर मनुष्य अपने भाग्य का निर्माण स्वयं करता है। कर्म-रेख, भाग्य, तकदीर, ईश्वर की इच्छा, ग्रहदशा, दैवी आपत्ति, आकस्मिक लाभ आदि की विलक्षणता देखकर कई आदमी भ्रमित हो जाते हैं, वे सोचते हैं कि ईश्वर की जो मर्जी होगी, कर्म में जो लिखा होगा वह होगा। हमारे प्रयत्न या पुरुपार्थ से प्रारब्ध को बदला नहीं जा सकता, इसलिए कर्तव्य-पालन का श्रम करने की अपेक्षा चुप बैठ रहना या देवी-देवताओं की मनौती मानना ठीक है। ऐसे आदमी यह भूल जाते हैं कि भाग्य, प्रारब्ध, ईश्वरेच्छा आदि की अदृश्य शक्तियाँ खुशामद या पक्षपात पर आधारित नहीं हैं कि जिस पर प्रसन्न हो जाँय उसे चाहे जो दे दें और जिस पर नाराज हो जाँय उससे बदला लेने के लिए उस पर आपत्तियों का पहाड़ पटक दें।

(१) शरीर-बल, (२) बुद्धि-बल, (३) विद्या-बल, (४) धन-बल, (५) सङ्गठन-बल, (६) चरित्र-बल, (७) आत्म-बल। यह सात बल जीवन को प्रकाशित, प्रतिष्ठित, सम्पन्न और सुस्थिर बनाने के लिए आवश्यक हैं। सविता सूर्य के रथ में सप्त अश्व जुते हुए हैं। सविता की सात रङ्ग की किरणें होती हैं जो इन्द्र-धनुष में तथा बिल्लौरी काँच में देखी जा सकती हैं। गायत्री का सविता पद हमें आदेश करता है कि हम भी सूर्य के समान तेजस्वी बनें और अपने जीवन-रथ को चलाने के लिए उपरोक्त

सातों बलों को घोड़े के समान जुता हुआ रखे। जीवन-रथ इतना भारी है कि एक-दो घोड़े से ही उसे नहीं चला सकते। जीवन की गति-विधि ठीक रखनी है तो उसे खींचने के लिए सात अश्व, सात बल जोतने पड़ेंगे।

(१) स्वस्थ शरीर, (२) अनुभव, विवेक, दूरदर्शिता पूर्ण व्यवहार बुद्धि, (३) विशाल अध्ययन, श्रवण-मनन और सत्सङ्ग द्वारा सुविकसित किया हुआ मस्तिष्क, (४) जीवनोपयोगी साधन सामिग्रियों का समुचित मात्रा में सञ्चय, (५) सच्चे मित्रों, बान्धवों एवं सहयोगियों की अधिकता, (६) ईमानदारी, मधुरता, परिश्रमशीलता, आत्म-सम्मान की रक्षा, सद्व्यवहार, उदारता जैसे गुणों से परिपूर्ण उत्तम चरित्र, (७) ईश्वर और धर्म में सुदृढ़ आस्था, आत्म-ज्ञान, कर्मयोगी दृष्टिकोण, निर्भय मनोभूमि, सतोगुणी विचार-व्यवहार, परमार्थ परायणता। यह सात प्रकार के बल प्रत्येक मनुष्य के लिए अतीव आवश्यक हैं। इन सब का साथ-साथ सन्तुलित विकाश होना चाहिए।

गायत्री का 'सवितुः' पद हमें उपदेश करता है कि सूर्य के समान तेजस्वी बनो, सप्त अश्वों को, सप्त बलों को अपने जीवन-रथ में जुता रखो। सूर्य केन्द्र है और अन्य समस्त ग्रह उसकी परिक्रमा करते हैं वैसे ही तुम भी अपने को कर्त्ता केन्द्र और निर्माता मानो। परिस्थितियाँ, वस्तुऐं, घटनाऐं तो हमारी परिक्रमा मात्र करती हैं। जैसे परिक्रमा करने वाले ग्रह, सूर्य को प्रभावित नहीं करते वैसे ही कोई परिस्थिति हमें प्रभावित नहीं करती। अपने भाग्य के, अपनी परिस्थितियों के निर्माता हम स्वयं हैं अपनी क्षमता के आधार पर अपनी हर एक इच्छा और आवश्यकता को पूरा करने में हम पूर्ण समर्थ हैं। गायत्री माता

हम बालकों को गोदी में लेकर उङ्गली के संकेत से सविता को दिखाती हैं और समझाती हैं कि मेरे बालको, सविता बनो, सविता का अनुकरण करो।

वरेण्यं—अच्छाई को ही ग्रहण कीजिये

वरेण्यञ्चै तद्वै प्रकट यति श्रेष्ठन्त्वमनिशम्,
सदा पश्येच्छ्रेष्टं मनन मपि श्रेष्ठस्य विदधेत,
तथा लोके श्रेष्ठं सरलमनसा कर्म च भजेत् ॥
तदेत्थं श्रेष्ठत्वं व्रजति मनुजः शोभित गुणैः ॥

अर्थ—'वरेण्यं' शब्द प्रकट करता है कि प्रत्येक मनुष्य को नित्य श्रेष्ठता की ओर बढ़ना चाहिए, श्रेष्ठ देखना, श्रेष्ठ चिन्तन करना, श्रेष्ठ विचारना और श्रेष्ठ कार्य करना,इस प्रकार मनुष्य श्रेष्ठता को प्राप्त होता है।

दुनियाँ को दुरङ्गी कहा जाता है। इसमें भले और बुरे दोनों ही तत्व हैं। पाप-पुण्य का, सुख-दुख का, उन्नति-अवनति का, प्रकाश-अन्धकार का युग्म सर्वत्र उपस्थित रहता है। इन युग्मों में से केवल वही पक्ष ग्रहण करना चाहिए जो हमारे लिए हितकर है। एक ओर नीचता, विलासता, शैतानी, दुराचार, स्वार्थपरता का निकृष्ट मार्ग है दूसरी ओर आत्म-गौरव, सदाचार, महानता, परमार्थ का श्रेष्ठ मार्ग है। गायत्री मन्त्र का वरेण्यं शब्द बताता है कि इन दो मार्गों में से श्रेष्ठता का मार्ग ही कल्याणकारक है।

कितने ही व्यक्ति अशुभ चिन्तक होते हैं। उनकी विचार-धारा बहुधा अनिष्ट की दिशा में प्रवाहित होती रहती है। दूसरे उन्हें सताते हैं, बुराई करते हैं, शत्रुता रखते हैं, हानि पहुँचाते हैं, स्वार्थ के कारण ही सम्बन्ध रखते हैं, ऐसी मान्यता बनाकर वे दूसरों की शिकायत ही किया करते हैं, भाग्य उल्टा है, ईश्वर का कोप है, ग्रह दशा खराब है ऐसा सोचकर वे अपने भविष्य को निराशा, चिन्ता, भय से ओत-प्रोत देखा करते हैं। भोजन को स्वाद रहित, घर वालों को अवज्ञाकारी, कर्मचारियों को चोर, मित्रों को मूर्ख, परिचितों को दुर्गुणी समझकर ये सदा निन्दा, आक्षेप, व्यङ्ग, झुँझलाहट प्रकट करते रहते हैं। ऐसे लोग चाहे कितनी ही अच्छी स्थिति में क्यों न रहें उन्हें सदा दुर्भाग्य एवं असन्तोष ही सामने खड़ा दिखाई देगा।

गायत्री का 'वरेण्यं' शब्द द्वारा हमारे लिए यह शिक्षा है कि हम अनिष्ट को छोड़कर श्रेष्ठ का चिंतन करें। अशुभ चिन्तन को त्याग कर शुभ चिन्तन को अपनाएं जिससे मानसिक कुढ़न और असंन्तोष से छुटकारा मिले और सर्वत्र हरि परिस्थिति में, आनन्द ही आनन्द उपलब्ध हो। इसका अर्थ यह नहीं कि अधिक अच्छी परिस्थिति प्राप्त करने का प्रयत्न ही न किया जाय। वैसा प्रयत्न तो अवश्य जारी रखना चाहिए क्योंकि आत्मोन्नति करना, आगे बढ़ना, शक्ति सञ्चय करना, यह तो मनुष्य का कर्तव्य धर्म है। जो उसे नहीं करता वह धर्म घात का अपराधी बनता है। उन्नति के लिए हँसी-खुशी, सन्तोष, उत्साह एवं कठोर परिश्रम के साथ प्रयत्न करना एक बात है और अपनी स्थिति से असन्तुष्ट, दुखी, निराश रहकर सौभाग्य के लिए तरसते रहना दूसरी बात। निश्चित रूप से इनमें से पहली बात ही श्रेयष्कार है।

हमारी आकांक्षाएं, विचार-धाराएं, अभिलाषाएं, चेष्टाएं, क्रियाएं, अनभूतियाँ श्रेष्ठ होनी चाहिए। हम जो कुछ सोचें, जो कुछ करें, वह आत्मा के गौरव के अनुरूप हो। दुरङ्गी दुनियाँ में केवल 'वरेण्यं' ही वर्णन करने योग्य है, श्रेष्ठ ही ग्रहण करने योग्य है। स्मरण रखो गायत्री के 'वरेण्यं' शब्द की शिक्षा है—"अशुभ का त्याग और शुभ का ग्रहण", इस शिक्षा को हृदयङ्गम किये विना कोई मनुष्य सुख-शान्ति का जीवन व्यतीत नहीं कर सकता।

श्रेष्ठता दैवी सम्पत्ति है। जिसमें सद्गुण हैं, सद्विचार हैं, सद्भाव हैं, वस्तुतः वही सच्चा सम्पत्तिवान् है। जिसके आचरण सत्यता, लोक-हित, समाज-सेवा और धर्मानुकूल हैं वस्तुतः वही बड़ा आदमी है। आज संसार में मनुष्य का मूल्य उसकी धन-दौलत से नापा जाता है। जिसके पास जितने पैसे अधिक हैं वह उतना ही बड़ा माना जाता है परन्तु यह कसौटी विलकुल गलत है। गायत्री हमें सही दृष्टिकोण प्रदान करती है और वताती है कि किसी मनुष्य की आन्तरिक महानता ही उसकी श्रेष्ठता का कारण होती है। हम महान बनें, श्रेष्ठ बनें, सम्पत्तिवान बनें पर उसकी आधार-शिला भौतिक वस्तुओं पर नहीं, आत्मिक स्थिति पर निर्भर होनी चाहिए। अपनी अन्तःभूमि को उच्च बनाकर मनुष्यता के महान गौरव को प्राप्त करना हमारा लक्ष हो, यही गायत्री के 'वरेण्यं' शब्द की शिक्षा है।

भर्गो—निष्पाप बनने की प्रेरणा

भर्गो वेति पदं च व्याहरति वै, लोकाः सुलोको भवेत।
पापे पाप विनाशने त्वमिरता, दत्तावधानो वसेत॥

दृष्ट्वा दुषकृति दुर्विपाक निचयं, तेभ्योजुगुप्सेद्धि च ।
तन्नाशाय विधीयतां च सततं, संघर्ष मेभिः सहः ॥

अर्थ—"भर्गो:" यह पद बताता है कि मनुष्यों को निष्पाप बनना चाहिए। पापों से सावधान रहना चाहिए। पापों के दुष्परिणामों को देखकर उनसे घृणा करे और निरन्तर उनको नष्ट करने के लिए संघर्ष करता रहे।

गायत्री का चौथा पद "भर्गो" मनुष्य जाति के लिए एक बड़ी ही महत्वपूर्ण शिक्षा देता है। वह शिक्षा है निष्पाप होना। पाप का अर्थ है बुरा। बुराई-माने वे कर्म जो करने योग्य नहीं हैं। इस दृष्टि से वे सभी शारीरिक मानसिक क्रियाऐं पाप की श्रेणी में आ जाती हैं जिससे मनुष्य के व्यक्तिगत या सामूहिक जीवन में दुष्परिणाम उत्पन्न होते हैं।

पाप का फल दुःख होता है, इस बात को साधारणतः सभी लोग जानते हैं, फिर भी बहुत कम लोग ऐसे हैं जो पापों से बचने का प्रयत्न करते हैं। दुखों से लोग डरते हैं पर दुखों के कारण पाप को नहीं छोड़ते। यह ऐसा ही है जैसे कोई अग्नि तो हाथ पर रखे पर झुलसने से बचना चाहे। देखा जाता है कि अधिकांश मनुष्य ऐसी ही बालक्रीड़ा में व्यस्त रहते हैं।

महर्षि व्यास ने लोगों की इस मूर्खता पर आश्चर्य प्रकट किया कि वे दुःख को न चाहते हुए भी पाप करते हैं और पाप के अतिरिक्त भी दुःख का कोई अन्य कारण हो सकता है पर यह निश्चित है कि पाप की प्रतिक्रिया दुःख के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकती। बुरे कर्म का फल बुरा ही होगा, भले ही वह आज हो या कल। इतना होते हुए भी लोग पाप करने से बाज़ नहीं आते, इसका कारण वह भूल है जिसे शास्त्रीय भाषा में

माया, भ्रांति, अविद्या, असुर्या आदि नामों से पुकारा जाता है।

भर्गः शब्द हमें सचेत करता है कि यदि आपत्तियों से बचना है तो पाप रूपी सर्प से सावधान रहना चाहिए। कई लोग सोचते हैं कि धर्म का, पुण्य का आचरण बड़ा कठिन है। यह मान्यता ठीक नहीं। सदा ही सत्य, सरल और असत्य कठिन होता है। झूँठ बोलने में, बेईमानी में, ठगने में, व्यभिचार में, चालाकी, चतुराई, होशियारी, पेशबन्दी, तैयारी आदि की बड़ी आवश्यकता पड़ती है। थोड़ी सी भी चूक हो जाने पर भेद खुल सकता है और निन्दा तथा दण्ड का भागी होना पड़ता है। इसके विपरीत सच बोलने में, पूरा तोलने में, ईमानदारी वर्तने में, सदाचारी रहने में, किसी खटखट की जरूरत नहीं, मूर्ख से मूर्ख आदमी भी इन बातों में किसी प्रकार की कठिनाई अनुभव नहीं करता। उचित और आवश्यक चीजें सर्वत्र सुलभ हैं और अनुचित तथा अनावश्यक चीज दुर्लभ हैं। हवा, पानी, अन्न, वस्त्र आदि आवश्यक चीजें सर्वत्र सुलभ हैं, विष आदि अनावश्यक चीजें दुष्प्राप्य हैं। गाय, भैंस, बकरी, घोड़े आदि उपयोगी पशु आसानी से मिल जायेंगे। सिंह, व्याघ्र आदि हिंसक पशु कहीं-कहीं कठिनाई से देख पड़ते हैं। इसी प्रकार लाभदायक पुण्य कर्म सर्वथा सुलभ हैं, इसके विपरीत हानिकारक दुःखदायी पाप कर्मों की व्यवस्था बड़ी चालाकी और कठिनाई से बन पड़ती है। जो धर्म-पालन की, पुण्य-सञ्चय की इच्छा रखते हैं उनके लिए यह सब बहुत ही सुलभ है।

गायत्री का 'भर्गः' पद हमें निष्पाप बनने की शिक्षा और स्फूर्ति देता है। इस प्रेरणा से बल लेकर यदि पवित्रता की दशा

में हमारा प्रयत्न जारी रहे तो संसार के समस्त कष्टों एवं भव-बन्धनों से छूटकर हम जीवन मुक्ति का स्वर्गीय आनन्द प्राप्त कर सकते हैं।

देवस्य–देवत्व का अवलम्बन कीजिये

देवस्येति तुव्याकरोःत्यमरतां, मर्त्योऽपि संप्राप्यते— ।
देवानामिवि शुद्ध दृष्टि करणात सेवोपचाराद्भुनः ॥
निःस्वार्थ परमार्थ कर्म करणात् दीनाय दानात्तथः ।
वाह्याभ्यन्तारमस्यदेवभुवनं संयुज्यते चैवाहि ॥

अर्थ–"देवस्य" यह पद वतलाता है कि मरणधर्मा मनुष्य भी अमरता अर्थात् देवत्व को प्राप्त हो सकता है। देवताओं के समान शुद्ध दृष्टि रखने से, प्राणियों की सेवा करने से, परमार्थ सुकर्म करने से–मनुष्य के भीतर और वाहर देवलोक की सृष्टि होती है।

"देव" उसे कहते हैं जो दे। 'लेव' उसे कहते हैं जो ले। सुर और असुर में, देव और दानव में अन्तर केवल इतना ही है कि देव की मनोवृत्ति अपने लिए कम लेने की और दूसरों को अधिक देने की रहती है, इसके विपरीत दानव अपने लिए अधिक चाहते हैं और दूसरों को देने में वड़ी अनुदारता वरतते हैं। इन दोनों में से चाहे जिस गति को चाहे जो मनुष्य स्वेच्छा-पूर्वक प्राप्त कर सकता है। वह चाहे देव वन सकता है चाहे तो असुर पदवी प्राप्त कर सकता है।

देवताओं को अमर कहते हैं। अमर वह जो कभी मरे नहीं। अपने को अविनाशी आत्मा मान लेने से, आत्म साक्षात्कार कर लेने से, वह शरीरों की मृत्यु को मृत्यु अनुभव ही नहीं करता। उसे सदा यही अनुभव होता है कि मैं अमर हूँ। मेरा वास्तविक स्वरूप अविनाशी, अविछिन्न, अक्लेद्य, अशोष्य है। इसके अतिरिक्त देव मनोवृत्ति के मनुष्य के कर्म भी दैवी आदर्श, धर्म युक्त होते हैं। ऐसे विचार और कर्मों वाले महापुरुषों का यश, शरीर 'यावत चन्द्र दिवाकरौ' बना रहता है। शिव, दधीच, हरिश्चन्द्र, मोरध्वज, प्रहलाद, बुद्ध, गांधी आदि का यश, शरीर अमर है, उनकी मृत्यु कभी नहीं हो सकती। इसीलिए उनकी अमरता में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता। ऐसे अमर पुरुष सदा देव श्रेणी में ही गिने जायेंगे।

संसार की वस्तुओं को, समस्याओं को, परिस्थितियों को, लाभ-हानि को, परखने को, समझने की दो दृष्टियाँ, दो कसौटी होती हैं। एक को शुद्ध, दूसरी को अशुद्ध कहते हैं। शुद्ध दृष्टि से देखने वाला मनुष्य हर काम को आत्म-लाभ या आत्म-हानि की तराजू पर तोलता है। वह देखता है कि इस कार्य को करने में अत्यन्त कल्याण है या नहीं, जिस कार्य में स्थायी सुख होता है उसे ही वह ग्रहण करता है, भले ही उसे स्वल्प तात्कालिक लाभ एवं कम भौतिक सुख में सन्तोष करना पड़े। इसके विपरीत अशुद्ध दृष्टिकोण वाला मनुष्य अधिक धन, अधिक सुख, अधिक भोग-उपार्जन में लगा रहता है। इन वस्तुओं को अधिक संख्या, अधिक मात्रा में प्राप्त करने के लिए वह इतना विमुग्ध होता है कि धर्म-अधर्म तक की परवाह करना छोड़ देता है। आज के लिए, वह कल के दुःख को नहीं देखता। अशुद्ध दृष्टिकोण रखने वाले मनुष्य के विचार और कर्म अति स्वार्थ पूर्ण, अनर्थ

पूर्ण होते हैं, इसलिए उसे निन्दनीय, दण्डनीय, असुर माना जाता है। देव-वृत्ति का मनुष्य शुद्ध सात्विकता को अपनाता है, फल-स्वरूप उसके समस्त विचार और कार्य पुण्य की, परमार्थ की श्रेणी में आने योग्य होते हैं। अतएव उस देवता को सर्वत्र पूजा, प्रशंसा, प्रतिष्ठा, श्रद्धा प्राप्त होती है।

जबकि साधारण लोग सदा अपने अभाव, दुःख, दोष देखते हैं दूसरों के व्यवहार में बुराई, कमी, भूल, ढूँढ़ते हैं और उनसे हर घड़ी दुःखी रहते हैं तब देव स्वभाव के मनुष्य ईश्वर द्वारा अपने को दी हुई अगणित सुविधाओं को चिन्तन करके हर घड़ी प्रसन्न रहते हैं, अपने को सौभाग्यवान् समझते हैं कि हम असंख्यों से अच्छे हैं। दूसरों के उपकारों, सहायताओं, भलाइयों और अच्छाइयों को स्मरण करते हैं। संसार की प्रत्येक वस्तु में सौन्दर्य एवं उपयोगिता ढूँढ़ते हैं इस प्रकार उन्हें अपने चारों ओर आनन्द, सन्तोष, प्रसन्नता एवं सौभाग्य बिखरा हुआ दृष्टिगोचर होता है। इसके लिए वे परमात्मा को अनेक धन्यवाद देते हैं कि प्रभु तूने हमें इतने अगणित सुख-सौभाग्य दिये हैं इसके लिए हम तेरे कृतज्ञ हैं। इन सौभाग्य-राशियों की तुलना में उन्हें अपने अभाव और कष्ट ऐसे मालूम पड़ते हैं मानों केवल उन्हें शोभा के लिए रखा गया हो। सुन्दर बालक के माथे पर माताएं काला टीका लगा देती हैं कि उसे किसी की नजर न लग जाय। थोड़े से अभाव और कष्टों को वह ईश्वर द्वारा लगाया हुआ टीका समझते हैं और उसकी भी अनेक प्रकार उपयोगिता एवं आवश्यकता अनुभव करते हुए सुखी, सम्पन्न एवं सन्तुष्ट रहते हैं।

गायत्री हमें देव बनाना चाहती है। उसका "देवस्य" शब्द हमें देवत्व की ओर प्रेरणा देता है।

धीमहि—दैवी सम्पत्तियों का सञ्चय कीजिये

धीमहि सर्वविधं हृदये शुचि शक्तिचयं वयमित्युपविष्टवा।
नो मनुजोलभते सुख शान्ति मनन विनेत वदन्ति हि वेदाः॥

अर्थ—हम सब लोग हृदय में सब प्रकार की पवित्र शक्तियों को धारण करें। वेद कहते हैं कि इनके बिना मनुष्य सुख-शान्ति को प्राप्त नहीं होता।

यह सुनिश्चित तथ्य है कि शक्ति के बदले में सुख मिलता है। जिस प्रकार पैसे के बदले में ख़रीदे जाने वाले सभी पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं उसी प्रकार शक्ति के बदले में विविध प्रकार के आनन्द प्राप्त किये जाते हैं। जिसका शरीर शक्तिशाली है, इन्द्रियाँ सक्षम हैं वह ही विविध प्रकार के इन्द्रिय-भोगों को भोग सकता है, जिसका शरीर रोगी, निर्बल एवं अशक्तिशाली है उसको उत्तम से उत्तम इन्द्रिय-भोग भी बुरे लगते हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, धन, सङ्गठन, शिल्प, अनुभव, चतुरता, पुरुषार्थ शक्तियों का भण्डार जिसके पास जितनी अधिक मात्रा में है वह उतना ही अधिक सम्पत्ति, वैभव, समृद्धि एवं ऐश्वर्य, सुख-सामिग्री प्राप्त कर सकता है। जिसके पास इन शक्तियों की जितनी कमी है वह उतनी ही मात्रा में अभावग्रस्त एवं कठिनाइयों का जीवन व्यतीत करेगा।

शरीर को सुख देने वाले ऐश्वर्य शरीर से सम्बन्ध रखते हैं। जिसने अपने में जितनी अधिक भौतिक योग्यताएं एकत्रित कर ली हैं वह उतना ही अधिक सांसारिक सुख भोग सकेगा। इतना होने पर भी उससे आत्मिक सुख उपलब्ध नहीं किया जा सकता। आत्मिक सुख के लिए आत्मिक शक्तियों की आवश्यकता है। सद्‌गुण, सात्विक दृष्टिकोण, सत्‌स्वभाव, संयम, उदार एवं नम्र

व्यवहार की दैवी सम्पत्तियाँ जिनके पास हैं उनके मानसिक क्षेत्र में सर्वत्र सुख-शांति ऐसी उत्कृष्ट होगी कि सांसारिक कठिनाइयाँ भी उन्हें विचलित न कर सकेंगी।

गायत्री के 'धीमहि' शब्द का संदेश यह है कि हम अपने अन्दर सद्‌गुणों की धारणा करें। अपने स्वभाव को नम्र, मधुर, शिष्ट, खरा, निर्भीक, दयालु, पुरुषार्थी, निरालस्य, श्रमशील बनावें तथा व्यवहार में उदारता, सचाई, ईमानदारी, निष्कपटता, भलमनसाहत, न्याय-परायणता, समानता तथा उद्योगशीलता का परिचय दें। उन सभी गुणों, विशेषताओं और योग्यताओं को अपनावें जिनके द्वारा स्वास्थ्य, कीर्त्ति, प्रतिष्ठा, उच्च पद, धन, वैभव आदि की प्राप्ति होती है। यह सांसारिक सम्पत्तियाँ भी आवश्यक हैं क्योंकि इनसे जीवन की गति-विधि शान्ति और सुविधापूर्वक चलती है। दरिद्र व्यक्ति न संसार में सुखी रह सकता है और न मानसिक शांति प्राप्त कर सकता है। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए केवल उदर-पोषिणी योग्यताओं से ही काम नहीं चल सकता। ऐसी योग्यता तो पशु-पक्षी भी प्राप्त कर लेते हैं। इनके अतिरिक्त वे सद्‌गुण भी सञ्चय करने चाहिए जिनके कारण मनुष्य पूजा जाता है, प्रतिष्ठा प्राप्त करता है, यशस्वी होता है, महापुरुष बनता है, सबका प्रेम-पात्र नेता बनता है, एवं सहज ही अपने अनेकों सहायक, मित्र, शुभचिंतक, श्रद्धालु, अनुयायी एवं प्रसंशक बना लेता है, जिसके सद्‌गुणों की सुगन्धि चारों ओर फैल रही है, उसे विमुग्ध होकर अनेक पारखी भ्रमर घेरे रहते हैं।

गायत्री के 'धीमहि' शब्द का सन्देश है कि वस्तुऐं मत जोड़ो, गुणों को धारण करो। कचरे की गठरी मत बाँधो,

सोने का टुकड़ा रखलो। जीवन में सर्वोपरि आनन्द देने की कुञ्जी सात्विक वृत्तियाँ हैं। उनका महत्व समझो, उन्हें ढूँढ़ो, उनका सञ्चय करो और जिनको अधिकाधिक मात्रा दैवी सम्पत्तियाँ हैं वास्तव में वही सच्चा धनी है।

धियो–विवेक का अनुशीलन

धियो योन्मथ्याच्छागम निगम मन्त्रान सुमतिवान् ।
विजानीयात्तत्वं विमल नवनीतं परिमिव ॥
यतोऽस्मिन् लोके नैसंशयगत विचार स्थलशते ।
मतिः शुद्धैवाञ्छा प्रकट यति सत्यं सुमन से ॥

अर्थ—वेद शास्त्रों को बुद्धि से मथकर मक्खन के समान उत्कृष्ट तत्व को जाने, क्योंकि शुद्ध बुद्धि से ही सत्य को जाना जाता है।

कई बार ऐसे अवसर सामने आते हैं कि परस्पर विरोधी विचारधाराओं के सामने आ जाने पर बुद्धि भ्रमित हो जाती है और यह निर्णय नहीं हो पाता कि इनमें से किसे स्वीकार तथा किसे अस्वीकार करें।

गायत्री का 'धियो' शब्द विवेक की कसौटी हमारे हाथ में देता है और आदेश करता है कि किसी भी पुस्तक या व्यक्ति की अपेक्षा विवेक का महत्व अधिक है। इसलिए जो बात बुद्धि सङ्गत हो, विवेक सम्मत हो, समझ में आने योग्य हो, उचित हो केवल उसी को ग्रहण करना चाहिए। देश, काल और परिस्थिति का ध्यान रखकर समय-समय पर आचार्यों ने उपदेश किये हैं।

इसलिए जो बात एक समय के लिए बहुत उपयोगी एवं आवश्यक थी वह दूसरे समय में अनुचित, अनावश्यक हो सकती है। जाड़े के दिनों में पहने जाने वाले गरम ऊनी कपड़े गर्मी में हानिकारक हैं, इसी प्रकार गर्मी की हलकी पोशाक को ही जाड़े के दिनों में पहने रहना निमोनियाँ को निमन्त्रण देना है। अपने समय में जो पोशाक आवश्यक होती है वही काल और परिस्थिति बदल जाने पर त्याज्य हो जाती है।

अनेकों परम्पराऐं, प्रथाऐं, रीति-रिवाजें ऐसी प्रचलित हैं जो किसी समय भले ही उपयुक्त रही हों पर आज तो वे सर्वथा अनुपयोगी एवं हानिकारक ही हैं। ऐसी प्रथाओं एवं मान्यताओं के बारे में ऐसा न सोचना चाहिए कि "हमारे पूर्वज इन्हें अपनाते रहे हैं तो अवश्य इनका भी कोई महत्व होगा इसलिए हम भी इन्हें अपनाये रहें।" हमें हर बात को वर्तमान काल की आवश्यकताओं और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ही निर्णय करना चाहिए।

भले और बुरे की, हानि और लाभ की, मित्र और शत्रु की, सच्चे और झूँठे की पहचान केवल विवेक ही करा सकता है। आकर्षणों, प्रलोभनों, तृष्णाओं, विकारों, भ्रांतियों, खतरों से सावधान करके हमें पतन के गहरे गड्ढे में गिरने से बचाने की शक्ति केवल विवेक में ही है। विवेक हमारा सच्चा मित्र है। वह भूलें सुधारता है, मार्ग सुधारता है, उलझनें सुलझाता है, खतरे से बचाता है और सफलता की ओर अग्रसर करता है। ऐसे मित्र की आवश्यकता समझना, उससे प्रेम करना और उसे अधिक से अधिक आदर के साथ समीप रखना यह हमारे लिए सब प्रकार से कल्याणकारक हो सकता है।

गायत्री के 'धियो' शब्द का आदेश है कि हम विवेकवान बनें, विवेक को अपनावें, विवेक की कसौटी पर कसकर अपने विचार और कर्मों का निर्धारण करें। इस शिक्षा को स्वीकार करना मानो अपनी जीवन दशाओं को शीतल, शान्तिदायक, मलय-मारुत के लिए उन्मुक्त कर देना है।

यो नः—आत्म-संयम और परमार्थ का मार्ग

योनोवास्ति तु शक्ति साधन चयो न्यूनाधिकश्चथवा।
मार्गं नूनं तस्य हितस्य विदधेमात्म प्रसादायच॥
यत्पश्चादवशिष्ठ भाग मखिलं त्यक्त्वा फलाशां हृदि।
तदधीनेष्वभिलाषवस्तु वितरे मांगीषु नित्यं वयम्॥

अर्थ—हमारी जो भी शक्तियाँ एवं साधन हैं वे न्यून हों अथवा अधिक हों उनके न्यून से न्यून भाग को अपनी आवश्यकता के लिए प्रयोग में लावें और शेष को निस्वार्थ भाव से उन्हें अशक्त व्यक्तियों में बाँट दें।

सभी मनुष्य परमात्मा के पुत्र हैं। सभी उसे समान रूप से प्यारे हैं। पर वह जिन्हें अधिक ईमानदार और विश्वासनीय समझता है उन्हें अपनी राजशक्ति का एक भाग इसलिए सौंप देता है कि वे उसके ईश्वरीय उद्देश्यों की पूर्ति में हाथ बटायें। धन, स्वास्थ्य, बुद्धि, चतुरता, शिल्प, योग्यता, मनोबल, नेतृत्व, भाषण, लेखन आदि की शक्तियाँ जिन्हें अधिक मात्रा में दी गई हैं वे उन्हें दैवी प्रयोजन के लिए दी गई हैं। जो अधिकार साधारण प्रजा को नहीं हैं वे अधिकार कलक्टर को देकर राजा कोई पक्षपात नहीं करता वरन् अधिक योग्य से, अधिक काम लेने की नीति बरतता

है। परमेश्वर भी कुछ थोड़े से आदमियों को अधिक सम्पन्न बना कर अपने अन्य लोगों के साथ अन्याय नहीं करता। उसे अपने सभी पुत्र समान रूप से प्यारे हैं। उसने सभी को समान रूप से विकसित होने के अवसर दिये हैं। वह पक्षपात और अन्याय करे तो फिर समदर्शी, न्यायशील और दयालु कैसे कहा जा सकेगा ?

जबकि अधिकांश लोगों को पेट भरने और तन ढकने की व्यवस्था में ही जीवन का सारा समय लगाना पड़ता है और कई दृष्टियों से पिछड़ा हुआ रहना पड़ता है तब किसी समृद्ध आदमी के लिए गर्व करने का, सुखी होने का, सन्तोष करने का, ईश्वर को धन्यवाद देने का यह पर्याप्त कारण है कि उसकी जीवन-आवश्यकताऐं आसानी से पूरी हो जाती हैं और उसे ऐसी योग्यताऐं प्राप्त हैं जो असंख्य मनुष्यों में नहीं हैं। सुसम्पन्न व्यक्ति को इतने से ही सन्तोष और आनन्द अनुभव करना चाहिए और भविष्य में और भी उत्तम स्थिति प्राप्त करने के लिए दूरदर्शिता पूर्वक अपनी शक्तियों को लोक-हित में लगाना चाहिए। आज वह अवसर है कि वह रोटी की समस्या को आसानी से हल करके परमार्थ भी कर सकता है। ऐसी स्थिति पूर्वकृत पुण्य फल से ही प्राप्त हुई है। यदि पिछले पुण्य फल भुगत जाते और आगे के लिए उपार्जन न किया जाय तो निश्चित है कि थोड़े दिनों में वह सम्पन्नता समाप्त हो जायगी, उसे असंख्यों निर्धन व्यक्तियों की भाँति ऐसा अभावग्रस्त जीवन जीने के लिए विवश होना पड़ेगा जिसमें परमार्थ के लिए अवसर पाना बड़ा कठिन काम होगा।

गायत्री हर व्यक्ति को आगाह करती है कि ऐसी बुरी परिस्थिति में कोई आत्म-कल्याण का पथिक अपने को न फँसाले।

"योनः" शब्द कहता है कि हम "जोड़ने और भोगने" की मृग-तृष्णा में न भटकें। अपनी आवश्यकताएं कम से कम रखें। उन्हें पूरा करने के पश्चात् बची हुई शक्ति का अधिक से अधिक भाग अपने से निर्बल, पिछड़े हुए, अविकसित, निर्धन, अल्प बुद्धि, अशिक्षित लोगों को अपेक्षाकृत अधिक ऊँचा उठाने में खर्च करें। यह ईश्वरीय कार्य में हाथ बटाना और अपनी बुद्धिमत्ता, दूर-दर्शिता एवं कर्तव्य-परायणता का प्रमाण देना है।

इस दृष्टि से हमें अवसरवादी होना चाहिए। अवसर से लाभ उठाने में चूक न करना चाहिए। प्राप्त शक्तियों को अपने लिए मितव्यता के साथ खर्च करके उन्हें दूसरों के लिए बचाना चाहिए। यह "आत्म-संयम और परमार्थ" का दैवी मार्ग हमें 'योनः' शब्द द्वारा बताया गया है। इस पर चलने वाला गायत्री उपासक जीवन-लक्ष को प्राप्त करके रहता है।

प्रचोदयात्—प्रोत्साहन की आवश्यकता

प्रचोदयात् स्व स्वितरांश्च मानवान् ,
नरः प्रयाणाय चसत्यवर्त्मनि ।
कृतं हि कर्म खिलमित्थ मंगिना,
विपश्चितैर्धर्म इति प्रचक्षते ॥

अर्थ—मनुष्य अपने आपको तथा दूसरों को सत्य मार्ग पर चलने की प्रेरणा दे। इस प्रकार किये हुए सब प्रयत्न धर्म कहे जाते हैं।

मानव प्राणी को ईश्वर प्रदत्त अनेक दिव्य शक्तियाँ ऐसी प्राप्त हैं, जिनका वह समुचित उपाय करे तो अनन्त ऐश्वर्य का

स्वामी बनने में उसे कठिनाई न हो। अनेक विशेषताओं से विभूषित शरीर और मस्तिष्क शक्ति एवं सामर्थ्य इतनी अधिक है कि उसका समुचित उपयोग हो जाय तो तुच्छ मनुष्य को महन बनाने में कुछ भी बाधा न हो। सीधे रास्ते पर निरन्तर चलते रहने वाला कछुआ, अव्यवस्थित चाल चलने वाले खरगोश से आगे निकल जाता है। देखा जाता है कि कितने ही मनुष्य बड़ी विलक्षण योग्यताओं के होते हुए भी कुछ महत्वपूर्ण काम नहीं कर पाते और कितने ही व्यक्ति साधारण शरीर, सम्मान, मस्तिष्क और स्वल्प साधन होते हुए भी अच्छी उन्नति कर जाते हैं।

ऐसा क्यों होता है। इस पर विचार करने से पता चलता है कि जीवन में एक ऐसा दैवी तत्व होता है जिसके न्यूनाधिक होने पर उन्नति-अवनति बहुत कुछ निर्भर रहती है। वह तत्व जिसमें जितना अधिक होगा वह उतना ही शीघ्रतापूर्वक उतनी ही अधिक मात्रा में उन्नति कर सकेगा। इस तत्व का नाम है—"प्रेरणा"। दूसरे शब्दों में इसी को लगन, धुन, उत्साह, स्फूर्ति भी कहते हैं। जिसको किसी काम की लगन हुई है, तीव्र इच्छा एवं आकांक्षा है, जिसके प्राप्त करने की बड़ी लालसा है, जो लक्ष्य बन गया है, जिसे प्राप्त किये बिना और कुछ सुहाता नहीं, ऐसी प्रबल, प्रचण्ड, अदम्य, अभिलाषा के पीछे एक ऐसी शक्ति होती है कि वह मनुष्य को चुप बैठने नहीं देती, उसे अभीष्ट दिशा में सोचने, प्रयत्न करने एवं लगे रहने के लिए प्रेरित करती रहती है। यह प्रेरणा शक्ति ही वह बल है जिसका जितना अंश जिस मनुष्य में होगा वह उतनी ही तेजी से आगे बढ़ेगा।

गायत्री-मन्त्र में इस महाशक्तिशाली जीवन-तत्व "प्रेरणा" का रहस्य प्रकट किया गया है। इस मन्त्र में भगवान से धन, वैभव, सुख, स्त्री, पुत्र, मकान, मोटर, विद्या, रूप आदि कुछ

नहीं माँगा गया है। इन सब बातों को, यहाँ तक कि अमृत, कल्पवृक्ष और पारस को भी छोड़कर केवल यह प्रार्थना की है कि हे भगवान आप हमें प्रेरणा दीजिए। हमारी बुद्धि को प्रेरित कीजिए। जब बुद्धि में प्रेरणा उत्पन्न हो गई तो सारे धन, वैभव पाँवों तले स्वयं ही लौटेंगे। यदि प्रेरणा नहीं है तो कुवेर का खजाना पाकर भी आलसी लोग उसे गँवा देंगे।

गायत्री का 'प्रचोदयात्' शब्द कहता है कि प्राणधारियों में प्राण की, प्रेरणा की, जीवन की अधिक मात्रा होनी चाहिए। जो लोग आलसी, काहिली, निराशा, हतोत्साह, परावलम्बी, कायर, भाग्यवादी बने हुए हैं, जिनने आत्म-गौरव और आत्म-विश्वास खो दिया है और इसी कारण उनका सौभाग्य सूर्य अस्त हो रहा है ऐसे दीन-दुखी बने हुए लोगों के लिए सबसे बड़ी सेवा और सहायता यह हो सकती कि उनके सम्मुख ऐसे विचार, तर्क, उपदेश, उदाहरण उपस्थित किये जाँय जिनसे प्रभावित होकर वे प्रोत्साहित हों, अपनी शक्तियों को समझें और उस मार्ग पर चल पड़ें जो उनको आत्म-निर्माण की मंजिलें पार करावे।

ऐसा ज्ञान दान देना जिससे मनुष्य के विचार ऊँचे उठते हों, आत्मा को सन्मार्ग की ओर प्रोत्साहन मिलता हो, सबसे बड़ा दान है। यह कार्य हम उत्तम पुस्तकों द्वारा, वाणी द्वारा, लेखनी द्वारा, चित्रों द्वारा या जिस प्रकार सम्भव हो करें। हम स्वयं आगे बढ़ें तथा दूसरों को बढ़ावें। अपने को प्राणवान बनावें, दूसरों में प्राण सञ्चार करें। चूँकि प्रेरणा ही भौतिक और आत्मिक सुखों की जननी है, इसलिए इस महाशक्ति का संसार में प्रत्येक गायत्री भक्त द्वारा अधिकाधिक सम्वर्धन होना चाहिए। यही प्रचोदयात् शब्द का सन्देश है।

———

गायत्री तपोभूमि—एक महान् धर्म संस्थान

गायत्री तपोभूमि, मथुरा शहर से १ मील आगे—वृन्दावन रोड पर परम शांतिमय वातावरण में बना हुआ एक सुन्दर आश्रम है, जहाँ गायत्री माता का भव्य मन्दिर, भारत-वर्ष के लगभग २४०० तीर्थों के जल-रज का एक तीर्थ सम्मेलन-गृह, १२५ करोड़ हस्तलिखित गायत्री-मन्त्रों का संग्रह-कक्ष, निवास के लिए २३ कमरे, एक प्रवचन हाल, तीन बड़ी यज्ञ-शालाऐं, प्रधान यज्ञशाला में कभी न बुझने दी जाने वाली अखण्ड-अग्नि की स्थापना, नित्य गायत्री-मन्त्र की एक हजार आहुतियों का हवन, तुलसी का उपवन, हजारों धार्मिक पुस्तकों का विशाल पुस्तकालय, लगभग ६० पत्र-पत्रिकाऐं आने वाला वाचनालय, बिना मूल्य चिकित्सा के लिए कल्प चिकित्सालय यह सब देखकर कोई भी दर्शक संस्था की गति-विधियों का सहज ही अनुमान लगा सकता है। गायत्री तपोभूमि में सदा अनेक धार्मिक भावना वाले व्यक्ति शिक्षा, तीर्थ-यात्रा, साधना, तपश्चर्या एवं विभिन्न कठिनाइयों के सम्बन्ध में आचार्यजी से परामर्श करने आते हैं। आगन्तुकों को तपोभूमि में निवास, भोजन आदि की समुचित सुविधा प्राप्त होती है।

गायत्री तपोभूमि द्वारा देश भर में गायत्री महायज्ञों एवं सांस्कृतिक सम्मेलनों की सुविस्तृत शृंखल चल रही है। सन् '५६ और '५७ में १००० बड़े गायत्री महायज्ञ तथा सांस्कृतिक सम्मेलन करने का निश्चय किया था। सो उस संकल्प से भारतवर्ष के कोने-कोने से हजारों यज्ञ हुए जिनमें से १०१ [कु]ण्डों वाले, २५ कुण्डों वाले, ६ कुण्डों वाले विशाल यज्ञों की संख्या १००० थी। इनमें से कुछ यज्ञों में तो ५० हजार तक जनता एकत्रित हुई। ये यज्ञ अ० भा० गायत्री-परिवार की देश में फैली हुई १२०० शाखाओं द्वारा सम्पन्न हुये थे। इन यज्ञों और सम्मेलनों का उद्देश्य जनता में धर्म, सदाचार, नैतिकता

लेखक—
श्रीराम शर्मा आचार्य
गायत्री तपोभूमि, मथुरा।

ॐ भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि
धियो योनः प्रचोदयात्।

प्रकाशक—
"अखण्ड ज्योति" प्रेस, मथुरा

प्रथम बार] सन् १९५८ [मूल्य

गायत्री और यज्ञोपवीत

यज्ञोपवीत की महान उपयोगिता

यज्ञोपवीत का भारतीय धर्म में सर्वोपरि स्थान है। इसे द्विजत्व का प्रतीक माना गया है। द्विजत्व का अर्थ है—मनुष्यता के उत्तरदायित्व को स्वीकार करना। जो लोग मनुष्यता की जिम्मेदारियों को उठाने के लिए तैयार नहीं, पाशविक वृत्तियों में इतने जकड़े हुए हैं कि महान् मानवता का भार वहन नहीं कर सकते, उनको "अनुपवीत" शब्द से शास्त्रकारों ने तिरष्कृत किया है और उनके लिए आदेश किया है कि वे आत्मोन्नति करने वाली मण्डली से अपने को पृथक, बहिष्कृत, निष्कृष्ट समझें। ऐसे लोगों को वेद-पाठ, यज्ञ, तप आदि सत्साधनाओं का भी अनधिकारी ठहराया गया है, क्योंकि जिसका आधार ही मजबूत नहीं वह स्वयं खड़ा नहीं रह सकता, जब स्वयं खड़ा नहीं हो सकता तो इन धार्मिक कृत्यों का भार वहन किस प्रकार कर सकेगा?

भारतीय धर्म-शास्त्रों की दृष्टि में मनुष्य का यह आवश्यक कर्तव्य है कि वह अनेक योनियों में भ्रमण करने के कारण संचित हुए पाशविक संस्कारों का परिमार्जन करके मनुष्योचित संस्कारों को धारण करे। इस धारणा को ही उन्होंने द्विजत्व के नाम से घोषित किया है। कोई भी व्यक्ति जन्म से द्विज नहीं होता, माता के गर्भ से तो सभी शूद्र उत्पन्न होते हैं शुभ संस्कारों

को धारण करने से वे द्विज बनते हैं। महर्षि अत्रि का वचन है— "जन्मनां जायते शूद्र संस्कारात् द्विज उच्यते।" जन्म जात पाशविक संस्कारों को ही यदि कोई मनुष्य धारण किए रहे तो उसे आहार, निद्रा, भय, मैथुन की वृत्तियों में ही उलझा रहना पड़ेगा। कञ्चन कामिनी से अधिक ऊँची कोई महत्वाकांक्षा उसके मन में न उठ सकेगी। इस स्थिति से ऊँचा उठना प्रत्येक मनुष्यताभिमानी के लिए आवश्यक है। इस आवश्यकता को ही हमारे प्रातः स्मरणीय ऋषियों ने अपने शब्दों में "उपवीत धारण करने की आवश्यकता" बताया है।

किसी भी दृष्टि से विचार कीजिए, मनुष्य-जीवन की महत्ता सब प्रकार असाधारण है। कहते हैं कि चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने के बाद नर देह मिलती है, यदि इसे व्यर्थ गँवा दिया जाय तो पुनः कीट-पतङ्गों की चौरासी लाख योनियों में भटकने के लिए जाना पड़ता है। कहते हैं कि गर्भस्थ बालक जब रौरव नरक की यातना से दुःखी होकर भगवान से छुटकारे की याचना करता है तो इस शर्त पर छुटकारा मिलता है कि संसार में जाकर जीवन का सदुपयोग किया जायगा। कहते हैं कि मनुष्य की रचना परमात्मा ने इस उद्देश्य से की है कि वह मेरा सर्वश्रेष्ठ उत्तराधिकारी राजकुमार सिद्ध हो और ऐसे कार्य करे जो मेरी महिमा प्रकट करते हों। कहते हैं कि आत्मा का सर्वश्रेष्ठ विकाश मानव प्राणी में होता है, इसलिए उसका आचरण ऐसा होना चाहिए जिससे ईश्वर अंश जीव की महानता प्रकट हो।

हमारे पूर्वजों ने इस तथ्य को अपनी दूर दृष्टि से, अपने योगबल से, पहले ही भली प्रकार समझ लिया था। उनने चिरकालीन विचार-मंथन और सूक्ष्म दृष्टि से सृष्टि की प्रत्येक बात

का गम्भीर परीक्षण करके यह निष्कर्ष निकाला था कि—जन्म से मनुष्य भी अन्य पशु-पक्षियों के समान शिश्नोदर परायण होता है, पेट भरने और क्रीड़ा करने की ही इच्छाऐं उसे प्रधान रूप से सताती हैं, यदि कोई विशेष प्रयत्न करके उसे ऊँचा न उठाया जाय तो वह चाहे कितना ही चतुर क्यों न कहलावे, पाशविक वृत्तियों के आधार पर ही जीवन व्यतीत करेगा। चूँकि इस प्रकार की जीवनचर्या अत्यन्त ही तुच्छ और अदूरदर्शिता पूर्ण है इसलिये यही कल्याणकर है कि मनुष्यों को इस निम्न धरातल से ऊँचा उठकर उस भूमिका में अपना स्थान बनाना चाहिये, जो उच्च है, आदर्शपूर्ण है, धर्ममयी है और अनेक सत्परिणामों को उत्पन्न करने वाली है। चूँकि यह स्थिति जन्मजात पशु वृत्तियों की क्रियाशैली से बहुत भिन्न है, दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर है इसलिये इस एक स्थिति से दूसरी स्थिति में पदार्पण करने की परिवर्तन-पद्धति को 'उपनयन' कहा गया है।

देखने में यज्ञोपवीत कुछ लड़ों का एक सूत्र मात्र है जो दाहिने कन्धे पर पड़ा रहता है। इसमें स्थूल रूप से कोई विशेषता नहीं मालूम पड़ती। बाजार में दो-दो, चार-चार पैसे को जनेऊ बिकते हैं। स्थूल दृष्टि से यही उसकी कीमत है तथा मोटे तौर से वह इस बात की पहचान है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णों में से किसी वर्ण में इस जनेऊ पहनने वाले का जन्म हुआ है। पर वस्तुतः केवल मात्र इतना ही प्रयोजन उसका नहीं है। उसके पीछे एक जीवित जागृत दर्शन-शास्त्र छिपा पड़ा है, जो मानव-जीवन का उत्तम रीति से गठन, निर्माण और विकास करता हुआ उस स्थान तक ले पहुँचता है जो जीवधारी का चरम लक्ष है।

स्थूल दृष्टि से देखने में कई वस्तुऐं बहुत ही साधारण प्रतीत होती हैं, पर उनका सूक्ष्म महत्व अत्यन्त ही महत्वपूर्ण होता है। पुस्तकें स्थूल दृष्टि से देखने में छपे हुए कागजों का एक बंडल मात्र हैं जो रद्दी में बेचने पर दो-चार पैसे की ठहरती हैं पर उस पुस्तक में जो ज्ञान भरा हुआ है वह इतना मूल्यवान है कि उसके आधार पर मनुष्य कुछ से कुछ बन जाता है। "विक्टोरिया क्रास" जो अँग्रेजी सरकार की ओर से बहादुरी का प्रतिष्ठित पदक दिया जाता था, वह लोहे का बना होता था और उसकी बाजारू कीमत मुश्किल से एकाध रुपया होगी, पर जो उसे प्राप्त कर लेता था वह अपने आपको धन्य समझता था। परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर जो प्रमाण पत्र मिलते हैं उनके कागज का मूल्य एक-दो पैसा ही होगा पर वह कागज कितना मूल्यवान है इसको वह परीक्षोत्तीर्ण छात्र ही जानता है। सरकारी कर्मचारियों के पद की पहचान के लिए धातु के बने अक्षर मिलते हैं जो कन्धे या सीने पर कपड़ों में लगा लिए जाते हैं। यह धातु के अक्षर बाजारू कीमत से दो-चार आने के ही हो सकते हैं पर वे कर्मचारी जानते हैं कि उन्हें लगा लेने और उतार देने पर उनको जनता कितने अन्तर से पहचानती है। यज्ञोपवीत भी एक ऐसा ही प्रतीक है जो बाजारू कीमत से भले ही दो-चार पैसे का हो पर उसके पीछे एक महान् तत्वज्ञान जुड़ा हुआ है। इसलिए ऐसा नहीं सोचना चाहिये कि जनेऊ पहनना कन्धे पर एक डोरा लटका लेना है, वरन् इस प्रकार सोचना चाहिए कि मनुष्य की दैवी ज़िम्मेदारियों का एक प्रतीक हमारे कन्धे पर अवस्थित है।

यह पूछा जाता है कि मन में कोई बात हो तो उसी से सब कुछ हो सकता है, इसके लिए बाह्य चिह्न धारण करने की

क्या आवश्यकता ? जब मन में द्विजत्व ग्रहण करने के भाव मौजूद हों तो उनका होना ही पर्याप्त है। फिर यज्ञोपवीत क्यों पहनें ? और यदि मन में उस प्रकार की भावना नहीं है तो जनेऊ पहनने से भी कुछ लाभ नहीं ?

मोटे तौर से यह तर्क ठीक प्रतीत होता है, परन्तु जिन्होंने मनुष्य की प्रवृत्तियों का वैज्ञानिक अध्ययन किया है वे जानते हैं कि इस तर्क में कितना कम तथ्य है। बुराई की ओर, अधर्म की ओर, पाशविक भोगों को भोगने की ओर, मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति होती है। इस ओर मन अपने आप चलता है, पर उसे त्याग के, संयम के, धर्म के, मार्ग पर ले चलने के लिए बड़े-बड़े कष्टसाध्य प्रयत्न करने पड़ते हैं। पानी को बहाया जाय तो वह जिधर नीची भूमि होगी वह बिना किसी प्रयत्न के अपने आप अपना रास्ता बनाता हुआ बहेगा। निचाई जितनी अधिक होगी उतना ही पानी का बहाव तेज होता जायगा। परन्तु यदि पानी को ऊपर चढ़ाना है तो यह कार्य अपने आप नहीं हो सकता, इसके लिये तरह-तरह के साधन जुटाने पड़ेंगे। नल, पम्प, टङ्की आदि का कोई माध्यम लगाकर उसके पीछे ऐसी शक्ति का संयोग करना पड़ता है जिसके दवाब से पानी ऊपर चढ़े। दवाब देने वाली शक्ति तथा पानी के ऊपर ले जाने वाले साधन यदि अच्छे हुए तो वह तेजी से और अधिक मात्रा में ऊपर चढ़ता है, यदि यह साधन निर्बल हुए तो पानी के चढ़ने की गति भी मन्द हो जायगी। यही बात जीवन को उच्च मार्ग में लगाने के सम्बन्ध में है। यदि धर्म-मार्ग में, सिद्धान्तमय उच्च पथ में प्रगति करनी है तो उसके लिये ऐसे ही प्रयत्न करने पड़ते हैं जैसे कि पानी को ऊपर चढ़ाने के लिये करने होते हैं। सोलह संस्कार, नाना प्रकार के धार्मिक कर्म-काण्ड, व्रत, जप, तप, पूजा, अनुष्ठान, तीर्थ-

यात्रा, दान, पुण्य, स्वाध्याय, सत्सङ्ग ऐसे ही प्रयोजन हैं जिनके द्वारा मन को प्रभावित, अभ्यस्त और संस्कृत बनाकर दिव्यत्व की ओर—द्विजत्व की ओर—बढ़ाया जाता है। इन सब का उद्देश्य केवल मात्र इतना ही है कि मन पाशविक वृत्तियों से मुड़कर दिव्यत्व की ओर अग्रसर हो, यदि ऐसा करना अपने आप ही, सरलतापूर्वक हुआ होता तो यज्ञोपवीत को व्यर्थ बताने वाली तर्क को स्वीकार करने में किसी को कुछ आपत्ति न होती। उस दशा में यह पृथ्वी ब्रह्मलोक होती और वैसा समय सत्ययुग कहा जाता। पर आज तो वैसा नहीं है। हमारे मनों की कुटिलता इतनी बढ़ी हुई है कि आध्यात्मिक साधन करने वाले भी बार-बार पथ भ्रष्ट हो जाते हैं तब ऐसी आशा रखना कहाँ तक उचित है कि अपने आप ही सब कुछ ठीक हो जायगा।

यज्ञोपवीत धारण करना इसलिए आवश्यक है कि उससे एक प्रेरणा नियमित रूप से मिलती है। जिनके जिम्मे संसार के बड़े-बड़े कार्य हैं, जिनका जीवन व्यवस्थित है वे सवेरे ही अपना कार्य-क्रम बनाकर मेज के सामने लटका लेते हैं और उस तख्ती पर बार-बार निगाह डालकर अपने कार्य-क्रम को यथोचित बनाते रहते हैं। यदि वह याद दिलाने वाली तख्ती न हो तो उनके कार्य-क्रम में गड़बड़ पड़ सकती है यद्यपि उस तख्ती का स्वतः कोई बड़ा मूल्य नहीं है पर उसके आधार पर काम करने वाले का अमूल्य समय व्यवस्थित रहता है इसलिए उसका लाभ असाधारण महत्वपूर्ण है और उस महान लाभ का श्रेय उस तख्ती को कम नहीं है। जनेऊ ऐसी ही तख्ती है जो हमारे जीवनोद्देश्य और जीवनक्रम को व्यवस्थित रखने को याद हर घड़ी दिलाती रहती है।

जिन उच्च भावनाओं के साथ, वेदमन्त्र के माध्यम से, अग्नि और देवताओं की साक्षी में यज्ञोपवीत धारण किया जाता है उससे मनुष्य के सुप्त मानस पर एक विशेष छाप पड़ती है। "यह सूत्र यज्ञ मय एवं अत्यन्त पवित्र है। इसके धारण करने से मेरा शरीर पवित्र है, इसलिए इसे सब प्रकार की अपवित्रताओं से बचाना चाहिए। शारीरिक और मानसिक गन्दगियां से इस दैवी पवित्रता की रक्षा की जानी चाहिये।" यह भावना उस व्यक्ति के मन में उठनी ही चाहिये, जो जनेऊ धारण करता है। जहाँ इस प्रकार की सात्विक आकांक्षा होगी वहाँ दैवी शक्तियाँ उसके संकल्प को दूर करने में सहायक होंगी, उसे प्रेरणा और साहस देंगी जहाँ वह फिसलेगा उसे रोकेंगी और यदि गिरेगा भी तो उसे फिर उठावेंगी। इस प्रकार यज्ञ की प्रतिमा—यज्ञोपवीत—धारण करने वाला जब यह समझता रहेगा कि मैंने अपने कन्धे और छाती पर यज्ञ भगवान को सुसज्जित कर रखा है तो निश्चित रूप से वह यज्ञमय जीवन व्यतीत करने की अकांक्षा करेगा। इस प्रकार की आकांक्षा चाहे कितनी ही मन्द क्यों न हो, प्रभु के प्रेरक आशीर्वाद के समय मनुष्य के लिये सदा कल्याणकारी ही होती है और इससे दिन व दिन सन्मार्ग में—कल्याण-पथ—में ही प्रगति होती है। यह प्रगति चूँकि ईश्वरीय प्रगति है इसके द्वारा प्राणी सब प्रकार की सुख-शांति का अधिकारी बनता जाता है।

श्रेष्ठता का आवरण पहन लेना, अपने आपको ऐसे पवित्र बन्धनों में बाँध लेना है जिनके कारण पतन के गर्त में गिरते-गिरते मनुष्य अनेक बार बच जाता है। वाह्य वेष को देखकर लोग किसी व्यक्ति के बारे में अपना मत बनाते हैं लोकमत की दृष्टि में कोई व्यक्ति यदि अच्छा बन गया है तो उसे अपनी

प्रतिष्ठा का ख्याल रहता है। मन विचलित होकर जब कुमार्ग-गामी होने को तैयार हो जाता है तब लोक-लाज एक ऐसा बन्धन सिद्ध होती है जो उसे गिरते-गिरते बचा लेती है। जिस व्यक्ति ने ब्राह्मण या साधु का वेष बना रखा है, तिलक, जनेऊ, माला, कमण्डल आदि धारण कर रखे हैं वह सबके सामने निर्भीकता-पूर्वक मद्य-माँस का सेवन, जुआ, चोरी, व्यभिचार आदि कुकर्म करने में समर्थ न हो सकेगा। करेगा तो बहुत डरता-डरता, छिपकर, अल्प मात्रा में। पर जिन्होंने अपने को प्रत्यक्ष रूप से मद्य-माँस विक्रेता तथा पाप व्यवसायी घोषित कर रखा है उनको इन सब बातों में तनिक भी झिझक नहीं होती, वह इन कर्मों को अधिक मात्रा में करना अपनी अधिक बहादुरी समझते हैं। रामायण में पतिव्रता होने का एक कारण लोक-लाज को भी बताया है। असंख्यों स्त्री-पुरुष मानसिक व्यभिचार में लीन रहते हैं पर लोक-लाज वश वे कुमार्गगामी होने से बच जाते हैं। यज्ञोपवीत श्रेष्ठता का, द्विजत्व का, आदर्शवादी होने का प्रतीक है। यह एक साइनबोर्ड है जो घोषित करता है कि इस जनेऊ पहनने वाले ने कर्तव्यमय, धर्ममय जीवन बिताने की प्रतिज्ञा ली हुई है। जो इस प्रकार का साइनबोर्ड कन्धे पर धारण किये हुए है उसे अपने मार्ग से विचलित होते हुए झिझक लगेगी, सोचेगा—'दुनियाँ मुझको क्या कहेगी' इस प्रकार की लोक-लाज बहुत हद तक उसे कुमार्गगामी होने से रोकेगी। वह भूल या पाप करेगा भी तो झिझकते हुए कम मात्रा में करेगा। उतना नहीं कर सकेगा जितना सर्वतन्त्र स्वतन्त्र होने पर निर्भय और निर्लज्ज मनुष्य निरंकुशता पूर्वक अकर्म किया करते हैं।

कई व्यक्ति कहते सुने जाते हैं कि हम आदर्श जीवन द्विजत्व ग्रहण तो करना चाहते हैं पर इस समय तक हम द्विज

बन नहीं सके हैं, इसलिये हम द्विजत्व के प्रतीक यज्ञोपवीत को धारण क्यों करें ? यह आशङ्का भी उचित नहीं, क्योंकि यज्ञोपवीत धारण करने का अर्थ द्विजत्व में प्रवेश करना, आदर्श जीवन व्यतीत करने का व्रत लेना, दिव्यता में प्रवेश करना है। इसका अर्थ यह नहीं कि जिस दिन व्रत लिया उसी दिन वह साधना पूर्ण भी हो जानी चाहिए। इस संसार में सभी प्राणी अपूर्ण और दोष युक्त हैं। उन दोषों और अपूर्णताओं के कारण ही तो उन्हें शरीर धारण करना पड़ रहा है। जिस दिन वह अपूर्णता दूर हो जायगी, उस दिन शरीर धारण करने की आवश्यकता ही न रहेगी। कोई व्यक्ति चाहे वह कितना ही बड़ा महात्मा क्यों न हो, किसी न किसी अंश में अपूर्ण एवं दोषयुक्त है। फिर क्या हम यह कहें कि—"जब सारा संसार ही पापी है तो हमारे अकेले धर्मात्मा बनने से क्या लाभ ?"

हमें इस प्रकार विचार करना चाहिए कि श्रेष्ठता की पाठशाला में प्रवेश करना, द्विजत्व का व्रत लेना ही यज्ञोपवीत धारण करना है। पाठशाला में प्रवेश करने के दिन "पट्टी-पूजा" होती है, इसका अर्थ है कि अब उस बालक की नियमित शिक्षा आरम्भ हो गई। विद्या प्राप्त करने का उसने व्रत ले लिया। यदि कोई विद्यार्थी कहे कि--"सरस्वती पूजा का अधिकार तो उसे है जो सरस्वतीवान् हो, पूर्ण विद्वान हो, हम तो अभी दो-चार अक्षर ही जानते हैं फिर सरस्वती पूजा क्यों करें ?" तो उसका यह प्रश्न असङ्गत है क्योंकि वह सरस्वती पूजा का अर्थ यह समझा है कि जो पूर्ण सरस्वतीवान् हो जाय उसे ही पूजा करनी चाहिए। इस प्रकार तो संसार के किसी भी काम को कोई भी व्यक्ति करने का अधिकारी नहीं है, क्योंकि चाहे वह कितना ही अधिक क्यों न जानता हो तो भी किसी न किसी

अंश में वह अनजान अवश्य होगा। ऐसे तो कोई भी वकील, डाक्टर, पण्डित, शिल्पकार, गायक तथा अध्यापक न मिलेगा। तो क्या उनके द्वारा किये जाने वाले सब काम रुके ही पड़े रहेंगे ?

व्रत लेने का अर्थ ही यह है कि--अभी यह नहीं किया जा सका था--आगे यह करेंगे।" कोई व्रत लेता है कि मैं नियमित रूप से व्यायाम किया करूँगा, इसका अर्थ है कि वह अब तक ऐसा नहीं करता रहा है, आगे करेगा। जो व्यक्ति सदा से ही नियमित व्यायाम करता है, उसके लिए तो वह एक साधारण, स्वाभाविक दैनिक क्रिया है उसका व्रत लेने की उसे क्या आवश्यकता ? इसी प्रकार जो व्यक्ति द्विजत्व में पारङ्गत नहीं हो सके हैं उन्हें ही यज्ञोपवीत धारण करना आवश्यक है। जब उनका द्विजत्व पुष्ट, परिपक्क और पूर्ण हो जायगा तब फिर उन्हें इसकी कुछ भी आवश्यकता न रहेगी। सन्यास आश्रम में जनेऊ का त्याग कर दिया जाता है, क्योंकि उस स्थिति में पहुँचे हुए व्यक्ति के वह निष्प्रयोजन है। जिस कार्य के लिये उसे धारण किया गया था वह पूरा हो चुका तो व्यर्थ का बोझ क्यों लादा जाय ? जो लोग शङ्का करते हैं कि हम में द्विजत्व नहीं है, इसलिये हम जनेऊ पहनने का साहस क्यों करें ? उन्हें समझना चाहिए कि--"उन्हें इसी कारण यज्ञोपवीत अवश्य पहनना चाहिये क्योंकि उनमें द्विजत्व का अभी पूर्ण विकास नहीं हो पाया है। इस विकास के लिये ही तो उपवीत धारण कराया जाता है।" क्या कोई पहलवानी का विद्यार्थी ऐसी शङ्का करता है कि "मैं पूर्ण पहलवान नहीं हूँ, इसलिये अखाड़े में क्यों उतरूँ ? मुगदर क्यों उठाऊँ ?" उसे अखाड़े में उतरने और मुगदर उठाने की इसीलिये आवश्यकता है कि चूँकि वह

अभी पूर्ण पहलवान नहीं हो पाया। जब वह पूर्ण पहलवान हो जायगा तो उसे इन अभ्यासों से छुटकारा भी मिल सकता है। यही बात उपवीत धारण के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।

यज्ञोपवीत धारण करना इस बात का प्रतीक नहीं है कि इस व्यक्ति का पूर्ण आध्यात्मिक विकास हो गया। वरन् इस बात का प्रतीक है कि—इस व्यक्ति ने आदर्श-जीवन, धर्ममय जीवन व्यतीत करने का संकल्प किया है और यह अपनी परिस्थिति के अनुसार यथासाध्य अधिक से अधिक प्रयत्न करता हुआ लक्ष तक पहुँचने की ईमानदारी के साथ चेष्टा करेगा। ऐसी दशा में यह झिझक करना व्यर्थ है कि हम इस योग्य नहीं कि उपवीत धारण करें। इस अयोग्यता का निवारण उसके धारण करने से ही तो होगा। जो यह कहता है कि मैं तैर नहीं सकता इसलिये पानी में न घुसूँगा। उसे जानना चाहिए कि पानी में घुसे विना तैरना नहीं आ सकता। जो कहता है कि—मैं घोड़े पर चढ़ना नहीं जानता इसलिए नहीं चढ़ूँगा, उसे जानना चाहिये कि घोड़े की पीठ पर बैठे बिना वह घुड़सवार नहीं बन सकता। यह ठीक है कि आरम्भ में काफी कठिनाई प्रतीत होती है, आरम्भ में काफी गलतियाँ भी होती हैं, पर उनका संशोधन तो धीरे-धीरे अभ्यास करने से, उस कार्य में लगने से ही तो होगा। ऐसा कोई फायदा इस संसार में नहीं है कि आप किसी कार्य में पूर्ण पारङ्गत हो जावें तब उस कार्य को आरम्भ करें। कार्य को आरम्भ करने से ही उसमें कुशलता प्राप्त होती है। जनेऊ धारण करके, जब आप द्विजत्व प्राप्त करने के लिये आगे

बढ़ेंगे तभी तो आप धीरे-धीरे इस मंजिल को पार करते हुए एक दिन सच्चे अर्थों में द्विज कहलाने योग्य बनेंगे, तभी तो आपको पूर्ण द्विजत्व की प्राप्ति होगी।

यज्ञोपवीत के सम्बन्ध में शास्त्रों के आदेश

शास्त्रों में यज्ञोपवीत की महिमा बड़े विस्तार से वर्णन की गई है। उसे प्रत्येक विचारवान् व्यक्ति के लिए आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी बताया गया है। देखिए--

कोटि जन्मार्जितं पापं ज्ञानाज्ञान कृतं च यत्।
यज्ञोपवीत मात्रेण पलायन्ते न संशयः॥

--पद्म पुराण कौशल खण्ड

करोड़ों जन्म के ज्ञान-अज्ञान में किये हुए पाप यज्ञोपवीत धारण करने से नष्ट हो जाते हैं इसमें संशय नहीं।

येनेन्द्राय बृहस्पतिर्व्यासः पर्यदधादमृतं तेनत्वा।
परिदधाम्या युष्ये दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे॥

--पा० गृ० २।२।७

जिस तरह इन्द्र को बृहस्पति ने यज्ञोपवीत दिया था उसी तरह आयु, बल, बुद्धि और सम्पत्ति की वृद्धि के लिए मैं यज्ञोपवीत धारण करता हूँ।

देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तर्षयस्तपसे ये निषेदुः।
भीमा जग्या ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योयम्॥

—ऋग्वेद १०।१०६।४

प्राचीन तपस्वी सप्त ऋषि तथा देवगण ऐसा कहते हैं कि यज्ञोपवीत ब्राह्मण की महान् शक्ति है। यह शक्ति अत्यन्त शुद्ध चरित्रता और कठिन कर्तव्यपरायणता प्रदान करने वाली

है। इस यज्ञोपवीत को धारण करने से नीच जन भी परमपद को पहुँच जाते हैं।

अमौक्तिकमसौवर्ण्यं ब्राह्मणानां विभूषणम्।
देवतानां च पितॄणां भागो येन प्रदीयते॥

—मृच्छकटिक १०-१८

यज्ञोपवीत न तो मोतियों का है और न स्वर्ण का फिर भी यह ब्राह्मणों का आभूषण है। इसके द्वारा देवता और ऋषियों का ऋण चुकाया जाता है।

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥

—ब्रह्मोपनिषद्

यज्ञोपवीत परम पवित्र, प्रजापति ईश्वर ने इसे सबके लिए सहज ही बनाया है। यह आयुवर्धक, स्फूर्तिदायक, बन्धन से छुड़ाने वाला, पवित्रता देने वाला है। यह बल और तेज देता है।

त्रिरस्यता परमासन्ति सत्यास्यार्हा देवस्य जनि मान्यग्नेः।
अनन्ते अन्तः परिवीत आगाच्छुचिः शुक्रो अर्योरोरुचानः॥

—ऋग्वेद ४।७।१

इस यज्ञोपवीत के परम श्रेष्ठ तीन लक्ष हैं। सत्य व्यवहार की आकांक्षा, अग्नि के समान तेजस्विता और दिव्य गुणों की पवित्रता इसके द्वारा भली प्रकार प्राप्त होती है।

सदा यज्ञोपवीतिना भाव्यं सदाबद्ध शिखेन च।
विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्॥

—बोधायन

सदा यज्ञोपवीत पहने और शिखा में गाँठ लगाकर रहे बिना शिखा और बिना यज्ञोपवीत वाला जो धार्मिक कर्म करता है सो निष्फल जाते हैं।

बिना यज्ञोपवीतेन तोयं यः पिवते द्विजः।
उपवासेन चैकेन पञ्च गव्येन शुद्धयति॥

यज्ञोपवीत न होने पर द्विज को पानी तक न पीना चाहिए। (यदि इस नियम के भंग होने से वह पतित हो जाय तो) एक उपवास करने पर तथा पंचगव्य पीने पर उसकी शुद्धि होती है।

नाभिव्याहारयेद् ब्रह्म स्वधानि नयनाट्टते।
शूद्रेण हि समस्तावद्यावद्वेदे न जायते॥

यज्ञोपवीत होने से पहले बालक को वेद न पढ़ावे। क्योंकि जब तक यज्ञोपवीत संस्कार नहीं होता तब तक ब्राह्मण का बालक भी शूद्र समान है।

कृतोपनयनस्याय व्रतादेश न भिष्यते।
ब्रह्मणो ग्रहणं चैव क्रमेण विधि पूर्वकम्॥

जब बालकों का उपनयन संस्कार हो जावे तभी शास्त्र की आज्ञानुसार उसका अध्ययन आरम्भ होना चाहिए इससे पूर्व नहीं।

जन्यना जायते शूद्र संस्कारात् द्विज उच्यते।
वेद पाठी भवेद् विप्रः, ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः॥

जन्म से सब शूद्र हैं। यज्ञोपवीत होने से द्विज बनते हैं जो वेदपाठी है वह विप्र है। जो ब्रह्म को जानता है वह ब्राह्मण है।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ।
तेषां जन्म द्वितीयं तु विज्ञेयं मौञ्जिबंधनम् ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य यह तीनों द्विज कहलाते हैं क्योंकि यज्ञोपवीत धारण करने से उनका दूसरा जन्म होता है ।

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः ।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः ॥

—अथर्व० ११, ३, ५, ३

गर्भ में बसकर माता-पिता के सम्बन्ध द्वारा मनुष्य का साधारण जन्म घर में होता है । दूसरा जन्म विद्या रूपी माता के गर्भ में, आचार्य रूपी पिता द्वारा गुरु-गृह में यज्ञोपवीत और विद्याभ्यास द्वारा होता है ।

तत्र यद्ब्रह्मजन्मास्य मौञ्जीबन्धनचिन्हितम् ।
तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते ॥

यज्ञोपवीत-मेखला-धारण करने से मनुष्य का ब्रह्म जन्म होता है । उस जन्म में गायत्री माता है और आचार्य पिता है ।

वेद प्रदानादाचार्यं पितरं परिचक्षते ।
नह्यस्मिन्युज्यते कर्म किञ्चिदामौञ्जिबन्धनात् ॥

वेद पढ़ाने वाले आचार्य को पिता कहते हैं । जब बालक का यज्ञोपवीत संस्कार हो जाता है, तब उसे धार्मिक कर्मों को करने का अधिकार मिलता है, इससे पूर्व नहीं ।

गायत्री की मूर्तिमान प्रतिमा—यज्ञोपवीत

यज्ञोपवीत को "ब्रह्मसूत्र" भी कहा जाता है। सूत्र डोरे को भी कहते हैं और उस संक्षिप्त शब्द-रचना को भी जिसका अर्थ बहुत विस्तृत होता है। व्याकरण, दर्शन, धर्म, कर्मकाण्ड आदि के अनेकों ग्रन्थ ऐसे हैं, जिनमें ग्रन्थकर्त्ताओं ने अपने मन्तव्यों को बहुत ही संक्षिप्त संस्कृत वाक्यों में सन्निहित कर दिया है। उन सूत्रों पर लम्बी-लम्बी वृत्तियाँ, टिप्पणियाँ तथा टीकाएँ हुई हैं, जिनके द्वारा उन सूत्रों में छिपे हुए अर्थों का विस्तार होता है। ब्रह्मसूत्र में यदि अक्षर नहीं हैं, तो भी संकेतों से बहुत कुछ बताया गया है। मूर्तियाँ, चिन्ह, चित्र, अवशेष आदि के आधार पर बड़ी-बड़ी महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त होती हैं। यद्यपि इनमें अक्षर नहीं होते तो भी वे बहुत कुछ प्रकट करने में समर्थ हैं। इशारा करने से एक मनुष्य अपने मनोभाव दूसरों पर प्रकट कर देता है। भले ही उस इशारे में किसी शब्द या लिपि का प्रयोग नहीं किया जाता। यज्ञोपवीत के ब्रह्मसूत्र यद्यपि वाणी और लिपि से रहित हैं, तो भी उनमें एक विशद् व्याख्यान की अभि-भावना भरी हुई है।

गायत्री को गुरुमन्त्र कहा जाता है। यज्ञोपवीत धारण करते समय जो वेदारम्भ कराया जाता है, वह गायत्री से कराया जाता है। प्रत्येक द्विज को गायत्री जानना उसी प्रकार अनिवार्य है, जैसे कि यज्ञोपवीत धारण करना। यह गायत्री-यज्ञोपवीत का जोड़ा ऐसा ही है जैसा लक्ष्मी-नारायण, सीता-राम, राधे-श्याम, प्रकृति-ब्रह्म, गौरी-शंकर, नर-मादा का जोड़ा है। दोनों के सम्मिश्रण से ही एक पूर्ण इकाई बनती है। जैसे स्त्री-पुरुष की सम्मिलित व्यवस्था का नाम ही गृहस्थ है, वैसे ही गायत्री उप-वीत का सम्मिलन ही द्विजत्व है। उपवीत सूत्र है तो गायत्री

उसकी व्याख्या है। दोनों की आत्मा एक दूसरे के साथ जुड़ी हुई हैं।

यज्ञोपवीत में तीन तार हैं, गायत्री में तीन चरण हैं। 'तत्सवितुर्वरेण्यं' प्रथम चरण, 'भर्गोदेवस्य धीमहि' द्वितीय चरण और 'धियोयोनः प्रचोदयात्' तृतीय चरण है। तीन तारों का क्या तात्पर्य है, इसमें क्या सन्देश निहित है, यह बात समझना हो तो गायत्री के इन तीन चरणों को भली प्रकार जान लेना चाहिए।

उपवीत में तीन प्रथम ग्रन्थियाँ और एक ब्रह्म ग्रन्थि होती है। गायत्री में तीन व्याहृतियाँ (भूः भुवः स्व) और एक प्रणव [ॐ] है। गायत्री के प्रारम्भ में ॐकार और भूः भुवः स्वः का जो तात्पर्य है, उसी की ओर यज्ञोपवीत की ब्रह्मग्रंथि तीन ग्रंथियाँ संकेत करती हैं। उन्हें समझने वाला जान सकता है कि यह चार गाँठें मनुष्य जाति के लिए क्या-क्या सन्देश देती हैं।

हम इस महाविज्ञान को सरलतापूर्वक हृदयंगम करने के लिए चार भागों में विभक्त कर सकते हैं। १-प्रणव तथा तीनों व्याहृतियाँ अर्थात् यज्ञोपवीत की चारों ग्रन्थियाँ, १-गायत्री का प्रथम चरण अर्थात् यज्ञोपवीत की प्रथम लड़, ३-द्वितीय चरण अर्थात् द्वितीय लड़, ४-तृतीय चरण अर्थात् तृतीय लड़। आइए, अब इन पर विचार करें-

१-प्रणव का सन्देश यह है-"परमात्मा सर्वत्र समस्त प्राणियों में समाया हुआ है, इसलिये लोक-सेवा के लिये निष्काम भाव से कर्म करना चाहिये और अपने मन को स्थिर तथा शान्त रखें।"

२-भूः का तत्वज्ञान यह है-"शरीर अस्थायी औजार मात्र है, इसलिए उस पर अत्यधिक आशक्त न होकर आत्मबल बढ़ाने

का, श्रेष्ठ मार्ग का, सत्कर्मों का आश्रय ग्रहण करना चाहिए।"

३-भुवः का तात्पर्य है-पापों के विरुद्ध रहने वाला मनुष्य, देवत्व को प्राप्त करता है। जो पवित्र आदर्शों और साधनों को अपनाता है वही बुद्धिमान है।"

४-स्वः की प्रतिध्वनि यह है-"विवेक द्वारा शुद्ध बुद्धि से सत्य को जांनने, संयम और त्याग की नीति का आचरण करने के लिए अपने को तथा दूसरों को प्रेरणा देनी चाहिये।"

यह चतुर्मुखी नीति यज्ञोपवीतधारी की होती है। इस सब का सारांश यह है कि-उचित मार्ग से अपनी शक्तियों को बढ़ाओ और अन्तःकरण को उदार रखते हुए अपनी शक्तियों का अधिकांश भाग जनहित के लिये लगाये रहो। इसी कल्याणकारी नीति पर चलने से मनुष्य व्यष्टि रूप से तथा समस्त संसार में समिष्टि रूप से सुख-शान्ति प्राप्त कर सकता है। यज्ञोपवीत, गायत्री की मूर्तिमान प्रतिमा है, उसका जो सन्देश मनुष्य जाति के लिये है, उसके अतिरिक्त और कोई मार्ग ऐसा नहीं जिससे वैयक्तिक तथा सामाजिक सुख-शान्ति स्थिर रह सके।

सुरलोक में एक ऐसा कल्पवृक्ष है, जिसके नीचे बैठकर जिस वस्तु की कामना की जाय वही वस्तु तुरन्त सामने उपस्थित हो जाती है। जो भी इच्छा की जाय तुरन्त पूर्ण हो जाती है। वह कल्पवृक्ष जिनके पास होगा, वे कितने सुखी और सन्तुष्ट होंगे इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है।

पृथ्वी पर भी एक ऐसा कल्पवृक्ष है, जिसमें सुरलोक के कल्पवृक्ष की सभी सम्भावनाएँ छिपी हुई हैं। इसका नाम है—गायत्री। गायत्री मन्त्र को स्थूल दृष्टि से देखा जाय तो वह २४ अक्षरों और नौ पदों की एक शब्द-शृङ्खला मात्र है, परन्तु यदि

गम्भीरतापूर्वक अवलोकन किया जाय तो उसके प्रत्येक पद और अक्षर में ऐसे तत्वों का रहस्य छिपा हुआ मिलेगा, जिनके द्वारा कल्पवृक्ष के समान ही समस्त इच्छाओं की पूर्ति हो सकती है।

ऐसा उल्लेख मिलता है कि कल्पवृक्ष के सब पत्ते रत्नजड़ित हैं। वे रत्नों जैसे सुशोभित और बहुमूल्य होते हैं। गायत्री कल्पवृक्ष के उपरोक्त नौ पत्ते, निस्सन्देह नौ रत्नों के समान मूल्यवान और महत्वपूर्ण हैं। प्रत्येक पत्ता—प्रत्येक गुण—एक-एक रत्न से किसी भी प्रकार कम नहीं है। 'नौलखा हार' की जेवरों में बहुत प्रशंसा है। नौ लाख रुपये की लागात से बना हुआ 'नौलखा हार' पहनने वाले अपने को बड़ा सौभाग्यशाली समझते थे। यदि गम्भीर तात्विक और दूरदृष्टि से देखा जाय तो यज्ञोपवीत भी नवरत्न जड़ित 'नौलखा हार' से किसी भी प्रकार कम महत्व का नहीं है।

गायत्री गीता के अनुसार यज्ञोपवीत के नौ तार, जिन नौ गुणों को धारण करने का आदेश करते हैं, वे इतने महत्वपूर्ण हैं कि नौ रत्नों की तुलना में इन गुणों की ही महिमा अधिक है।

१—जीव-विज्ञान की जानकारी होने से मनुष्य जन्म-मरण के रहस्य को समझ जाता है। उसे मृत्यु का डर नहीं लगता, सदा निर्भय रहता है, उसे शरीर का तथा सांसारिक वस्तुओं का लोभ-मोह भी नहीं होता। फलस्वरूप जिन साधारण हानि-लाभों के लिए लोग बेतरह दुःख के समुद्र में डूबते और हर्ष के मद में उछलते फिरते हैं, उन उन्मादों से वह बच जाता है।

२—शक्ति-सञ्चय की नीति अपनाने वाला दिन-दिन अधिक स्वस्थ, विद्वान, बुद्धिमान्, धनी, सहयोग-सम्पन्न, प्रतिष्ठावान् बनता जाता है। निर्बलों पर प्रकृति के, बलवानों के तथा दुर्भाग्य के जो आक्रमण होते रहते हैं, उनसे वह बचा

रहता है और शक्ति-सम्पन्नता के कारण जीवन के नाना विधि आनन्दों को स्वयं भोगता है एवं अपनी शक्ति द्वारा दूसरे दुर्बलों की सहायता करके पुण्य का भागी बनता है। अनीति वहीं पनपती है, जहाँ शक्ति का सन्तुलन नहीं होता। शक्ति-सञ्चय का स्वाभाविक परिणाम है—अनीति का अन्त, जो कि सभी के लिए कल्याणकारी है।

३–श्रेष्ठता का अस्तित्व परिस्थितियों में नहीं, विचारों में होता है। जो व्यक्ति साधन सम्पन्नता में बढ़े-चढ़े हैं, परन्तु लक्ष, सिद्धान्त, आदर्श एवं अन्तःकरण की दृष्टि से गिरे हुए हैं, उन्हें निकृष्ट ही कहा जायगा। ऐसे निकृष्ट आदमी अपने आत्मा की दृष्टि में, परमात्मा की दृष्टि में और दूसरे सभी विवेकवान व्यक्तियों की दृष्टि में नीची श्रेणी के ठहरते हैं। अपनी नीचता के दण्डस्वरूप आत्म-ताड़ना, ईश्वरीय दण्ड और बुद्धिभ्रम के कारण मानसिक अशान्ति में डूबे रहते हैं। इसके विपरीत कोई व्यक्ति भले ही गरीब, साधन-हीन हो, पर उसका आदर्श, सिद्धांत उद्देश्य एवं अन्तःकरण उच्च तथा उदार है, तो वह श्रेष्ठ ही कहा जायगा। यह श्रेष्ठता उसके लिए इतने आनन्द का उद्भव करती रहती है, जो बड़ी से बड़ी सांसारिक सम्पदा से भी सम्भव नहीं।

४–निर्मलता का अर्थ है सौन्दर्य। सौन्दर्य वह वस्तु है, जिसे मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी और कीट-पतङ्ग तक पसन्द करते हैं। यह निश्चित है कि कुरूपता का कारण गन्दगी है। मलीनता जहाँ कहीं भी होगी, वहाँ कुरूपता रहेगी और वहाँ से दूर रहने की सबकी इच्छा होगी। शरीर के भीतर मल भरे होंगे तो मनुष्य कमजोर और बीमार रहेगा। इसी प्रकार कपड़े, घर, भोजन, त्वचा, बाल, प्रयोजनीय पदार्थ आदि में गन्दगी होगी तो

वह घृणास्पद, अस्वास्थ्यकर, निकृष्ट एवं निन्दनीय बन जावेंगे। मन में, बुद्धि में, अन्तःकरण में, मलीनता हो, तब तो कहना ही क्या है, इन्सान का स्वरूप हैवान और शैतान से भी बुरा हो जाता है। इन विकृतियों से बचने का एकमात्र उपाय 'सर्वतोमुखी निर्मलता' है। जो भीतर बाहर सब ओर से निर्मल है, जिसकी कमाई, विचारधारा, देह, वाणी, पोशाक, झोंपड़ी, प्रयोजनीय सामिग्री निर्मल है, स्वच्छ है, शुद्ध है, वह सब प्रकार सुन्दर, प्रसन्न, प्रफुल्ल, मृदुल एवं सन्तुष्ट दिखाई देगा।

५-दिव्य दृष्टि से देखने का अर्थ है--संसार के दिव्य तत्वों के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ना। हर पदार्थ अपने सजातीय पदार्थों को अपनी ओर खींचता है और उन्हीं की ओर खुद खिंचता है। जिनका दृष्टिकोण संसार की अच्छाइयों को देखने, समझने और अपनाने का है,वह चारों ओर अच्छे व्यक्तियों को देखते हैं। लोगों के उपकार, भलमनसाहत, सेवा-भाव, सहयोग और सत्कार्यों पर ध्यान देने से ऐसा प्रतीत होता है कि लोगों में बुराइयों की अपेक्षा अच्छाइयाँ अधिक हैं और संसार हमारे साथ अपकार की अपेक्षा उपकार कहीं अधिक कर रहा है। आँखों पर जैसे रङ्ग का चश्मा पहन लिया जाय, वैसे ही रङ्ग की सब वस्तुएँ दिखाई पड़ती हैं। जिसकी दृष्टि दूषित है, उनके लिये प्रत्येक पदार्थ और प्रत्येक प्राणी बुरा है, पर जो दिव्य दृष्टि वाले हैं, वे प्रभु की इस परम पुनीत फुलवारी में सर्वत्र आनन्द ही आनन्द बरसता देखते हैं।

६-सद्गुण—अपने में अच्छी आदतें, अच्छी योग्यताएँ, अच्छी विशेषताएँ धारण करना सद्गुण कहलाता है। विनय, नम्रता, शिष्टाचार, मधुर भाषण, उदार व्यवहार, सेवा-सहयोग, ईमानदारी, परिश्रमशीलता, समय की पाबन्दी, निय-

मितता, मितव्ययता, मर्यादित रहना, कर्तव्य परायणता, जागरूकता, प्रसन्नमुख-मुद्रा, धैर्य, साहस, पराक्रम, पुरुषार्थ, आशा, उत्साह यह सब सद्गुण हैं। सङ्गीत, साहित्य, कला, शिल्प, व्यापार, वक्तृता, व्यवसाय, उद्योग, शिक्षण आदि योग्यताएँ होना सद्गुण हैं। इस प्रकार के सद्गुण जिसके पास हैं, वह कितना आनन्दमय जीवन बितावेगा, इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है।

७-विवेक—एक प्रकार का आत्मिक प्रकाश है, जिसके द्वारा सत्य-असत्य की, उचित-अनुचित की, आवश्यक-अनावश्यक की, हानि-लाभ की परीक्षा होती है। संसार में असंख्यों परस्पर विरोधी मान्यताएँ, रिवाजें, विचारधाराएँ प्रचलित हैं और उनमें से हरएक के पीछे तर्क, कुछ आधार, कुछ उदाहरण तथा कुछ पुस्तकों एवं महापुरुषों के नाम अवश्य सम्बद्ध होते हैं। ऐसी दशा में यह निर्णय करना कठिन होता है कि इन परस्पर विरोधी बातों में क्या ग्राह्य हैं और क्या अग्राह्य? इस सम्बन्ध में देश, काल, परिस्थिति, उपयोगिता, जन-हित आदि बातों को ध्यान में रखते हुए सद्बुद्धि से निर्णय किया जाता है, वही प्रामाणिक एवं ग्राह्य होता है। जिसने उचित निर्णय कर लिया तो समझिये कि उसने सरलता पूर्वक सुख-शान्ति के लक्ष तक पहुँचने की सीधी राह पा ली। संसार में अधिकांश कलह, क्लेश, पाप एवं दुखों का कारण दुर्बुद्धि, भ्रम तथा अज्ञान होता है। विवेकवान् व्यक्ति इन सब उलझनों से अनायास ही बच जाता है।

८-संयम—जीवन-शक्ति का, विचार-शक्ति का, भोगेच्छा का, श्रम का संतुलन ठीक रखना ही संयम है। न इनको घटने देना, न नष्ट-निष्क्रिय होने देना और न अनुचित मार्ग में व्यय होने देना संयम का तात्पर्य है। मानव-शरीर आश्चर्यजनक

शक्तियों का केन्द्र है। यदि उन शक्तियों का अपव्यय रोककर उपयोगी दिशा में लगाया जाय तो अनेक आश्चर्यजनक सफलताएँ मिल सकती हैं और जीवन की प्रत्येक दिशा में उन्नति हो सकती है।

९-सेवा—सहायता, सहयोग, प्रेरणा, उन्नति की ओर, सुविधा की ओर किसी को बढ़ाना यह उसकी सबसे बड़ी सेवा है। इस दिशा में हमारा शरीर और मस्तिष्क सबसे अधिक हमारी सेवा का पात्र है, क्योंकि वह हमारे सबसे अधिक निकट है। आमतौर से दान देना, समय देना या बिना मूल्य अपनी शारीरिक, मानसिक शक्ति किसी को देना सेवा कहा जाता है और यह अपेक्षा नहीं की जाती कि हमारे इस त्याग से दूसरों में कोई क्रिया-शक्ति, आत्म-निर्भरता, स्फूर्ति, प्रेरणा जागृत हुई या नहीं। इस संसार की सेवा दूसरों को आलसी, परावलम्बी और भाग्यवादी बनाने वाली हानिकारक सेवा है। हम और दूसरों की इस प्रकार प्रेरक सेवा करें, जो उत्साह, आत्म-निर्भरता और क्रियाशीलता को सतेज करने में सहायक हो। सेवा का फल है—उन्नति। सेवा द्वारा अपने को तथा दूसरों को समुन्नत बनाना, संसार को अधिक सुन्दर और आनन्दमय बनाने वाला महान् पुण्य कार्य है इस प्रकार के सेवा-भावी पुण्यात्मा सांसारिक और आत्म-दृष्टि से सदा सुखी और सन्तुष्ट रहते हैं।

यह नवगुण निःसन्देह नवरत्न है। लाल, मोती, मूँगा, पन्ना, पुखराज, हीरा, नीलम, गोमेद, बैदूर्य यह नौ रत्न कहे जाते हैं। कहते हैं जिसके पास यह रत्न होते हैं, वे सर्व सुखी समझे जाते हैं। पर भारतीय धर्म-शास्त्र कहता है कि जिनके पास यज्ञोपवीत और गायत्री मिश्रित उपरोक्त आध्यात्मिक नव-रत्न हैं, वे इस भूतल के कुबेर हैं। भले ही उनके पास धन-दौलत,

जमीन, जायदाद न हो। यह नवरत्न मण्डित कल्पवृक्ष जिसके पास है, वह विवेकयुक्त यज्ञोपवीतधारी सदा सुरलोक की सम्पदा भोगता है। उसके लिए यह भूलोक ही स्वर्ग है, यह कल्प-वृक्ष हमें चारों फल देता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों सम्प्रदाय से हमें परिपूर्ण कर देता है।

साधकों के लिए उपवीत आवश्यक है।

कई व्यक्ति सोचते हैं कि यज्ञोपवीत हमसे सधेगा नहीं, हम उसके नियमों का पालन नहीं कर सकेंगे, इसलिए हमें उसे धारण नहीं करना चाहिए। यह तो ऐसी ही बात हुई, जैसे कोई कहे कि मेरे मन में ईश्वर-भक्ति नहीं है, इसलिए मैं पूजा-पाठ न करूँगा। पूजा-पाठ करने का तात्पर्य ही भक्ति उत्पन्न करना है, यदि भक्ति पहले से ही होती तो पूजा-पाठ करने की आवश्यकता ही न रह जाती। यही बात जनेऊ के सम्बन्ध में है, यदि धार्मिक नियमों का साधन अपने आप ही हो जाय तो उसके धारण करने की आवश्यकता ही क्या ? चूँकि आमतौर से नियम नहीं सधते, इसीलिए तो यज्ञोपवीत का प्रतिबन्ध लगाकर उन नियमों को साधने का प्रयत्न किया जाता है। जो लोग नियम नहीं साध पाते, उन्हीं के लिए सबसे अधिक आवश्यकता जनेऊ धारण करने की है। जो बीमार है उसे ही तो दवा चाहिए, यदि बीमार न होता तो दवा की आवश्यकता ही उसके लिये क्या थी ?

नियम क्यों साधने चाहिए इसके बारे में लोगों की बड़ी विचित्र मान्यताएँ हैं। कई आदमी समझते हैं कि भोजन सम्बन्धी नियमों का पालन करना ही जनेऊ का नियम है। बिना स्नान किए, रास्ते का चला हुआ, रात का बासी हुआ, अपनी जाति के अलावा किसी का बना हुआ भोजन न करना ही यज्ञो-पवीत की साधना है। यह बड़ी अधूरी और भ्रमपूर्ण धारणा

है। यज्ञोपवीत का मन्तव्य मानव-जीवन की सर्वाङ्गपूर्ण उन्नति करना है, उन उन्नतियों में स्वास्थ्य की उन्नति भी एक है और उनके लिए अन्य नियमों का पालन करने के साथ-साथ भोजन सम्बन्धी नियमों की सावधानी भी रखना उचित है। इस दृष्टि से जनेऊधारी के लिए भोजन सम्बन्धी नियमों का पालन करना ठीक है, परन्तु जिस प्रकार प्रत्येक द्विज जीवन की सर्वाङ्गीण उन्नति के सभी नियमों को पूर्णतया पालन नहीं कर पाता, फिर भी कंधे पर जनेऊ धारण किये रहता है, इसी प्रकार भोजन सम्बन्धी किसी नियम में यदि त्रुटि रह जाय तो यह नहीं समझना चाहिये कि त्रुटि के कारण जनेऊ धारण करने का अधिकार ही छिन जाता है। यदि झूँठ बोलने से, दुराचार की दृष्टि रखने से, बेईमानी करने से, आलस्य प्रमाद या व्यसनों में ग्रस्त रहने से जनेऊ नहीं टूटता तो केवल भोजन सम्बन्धी नियम में कभी-कभी थोड़ा सा अपवाद आ जाने से नियम टूट जायगा, यह सोचना किस प्रकार उचित कहा जा सकता है।

मल-मूत्र के त्याग में कान पर जनेऊ चढ़ाने में भूल होने का अक्सर भय रहता है। कई आदमी इसी डर की वजह से यज्ञोपवीत नहीं पहिनते या पहिनना छोड़ देते हैं। यह ठीक है कि इस नियम का कठोरता से पालन होना चाहिए, पर यह भी ठीक है कि आरंभ में इसकी आदत न पड़ जाने तक नौसिखियों को कुछ सुविधा भी मिलनी चाहिए, जिससे कि उन्हें एक दिन में तीन-तीन जनेऊ बदलने के लिए विवश न होना पड़े। इसके लिए ऐसा किया जा सकता है कि जनेऊ का एक फेरा गर्दन में घुमा दिया जाय, ऐसा करने से वह कमर से ऊँचा आ जाता है। कान में चढ़ाने का प्रधान प्रयोजन यह है कि मल-मूत्र की अशुद्धता का यज्ञ-सूत्र से स्पर्श न हो, जब जनेऊ कण्ठ में लपेट दिये जाने से

कमर से ऊँचा उठ आता है, तो उससे अशुद्धता का स्पर्श होने की आशङ्का नहीं रहती और यदि कभी कान में चढ़ाने की भूल भी हो जाय, तो उसके बदलने की आवश्यकता नहीं होती। थोड़े दिनों जब भली प्रकार आदत पड़ जाती है तो फिर कण्ठ में लपेटने की आवश्यकता नहीं रहती।

छोटी आयु वाले बालकों के लिए तथा अन्य भुलक्कड़ व्यक्तियों के लिए तृतीयांश यज्ञोपवीत की व्यवस्था की जा सकती है। पूरे यज्ञोपवीत की अपेक्षा दो तिहाई छोटा अर्थात् एक तिहाई लम्बाई का तीन लड़ वाला उपवीत केवल कण्ठ में धारण कराया जा सकता है। इस प्रकार के उपवीत को आचार्यों ने 'कण्ठी' शब्द से सम्बोधन किया है। छोटे बालकों का जब उपनयन होता था, तब उन्हें दीक्षा के साथ कण्ठी पहना दी जाती थी। आज भी गुरु नामधारी पंडितजी गले में कन्ठी पहना कर और कान में मन्त्र सुनाकर 'गुरुदीक्षा' देते हैं।

इस प्रकार के अविकसित व्यक्ति उपवीत की नित्य सफाई का भी पूरा ध्यान रखने में प्रायः भूल करते हैं, जिससे शरीर का पसीना उसमें रमता रहता है। फलस्वरूप बदबू गंदगी मैल और रोग-कीटाणु उसमें पलने लगते हैं। ऐसी स्थिति में यह सोचना पड़ता है कि कोई ऐसा उपाय निकल आवे, जिससे कण्ठ में पड़ी हुई उपवीती-कण्ठी का शरीर से कम स्पर्श हो। इस निमित्त तुलसी, रुद्राक्ष या किसी और पवित्र वस्तु के दानों में कण्ठी के सूत्रों को पिरो दिया जाता है,फलस्वरूप वे दाने ही शरीर का स्पर्श कर पाते हैं सूत्र अलग रहा आता है और पसीने का जमाव होने एवं शुद्धि में प्रमाद होने के खतरे से बचत हो जाती है, इसीलिए दाने वाली कंठियाँ पहनने का रिवाज चलाया गया।

पर्ण रूप से न सही आंशिक रूप से सही, गायत्री के

साधकों को यज्ञोपवीत धारण अवश्य करना चाहिए, क्योंकि उपनयन गायत्री का मूर्तिमान प्रतीक है, उसे धारण किये बिना भगवती की साधना का धार्मिक अधिकार नहीं मिलता आजकल नई फैशन से जेवरों का रिवाज कम होता है, फिर भी गले में कन्ठी-माला किसी न किसी रूप में स्त्री-पुरुष धारण करते हैं गरीब स्त्रियाँ काँच के मनकों की कंठियाँ पहिनती हैं सम्पन्न घरों की स्त्रियाँ चांदी,सोने,मोती आदि की कंठियाँ धारण करती हैं। इन आभूषणों के नाम हार, नैकलेस,जंजीर, माला आदि रखे गये हैं, पर वह वास्तव में कंठियों के ही प्रकार हैं । चाहे स्त्रियों के पास कोई अन्य आभूषण हो चाहे न हो, परन्तु इतना निश्चत है कि कन्ठी को गरीब से गरीब स्त्रियाँ भी किसी न किसी रूप में अवश्य धारण करेंगी। इससे प्रकट है कि भारतीय नारियों ने अपने सहजधर्म प्रेम को किसी रूप में जीवित रखा है और उपवीत को किसी न किसी प्रकार धारण किया है।

जो लोग उपवीत धारण करने के अधिकारी नहीं कहे जाते, जिन्हें कोई दीक्षा नहीं देता, वे भी गले में तीन तार का या नौ तार का डोरा चार गाँठ लगाकर धारण कर लेते हैं। इस प्रकार चिह्न पूजा हो जाती है। पूरे यज्ञोपवीत का एक तिहाई लम्बा यज्ञोपवीत गले में डाले रहने का भी कहीं-कहीं रिवाज है।

यज्ञोपवीत संबंधी कुछ नियम

(१) शुद्ध खेत में उत्पन्न हुए कपास को तीन दिन तक धूप में सुखावे। फिर उसे स्वच्छ कर हाथ के चरखे से काते। कातने का कार्य प्रसन्न चित्त, कोमल स्वभाव एवं धार्मिक वृत्ति वाले स्त्री पुरुषों द्वारा होना चाहिए। क्रोधी, पापी, रोगग्रस्त, गन्दे, शोकातुर या अस्थिर चित्त वाले

मनुष्य के हाथ का कता हुआ सूत यज्ञोपवीत में प्रयोग न करना चाहिए।

(२) कपास न मिलने पर, गाय की पूँछ के बाल, स्तन, ऊन, कुश, रेशम आदि का भी यज्ञोपवीत बनाया जा सकता है पर सबसे उत्तम कपास का ही है।

(३) देवालय, नदी तीर, बगीचा, एकान्त, गुरु-ग्रह, गौशाला, पाठशाला अथवा अन्य पवित्र स्थान यज्ञोपवीत बनाने के लिए चुनना चाहिए। जहाँ तहाँ गंदे, दूषित, अशांत वातावरण में वह न बनाया जाना चाहिए और न बनाते समय अशुद्ध व्यक्तियों का स्पर्श होना चाहिए।

(४) बनाने वाला स्नान, संध्यावन्दन करने के उपरान्त स्वच्छ वस्त्र धारण करके कार्य आरम्भ करे। जिस दिन यज्ञोपवीत बनाना हो उससे तीन दिन पूर्व से ब्रह्मचारी रहे और नित्य एक सहस्र गायत्री का जप करे। एक समय सात्विक अन्न अथवा फलाहार दुग्धाहार का आहार किया करे।

(५) चार उँगलियों को बराबर-बराबर करके उस पर तीन तारों के ९६ चक्कर गिन ले। गंगाजल, तीर्थजल या किसी अन्य पवित्र जलाशय के जल से उस सूत का प्रच्छालन करे। तदुपरान्त तकली की सहायता से इन सम्मिलित तीन तारों को कातले। कत जाने पर उसे मोड़कर तीन लड़ों में ऐंठ ले। ९६ चप्पे गिनते तथा तकली पर कातते समय मन ही मन गायत्री मंत्र का जप करे और तीन लड़ ऐंठते समय—(आपोहिष्ठा मयो भवः) मन्त्र से मानसिक जप करे।

(६) कते और इँठे हुए डोरे को तीन चक्करों में विभाजित करके ग्रन्थि लगावे, आरम्भ में तीन गाठें और अन्त में एक

गाँठ लगाई जाती है। कहीं-कहीं अपने गोत्र के जितने प्रवर होते हैं उतनी ग्रंथियाँ लगाते हैं और अंत में अपने वर्ण के अनुसार ब्रह्म ग्रन्थि, क्षत्रिय ग्रंथि या वैश्य ग्रन्थि लगाते हैं। ग्रन्थियाँ लगाते समय (त्र्यम्बकम् यजामहे) मन्त्र का मन ही मन जप करना चाहिए। ग्रन्थि लगाते समय मुख पूर्व की ओर रखना चाहिए।

(७) यज्ञोपवीत धारण करते समय यह मन्त्र पढ़ना चाहिए।

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत् सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्रयं प्रति मुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलयस्तु तेजः॥

(८) यज्ञोपवीत उतारते समय यह मन्त्र पढ़ना चाहिए—

एतावद् दिन पर्यन्तां ब्रह्म त्वं धारितं मया।
जीर्णत्वात्त्वत्परित्यागो गच्छ सूत्र यथा सुखम्॥

(९) जन्म सूतक, मरण सूतक, चाण्डाल स्पर्श, मुर्दे का स्पर्श, मल-मूत्र त्यागते समय कान पर यज्ञोपवीत चढ़ाने में भूल होने के प्रायश्चित्य में उपाकर्म से, चार मास पुराना हो जाने पर, कहीं से टूट जाने पर जनेऊ उतार देना चाहिए। उतारने पर उसे जहाँ तहाँ नहीं फेंक देना चाहिए वरन् किसी पवित्र स्थान पर नदी, तालाब, देवस्थान, पीपल, गूलर, बड़, छोंकर जैसे पवित्र वृक्ष पर विसर्जित करना चाहिए।

(१०) बाएं कंधे पर इस प्रकार धारण करना चाहिए कि बाएं पार्श्व की ओर न रहे। लम्बाई इतनी होनी चाहिए कि हाथ लम्बा करने पर उसकी लम्बाई बराबर बैठे।

(११) ब्राह्मण पदाधिकारी बालक का उपवीत ५ से ८ वर्ष तक की आयु में, क्षत्रिय का ६ से ११ तक, वैश्य का ८ से १२ वर्ष तक की आयु में यज्ञोपवीत कर देना चाहिए। यदि ब्राह्मण का १६ वर्ष तक, क्षत्रिय का २२ वर्ष तक, वैश्य का २४ वर्ष तक उपवीत न हो तो वह "सावित्री पतित" हो जाता है। तीन दिन उपवास करते हुए पंच गव्य पीने से सावित्री पतित मनुष्य प्रायश्चित करके शुद्ध होता है।

(१२) ब्राह्मण का वसन्त ऋतु में, क्षत्री का ग्रीष्म में और वैश्य का उपवीत शरद ऋतु में होना चाहिए। पर जो "सावित्री पतित" है अर्थात् निर्धारित आयु से अधिक का होगया है उसका कभी भी उपवीत कर देना चाहिए।

(१३) ब्रह्मचारी को एक तथा ग्रहस्थ को दो जनेऊ धारण करने चाहिए, क्योंकि ग्रहस्थ पर अपना तथा धर्मपत्नी दोनों का उत्तरदायित्व होता है।

(१४) यज्ञोपवीत की शुद्धि नित्य करनी चाहिए। नमक, क्षार, साबुन, रीठा आदि की सहायता से जल द्वारा उसे भली प्रकार रगड़ कर नित्य स्वच्छ करना चाहिए ताकि पसीना का स्पर्श होने रहने से जो नित्य ही मैल भरता रहता है वह साफ होता रहे और दुर्गन्ध अथवा जुँऐं आदि जमने की संभावना न रहे।

(१५) मल, मूत्र त्याग करते समय अथवा मैथुन काल में यज्ञोपवीत कमर से ऊपर रखना चाहिए। इसलिए उसे कान पर चढ़ा लिया जाता है। कान की जड़ को मल-मूत्र त्यागते समय डोरे से बाँध देने से बवासीर, भंगदर जैसे गुदा के रोग नहीं होते ऐसा भी कहा जाता है।

(१६) यज्ञोपवीत आदर्शवादी भारतीय की संस्कृति की मूर्तिमान् प्रतिमा है, इसमें भारी तत्व-ज्ञान और मनुष्य को देवता बनाने वाला तत्व-ज्ञान भरा हुआ है इसलिए इसे धारण करने की परिपाटी का अधिक से अधिक विस्तार करना चाहिए। चाहे लोग उस रहस्य को समझने तथा आचरण करने में समर्थ न हों तो भी इसलिए उसका धारण करना आवश्यक है कि बीज होगा तो अवसर मिलने पर उग भी आवेगा।

अयोग्य को अनधिकार

"स्त्री और शूद्रों को वेद ज्ञान तथा ब्रह्म सूत्र नहीं लेना चाहिए" इस अभिमत का तात्पर्य किसी को जन्मजात कारणों की वजह से ईश्वरीय धर्म मार्ग में प्रवेश करने से रोकना नहीं है, वरन् यह है कि जिनकी अभिरुचि अध्यात्म मार्ग में नहीं है, जिनकी शिक्षा, अभिरुचि तथा मनोभूमि धर्म मार्ग में प्रवृत्त न होकर दूसरी ओर लगी रहती है, वे वेद-मार्ग में दिलचस्पी न ले सकेंगे, उसमें श्रद्धा न कर सकेंगे, समझ न सकेंगे। अधूरा ज्ञान लेकर तो उसके दुरुपयोग की ही अधिक संभावना है। शास्त्रकारों ने वेद-मार्ग में प्रवेश होने की शर्त यह रखी है कि-धर्म में विशेष रुचि हो, जिसमें यह रुचि पर्याप्त मात्रा में है, वह द्विज है जिसमें नहीं है वह शूद्र है। ऐसे शूद्र वृत्ति वाले लोगों के लिये उपवीत एक भार है। वे उसका उपहास या तिरस्कार करते हैं। ठीक रीति से धारण न कर सकने योग्य उसे धारण न करें तो ही ठीक है, इस दृष्टि से स्त्री और शूद्रों को यज्ञोपवीत निषिद्ध किया गया है।

जिनमें ऐसे दोष न हों वरन् प्रवल धर्म रुचि हो वे जन्म जात कारण से धर्म-संस्कारों से नहीं रोके जाने चाहिये, ऐसे प्रमाण पर्याप्त मात्रा में मौजूद है, जिनसे प्रकट होता है कि शास्त्र स्त्री और शूद्रों को भी उपवीत धारण करने की आज्ञा देता है:—

"द्विविधा स्त्रियो, ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च।
तत्र ब्रह्मवादिनीनां उपनयनं, अग्नि बन्धनं
वेदाध्ययनं स्वगृहे भिक्षावृत्तिश्च। वधूनां तूपस्तिथे
विवाहे कथाश्चिदुपनयनं कृत्वा विवाहः कार्यः।"

अर्थात् स्त्रियाँ दो प्रकार की हैं—ब्रह्मवादिनी और नववधू। ब्रह्मवादिनियों को उपनयन, अग्निहोत्र, वेदाध्ययन और अपने घर में ही भिक्षा करनी चाहिए। नव-वधुओं को कम से कम विवाह समय में तो यज्ञोपवीत अवश्य ही करना चाहिये।

गायत्री तपोभूमि—एक महान् धर्म संस्थान

गायत्री तपोभूमि, मथुरा शहर से १ मील आगे—वृन्दावन रोड पर परम शांतिमय वातावरण में बना हुआ एक सुन्दर आश्रम है, जहाँ गायत्री माता का भव्य मन्दिर, भारतवर्ष के लगभग २४०० तीर्थों के जल-रज का एक तीर्थ सम्मेलन-गृह, १२५ करोड़ हस्तलिखित गायत्री-मन्त्रों का संग्रह-कक्ष, निवास के लिए २३ कमरे, एक प्रवचन हाल, तीन बड़ी यज्ञशालाऐं, प्रधान यज्ञशाला में कभी न बुझने दी जाने वाली अखण्ड-अग्नि की स्थापना, नित्य गायत्री-मन्त्र की एक हजार आहुतियों का हवन, तुलसी का उपवन, हजारों धार्मिक पुस्तकों का विशाल पुस्तकालय, लगभग ६० पत्र-पत्रिकाऐं आने वाला वाचनालय, बिना मूल्य चिकित्सा के लिए कल्प चिकित्सालय यह सब देखकर कोई भी दर्शक संस्था की गति-विधियों का सहज ही अनुमान लगा सकता है। गायत्री तपोभूमि में सदा अनेक धार्मिक भावना वाले व्यक्ति शिक्षा, तीर्थ-यात्रा, साधना, तपश्चर्या एवं विभिन्न कठिनाइयों के सम्बन्ध में आचार्यजी से परामर्श करने आते हैं। आगन्तुकों को तपोभूमि में निवास, भोजन आदि की समुचित सुविधा प्राप्त होती है।

गायत्री तपोभूमि द्वारा देश भर में गायत्री महायज्ञों एवं सांस्कृतिक सम्मेलनों की सुविस्तृत शृंखला चल रही है। सन् '५६ और '५७ में १००० बड़े गायत्री महायज्ञ तथा सांस्कृतिक सम्मेलन करने का निश्चय किया था। सो उस संकल्प से भारतवर्ष के कोने-कोने से हजारों यज्ञ हुए जिनमें से १०१ कुण्डों वाले, २५ कुण्डों वाले, ६ कुण्डों वाले विशाल यज्ञों की संख्या १००० थी। इनमें से कुछ यज्ञों में तो ५० हजार तक जनता एकत्रित हुई। येयज्ञ अ० भा० गायत्री-परिवार की देश में फैली हुई १२०० शाखाओं द्वारा सम्पन्न हुये थे। इन यज्ञों और सम्मेलनों का उद्देश्य जनता में धर्म, सदाचार, नैतिकता,

लेखक—
श्रीराम शर्मा आचार्य
गायत्री तपोभूमि, मथुरा।

ॐ भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि
धियो योनः प्रचोदयात्।

प्रकाशक—
"अखण्ड ज्योति" प्रेस, मथुरा।

प्रथम बार] सन् १९५८ [मूल्य ।)

अनादि गुरु-मन्त्र गायत्री

मनुष्य में अन्य प्राणियों की अपेक्षा जहाँ कितनी ही विशेषताएं हैं वहाँ कितनी ही कमियाँ भी हैं। एक सबसे बड़ी कमी यह है कि पशु-पक्षियों के बच्चे बिना किसी के सिखाये अपनी जीवन-चर्या की साधारण बातें अपने आप सीख जाते हैं पर मनुष्य का बालक ऐसा नहीं करता है। यदि उसका शिक्षण दूसरों के द्वारा न हो तो वह उन विशेषताओं को प्राप्त नहीं कर सकता जो मनुष्य में होती हैं। धर्म,संस्कृति, रिवाज, भाषा, वेष, भूषा, शिष्टाचार, आहार, विहार आदि बातें बालक अपने निकट-वर्ती लोगों से सीखता है। यदि कोई बालक जन्म से ही अकेला रखा जाय तो वह सब बातों से वञ्चित रह जायगा जो मनुष्य में होती हैं।

पशु-पक्षियों के बच्चों में यह बात नहीं है। बया पक्षी का छोटा बच्चा पकड़ लिया जाय और वह माँ-बाप से कुछ न सीखे तो भी बड़ा होकर अपने लिए वैसा ही सुन्दर घोंसला बना लेगा जैसा कि अन्य बया पक्षी बनाते हैं। पर अकेला रहने वाला मनुष्य का बालक भाषा, कृषि, शिल्प, संस्कृति, धर्म, शिष्टाचार, लोक-व्यवहार, श्रम, उत्पादन आदि सभी बातों से वञ्चित रह जायगा। पशुओं के बालक जन्मते ही चलने-फिरने लगते हैं और माता का पय पान करने लगते हैं पर मनुष्य का बालक बहुत दिन में कुछ समझ पाता है। आरम्भ में तो वह करवट बदलना, दूध का स्थान तलाश करना तक नहीं जानता, अपनी माता तक को नहीं पहचानता। इन बातों में पशुओं के बच्चे अधिक चतुर होते हैं।

मनुष्य की यह कमजोरी कि वह दूसरों से ही सब कुछ सीखता है, उसके उच्च विकाश में बाधक होती है। कारण कि साधारण वातावरण में भले तत्वों की अपेक्षा बुरे तत्व अधिक होते हैं। उन बुरे तत्वों में ऐसा आकर्षण होता है कि कच्चे दिमाग उनकी ओर बड़ी आसानी से खिच जाते हैं। फलस्वरूप वे बुराइयाँ अधिक सीख लेने के कारण आगे चलकर बुरे मनुष्य साबित होते हैं। छोटी आयु में यह पता नहीं चलता कि बालक किन संस्कारों को अपनी मनोभूमि में जमा रहा है, बड़ा होने पर जब वे संस्कार एवं स्वभाव प्रकट होते हैं तब उन्हें हटाना कठिन हो जाता है क्योंकि दीर्घकाल तक वे संस्कार बालक के मन में जमे रहने एवं पकते रहने के कारण ऐसे सुदृढ़ हो जाते हैं कि उनका हटाना कठिन हो जाता है।

ऋषियों ने इस भारी कठिनाई को देखकर एक अत्यन्त ही सुन्दर और महत्वपूर्ण उपाय यह निश्चित किया कि प्रत्येक बालक पर माँ-बाप के अतिरिक्त किसी ऐसे व्यक्ति का भी नियन्त्रण रहना चाहिए जो मनोविज्ञान की सूक्ष्मताओं को समझता हो, दूरदर्शी, तत्व-ज्ञानी और पारदर्शी होने के कारण बालक के मन में जमते रहने वाले संस्कार-बीजों को अपनी पैनी दृष्टि से तत्काल देख लेने और उनमें आवश्यक सुधार करने की योग्यता रखता हो। ऐसे मानसिक नियन्त्रण-कर्त्ता की उनने प्रत्येक बालक के लिए अनिवार्य आवश्यकता घोषित की।

शास्त्रों में कहा गया है कि मनुष्य के तीन प्रत्यक्ष देव हैं– (१) माता, (२) पिता, (३) गुरु। इन्हें ब्रह्मा, विष्णु, महेश की उपमा दी है। माता जन्म देती है इसलिए ब्रह्मा है, पिता पालन करता है इसलिए विष्णु है, गुरु कुसंस्कारों का संहार करता है इसलिए शङ्कर है।

बिना माता का, बिना पिता का, बिना गुरु का भी कोई मनुष्य हो सकता है यह बात प्राचीन काल में अविश्वस्त समझी जाती थी। कारण कि भारतीय समाज के सुसंबद्ध विकास के लिए ऋषियों की यह अनिवार्य व्यवस्था थी कि प्रत्येक आर्य का गुरु होना चाहिए, जिससे वह महान पुरुष बन सके।

गुरुकुल प्रणाली का उस समय रिवाज था। पढ़ने की आयु के होते ही बालक ऋषियों के आश्रम में भेज दिये जाते थे। राजा-महाराजाओं तक के बालक गुरुकुल का कठिन जीवन बिताने जाते थे ताकि वे कुशल नियन्त्रण में रहकर सुसंस्कृत बन सकें और आगे चलकर मनुष्यता के महान गौरव की रक्षा करने वाले महापुरुष सिद्ध हो सकें। 'मैं अमुक आचार्य का शिष्य हूँ।' यह बात बड़े गौरव के साथ कही जाती थी।

मनुष्य का मस्तिष्क एक बगीचा के समान है। इसमें नाना प्रकार के मनोभाव, विचार, संकल्प, इच्छा, वासना, योजना रूपी वृक्ष उगते हैं। उनमें से कितने ही आवश्यक और कितने ही अनावश्यक होते हैं। बगीचे में कितने ही पौदे झाड़-झङ्खाड़ के अपने आप उग आते हैं, वे बढ़ें तो बगीचे को नष्ट कर सकते हैं। इसलिए माली उन्हें उखाड़ देता है और दूर-दूर से लाकर अच्छे-अच्छे बीज उसमें बोता है। गुरु अपने शिष्य के मस्तिष्क-रूपी बगीचे का माली होता है। वह अपने क्षेत्र में से जङ्गली झाड़-झङ्खाड़ जैसे अनावश्यक संकल्पों, संस्कारों, आकर्षणों और प्रभावों को उखाड़ता रहता है और अपनी बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता एवं चतुरता के साथ ऐसे संस्कार-बीज जमाता रहता है जो उस मस्तिष्करूपी बगीचे को बहुमूल्य बनावें।

कोई व्यक्ति यह सोचे कि "मैं स्वयं ही अपना आत्म-निर्माण करूँगा, अपने आप अपने को सुसंस्कृत बनाऊँगा, मुझे

किसी गुरु की आवश्यकता नहीं ।" तो ऐसा किया जा सकता है। आत्मा में अनन्त शक्ति है। अपना कल्याण करने की शक्ति उसमें मौजूद है। परन्तु ऐसे प्रयत्नों में कोई मनस्वी व्यक्ति ही सफल होते हैं। सर्व साधारण के लिए यह बात बहुत कष्टसाध्य है। कई सुयोग्य व्यक्ति भी आत्म-निरीक्षण में सफल नहीं होते। हम दूसरों की जैसी अच्छी आलोचना कर सकते हैं, दूसरों को जैसी नेक सलाह दे सकते हैं वैसी अपने लिए नहीं कर पाते। कारण यही है कि अपने सम्बन्ध में आप निर्णय करना कठिन होता है।

समुचित बौद्धिक विकास की सुव्यवस्था के लिए 'गुरु' की नियुक्ति को भारतीय धर्म में आवश्यक माना गया है। इससे मनुष्य की विचार-धारा, स्वभाव, संस्कार, गुण, प्रकृति, आदतें, इच्छाऐं, महत्वाकांक्षाऐं, कार्य-पद्धति आदि का प्रवाह उत्तम दिशा में होता है और मनुष्य अपने आप में संतुष्ट, प्रसन्न, पवित्र और परिश्रमी रहकर दूसरों को अपनी उदारता तथा सद्व्यवहार से सुख पहुँचा सकता है। इस प्रकार के सुसंस्कृत मनुष्य जिस समाज में, जिस देश में अधिक होंगे वहाँ निश्चयपूर्वक सुख-शांति की, सुव्यवस्था की, पारस्परिक सहयोग की, प्रेम की, साथ ही सहयोग की बहुलता रहेगी। हमारा पूर्व इतिहास साक्षी है कि सुसंस्कारित मस्तिष्क के भारतीय महापुरुषों ने कैसे महान कार्य किये थे और इस भूमि पर किस प्रकार स्वर्ग को अवतरित कर दिया था।

आज यह प्रथा टूट चली है। गुरु कहलाने के अधिकारी व्यक्तियों का मिलना मुश्किल है। जिसमें गुरु बनने की योग्यता है वे अपने व्यक्तिगत आत्मिक या भौतिक लाभों के सम्पादन में लगे हुए हैं। लोक-सेवा एवं राष्ट्र-निर्माण की रचनात्मक प्रवृत्ति

की ओर, सुसंस्कृत बनाने का उत्तरदायित्व सिर पर लेने की ओर उनका ध्यान नहीं है। वे इससे स्वल्प लाभ, अधिक झंझट और भारी बोझ अनुभव करते हैं। इसकी अपेक्षा वे दूसरे सरल तरीकों से अधिक धन और यश कमा लेने के अनेक मार्ग जब सामने देखते हैं तो 'गुरु' का गहन उत्तरदायित्व ओढ़ने से कन्नी काट जाते हैं।

दूसरी ओर, ऐसे अयोग्य व्यक्ति जिनका चरित्र, ज्ञान, अनुभव, विवेक, तप आदि कुछ भी नहीं है, जिनमें दूसरों को संस्कृत करने की क्षमता होना तो दूर जो अपने आपको सुसंस्कृत नहीं बना सके, जो अपना निर्माण नहीं कर सके, ऐसे लोग पैर पुजाने और दक्षिणा लेने के लोभ में कान फूँकने लगे, खुशामद, दीनता और भिक्षा-वृत्ति का आश्रय लेकर शिष्य तलाश करने लगे तो गुरुत्व की प्रतिष्ठा नष्ट हो गई। जिस काम को कुपात्र लोग हाथ में ले लेते हैं वह अच्छा काम भी बदनाम हो जाता है। ऋषियों के हाथ में जब तक 'गुरुत्व' था तब तक उस पद की प्रतिष्ठा रही। आज जब कि कुपात्र, भिखारी और क्षुद्र लोग गुरु बनने का दुस्साहस करने लगे तो वह महान पद ही बदनाम हो गया। आज 'गुरु' या 'गुरु घंटाल' शब्द किसी पुराने पापी या धूर्त राज के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

आज के दूषित वातावरण ने सभी दिशाओं में गड़बड़ी पैदा कर दी है। असली सोना कम है पर नकली सोना बेहिसाब तैयार हो रहा है। असली घी मिलना मुश्किल है पर वेजीटेबिल घी से दुकानें पटी पड़ी हैं। असली मोती, असली जवाहरात कम हैं पर नकली मोती और इमीटेशन रत्न ढेरों बिकते हैं। इतना होते हुए भी असली चीजों का महत्व कम नहीं हुआ है। लोग घासलेट घी को खूब खरीदते बेचते हैं,

पर इससे असली घी की उपयोगिता घट नहीं जाती। असंख्य गड़बड़ियाँ होते रहने पर भी असली घी के गुण वही रहेंगे और इसके लाभों में कोई कमी न होगी। मिलावट, नकलीपन, धोखाधड़ी के हजार पर्वत मिलाकर भी वास्तविकता का, वस्तु स्थिति का महत्व राई भर भी नहीं घटा सकते।

"व्यक्ति द्वारा, व्यक्ति का निर्माण" एक सचाई है, जो आज की विषम स्थिति में तो क्या, किसी भी बुरी से बुरी स्थिति में भी गलत सिद्ध नहीं हो सकती। रोटी बनानी होगी तो आटे की, पानी की, आग की जरूरत पड़ेगी। चाहे कैसा ही भला या बुरा समय हो इस अनिवार्य आवश्यकता में कोई अन्तर नहीं आ सकता। अच्छे मनुष्य, सच्चे मनुष्य, प्रतिष्ठित मनुष्य, सुखी मनुष्य की रचना के लिए यह आवश्यक है कि अच्छे सुयोग्य और दूरदर्शी मनुष्यों द्वारा हमारे मस्तिष्कों का नियंत्रण, संशोधन, निर्माण और विकाश किया जाय। मनुष्य कोरे कागज के समान है वह जैसा प्रभाव ग्रहण करेगा, जैसा सीखेगा, वैसा करेगा। यदि बुराई से बचना है, तो अच्छाई से सम्बन्ध जोड़ना आवश्यक है। मनुष्य का मन खाली नहीं रह सकता, उसे अच्छाई का प्रकाश न मिलेगा तो निश्चय ही उसे बुराई के अन्धकार में रहना होगा।

शिक्षा और विद्या का महत्व:-

मनुष्य को सुयोग्य बनाने के लिए उसके मस्तिष्क को दो प्रकार से उन्नत किया जाता है--(१) शिक्षा द्वारा (२) विद्या द्वारा। शिक्षा के अन्तर्गत वे सब बातें आती हैं, जो स्कूलों में, कालेजों में, ट्रेनिंग कैम्पों में, हाट-बाजार में, घर में, दुकान में, समाज में सिखाई जाती हैं। विद्या द्वारा मनोभूमि का निर्माण होता है। मनुष्य की इच्छा, आकाँक्षा, भावना, श्रद्धा, मान्यता,

रुचि एवं आदतों के अच्छे ढाँचे में ढालना विद्या का काम है। चौरासी लाख योनियों में घूमते हुए आने के कारण पिछले पाशविक संस्कारों से मन भरा रहता है, उनका संशोधन करना विद्या का काम है।

शिक्षक शिक्षा देता है। शिक्षा का अर्थ है--सांसारिक ज्ञान। विद्या का अर्थ है--मनोभूमि की सुव्यवस्था। शिक्षा आवश्यक है, पर विद्या उससे भी अधिक आवश्यक है। शिक्षा बढ़नी चाहिए, पर विद्या का विस्तार उससे भी अधिक होना चाहिए। अन्यथा दूषित मनोभूमि रहते हुए यदि सांसारिक समर्थताएँ बढ़ीं तो उसका परिणाम भयंकर होगा। धन की, चतुरता की, शिक्षा की, विज्ञान की, इन दिनों बहुत उन्नति हुई है, पर यह स्पष्ट है कि उन्नति के साथ-साथ हम सर्वनाश की ओर ही बढ़ रहे हैं। कम साधन होते हुए भी, कम शिक्षित होते हुए भी, विद्यावान् मनुष्य सुखी रह सकता है, परन्तु केवल बौद्धिक या सांसारिक शक्तियाँ होने पर दूषित मनोभूमि का मनुष्य अपने लिए तथा दूसरों के लिए केवल विपत्ति, चिन्ता, कठिनाई, क्लेश एवं बुराई ही उत्पन्न कर सकता है। इसलिए विद्या पर भी उतना ही बल्कि उससे भी अधिक जोर दिया जाना चाहिए जितना कि शिक्षा पर दिया जाता है।

आज हम अपने बालकों को ग्रेजुएट बना देने के लिए ढेरों पैसा खर्च करते हैं, पर उनकी आन्तरिक भूमिका को सुव्यवस्थित करने की शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं करते। फलस्वरूप ऊँची शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद भी वे बालक अपने प्रति, अपने परिवार के प्रति, अपने समाज के प्रति कोई आदर्श व्यवहार नहीं कर पाते। किसी भी ओर उनकी प्रगति ऐसी नहीं होती जो प्रसन्नतादायक हो। शिक्षा के साथ उनमें जो अनेक

दुर्गुण आ जाते हैं उन दुर्गुणों में ही उनकी योग्यता द्वारा होने वाली कमाई बर्बाद होती रहती है।

गायत्री द्वारा द्विजत्व की प्राप्तिः—

भारतीय धर्म के अनुसार गुरु की आवश्यकता प्रत्येक भारतीय के लिए है। जैसे ईश्वर के प्रति, शास्त्रों के प्रति, भारतीय आचार के प्रति, ऋषियों और देवताओं के प्रति आस्था एवं आदर बुद्धि का होना, भारतीय धर्म के अनुयायी के लिए आवश्यक है, वैसे ही यह आवश्यक है कि वह 'निगुरा' न हो। उसे किसी सुयोग्य सत्पुरुष का ऐसा पथ-प्रदर्शन प्राप्त होना चाहिए जो उसके सर्वाङ्गीण विकाश में सहायक हो सके।

संभ्रान्त भारतीय धर्मानुयायी को 'द्विज' कहते हैं। द्विज वह है जिसका दो बार जन्म हुआ है। एक बार माता पिता के रज वीर्य से सभी का जन्म होता है। इस तरह मनुष्य जन्म पा लेने से कोई मनुष्य प्रतिष्ठित आर्य नहीं बन सकता। केवल जन्म मात्र से मनुष्य का कोई गौरव नहीं, कितने ही मनुष्य ऐसे हैं जो पशुओं से भी गये बीते होते हैं। स्वभावतः जन्म जात पशुता तो प्रायः सभी में होती है। इस पशुता का मनोविज्ञान परिष्कार किया जाता है, उस परिष्कार की पद्धति को 'द्विजत्व' या दूसरा जन्म कहते हैं।

शास्त्र में बताया गया है कि—"जन्मनाँ जायते शूद्र संस्कारात् द्विज उच्चते।" अर्थात् जन्म से सभी शूद्र उत्पन्न होते हैं। संस्कारों द्वारा, प्रभावों द्वारा, मनुष्य का दूसरा जन्म होता है, यह दूसरा जन्म माता गायत्री और पिता आचार्य द्वारा होता है। गायत्री के २४ अक्षरों में ऐसे सिद्धान्त और आदर्श सन्निहित हैं जो मानव अन्तःकरण को उच्च स्तर पर विकसित करने के प्रधान आधार हैं। समस्त वेद शास्त्र, पुराण, स्मृति,

उपनिषद, आरण्यक, ब्राह्मण, सूत्र आदि ग्रन्थों में जो कुछ भी शिक्षा है वह गायत्री के अक्षरों में सन्निहित शिक्षाओं की व्याख्या मात्र है। समस्त भारतीय धर्म, समस्त भारतीय आदर्श, समस्त भारतीय संस्कृति का सर्वस्व गायत्री के २४ अक्षरों में बीज रूप से मौजूद है। इसलिए द्विजत्व के लिए, दूसरे जन्म के लिए, गायत्री को माता माना गया है।

कहा जाता है कि गायत्री का अधिकार] केवल द्विजों को है। द्विजत्व का तात्पर्य है--गुरु द्वारा गायत्री को ग्रहण करना। जो लोग अश्रद्धालु हैं, आत्म-निर्माण से जी चुराते हैं, आदर्श जीवन बिताने से उदासीन हैं, जिनकी सन्मार्ग में प्रवृत्ति नहीं, ऐसे लोग 'शूद्र' कहे जावे हैं। जो दूसरे जन्म का, आदर्श जीवन का, मनुष्यता की महानता का, सन्मार्ग का अवलम्बन नहीं करना चाहते, ऐसे लोगों का जन्म पाशविक ही कहा जायगा। ऐसे लोग गायत्री में क्या रुचि लेंगे? जिसकी जिस मार्ग में श्रद्धा न होगी, वह उसमें क्या सफलता प्राप्त करेगा? इसलिए ठीक ही कहा गया है कि शूद्रों को गायत्री का अधिकार नहीं, इस महा विद्या का अधिकारी वही है, जो आत्मिक कायाकल्प का लक्ष्य रखता है, जिसे पाशविक जीवन की अपेक्षा उच्च जीवन पर आस्था है, जो द्विज बनकर सैद्धान्तिक जन्म लेकर सत्पुरुष बनना चाहता है।

उत्कीलन और शाप मोचन:--

शास्त्रों में बताया गया है कि गायत्री मन्त्र कीलित है, उसका जब तक उत्कीलन न हो जाय तब तक वह फलदायक नहीं होता। यह भी कहा गया है कि गायत्री को शाप लगा हुआ है। उस शाप का जब तक 'अभिमोचन' न कर लिया जाय, तब तक उससे कुछ लाभ नहीं होता। कीलित होने और शाप लगने के

प्रतिवन्ध क्या हैं ? और उत्कीलन एवं अभिमोचन क्या है ? यह विचारणीय बातें हैं ।

यह कहा जा सकता है कि "औषधि विद्या कीलित है ।" क्योंकि अगर कोई ऐसा व्यक्ति जो शरीर शास्त्र, निदान, निघंट, चिकित्सा विज्ञान की बारीकियों को नहीं समझता, अपनी अधूरी जानकारी के आधार पर अपनी चिकित्सा आरम्भ कर दे तो उससे कुछ भी लाभ न होगा, उलटी हानि हो सकती है। यदि औषधि से कोई लाभ लेना है तो किसी अनुभवी वैद्य की सलाह लेना आवश्यक है। आयुर्वेद ग्रन्थों में बहुत कुछ लिखा हुआ है, उन्हें पढ़कर बहुत-सी बातें जानी जा सकती हैं, फिर भी वैद्य की आवश्यकता तो है ही। वैद्य के बिना हजारों रुपये के चिकित्सा ग्रन्थ और लाखों रुपयों का औषधालय भी रोगी को कुछ लाभ नहीं पहुँचा सकता। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि 'औषधि विद्या कीलित है।' गायत्री महा विद्या के बारे में भी यही बात है। साधक की मनोभूमि के आधार पर साधना-विधान की नियमोपनियमों में, आदर्शों में, ध्यान में, अनेक हेर-फेर करने होते हैं। सबकी साधना एकसी नहीं हो सकती, ऐसी दशा में उस व्यक्ति को पथ-प्रदर्शन आवश्यक है, जो इस विज्ञान का ज्ञाता एवं अनुभवी हो। जब तक ऐसा निर्देशक न मिले तब तक औषधि विद्या की तरह गायत्री विद्या भी साधक के लिए कीलित ही रहेगी। उपयुक्त निर्देशक का मिल जाना ही उत्कीलन है। ग्रन्थों में बताया गया है कि गुरु द्वारा गृहण कराई गई गायत्री ही उत्कीलित होती है। वही सफल होती है।

स्कंद पुराण में वर्णन है कि—एक बार वशिष्ठ, विश्वामित्र और ब्रह्मा ने क्रुद्ध होकर गायत्री को शाप दिया कि "उसकी साधना निष्फल होगी।" इतनी बड़ी शक्ति के निष्फल होने से

हाहाकार मच गया, तब देवताओं ने प्रार्थना की कि इन शापों का विमोचन होना चाहिए। अन्त में ऐसा मार्ग निकाला गया कि जो शाप मोचन की विधि को पूरा करके गायत्री की साधना करेगा, उसका प्रयत्न तो सफल होगा और शेष लोगों का श्रम निरर्थक जायगा। इस कथा में एक भारी रहस्य छिपा हुआ है, जिसे न जानने वाले केवल "शाप मुक्तो भव" वाले मन्त्रों को पढ़ लेने मात्र से यह मान लेते हैं कि हमारी साधना शाप-मुक्त होगई।

विश्वामित्र का अर्थ है--संसार का मित्र, लोक-सेवी परोपकारी। वशिष्ठ का अर्थ है--विशेष रूप से श्रेष्ठ। ब्रह्मा का अर्थ है--ब्रह्म परायण। इन तीन गुणों वाले पथ-प्रदर्शक के आदेशानुसार होने वाले आध्यात्मिक प्रयत्न ही सफल एवं कल्याणकारी होते हैं।

गायत्री उच्च मानव-जीवन की जन्मदात्री, आधार शिला एवं बीज शक्ति है। भारतीय संस्कृति रूपी ज्ञान गङ्गा की उद्‌गम भूमि गंगोत्री यह गायत्री ही है, इसलिए इसे द्विजों की माता कहा गया है। माता के पेट में रहकर मनुष्य देही का जन्म होता है, गायत्री माता के पेट में रहकर मनुष्य का आध्यात्मिक, सैद्धान्तिक, दिव्य विशेषताओं वाला, दूसरा जन्म होता है। परन्तु यह माता, सर्व सम्पन्न होते हुए भी पिता के अभाव में अपूर्ण है, द्विजत्व का दूसरा शरीर, माता और पिता दोनों के ही तत्व बिन्दुओं से निर्मित होता है। गायत्री माता की अदृश्य सत्ता को, गुरु द्वारा ही ठीक प्रकार से शिष्य की मनोभूमि में आरोपित किया जाता है। इसीलिए जब द्विजत्व का संस्कार होता है, तो इस दूसरे आध्यात्मिक जन्म में गायत्री को माता और आचार्य को पिता घोषित किया जाता है।

उच्च आदर्शों की शिक्षा, न तो अपने आप प्राप्त हो जाती

है, न केवल आधार ग्रन्थों से ही, न चरित्र के अयोग्य व्यक्ति ही उन उच्च आदर्शों की ओर दूसरों को आकर्षित कर सकते हैं। बढ़िया धनुषबाण पास होते हुए भी कोई व्यक्ति शब्द बेधी बाण चलाने वाला नहीं बन सकता और न अनाड़ी शिक्षक द्वारा बाण विद्या में पारंगत बना जा सकता है। अच्छा शिक्षक और अच्छा धनुष बाण दोनों मिलकर ही सफल परिणाम उपस्थित करते हैं। गायत्री के कीलित एवं शापित होने का और उसका उत्कीलन एवं शाप विमोचन करने का यही रहस्य है।

आत्म-कल्याण की तीन कक्षाऐं :—

आध्यात्मिक साधना क्षेत्र तीन भागों में बँटा हुआ है। तीन व्याहृतियों में उनका स्पष्टीकरण कर दिया है। (१) भूः (२) भुवः (३) स्वः, यह तीन आत्मिक भूमिकाएं मानी गई हैं। भूः का अर्थ है स्थूल जीवन, शारीरिक एवं सांसारिक जीवन। भुवः का अर्थ है—अन्तःकरण चतुष्टय, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का कार्य क्षेत्र। स्वः का अर्थ है—विशुद्ध आत्मिक सत्ता। मनुष्य की आन्तरिक स्थिति इन तीन क्षेत्रों में ही होती है।

"भूः" का सम्बन्ध अन्नमय कोश से है। "भुवः" प्राणमय और मनोमय कोश से आच्छादित है। "स्वः" का प्रभाव क्षेत्र विज्ञानमय कोश और आनन्दमय कोश है। शरीर से सम्बन्ध रखने वाली, जीविका-उपार्जन, स्वास्थ्य, लोक-व्यवहार, नीति, शिल्प कला, स्कूली शिक्षा, व्यापार, सामाजिक व राजनैतिक ज्ञान, नागरिक कर्त्तव्य आदि बातें भूः क्षेत्र में आती हैं। ज्ञान, विवेक, दूरदर्शिता, धर्म, दर्शन, मनोबल, प्राण शक्ति, तांत्रिक प्रयोग, योग साधन आदि बातें, भुवः क्षेत्र की हैं। आत्म साक्षात्कार, ईश्वर परायणता, ब्राह्मी स्थिति, परमहंस गति, समाधि, तुरीयावस्था, परमानन्द, मुक्ति का क्षेत्र 'स्वः' के अन्त-

र्गत हैं। आध्यात्मिक क्षेत्र के यह तीन लोक हैं। पृथ्वी, पाताल, स्वर्ग की भाँति ही हमारे भीतर भूः भुवः स्वः तीन लोक हैं।

प्रथम भूमिका 'मन्त्र दीक्षा' :—

जीवन का प्रथम चरण 'भूः' है। व्यक्तिगत तथा सामाजिक व्यवहार में जो अनेकों गुत्थियाँ, उलझनें, कठिनाइयाँ आती हैं, उन सबका सुलझाव इन अक्षरों में दी हुई शिक्षा से होता है। सांसारिक जीवन का कोई भी कठिन प्रश्न ऐसा नहीं है, जिसका उत्तर और उपाय इन अक्षरों में न हो। इस रहस्यमय व्यवहारिक ज्ञान की अपने उपयुक्त व्याख्या कराने के लिए जिस गुरु की आवश्यकता होती है उसे "आचार्य" कहते हैं। आचार्य 'मन्त्र दीक्षा' देते हैं। मन्त्र का अर्थ है--विचार। तर्क, प्रमाण, अवसर, स्थिति पर विचार करते हुए आचार्य अपने शिष्य को समय-समय पर ऐसे सुझाव, सलाह, उपदेश, गायत्री मन्त्र की शिक्षाओं के आधार पर देते हैं जिससे उसकी विभिन्न समस्याओं का समाधान होता चले और उसकी उन्नति का पथ प्रशस्त होता चले। यह प्रथम भूमिका है। इसे भूः क्षेत्र कहते हैं। इस क्षेत्र के शिष्य को आचार्य द्वारा 'मन्त्र दीक्षा' दी जाती है।

मन्त्र दीक्षा लेते समय शिष्य प्रतिज्ञा करता है कि "मैं गुरु का अनुशासन पूर्ण श्रद्धा के साथ मानूँगा। समय-समय पर उनकी सलाह से अपनी जीवन नीति निर्धारित करूँगा, अपनी सब भूलें निष्कपट रूप से उन पर प्रकट कर दिया करूँगा", आचार्य शिष्य को मंत्र का अर्थ समझाता है और माता गायत्री को यज्ञोपवीत रूप से देता है। शिष्य देव भाव से आचार्य का पूजन करता है और गुरु पूजा के लिए उन्हें वस्त्र, आभूषण, पात्र, भोजन, दक्षिणा आदि की सामर्थ्यानुसार भेंट चढ़ाता है।

रोली, अक्षत, तिलक, कलावा, वरण आदि के द्वारा दोनों परस्पर एक दूसरे को बाँधते हैं। मन्त्र दीक्षा, एक प्रकार से दो व्यक्तियां में आध्यात्मिक रिश्तेदारी की स्थापना है। इस दीक्षा के पश्चात् पाप-पुन्य में एक प्रतिशत के भागीदार हो जाते हैं। शिष्य के सौ पापों में से एक पाप का फल गुरु को भोगना पड़ता है और गुरु के पापों का इसी प्रकार शिष्य को भोगना पड़ता है। इसी प्रकार पुण्य में भी एक दूसरे के साझी होते हैं।

द्वितीय भूमिका-'अग्नि दीक्षा'—

दूसरी भुवः भूमिका में पहुँचने पर दूसरी दीक्षा लेनी पड़ती है। इसे प्राण दीक्षा या अग्नि दीक्षा कहते हैं। प्राणायाम कोश एवं मनोमय कोश के अन्तर्गत छिपी हुई शक्तियों को जागृत करने की साधना का शिक्षण क्षेत्र यही है। साधन संग्राम के अस्त्र शस्त्रां को पहिनना, सँभालना और चलाना इसी भूमिका में सीखा जाता है। प्राण-शक्ति की न्यूनता का उपचार इसी क्षेत्र में होता है। साहस,उत्साह,परिश्रम,दृढ़ता,स्फूर्ति,आशा,धैर्य, लगन आदि वीरोचित गुणों की अभिवृद्धि इस दूसरी भूमिका में हाती है। मनुष्य शरीर के अन्तर्गत ऐसे अनेक चक्र-उपचक्र, भ्रमर, उपत्यय, सूत्र ग्रन्थावर्तन, बीज, मेरु आदि गुप्त संस्थान होते हैं, जो प्राणमय भूमिका की साधना से जागृत होते हैं। उस जागरण के फलस्वरूप साधक में ऐसी अनेक विशेषताऐं उत्पन्न हो जाती हैं, जैसी कि साधारण मनुष्यों में नहीं देखी जातीं।

भुवः भूमिका में ही मन, बुद्धि, चित्त अहंकार के चतुष्टय का संशोधन, परिमार्जन एवं विकाश होता है। यह सब कार्य 'मध्यमा' और 'पश्यन्ति' वाणी द्वारा किया जाता है। वैखरी वाणी द्वारा बचनों के माध्यम से प्रारम्भिक साधक को 'भूः' क्षेत्र

के मन्त्र दीक्षित को सलाह, शिक्षा आदि दी जाती है। जब प्राण दीक्षा होती है तो गुरु अपना प्राण शिष्य के प्राण में घोल देता है, बीज रूप से अपना आत्म-बल साधक के अन्तःकरण में स्थापित कर देता है। जैसे आग से आग जलाई जाती है, बिजली की धारा से बल्ब जलते या पंखे चलते हैं, उसी प्रकार अपना शक्तिभाग बीज रूप से दूसरे की मनोभूमि में जमा कर वहाँ उसे सींचा और बढ़ाया जाता है। इस क्रिया पद्धति को अग्नि दीक्षा कहते हैं। अशक्त को सशक्त बनाना, निष्क्रिय को सक्रिय बनाना, निराश को आशान्वित करना प्राण दीक्षा का काम है। मन्त्र से विचार उत्पन्न होता है, अग्नि से क्रिया उत्पन्न होती है। अन्तः भूमि में हलचल, क्रिया, प्रगति, चेष्टा, कान्ति, बेचैनी, आकाँक्षा का तीव्र गति से उदय होता है।

अग्नि दीक्षा लेकर साधक का आन्तरिक प्रकाश स्वच्छ हो जाता है और उसे अपने छोटे से छोटे दोष दिखाई पड़ने लगते हैं। अँधेरे में या धुँधले प्रकाश में बड़ी वस्तुएं भी ठीक प्रकार नहीं दीखतीं, पर तीव्र प्रकाश में मामूली चीजें भी भली प्रकार दीखती हैं और कई बार तो प्रकाश की तेजी के कारण वे वस्तुऐं भी अधिक महत्वपूर्ण दीखती हैं। आत्मा में ज्ञानाग्नि का प्रकाश होते ही साधक को अपनी छोटी-छोटी भूल, बुराइयाँ, कमियाँ भली प्रकार दीख पड़ती हैं। उसे मालूम पड़ता है, मैं असंख्य बुराइयों का भंडार हूँ। नीची श्रेणी के मनुष्यों से भी मेरी बुराइयाँ अधिक हैं। अब भी पाप मेरा पीछा नहीं छोड़ते। इस प्रकार वह अपने अन्दर घृणास्पद तत्वों को बड़ी मात्रा में देखता है। जिन गलतियों को साधारण श्रेणी के लोग कतई गलती नहीं मानते, उनका नीर-क्षीर विवेक वह करता है। मनसा पापों तक से दुखी होता है।

मन्त्र दीक्षा के लिए कोई भी विचारवान्, दूरदर्शी, उच्च चरित्र, प्रतिभाशाली, सत्पुरुष उपयुक्त हो सकता है। वह अपनी तर्कशक्ति और बुद्धिमत्ता से शिष्य के विचारों का परिमार्जन कर सकता है। उसके कुविचारों को भ्रमों को, सुलझाकर अच्छाई के मार्ग पर चलने के लिए आवश्यक सलाह, शिक्षण एवं उपदेश दे सकता है, अपने प्रभाव से उसे प्रभावित भी कर सकता है। अग्नि दीक्षा के लिए ऐसा गुरु चाहिए जिसके भीतर अग्नि पर्याप्त मात्रा में हो, तप की पूँजी का जो धनी हो। दान वही कर सकता है जिसके पास धन हो, विद्या वही दे सकता है जिसके पास विद्या हो। जिसके पास जो वस्तु नहीं वह दूसरों को क्या देगा ? जिसने स्वयं तप करके प्राण-शक्ति संचित की है, अग्नि अपने भीतर प्रज्वलित कर रखी है, वही दूसरों को प्राण या अग्नि देकर उन्हें भुवः भूमिका की दीक्षा दे सकता है।

तीसरी भूमिका 'ब्रह्म दीक्षा'—

तीसरी भूमिका "स्वः" है। इसे ब्रह्म दीक्षा कहते हैं। जब दूध अग्नि पर औटाकर नीचे उतार लिया जाता है और ठंडा हो जाता है तब उसमें दही का जामन देकर उसे जमा दिया जाता है, फलस्वरूप वह सारा दूध दही बन जाता है। मन्त्र द्वारा दृष्टिकोण परिमार्जन करके साधक अपने सांसारिक जीवन को प्रसन्नता और सम्पन्नता से ओत-प्रोत करता है, अग्नि द्वारा अपने कुसंस्कारों, पापों, मलों, कषायों, दुर्बलताओं को जलाता है, उनसे अपना पिण्ड छुड़ाकर बन्धन मुक्त होता है एवं तप की ऊष्मा द्वारा अन्तःकरण को पकाकर ब्राह्मी भूत करता है।

पहिली ज्ञान-भूमि दूसरी शक्ति-भूमि और तीसरी ब्रह्म-भूमि होती है। क्रमशः एक के बाद एक को पार करना पड़ता है। पिछली दो कक्षाओं को पार कर साधक जब तीसरी कक्षा

में पहुँचता है तो उसे सद्गुरु द्वारा ब्रह्म-दीक्षा लेने की आवश्यकता होती है। यह 'परा' वाणी द्वारा होती है। वैखरी वाणी द्वारा मुँह से शब्द उच्चारण करके ज्ञान दिया जाता है। मध्यमा और पश्यन्ति वाणियों द्वारा शिष्य के प्राणमय और मनोमय कोश में अग्नि संस्कार किया जाता है। परा वाणी द्वारा आत्मा बोलती है और उसका सन्देश दूसरी आत्मा सुनती है। जीभ की वाणी कान सुनते हैं, मन की वाणी नेत्र सुनते हैं, हृदय की वाणी हृदय सुनता है और आत्मा की वाणी आत्मा सुनती है। जीभ 'वैखरी' वाणी बोलती है, मन 'मध्यमा' बोलता है, हृदय की वाणी 'पश्यन्ति' कहलाती है और आत्मा 'परा' वाणी बोलती है। ब्रह्म दीक्षा में, जीभ, मन, हृदय किसी को नहीं बोलना पड़ता। आत्मा के अन्तरंग क्षेत्र से जो अनहद ध्वनि उत्पन्न होती है, उसे दूसरी आत्मा ग्रहण करती है। उसे ग्रहण करने के पश्चात् वह भी ऐसी ही ब्राह्मी भूत हो जाती है जैसे थोड़ा सा दही पड़ने से औटाया हुआ दूध सबका सब दही हो जाता है।

गीता में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को दिव्य दृष्टि देकर अपना विराट रूप दिखाया था, अर्थात् उसे वह ज्ञान दिया था जिससे विश्व के अन्तरङ्ग में छिपी हुई अदृश्य ब्रह्म सत्ता का दर्शन कर सके। भगवान सब में व्यापक है पर उसे कोई विरले ही देखते, समझते हैं। भगवान ने अर्जुन को वह दिव्य दृष्टि दी जिससे उसकी ईक्षण शक्ति इतनी सूक्ष्म और पारदर्शी होगई कि वह उन दिव्य तत्वों का अनुभव करने लगा जिसे साधारण लोग नहीं कर पाते। इस दिव्य दृष्टि को ही पाकर योगी लोग आत्मा का, ब्रह्म का साक्षात्कार अपने भीतर और बाहर करते हैं तथा ब्राह्मी गुणों से, विचारों से, स्वभावों

से, कार्यों से ओत-प्रोत हो जाते हैं। यशोदा ने, कौशल्या ने, काकभुशुण्डि ने ऐसी ही दिव्य दृष्टि पाई थी और ब्रह्म का साक्षात्कार किया था, ईश्वर का दर्शन इसे ही कहते हैं। ब्रह्म दीक्षा पाने वाला शिष्य ईश्वर में अपनी समीपता और स्थिति वैसे ही अनुभव करता है जैसे कोयला अग्नि में पड़कर अपने को अग्निमय अनुभव करता है।

कल्याण मन्दिर का प्रवेश द्वार:---

तीन दीक्षाओं से तीन वर्णों में प्रवेश मिलता है। दीक्षा का अर्थ यह है--विधिवत्, व्यवस्थित कार्यक्रम और निश्चित श्रद्धा। यों कोई विद्यार्थी नियत कोर्स न पढ़कर, नियत कक्षा में न बैठकर, कभी कोई, कभी कोई पुस्तक पढ़ता रहे तो भी धीरे-धीरे उसका ज्ञान बढ़ता ही रहेगा और क्रमशः उसके ज्ञान में उन्नति होती ही रहेगी। सम्भव है वह अव्यवस्थित क्रम से भी ग्रेजुएट बन जाय, पर यह मार्ग है कष्टसाध्य और लम्बा। क्रमशः एक-एक कक्षा पार करते हुए एक-एक कोर्स पूरा करते हुए, निर्धारित क्रम से यदि पढ़ाई जारी रखी जाय तो अध्यापक को भी सुविधा रहती है और विद्यार्थी को भी। यदि विद्यार्थी आज कक्षा ५ की, कल कक्षा १० की, आज सङ्गीत की, कल डाक्टरी की पुस्तकें पढ़े तो उसे याद करने में और शिक्षक को पढ़ाने में असुविधा होगी। इसलिए ऋषियों ने आत्मोन्नति की तीन भूमिकाएँ निर्धारित करदी हैं। द्विजत्व को तीन भागों में बाँट दिया है। क्रमशः एक-एक कक्षा में प्रवेश करना और नियम, प्रतिबन्ध, आदेश एवं अनुशासन को श्रद्धापूर्वक मानना इसी का नाम दीक्षा है।

तीन कक्षाओं को उत्तीर्ण करने के लिए तीन बार भर्ती होना पड़ता है। कोई जगह एक ही अध्यापक तीनों कक्षाओं को

पढ़ाते हैं, कई जगह हर शिक्षा के लिए अलग अध्यापक होते हैं कई बार तो स्कूल ही बदलने पड़ते हैं। प्राइमरी स्कूल उत्तीर्ण करके हाईस्कूल में भर्ती होना पड़ता है और हाईस्कूल पास करके कालेज में नाम लिखाना पड़ता है। तीनों विद्यालयों की पढ़ाई पूरी करने पर एम. ए. की पूर्णता प्राप्त होती है।

इन तीन कक्षाओं के अध्यापकों की योग्यता भिन्न-भिन्न होती है। प्रथम कक्षा में सद्विचार और सत्आचार सिखाया जाता है। इसके लिए कथा, प्रवचन, सत्संग, भाषण, पुस्तक, प्रचार, शिक्षण, सलाह, तर्क आदि साधन काम में लाये जाते हैं। इनके द्वारा मनुष्य की विचार भूमिका का सुधार होता है, कुविचारों के स्थान पर सद्विचार स्थापित होते हैं,जिनके कारण साधक अपने शूलों और क्लेशों से बचता हुआ सुख-शान्ति पूर्वक जीवन व्यतीत कर लेता है। इस प्रथम कक्षा के विद्यार्थी को गुरु के प्रति 'श्रद्धा' रखना आवश्यक है। श्रद्धा न होगी तो उन वचनों का, उपदेशों का न तो महत्व समझ में आवेगा और न उन पर विश्वास होगा। प्रत्यक्ष है कि उसी बात को कोई महा-पुरुष कहे तो लोग उसे महत्वपूर्ण समझते हैं और उसी बात को यदि तुच्छ मनुष्य कहे तो कोई कान नहीं देता। दोनों ने एक ही बात कही पर एक के कहने पर उपेक्षा की गई दूसरे के कहने पर ध्यान दिया गया, इसमें कहने वाले के ऊपर सुनने वालों की श्रद्धा या अश्रद्धा का होना ही प्रधान कारण है। किसी व्यक्ति पर विशेष श्रद्धा हो तो उसकी साधारण बातें भी असाधारण प्रतीत होती हैं।

रोज सैकड़ों कथा, प्रवचन, व्याख्यान होते हैं। अखबारों में, पर्चों, पोस्टरों में तरह-तरह की बातें सुनाई जाती हैं। रेडियो से नित्य ही उपदेश सुनाये जाते हैं पर उन पर कोई कान नहीं

देता, कारण यही है सुनने वालों के प्रति व्यक्तिगत श्रद्धा नहीं होती, इसलिए वे महत्वपूर्ण बातें निरर्थक एवं उपेक्षणीय मालूम देती हैं। कोई उपदेश तभी प्रभावशाली हो सकता है जब उसका देने वाला, सुनने वालों का श्रद्धास्पद हो। वह श्रद्धा जितनी ही तीव्र होगी उतना ही अधिक उपदेश का प्रभाव पड़ेगा। प्रथम कक्षा के मन्त्र दीक्षित गायत्री का समुचित लाभ उठा सकें इस दृष्टि से साधक को, दीक्षित को यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि वह गुरु के प्रति अटूट श्रद्धा रखेगा। उसे वह देवतुल्य या परमात्मा का प्रतीक मानेगा। इसमें कुछ विचित्रता भी नहीं है। श्रद्धा के कारण जब मिट्टी, पत्थर और धातु की बनी मूर्तियाँ, हमारे लिये देव बन जाती हैं तो कोई कारण नहीं कि एक जीवित मनुष्य में देवत्व का आरोपण करके अपनी श्रद्धानुसार अपने लिए उसे देव न बना लिया जाय।

श्रद्धा के प्रकटीकरण की आवश्यकता---

विचारों को मूर्तिमान रूप देने के लिए उनको प्रकट रूप से व्यवहार में लाना पड़ता है। जितने भी धार्मिक कर्मकाण्ड, दान-पुण्य, व्रत, उपवास, हवन, पूजन, कथा, कीर्तन आदि हैं वे सब इसी प्रयोजन के लिए हैं कि आन्तरिक श्रद्धा व्यवहार में प्रकट होकर साधक के मन में परिपुष्ट हो जाय। गुरु के प्रति मन्त्र दीक्षा में "श्रद्धा" की शर्त होती है। श्रद्धा न हो या शिथिल हो तो वह दीक्षा केवल चिन्ह पूजा मात्र है। अश्रद्धालु की गुरु दीक्षा से कुछ विशेष प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। दीक्षा के समय स्थापित हुई श्रद्धा, कर्मकाण्ड के द्वारा सजग रहे इसी प्रयोजन के लिये समय-समय गुरु पूजन किया जाता है। दीक्षा के समय वस्त्र, पात्र, पुष्प, भोजन, दक्षिणा द्वारा गुरु का पूजन करते हैं। गुरु पूर्णिमा (आषाढ़

सुदी १५) को यथा शक्ति उनके चरणों में श्रद्धाञ्जलि के रूप में कुछ भेंट पूजा अर्पित करते हैं। यह प्रथा अपनी आन्तरिक श्रद्धा को मूर्ति रूप देने, बढ़ाने एवं परिपुष्ट करने के लिए है। केवल विचार मात्र से कोई भावना परिपक्व नहीं होती। क्रिया और विचार दोनों के संमिश्रण से एक संस्कार बनता है, जो मनोभूमि में स्थिर होकर आशाजनक परिणाम उपस्थित करता है।

प्राचीन काल में यह नियम था कि गुरु के पास जाने पर शिष्य कुछ वस्तु भेंट के लिए ले जाता था चाहे वह कितने ही स्वल्प मूल्य की क्यों न हो। समिधा की लकड़ी हाथ में लेकर शिष्य गुरु के सम्मुख जाते थे इसे "समित्पाणि" कहते थे। वे समिधाएँ उनकी श्रद्धा की प्रतीक होती हैं चाहे उनका मूल्य कितना ही क्यों न हो। शुकदेवजी जब राजा जनक के पास ब्रह्म विद्या की शिक्षा लेने गये तो राजा जनक मौन रहे, उन्होंने एक शब्द भी उपदेश न दिया। शुकदेवजी वापिस लौट आये। पीछे उन्हें ध्यान आया कि भले ही मैं संन्यासी हूँ, राजा जनक गृहस्थ हैं, पर जब कि मैं उनसे कुछ सीखने गया तो अपनी श्रद्धा का प्रतीक साथ लेकर जाना चाहिये था। दूसरी बार शुकदेवजी हाथ में समिधाएँ लेकर नम्र भाव से उपस्थित हुए तो उन्होंने विस्तार पूर्वक ब्रह्म विद्या समझाई।

आरम्भिक कक्षा का रसास्वादन करने पर साधक की मनोभूमि काफी सुदृढ़ और परिपक्व हो जाती है। वह भौतिकवाद की तुच्छता और आत्मिकवाद की महानता व्यवहारिक दृष्टि से, वैज्ञानिक दृष्टि से, दार्शनिक दृष्टि से समझ लेता है तब उसे पूर्ण विश्वास हो जाता है कि मेरा लाभ आत्म-कल्याण के मार्ग पर चलने में ही है। श्रद्धा परिपक्व होकर जब निष्ठा के

रूप में परिणित हो जाती है तो वह भीतर से काफी मजबूत हो जाता है। अपने लक्ष को प्राप्त करने के लिए उसमें इतनी दृढ़ता होती है कि वह कष्ट सह सके, तप कर सके, त्याग की परीक्षा का अवसर आवे तो विचलित न हो। जब ऐसी पक्की मनोभूमि होती है जो 'गुरु' द्वारा उसे अग्नि दीक्षा देकर कुछ और गरम किया जाता है जिससे उसके मल जल जाँय, कीर्ति का प्रकाश हो तथा तप की अग्नि में तप कर वह पूर्णता को प्राप्त हो।

तपस्वी की गुरु दक्षिणाः—

गीली लकड़ी को लेकर धूप में सुखाया जाता है। उसे थोड़ी सी गर्मी पहुँचाई जाती है। धीरे-धीरे उसकी नमी सुखाई जाती है। पर जब वह भली प्रकार सूख जाती है तो उसे अग्नि में देकर मामूली लकड़ी से महा शक्तिशाली प्रचण्ड अग्नि के रूप में परिणित कर दिया जाता है। गीली लकड़ी को चूल्हे में दिया जाय तो उसका परिणाम अच्छा न होगा। प्रथम कक्षा के साधक पर केवल गुरु श्रद्धा की जिम्मेदारी है और दृष्टिकोण सुधार कर अपना प्रत्यक्ष जीवन सुधारना होता है। यह सब प्रारम्भिक छात्र के उपयुक्त है। यदि आरम्भ में ही तीव्र साधना में नये साधक को फँसा दिया जाय तो वह बुझ जायगा। तप की कठिनाई देख कर वह डर जायगा और प्रयत्न छोड़ बैठेगा। दूसरी कक्षा का छात्र चूँकि धूप में सूख चुका है, इसलिये उसे कोई विशेष कठिनाई नहीं होती वह हँसते-हँसते साधना के श्रम का बोझ उठा लेता है।

अग्नि दीक्षा के साधक को तपाने के लिये कई प्रकार के संयम, व्रत, नियम, त्याग करने कराने होते हैं। प्राचीन काल में उद्दालक, धौम्य, आरुणि, उपमन्यु, कच, श्लीमुख, जरुत्कार, हरिश्चन्द्र, दशरथ, नचिकेता, शेष, विरोचन, जावालि, सुमनस,

अम्बरीष, दलीप आदि अनेक शिष्यों ने अपने गुरुओं के आदेशानुसार अनेक कष्ट सहे और उनके बताये हुए कार्यों को पूरा किया। स्थूल दृष्टि से इन महापुरुषों के साथ गुरुओं का जो व्यवहार था वह 'हृदय हीनता' कहा जा सकता है। पर सच्ची बात यह है कि उन्होंने स्वयं निन्दा और बुराई को अपने ऊपर ओढ़ कर शिष्यों को अनन्त काल के लिए प्रकाशवान् एवं अमर कर दिया। यदि कठिनाइयों में होकर राजा हरिश्चन्द्र को न गुजरना पड़ा होता तो वे भी असंख्यों राजा रईसों की भांति विस्मृति के गर्त में चले गये होते।

अग्नि दीक्षा पाकर शिष्य गुरु से पूछता है कि--"आदेश दीजिए, कि मैं आपके लिए क्या गुरु दक्षिणा उपस्थित करूँ?" गुरु देखता है कि शिष्य की मनोभूमि, सामर्थ्य, योग्यता, श्रद्धा, त्याग-वृत्ति कितनी है उसी आधार पर वह उससे गुरु दक्षिणा माँगता है। यह याचना अपने लिये रुपया-पैसा, धन-दौलत देने के रूप में कदापि नहीं हो सकती। गुरु सदा परम त्यागी, अपरिग्रही, कष्ट सहिष्णु एवं स्वल्प सन्तोषी होते हैं। उन्हें अपने लिए शिष्य से या किसी से कुछ माँगने की आवश्यकता नहीं होती। जो गुरु अपने लिए कुछ माँगता है वह गुरु नहीं भिक्षुक है। ऐसे लोग गुरु जैसे परम पवित्र पद के अधिकारी कदापि नहीं हो सकते। अग्नि दीक्षा देकर गुरु जो कुछ माँगता है, वह शिष्य को अधिक उज्वल, अधिक सुदृढ़, अधिक उदार, अधिक तपस्वी बनाने के लिए होता है। यह याचना उसके यश का विस्तार करने के लिए, पुण्य को बढ़ाने के लिए एवं त्याग का आत्म सन्तोष देने के लिए होती है।

"गुरु दक्षिणा माँगिए" शब्दों में शिष्य कहता है कि "मैं सुदृढ़ हूँ, मेरी आत्मिक स्थिति की परीक्षा लीजिए।" स्थूल

कालेजों में परीक्षा ली जाती है। उत्तीर्ण छात्र की योग्यता एवं प्रतिष्ठा को, वह उत्तीर्णता का प्रमाण-पत्र अनेक गुना बढ़ा देता है। परीक्षा न दी जाय तो योग्यता का क्या पता चले? संसार में किसी व्यक्ति की महानता का पुण्य प्रसार करने के लिए, उसके गौरव को सर्व साधारण पर प्रकट करने के लिए, साधक को अपनी महानता पर आत्म-विश्वास कराने के लिए, गुरु अपने शिष्य से गुरु दक्षिणा माँगता है। शिष्य उसे देकर धन्य हो जाता है।

ब्रह्म दीक्षा की दक्षिणा 'आत्म-दान':—

क्रमशः दीक्षा का महत्व बढ़ता है, साथ ही उसका मूल्य भी बढ़ता है। जो वस्तु जितनी बढ़िया होती है उसका मूल्य भी उसी अनुपात से होता है। लोहा सस्ता बिकता है। कम पैसे देकर मामूली दुकानदार से लोहे की वस्तु खरीदी जा सकती है, पर यदि सोना या जवाहरात खरीदने हों तो ऊँची दुकान जाना पड़ेगा और बहुत दाम खर्च करना पड़ेगा। ब्रह्म दीक्षा में न विचार शक्ति से काम चलता है और न प्राण शक्ति से। एक आत्मा दूसरी आत्मा से 'परा' वाणी द्वारा वार्तालाप करती है। अन्य वाणियों की बात आत्मा नहीं पाती। जैसे चींटी की समझ में मनुष्य की वाणी नहीं आती और मनुष्य चींटी की वाणी को नहीं सुन पाता, उसी प्रकार आत्मा तक व्याख्यान आदि नहीं पहुँचते। उपनिषद् का वचन है कि "बहुत पढ़ने से, बहुत सुनने से आत्मा की प्राप्ति नहीं होती। बल हीनों को भी वह प्राप्त नहीं होती"। कारण स्पष्ट है। यह बातें आत्मा तक पहुँचती ही नहीं तो वह सुनी कैसे जाँयगी।

कीचड़ में फँसे हुए हाथी को दूसरा हाथी ही निकालता है। पानी में बहते जाने वाले को कोई तैरने वाला ही पार निकालता है। राजा की सहायता करना किसी राजा को ही संभव

है। एक आत्मा में ब्रह्म ज्ञान जागृत करना, उसे ब्रह्मी भूत, ब्रह्म परायण बनाना केवल उसी के लिए संभव है जो स्वयं ब्रह्म-तत्व से ओत-प्रोत हो रहा हो। जिसमें स्वयं अग्नि होगी वही दूसरों को प्रकाश और गर्मी दे सकेगा अन्यथा अग्नि का चित्र कितना ही आकर्षक क्यों न हो उससे कुछ पकाने का प्रयोजन सिद्ध न होगा।

कई व्यक्ति साधु-महात्माओं का वेश बना लेते हैं पर उनमें ब्रह्मतेज की अग्नि नहीं होती। जिसमें साधुता हो वही साधु है, जिसकी आत्मा महान् हो वही महात्मा है, जिसको ब्रह्म का ज्ञान हो वही ब्राह्मण है, जिसने रागों से मन को बचा लिया है वही वैरागी है, जो स्वाध्याय में, मनन में लीन रहता हो वही मुनि है, जिसने अहंकार, मोह, ममता को त्याग दिया है वही संन्यासी है, जो तप में प्रवृत हो वही तपसी है। कौन क्या है? इसका निर्णय गुण, कर्म से होता है, वेश से नहीं। इसलिए ब्रह्म परायण होने के लिए कोई वेश बनाने की आवश्यकता नहीं। दूसरों को विना प्रदर्शन किये, सीधे-साधे तरीके से रहकर जब आत्म-कल्याण किया जा सकता है तो व्यर्थ में लोक दिखावा क्यों किया जाय? सादा वस्त्र, सादा वेश और सादा जीवन में जब महानतम आत्मिक-साधना हो सकती है तो असाधारण वेश तथा अस्थिर कार्य-क्रम क्यों अपनाया जाय? पुराने समय अब नहीं रहे, पुरानी परिस्थितियाँ भी अब नहीं हैं। आज की स्थिति में सादा जीवन में आत्मिक विकाश की संभावना अधिक है।

ब्राह्मी दृष्टि का, दिव्य दृष्टि का प्राप्त होना ही ब्रह्म समाधि है। सर्वत्र सब में ईश्वर का दिखाई देना, अपने अन्दर तेज पुंज की उज्वल झाँकी होना, अपनी इच्छा और आकाँक्षाओं का दिव्य, दैवी हो जाना, यही ब्राह्मी स्थिति है। पूर्व युगों में आकाश तत्व की प्रधानता थी। दीर्घ काल तक प्राणों को रोक

कर ब्रह्माण्ड में एकत्रित कर लेना और शरीर को निःचेष्ट कर देना 'समाधि' कहलाता था। ध्यान काल की पूर्ण तन्मयता होना और शरीर की सुधि-बुधि भूल जाना उन युगों में 'समाधि' कहलाता था। उन युगों में वायु और अग्नि तत्वों की प्रधानता थी। आज के युग में जल और पृथ्वी तत्व की प्रधानता होने से ब्राह्मी स्थिति को ही समाधि कहते हैं। इस युग के सर्वश्रेष्ठ शास्त्र 'भगवद्गीता' के दूसरे अध्याय में इसी ब्रह्म समाधि की विस्तार पूर्वक शिक्षा दी गई है। उस स्थिति को प्राप्त करने वाला ब्रह्म समाधिस्थ ही कहा जायगा।

अब भी कई व्यक्ति जमीन में गड्ढे खोदकर उनमें बन्द हो जाने का प्रदर्शन करके अपने को समाधिस्थ सिद्ध करते हैं। यह बाल क्रीड़ा अत्यन्त उपहासास्पद है। वह मन की घबराहट पर काबू पाने की मानसिक साधना का चमत्कार मात्र है। अन्यथा लम्बे-चौड़े गड्ढे में कोई भी आदमी काफी लम्बी अवधि तक सुख पूर्वक रह सकता है। रात भर लोग रुई की रजाई में मुँह बन्द करके सोते रहते हैं। रजाई के भीतर की जरा-सी हवा से रात भर का गुजारा हो जाता है तो लम्बे-चौड़े गड्ढे की हवा आसानी से दस-पन्द्रह दिन काम दे सकती है। फिर भूमि में स्वयं भी हवा रहती है। गुफाओं में रहने का अभ्यासी मनुष्य आसानी से जमीन में गढ़ने की समाधि का प्रदर्शन कर सकता है। ऐसे क्रीड़ा कौतुकों की ओर ध्यान देने की सच्चे ब्रह्मज्ञानी को कोई आवश्यकता नहीं पड़ती।

'परा' वाणी द्वारा अन्तरंग प्रेरणाः—

आत्मा में ब्रह्म तत्व का प्रवेश करने में दूसरी आत्मा द्वारा आया हुआ ब्रह्म संस्कार बड़ा काम करता है। साँप जब किसी को काटता है तो तिल भर जगह में दाँत गढ़ाता है और विष भी कुछ रत्ती ही डालता है। पर वह तिल भर जगह में

डाला हुआ रत्ती भर विष धीरे-धीरे सम्पूर्ण शरीर में फैल जाता है, सारी देह विषैली हो जाती है और अन्त में परिणाम 'मृत्यु' होता है। ब्रह्म दीक्षा भी आध्यात्मिक 'सर्प दंशन' है। एक का विष दूसरे को चढ़ जाता है। अग्नि की एक चिनगारी सारे ढेर को अग्नि रूप कर देती है। भले प्रकार स्थित किया हुआ दीक्षा संस्कार, तेजी से फैलता है, थोड़े ही समय में पूर्ण विकास को प्राप्त हो जाता है। ब्रह्मज्ञान की पुस्तक पढ़ते रहने और आध्यात्मिक प्रवचन सुनते रहने से मनोभूमि तो तैयार होती है पर बीज बोये बिना अंकुर नहीं उगता और अंकुर को सींचे बिना शीतल छाया और मधुर फल देने वाला वृक्ष नहीं होता। स्वाध्याय और सत्संग के अतिरिक्त आत्म-कल्याण के लिए साधना की भी आवश्यकता होती है। साधना की जड़ में सजीव प्राण और सजीव प्रेरणा हो तो वह अधिक सुगमता और सुविधा पूर्वक विकसित होती है।

ब्राह्मी स्थिति का साधक, अपने भीतर और बाहर ब्रह्म का पुण्य प्रकाश प्रत्यक्ष रूप से अनुभव करता है। उसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह ब्रह्म की गोदी में किलोल कर रहा है। ब्रह्म के अमृत सिन्धु में आनन्द मग्न हो रहा है। इस दशा में पहुँच कर वह जीवन मुक्त हो जाता है। जो प्रारब्ध बन चुके हैं उन कर्मों का लेखा जोखा पूरा करने के लिए वह जीवित रहता है। जब वह हिसाब बराबर हो जाता है, तो पूर्ण शान्ति एवं पूर्ण ब्राह्मी स्थिति में जीवन लीला समाप्त हो जाती है, फिर उसे भव बन्धन में लौटना नहीं होता। प्रारब्धों को पूरा करने के लिए वह शरीर धारण किये रहता है। सामान्य श्रेणी के मनुष्यों की भांति सीधा साधा जीवन बिताता है, तो भी उसकी आत्मिक स्थिति बहुत ऊँची होती है। युग प्रभाव से आज चमत्कारों का युग नहीं रहा तो भी आत्मा की उन्नति में कभी कोई युग

बाधा नहीं डाल सकता। पूर्व काल में जैसी महान आत्माऐं होती थीं, आज भी वह सब क्रम यथावत् जारी है। उस समय वे योगी आसानी से पहचान लिए जाते थे, आज उनका पहचानना कठिन है। इस कठिनाई के होते हुए भी आत्म-विकास का मार्ग सदा की भांति अब भी खुला हुआ है।

ब्रह्म दीक्षा के अधिकारी गुरु शिष्य ही इस महान सम्बन्ध को स्थापित कर सकते हैं। शिष्य, गुरु को आत्म-समर्पण करता है। गुरु उनके कार्यों का उत्तरदायित्व एवं परिणाम अपने ऊपर लेता है। ईश्वर को आत्म-समर्पण करने की प्रथम भूमिका गुरु को आत्म-समर्पण करना है। शिष्य अपना सब कुछ गुरु को समर्पण करता है। गुरु उस सबको अमानत के तौर पर शिष्य को लौटा देता है और आदेश कर देता है कि इन सब वस्तुओं को गुरु की समझ कर उपयोग करो। इस समर्पण से प्रत्यक्षतः कोई विशेष हेर-फेर नहीं होता, क्योंकि ब्रह्म ज्ञानी गुरु अपरिग्रही होने के कारण उस सब 'समर्पण' का करेगा भी क्या ? दूसरे व्यवस्था एवं व्यवहारिकता की दृष्टि से भी उसका सौंपा हुआ सब कुछ उसी के संरक्षण में ठीक प्रकार रह सकता है इसलिए वाह्यतः इस समर्पण की कुछ विशेष बात प्रतीत नहीं होती पर आत्मिक दृष्टि से इस 'आत्म-दान' का मूल्य इतना भारी है कि उसकी तुलना और किसी त्याग या पुण्य से नहीं हो सकती।

जब दो चार रुपया दान करने पर मनुष्य को इतना आत्म-संतोष और पुण्य प्राप्त होता है तब शरीर भी दान कर देने से पुण्य और आत्म-संतोष की अन्तिम मर्यादा समाप्त हो जाती है। आत्म-दान से बड़ा और दान इस संसार में किसी प्राणी से सम्भव नहीं हो सकता। इसलिए इसकी तुलना में इस विश्व ब्रह्माण्ड में और कोई पुण्य फल भी नहीं है। नित्य सवा

मन सोने का दान करने वाला कर्ण 'दान वीर' के नाम से प्रसिद्ध था, पर उसके पास भी दान के बाद कुछ न कुछ अपना रह जाता था। जिस दानी ने अपना कुछ छोड़ा ही नहीं उसकी तुलना किसी दानी से नहीं हो सकती।

'आत्म दान' मनोवैज्ञानिक दृष्टि से एक महान कार्य है। अपनी सब वस्तुऐं जब वह गुरु की, अन्त में परमात्मा की, समझ कर उनके आदेशानुसार नौकर की भांति प्रयोग करता है, तो उनका स्वार्थ, मोह, अहंकार, मान, मद, मत्सर, क्रोध आदि सभी समाप्त हो जाते हैं। जब अपना कुछ रहा ही नहीं तो 'मेरा' क्या ? अहंकार किस बात का ? जब उपार्जित की हुई वस्तुओं का स्वामी गुरु या परमात्मा ही है तो स्वार्थ कैसा ? जब हम नौकर मात्र रह गये तो हानि-लाभ में शोक-सन्ताप कैसा ? इस प्रकार "आत्म-दान" में वस्तुतः "अहंकार" का दान होता है। वस्तुओं के प्रति "मेरी" भावना न रहकर "गुरु की" या परमात्मा की भावना हो जाती है। यह "भावना परिवर्तन" आत्म परिवर्तन—एक असाधारण एवं रहस्यमय प्रक्रिया है। इसके द्वारा साधक सहज ही बन्धनों से खुल जाता है। अहंकार के कारण जो अनेक संस्कार उसके ऊपर लदते थे, वे एक भी उसके ऊपर नहीं लदते। जैसे छोटा बालक अपने ऊपर कोई बोझ नहीं लेता, उसका सब कुछ बोझ माता-पिता पर रहता है, इसी प्रकार आत्म-दानी का बोझ भी किसी दूसरी उच्च सत्ता पर चला जाता है।

ब्रह्म दीक्षा का शिष्य गुरु को "आत्म-दान" करता है। प्रथम कक्षा वाले अर्थात् 'मन्त्र दीक्षित' को "गुरु पूजा" करनी पड़ती है। दूसरी कक्षा के शिक्षार्थी अर्थात् 'अग्नि दीक्षित' को "गुरु दीक्षा" देनी पड़ती है। तीसरी कक्षा वाले अर्थात् "ब्रह्म दीक्षित को आत्म समर्पण" करना पड़ता है। राम को राज्य का

अधिकारी मानकर उनकी खड़ाऊँ सिंहासन पर रख कर जैसे भरत राज काज चलाते रहे वैसे ही आत्म दानी अपनी वस्तुओं का समर्पण करके उनके व्यवस्थापक के रूप में स्वयं काम करता रहता है।

वर्तमान काल की कठिनाइयाँ:—

आज व्यापक रूप से अनैतिकता फैली हुई है। स्वार्थी और धूर्तों का बाहुल्य है। सच्चे और सत्पात्रों का भारी अभाव हो रहा है। आज न तो तीव्र उत्कण्ठा वाले शिष्य हैं और न सच्चा पथ-प्रदर्शन की योग्यता रखने वाले चरित्रवान, तपस्वी एवं अनुभवी गुरु ही रहे हैं। ऐसी दशा में गुरु शिष्य सम्बन्ध की महत्वपूर्ण आवश्यकता का पूरा होना कठिन हो जाता है। शिष्य चाहते हैं कि उन्हें कुछ न देना पड़े, कोई ऐसा गुरु मिले जो उनकी नम्रता मात्र से प्रसन्न होकर सब कुछ उनके लिए करके रखदे। गुरुओं की मनोवृत्ति यह है कि शिष्यों को उल्लू बनाकर उनसे आर्थिक लाभ उठाया जाय, उनकी श्रद्धा को दुहा जाय। ऐसा जोड़ा—लोभी गुरु लालची चेला। दुहुँ नरक में ठेलम ठेला॥ का उदाहरण बनता है। ऐसे ही लोगों की अधिकता के कारण यह महान सम्बन्ध शिथिल हो गया है। अब किसी को गुरु बनाना एक आडम्बर में फँसना और किसी को शिष्य बनाना एक झंझट मोल लेना समझा जाता है। जहाँ सचाई है वहाँ दोनों ही पक्ष सम्बन्ध जोड़ते हुए कतराते हैं। फिर भी आज की विपम स्थिति कितनी ही बुरी और कितनी ही निराशाजनक क्यों न हो पर भारतीय धर्म की एक मूल भूत आधार शिला का महत्व कम नहीं हो सकता।

गायत्री द्वारा आत्म विकाश की तीनों कक्षाएँ पार की जाती हैं। सर्व साधारण की जानकारी के लिए "गायत्री महाविज्ञान" के तीन खण्डों में यथा सम्भव उपयोगी जानकारी देने

का हमने प्रयत्न किया है। उन पुस्तकों में वह शिक्षा मौजूद है जिसे दृष्टिकोण का परिमार्जन एवं मन्त्र दीक्षा कहते हैं। यज्ञोपवीत का रहस्य, गायत्री ही कल्प वृक्ष है, गायत्री गीता, गायत्री स्मृति, गायत्री रामायण, गायत्री उपनिषद, गायत्री की दस भुजा आदि प्रकरणों में यह बताया गया है कि हम अपने विचारों, भावनाओं और इच्छाओं में संशोधन करके किस प्रकार सुखमय जीवन व्यतीत कर सकते हैं। इन्हीं तीनों खण्डों में अग्नि दीक्षा की द्वितीय भूमिका की शिक्षा भी विस्तारपूर्वक दी गई है। ब्रह्म सन्ध्या, अनुष्ठान, ध्यान, पाप नाशक तपश्चर्याएँ, उद्यापन, विशेष साधनाएं, उपासना, प्राण विद्या, मनोमय कोश की साधना, तंत्र, पुरश्चरण आदि प्रकरणों में शक्ति उत्पन्न करने की शिक्षा दी गई है। ब्रह्म दीक्षा की शिक्षा गायत्री पञ्जर, गायत्री हृदय, कुण्डली जागरण, ग्रन्थि भेद, विज्ञानमय कोश की वेधना एवं आनन्दमय कोश की साधना के अन्तर्गत भली प्रकार की तलाश करने से कई बार दुष्प्राप्य वस्तुएँ भी मिल जाती हैं।

यदि उपयुक्त व्यक्ति न मिले तो किसी स्वर्गीय, पूर्वकालीन या दूरस्थ व्यक्ति की प्रतिमा को गुरु मानकर यात्रा आरम्भ की जा सकती है। एक आवश्यक परम्परा का लोप न हो जाय इसलिए किसी साधारण श्रेणी के सत्पात्र से भी काम चलाया जा सकता है। गुरु का निर्लोभ, निरहंकारी एवं शुद्ध चरित्र होना आवश्यक है। यह योग्यताएँ जिस व्यक्ति में हों, वह काम चलाऊ गुरु के रूप में काम दे सकता है। यदि उसमें शक्ति दान एवं पथ-प्रदर्शक की योग्यता न होगी तो भी वह अपनी श्रद्धा को बढ़ाने में साथी की तरह सहयोग अवश्य देगा। 'निगुरा' रहने की अपेक्षा मध्यम श्रेणी के पथ-प्रदर्शक से काम चल सकता है। गेहूँ न मिले तो ज्वार, बाजरा खाकर भी काम चलता है। यज्ञोपवीत धारण

करने एवं गुरु दीक्षा लेने की प्रत्येक द्विज को अनिवार्य आवश्यकता है। चिह्न पूजा के रूप में यह प्रथा चलती रहे तो समयानुसार उसमें सुधार भी हो सकता है, पर यदि उस शृंखला को ही तोड़ दिया तो उसकी नवीन रचना कठिन होगी।

गायत्री द्वारा आत्मोन्नति होती है यह निश्चित है। मनुष्य के अन्तः क्षेत्र के संशोधन, परिमार्जन, सन्तुलन एवं विकाश के लिए गायत्री से बढ़कर और कोई ऐसा साधन भारतीय धर्म-शास्त्रों में नहीं है, जो अतीत काल से असंख्यों व्यक्तियों के अनुभवों में सदा खरा उतरता आया हो। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार का अन्तःकरण चतुष्टय गायत्री द्वारा शुद्ध कर लेने वाले व्यक्ति के लिए सांसारिक जीवन में सब ओर से सब प्रकार की सफलताओं का द्वार खुल जाता है। उत्तम स्वभाव, अच्छी आदतें, स्वस्थ मस्तिष्क, दूर दृष्टि, प्रफुल्ल मन, उच्च चरित्र, कर्त्तव्य निष्ठा प्रवृत्ति को प्राप्त करने के पश्चात् गायत्री साधक के लिए संसार में कोई दुःख, कष्टकर नहीं रह जाता, उसके लिए सामान्य परिस्थितियों में भी सुख ही सुख उपस्थित रहता है।

परन्तु गायत्री का यह लाभ केवल २४ अक्षर के मंत्र मात्र से उपलब्ध नहीं हो सकता। एक हाथ से ताली नहीं बजती, एक पहिए की गाड़ी नहीं चलती, एक पंख का पक्षी नहीं उड़ता इसी प्रकार अकेली गायत्री-साधना अपूर्ण है उसका दूसरा भाग गुरु का पथ-प्रदर्शन है। गायत्री गुरु मन्त्र है। इस महा शक्ति की कीलित कुञ्जी अनुभवी एवं सुयोग्य गुरु के पथ-प्रदर्शन में सन्निहित है। जब साधक को उभय पक्षीय साधन, गायत्री माता और पिता गुरु की छत्रछाया प्राप्त हो जाती है, तो आशाजनक सफलता प्राप्त होने में देर नहीं लगती।

गायत्री तपोभूमि—एक महान् धर्म संस्थान

गायत्री तपोभूमि, मथुरा शहर से १ मील आगे—वृन्दावन रोड पर परम शांतिमय वातावरण में बना हुआ एक सुन्दर आश्रम है, जहाँ गायत्री माता का भव्य मन्दिर, भारतवर्ष के लगभग २४०० तीर्थों के जल-रज का एक तीर्थ सम्मेलन-गृह, १२५ करोड़ हस्तलिखित गायत्री-मन्त्रों का संग्रह-कक्ष, निवास के लिए २३ कमरे, एक प्रवचन हाल, तीन बड़ी यज्ञ-शालाऐं, प्रधान यज्ञशाला में कभी न बुझने दी जाने वाली अखण्ड-अग्नि की स्थापना, नित्य गायत्री-मन्त्र की एक हजार आहुतियों का हवन, तुलसी का उपवन, हजारों धार्मिक पुस्तकों का विशाल पुस्तकालय, लगभग ६० पत्र-पत्रिकाऐं आने वाला वाचनालय, बिना मूल्य चिकित्सा के लिए कल्प चिकित्सालय यह सब देखकर कोई भी दर्शक संस्था की गति-विधियों का सहज ही अनुमान लगा सकता है। गायत्री तपोभूमि में सदा अनेक धार्मिक भावना वाले व्यक्ति शिक्षा, तीर्थ-यात्रा, साधना, तपश्चर्या एवं विभिन्न कठिनाइयों के सम्बन्ध में आचार्यजी से परामर्श करने आते हैं। आगन्तुकों को तपोभूमि में निवास, भोजन आदि की समुचित सुविधा प्राप्त होती है।

गायत्री तपोभूमि द्वारा देश भर में गायत्री महायज्ञों एवं सांस्कृतिक सम्मेलनों की श्रृंखला भी चलाई जा रही है। सन् '५६ और '५७ में १००० बड़े गायत्री महायज्ञ तथा सांस्कृतिक सम्मेलन करने का निश्चय किया था। सो उस संकल्प से भारतवर्ष के कोने-कोने से हजारों यज्ञ हुए। जिनमें से १०१ कुण्डों वाले, २५ कुण्डों वाले, ९ कुण्डों वाले विशाल यज्ञों की संख्या १००० थी। इनमें से कुछ यज्ञों में तो ५० हजार तक जनता एकत्रित हुई। ये यज्ञ अ० भा० गायत्री-परिवार की देश में फैली हुई १२०० शाखाओं द्वारा सम्पन्न हुये थे। इन यज्ञों और सम्मेलनों का उद्देश्य जनता में धर्म, सदाचार, नैतिकता,

लेखक-
श्रीराम शर्मा आचार्य
गायत्री तपोभूमि, मथुरा।

ॐ भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि
धियो योनः प्रचोदयात।

प्रकाशक-
"अखण्ड ज्योति" प्रेस, मथुरा।

सन् १९५८ [मूल्य ।)

गायत्री उपनिषद्

★

उपनिषद् भारतीय आध्यात्मिक साहित्य के उज्ज्वल रत्न हैं। परमात्मा और आत्मा के स्वरूप की व आध्यात्मिक दृष्टि से मानवता की जैसी गहन और स्पष्ट व्याख्या उपनिषद्कारों ने की है, वैसा अन्यत्र कहीं देखने में नहीं आती। मनुष्य क्या है, कहाँ से आया है, मृत्यु के पश्चात् उसका क्या परिणाम होता है और इन दृष्टियों से उसका क्या कर्तव्य होना चाहिए—ये प्रश्न इतने दुरूह हैं कि या तो संसार के किसी धर्म-प्रचारक ने इनको उठाया ही नहीं, और यदि इनकी चर्चा भी की तो दो चार ऊपरी अथवा निरर्थक बातें कहकर अपना पिंड छुड़ा लिया। पर उपनिषद्कारों ने इन्हीं सब प्रश्नों का इतना अधिक मनन और विवेचन किया है कि आज उसका एक बहुत बड़ा स्वतन्त्र साहित्य ही निर्मित हो गया है।

"गायत्री उपनिषद्" में महामन्त्र गायत्री की व्याख्या करके बतलाया गया है कि इस मन्त्र के २४ अक्षरों में जो ज्ञान भरा हुआ है, उससे मनुष्य जीवन को पूर्ण रूप सफल बनाकर अन्त में मोक्ष की प्राप्ति की जा सकती है। संसार में जो कुछ महान सफलताएं मानी जाती हैं, अर्थात् श्री प्रतिष्ठा और ज्ञान इन सबकी प्राप्ति गायत्री द्वारा हो सकती है। गायत्री का आदेश है कि मनुष्य कोई भी कामना करने के पहले अपनी बुद्धि अथवा ज्ञान को शुद्ध बनाले। शुद्ध ज्ञान से ही मनुष्य को हितकारी और अपने लिए उपयुक्त वस्तु का ज्ञान हो सकता है इस प्रकार 'गायत्री उपनिषद' में मनुष्य को वही उपदेश दिया गया है जिससे उसका शाश्वत कल्याण हो सके।

वेदों से 'ब्राह्मण' ग्रन्थों का आविर्भाव हुआ है। प्रत्येक वेद के कई-कई ब्राह्मण ग्रन्थ थे, पर अब उनमें से थोड़े ही प्राप्त होते हैं। काल की कुटिल गति ने उनमें से कितनों ही को लुप्त कर दिया।

ऋग्वेद के दो ब्राह्मण मिलते हैं-शाङ्खायन और ऐतरेय। शाङ्खायन को कौषीतकी भी कहते हैं।

यजुर्वेद के तीन ब्राह्मण प्राप्य हैं-शतपथ ब्राह्मण, काण्व ब्राह्मण, तैत्तरीय ब्राह्मण।

सामवेद के ११ ब्राह्मण उपलब्ध हैं—आर्षेय ब्राह्मण, जैमिनी यार्षेय ब्राह्मण, संहितोपनिषद ब्राह्मण, मन्त्र ब्राह्मण, वंश ब्राह्मण, साम विधान ब्राह्मण, षड्विंश ब्राह्मण, दैवत ब्राह्मण, ताण्ड्य ब्राह्मण, जैमिनीय ब्राह्मण, जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण।

अथर्ववेद का केवल मात्र एक ब्राह्मण मिलता है, जिसका नाम है गोपथ ब्राह्मण। गोपथ की ३१ से लेकर ३८ तक आठ काण्डिकाएँ गायत्री उपनिषद् कहलाती हैं। इनमें मैत्रेय और मौदल्य के परस्पर विवाद के उपाख्यान द्वारा गायत्री का महत्वपूर्ण रहस्य समझाया गया है। साधारण शब्दार्थ के अनुसार बुद्धि-प्रेरणा की प्रार्थना ही गायत्री का तात्पर्य है, परन्तु इस उपनिषद् में ब्रह्मविद्या एवं पदार्थ विद्या से सम्बन्ध रखने वाले कई रहस्यों पर प्रकाश डाला गया है।

अथ गायत्री उपनिषद्

एतद्ध स्मएतद् विद्वांसमेकादशाक्ष ।
मौदगल्यं ग्लाको मैत्रेयोऽभ्याजगाम ॥

एकादशाक्ष मौद्गल्य के समीप ग्लाव मैत्रेय आये।

स तस्मिन् ब्रह्मचर्यं वसतीत विज्ञायोवाच
किं स्विन्मर्या अयं तन्मौद्गल्योऽध्येति
यदस्मिन्ब्रह्मचर्यं वसतीति।

मौद्गल्य के ब्रह्मचारी को देखकर और उसे सुनाकर ग्लाव ने (उपहास उड़ाते हुए) कहा कि—मौद्गल्य अपने इस ब्रह्मचारी को क्या पढ़ाता है अर्थात् कुछ भी नहीं पढ़ाता है।

तद्धि मौद्गल्यस्यान्तेवासी शुश्राव।
स आचार्यायाब्रज्या चचष्टे।

मौद्गल्य के ब्रह्मचारी ने इस बात को सुनकर अपने आचार्य के पास जाकर कहा—

दुरधीयानं वा अयं भवन्तमवोचद्यऽयमद्यातिथिर्भवति

जो आज अतिथि हुए हैं, आपको उन्होंने मूर्ख कहा है।

किं सौम्य विद्वानिति—

क्या वह विद्वान हैं? मौद्गल्य ने पूछा।

त्रिन्वेदान् ब्रूते भो इति—

हाँ, वे तीनों वेदों के प्रवचनकर्त्ता हैं, शिष्य ने कहा—

तस्य सौम्य यो विद्वान् विपष्टो विजिगीषोऽन्तेवासी
तं मेऽऽह्वयेति ।

हे सौम्य ! उसका जो विद्वान्, सूक्ष्मदर्शी तथा विजय चाहने वाला शिष्य हो, तुम उसे मेरे पास ले आओ ।

तमाजुहाव । तमभ्युवाचा सावित्रि भो इति ।

तब वह उसे बुला लाया और बोला—वे ये हैं ।

किं सौम्य त आचार्योऽध्येतीति ।

मौद्गल्य ने उससे पूछा—हे सौम्य ! तुम्हारे आचार्य क्या पढ़ाते हैं ?

त्रीनवेदान् ब्रूते भो इति ।

उसने उत्तर दिया—वे तीनों वेदों का प्रवचन करते हैं ।

यन्नु खलुसौम्यास्माभिः सर्वे वेदा मुखत्तो गृहीताः,
कथं त एव माचार्यो भाषते, कथं नु स चेत्सौम्य
दुरधीयानो भविष्यति, आचार्यो बालब्रह्मचारी
ब्रह्मचारिण सावित्रो प्राह, इति वक्ष्यति ।

हे सौम्य ! यदि वे यह जानते होंगे तो कहेंगे कि आचार्य अपने ब्रह्मचारी को जिसका उपदेश देते हैं, वह सावित्री है अर्थात् जो गायत्री का शब्दार्थ, स्थूल अर्थ है, उसे ही बता देंगे ।

तत्वं ब्रूयाद दुरधीयानं तं वैभवान्मौदगल्य
मवोचत्, स त्वां यं प्रश्नमप्राक्षीन्न तं व्यवोचः ।
पुरा सम्वत्सरादार्तिमारष्यिसीति ।

तब तुम कहना कि आपने तो हमारे आचार्य मौद्गल्य को मूर्ख बतलाया था। वे आपसे जो प्रश्न पूछते हैं, उसे आप नहीं बतला सके। एक वर्ष के भीतर ही आपको कुछ कष्ट होगा।

शिष्टाः शिष्टेभ्य एवं भाषेरन्। यं ह्येनमहंप्रश्नं पृच्छामि न तं विवक्ष्यति, नह्येनमध्येतीति।

हे सौम्य! हमने भी सब वेद अध्ययन किए, फिर तुम्हारे आचार्य मुझे मूर्ख क्यों कहते हैं? क्या शिष्टों को शिष्टों के लिए ऐसा कहना ठीक है? हम उनसे जो प्रश्न पूछेंगे, वे उसे न बतला सकेंगे, वे उसे पढ़ाते भी न होंगे।

स ह मौद्गल्यः स्वमन्तेवासीनमुवाच-परे हि सौम्य, ग्लावं मैत्रेयमुपासीत्, अधीहि भोः सावित्रीं गायत्री चतुर्विंशति योनिं द्वादश मिथुनां, यस्यांभृग्वंगिरशश्च क्षुर्यस्यां सर्वमिदं श्रितं तां भवान् प्राब्रवीत्विति।

तब उन मौद्गल्य ने अपने ब्रह्मचारी से कहा—सौम्य! तुम जाओ, ग्लाव मैत्रेय के समीप उपस्थित होकर कहो कि बारह मिथुन तथा चौबीस योनि वाली भृगु और अङ्गिरा जिसके नेत्र हैं तथा जिसके आश्रित यह सब हैं, उस सावित्री गायत्री को हमें पढ़ाइये।

इस काण्डिका में मौद्गल्य ने मैत्रेय से गायत्री का रहस्य पुछवाया है। साधारण अर्थ तो सभी जानते हैं कि इस मन्त्र में परमात्मा से यह प्रार्थना की गई है कि हमें सद्बुद्धि की प्रेरणा कीजिये। ऐसे मन्त्र तो श्रुति स्मृतियों में अनेकों भरे पड़े हैं, जिनमें इसी प्रकार की या इससे भी उत्तम रीति से बुद्धि विवेक

आदि के लिए प्रार्थनाएँ की गई हैं। फिर गायत्री में ही ऐसी क्या विशेषता है, जिसके कारण उसे वेद-माता कहा गया और समस्त श्रुति-क्षेत्र में इतना अधिक महत्व दिया गया। इसका कोई न कोई बड़ा कारण अवश्य होना चाहिए। मौद्गल्य ने उसी रहस्य एवं कारण को मैत्रेय से पुछवाया।

स तत्राजगाम यत्रेतरो बभूव । तंहप्रपच्छ स ह न प्रतिपदे।

मौद्गल्य का शिष्य मैत्रेय के पास आया। उसने उससे पूछा, किन्तु वे उसका उत्तर न दे सके।

तं होवाच दुरधीयानं त वै भवान्मौद्गल्यमवोचत्सत्वायं प्रश्नमप्राक्षीन्न तं व्यवोचः पुरा संवत्सरादार्तिमारिष्यसीति।

उसने कहा—आपने मौद्गल्य को मूर्ख कहा था। उन्होंने जो आपसे पूछा, आप उसे नहीं बतला सके, इसलिए एक वर्ष में आपको कष्ट होगा।

स ह मैत्रेयः स्वानन्तेवासीन उवाच—यथार्थं भवन्तो यथागृहं यथामनो विप्रसृज्यन्ताम् दुरधीयानं वा अहं मौद्गल्य मवोचम्, स यं प्रश्नमप्राक्षीन्न तं व्यवोचं, तमुपैष्यामि, शान्तिं करिष्यामीति।

तब मैत्रेय ने अपने शिष्यों से कहा—अब आप लोग अपनी-अपनी इच्छानुसार अपने-अपने घरों को लौट जाइये। मैंने मौद्गल्य को मूर्ख कहा था, पर उन्होंने जो पूछा है, मैं

उसे नहीं बतला सका हूँ। मैं उनके पास जाऊँगा और उन्हें शान्त करूँगा।

स ह मैत्रेयः प्रातः समित्पाणिमौदगल्यमुपससादासौ व अहं भो मैत्रेय इति।

दूसरे दिन प्रातःकाल हाथ में समिधा लेकर मैत्रेय मौद्गल्य ऋषि के पास आये और कहा—मैं मैत्रेय आपकी सेवा में आया हूँ।

किमर्थमिति—

किस लिए?—उन्होंने पूछा।

दुरधीयानं वा अहं भवन्तमवोचं त्वं मा य प्रश्नमप्राक्षीन तं व्यवोचं, त्वामुपैष्यामि, शान्तिं करिष्यामीति।

मैत्रेय ने कहा—मैंने आपको मूर्ख कहा था। आपने जो पूछा, मैं उसे न बतला सका। अब मैं आपकी सेवा में उपस्थित होऊँगा और आपको शान्त करूँगा।

स होवाच अत्र वा उपेतं च सर्वं च कृतं पापकेन त्वा यानेन चरन्तमाहुः अथोऽयं मम कल्याणस्तं ते ददामि तेन याहीति।

मौद्गल्य ने कहा—आप यहाँ आए हैं, लेकिन लोग कहते हैं कि आप शुद्ध भावना से नहीं आये हैं, तो भी मैं उन्हें कल्याणकारी भाव देता हूँ, तुम इसे लेकर लौटो।

स होवाच। एतदेवात्रार्त्विज्यं चानृशंस्यं च यथा भवानाह। उपायामि त्वेव भवन्तमिति।

मैत्रेय ने कहा—आपका कहना अभयकारी एवं सदय है। मैं आपकी सेवा में समित्पाणि होकर उपस्थित होता हूँ।

तं हो पेथाय—

अब वे विधिपूर्वक उनकी सेवा में उपस्थित हुए।

तं होपेत्य पप्रच्छ—

उपस्थित होकर पूछा—

किंस्विदाहुर्भोः सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य कवयः किमाहु।
धियो विचक्ष्व यदि ताः प्रवेत्थ प्रचोदयन्सवितायाभिरेति॥

(१) सविता का वरेण्य किसे कहते हैं?
(२) उस देव का भर्ग क्या है?
(३) यदि आप जानते हों तो धी संज्ञक तत्वों को कहिये, जिनके द्वारा सबको प्रेरणा देता हुआ सविता विचरण करता है।

तस्मा एतत्प्रोवाच—

उन्होंने उत्तर दिया—

वेदांश्छन्दांसि सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य कवयोऽन्नमाहुः।
कर्माणि धियस्तदुते ब्रवीभि प्रचोदयन्सवितायाभिरेति।

(१) वेद और छन्द सविता का वरेण्य है।
(२) विद्वान पुरुष अन्न को ही देव का भर्ग बतलाते हैं।
(३) कर्म ही वह धी तत्व है, जिसके द्वारा सबको प्रेरणा देता हुआ सविता विचरण करता है।

तमुपसंग्रह्य पप्रच्छाधीहि भोः, कः सविता, का सावित्री।

यह सुनकर उनने फिर पूछा—सविता क्या है और सावित्री क्या है ?

मौद्गल्य के अभिप्राय को मैत्रेय भली प्रकार समझ गये। उन्होंने सचाई के साथ विचार किया तो जाना कि मैं गायत्री के उस रहस्य को नहीं जानता हूँ, जिसके कारण उसे इतना महत्त्व प्राप्त है। उन्होंने सोचा, यह मूल कारण न मालूम हो तो उसके वाह्य प्रतीकों को जान लेने मात्र से कुछ लाभ नहीं हो सकता। इसलिये वेदों का प्रवचन करने से तब तक क्या लाभ, जब तक कि उनका मूल कारण न मालूम हो। यह सोचकर उनने निश्चय किया कि पहले मैं गायत्री का रहस्य समझूँगा, तब अन्य कार्य करूँगा। उन्होंने अपने विद्यार्थियों की छुट्टी करदी और स्वयं नम्र बनकर समिधा हाथ में लेकर शिष्य-भाव से मौद्गल्य के पास पहुँचे। विद्या प्राप्त करने की—विशेष रूप से अध्यात्म विद्या की—यही परिपाटी है कि शिक्षार्थी अपने अध्यापक के पास नम्र होकर—उनके प्रति श्रद्धा भाव मन में धारण करके पढ़ने जावे। इस आर्ष प्रणाली को छोड़कर आज के उच्छृङ्खल 'स्टूडेण्ट' जिन उजड्ड भावनाओं के साथ शिक्षा प्राप्त करते हैं, वह शिक्षा गुरु का आशीर्वाद न होने से निष्फल हो जाती है।

मैत्रेय ने पूछा—गायत्री के प्रथम पद में आये हुए शब्दों का रहस्य बताइये। (१) सविता का वरेण्य क्या है अर्थात् उस तेजस्वी परमात्मा को किससे वरेण्य किया जाता है। ईश्वर किस उपाय से प्राप्त होता है ? (२) उस देव का भर्ग क्या है ? देव कहते हैं श्रेष्ठ को, भर्ग कहते हैं बल को। देव का भर्ग क्या है ? जिसके द्वारा परमात्मा सबको प्रेरणा करता है अर्थात् वह माध्यम क्या है, जिसके द्वारा ईश्वर की कृपा प्राप्त होती है ? इन तीनों तत्वों को मैत्रेय ने मौद्गल्य से पूछा।

इनका संक्षिप्त उत्तर मौद्गल्य ने दिया है, वह बड़े ही मार्के का है। इन उत्तरों पर जितना गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय, उतना ही उनका महत्व प्रकट होता है। मौद्गल्य कहते हैं :--

(१) वेद और छन्द सविता का वरेण्य हैं। (२) अन्न को ही देव का भर्ग कहते हैं। (३) कर्म ही 'धी' तत्व है, इसी के द्वारा परमात्मा सबको प्रेरणा देता है, सबका विकास करता है। आइये, इन तीनों प्रश्नों पर पृथक्-पृथक् विचार करें-

(१) वेद अर्थात ज्ञान, छन्द अर्थात् अनुभव। तत्व से, आत्म-ज्ञान से परमात्मा की प्राप्ति होती है, पर वह ज्ञान केवल वाचिक न होना चाहिये। भारवाही गधे की तरह अनेक पुस्तकें पढ़ लेने से, शुक सारिकाओं की भाँति कुछ रटे हुए शब्दों का प्रवचन कर देने से काम नहीं चल सकता। हमारा तत्व-ज्ञान अनुभव सिद्ध होना चाहिए। जिसको कारण, तर्क, प्रमाण और उदाहरण के द्वारा सत्य मान लिया जाय, उस सत्य के प्रति मनुष्य के मन में अगाध श्रद्धा होनी चाहिये और उस श्रद्धा का जीवन में व्यवहारिक आचरण होना चाहिये। पहले पूरी तत्परता, सचाई और निष्पक्षता से यह देखना चाहिए कि कौन-कौन सिद्धान्त उचित एवं कल्याणकारी हैं। जब यह विश्वास हो जाय कि सत्य, परोपकार, संयम, ईमानदार आदि गुण सब दृष्टियों से श्रेयष्कर हैं तो उनके सिद्धान्त का जीवन में आचरण होना चाहिए। सद्ज्ञान की श्रद्धा भूमि में परिपक्व होना यही ईश्वर की प्राप्ति का प्रधान उपाय है। बिना सिद्धान्तों के जाने केवल अनुभव निर्बल है और बिना अनुभव का ज्ञान निष्फल है।

जब सद्ज्ञान मनुष्य की श्रद्धा में परिणित हो जाता है, दम्भ, छल, मत्सर, कपट, धूर्तता एवं दुराव को छोड़कर जब समस्त मनोभूमि में एक ही जाति की श्रद्धा स्थापित होजाती है,तो उसी आधार पर परमात्मा की प्राप्ति होती है। वेद और छंद के सम्मिश्रण में सविता का वर्णन किया जाता है और ज्ञान और अनुभव से परमात्मा को प्राप्त किया जाता है।

(२) इसी प्रश्न का उत्तर देते हुए मौद्गल्य कहते हैं,देव का भर्ग अन्न है। श्रेष्ठ का बल उसके साधन हैं। श्रेष्ठता को तभी बलवान बनाया जा सकता है,जब उसको विकसित करने के लिए अन्न हो,साधन हो। साधन सामिग्री लक्ष्मी एक शक्ति है, जो असुरों के हाथ में चली जावे तो असुरता को बढ़ाती है और यदि देवों के हाथ में हो तो उसके द्वारा देवत्व का विस्तार होता है, देवता बलवान होते हैं। शासन-सत्ता यदि दुष्ट लोगों के हाथ में हो तो वे उससे दुष्टता फैलाते हैं। पिछली शताब्दियों में भारत की राजसत्ता विदेशियों के हाथ में रही है,इसके कारण उन्होंने भारत-भूमि का कितना अधःपतन किया, यह किसी से छिपा नहीं है। वही सत्ता अब जब अच्छे हाथों में आई तो थोड़े ही दिनों में रूस, अमेरिका की भांति यहाँ भी उन्नत अवस्था प्राप्त होने की सम्भावना है। योगी अरविन्द ने अपनी 'माता' पुस्तक में लिखा है कि-'लक्ष्मी पर श्रेष्ठ लोगों को आधिपत्य करना चाहिये। इस प्रकार संसार में सुख शांति बढ़ेगी। यदि लक्ष्मी असुरों के पास चली गई तो उससे विश्व का अनिष्ट ही समझिए।' देवताओं को भोग के लिए नहीं, लोभ के लिए नहीं, संग्रह के लिए नहीं, अहंकार-प्रदर्शन के लिए नहीं, अन्याय करने के लिए नहीं वरन् इसलिए धन और साधन सामग्रियों

की आवश्यकता है कि वे शक्तियों द्वारा देवत्व की रक्षा एवं वृद्धि कर सकें। अपने आपको बलवान, क्रियाशील और साधन सम्पन्न बना सकें। अन्न को इस साधन-सामिग्री को लक्ष्मी का प्रतीक माना है। मौद्गल्य का दूसरा उत्तर यह है कि देव का भर्ग अन्न है, श्रेष्ठ का बल साधन है। बिना साधन के तो वह बेचारा निर्बल ही रहेगा।

(३) मौद्गल्य का तीसरा उत्तर यह है कि कर्म ही 'धी' तत्व है। इसी के द्वारा परमात्मा सबका विकास करता है। यह नितान्त सत्य है कि परमात्मा की कृपा से सबका विकास होता है। परमात्मा सबको ऊपर की ओर—उन्नति की ओर प्रेरित करता है, पर यह भी जान लेना चाहिये कि उस प्रेरणा का रूप है—'धी'। धी अर्थात् वह बुद्धि जो कर्म करने के लिए प्रेरणा, प्रोत्साहन देती है और कर्म करने में लगा देती है। परमात्मा की जिस पर कृपा होती है, उसे उसी प्रकार की बुद्धि प्राप्त होती है। किसी मनुष्य पर परमात्मा की कृपा है या नहीं, इसकी पहिचान करनी हो तो वह इस प्रकार हो सकती है कि वह मनुष्य उत्साह-पूर्वक, तन्मयतापूर्वक, श्रम, जागरूकता और रुचि के साथ काम करता है या नहीं? जिसका स्वभाव इस प्रकार का है, समझना चाहिए कि इनको विकसित करने के लिए परमात्मा ने इन्हें 'धी' तत्व प्रदान किया है।

कितने ही व्यक्ति आलसी, निकम्मे, हरामखोर होते हैं, निराशा जिन्हें घेरे रहती है, काम को आधे मन से, अरुचिपूर्वक, बेगार भुगतने की तरह करते हैं, जरा सा काम उन्हें पहाड़ मालूम होता है, थोड़े से श्रम से भारी थकान अनुभव करते हैं। ऐसे

लोगों को धी तत्व से रहित समझना चाहिये । यह प्रत्यक्ष है कि वे ईश्वर के अकृपा पात्र हैं, कर्म प्रेरक बुद्धि के अभाव में वे दुर्भाग्य ग्रस्त ही रहेंगे ।

मौद्गल्य का उपरोक्त कथन कितना गम्भीर और सत्य है इसके बारे में दो मत नहीं हो सकते । भाग्य का रोना रोने वाले, तकदीर को ठोकने वाले, अपनी त्रुटि का दोष किसी दूसरे ज्ञात-अज्ञात पर थोपकर झूँठा मनः सन्तोष भले ही करलें, पर वस्तु स्थिति यही है कि उन्होंने ईश्वर की कृपा को प्राप्त नहीं किया । यह कृपा हर किसी के लिए सुलभ है, हर किसी के अपने हाथ में है । धी तत्व को—कर्मशीलता को—अपनाकर हर कोई ईश्वरीय कृपा और उन्नति का अधिकारी बन सकता है । परमात्मा अपनी कृपा से किसी को वंचित नहीं रखता, मनुष्य ही दुर्बुद्धि के कारण उसका परित्याग कर देता है ।

मन एव सविता वाक् सावित्री यत्रह्य ेव मनस्तद्वाक ।
यत्र वै वाक् तन्मन इति एते द्वे योनि एकं मिथुनम् ।१।

मन सविता है वाक् सावित्री, जहाँ मन वहाँ वाक् है, जहाँ वाक् है वहाँ मन, ये दोनों एक योनि और एक मिथुन हैं ।

अग्निरेव सविता पृथिवी सावित्री यत्र ह्य ेवाग्निस्तत्पृथिवी
यत्र वै पृथिवी तदग्निरिति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ॥

अग्नि सविता है, पृथ्वी सावित्री, जहाँ अग्नि है वहाँ पृथ्वी है, जहाँ पृथ्वी है वहाँ अग्नि है, यह दो योनि तथा एक मिथुन हैं ।

वायुर्व सविता अन्तरिक्षं सावित्री, यत्र ह्येव वायु स्तदन्तरिक्षम्, यत्र वा अन्तरिक्ष तद्वायुरिति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ॥३॥

वायु सविता है अन्तरिक्ष सावित्री है, जहाँ वायु है वहाँ अन्तरिक्ष है, जहाँ अन्तरिक्ष है वहाँ वायु है। ये दोनों योनि और एक मिथुन है ॥३॥

आदित्य एव सविता द्यौः सावित्री यत्रह्येवादित्यस्तद् द्यौः यत्र वै द्यौ स्तदादित्य इति। एते द्वे योनि एकं मिथुनम्।

आदित्य सविता है, द्यौ सावित्री। जहाँ आदित्य है वहाँ द्यौ है, जहाँ द्यौ है वहाँ आदित्य है। ये दोनों योनि और एक मिथुन है ॥४॥

चन्द्रमा एव सविता नक्षत्राणां सावित्री यत्र ह्येव चन्द्रमा स्तन्नक्षत्राणि। यत्र वै नक्षत्राणि तच्चंद्रमा इति। एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ॥५॥

चन्द्रमा सविता है नक्षत्र सावित्री है, जहाँ चन्द्रमा है वहाँ नक्षत्र हैं, जहाँ नक्षत्र हैं वहाँ चन्द्रमा है। ये दोनों योनि और एक मिथुन है ॥५॥

अरेव सविता रात्रिः सावित्री यत्र ह्येवाहस्तद्रित्रिः। यत्र वै रात्रि स्तदहरिति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ॥६।

दिन सविता है और रात्रि सावित्री है। जहाँ दिन है वहाँ रात्रि है। जहाँ रात्रि है वहाँ दिन है। ये दो योनि और एक मिथुन है ॥६॥

उष्णमेव सविता शीतं सावित्री यत्र ह्यु वोष्णं तच्छीतं । यत्र वै शीतं तदुष्णमिति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ।।७।।

उष्ण सविता है, शीत सावित्री । जहाँ उष्ण है वहाँ शीत है, जहाँ शीत है वहाँ उष्ण है । ये दोनों योनि और एक मिथुन है ।।७।।

अभ्रमेव सविता वर्षं सावित्री यत्र ह्येवाभ्रं तद्वर्षं, यत्र वै वर्षं तदभ्रमिति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ।।८।।

बादल सविता है और वर्षण सावित्री । जहाँ बादल हैं वहाँ वर्षण है, जहाँ वर्षण है वहाँ बादल हैं । ये दोनों योनि तथा एक मिथुन है ।।८।।

विद्युदेव सविता स्तनयित्नुः सावित्री । यत्र ह्येव विद्युत्तस्तनयित्नुः यत्र वै स्तनयित्नुस्तद्विद्युदिति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ।९।।

विद्युत सविता है और उसकी तड़क सावित्री । जहाँ बिजली है वहाँ उसकी तड़क है, जहाँ तड़क है वहाँ बिजली है । ये दोनों योनि और एक मिथुन है ।।९।।

प्राण एव सविता अन्नं सावित्री यत्र ह्येव प्राणस्तदन्नम् । यत्र वा अन्नं तत्प्राण इति । एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ।।

प्राण सविता है अन्न सावित्री । जहाँ प्राण है वहाँ अन्न है जहाँ अन्न है वहाँ प्राण है । यह दोनों योनि तथा एक मिथुन है ।

वेदा एव सविता छन्दांसि सावित्री यत्र ह्येव वेदास्तच्छंदांसि यत्र वै छन्दांसि तद्वेदा इति एते द्वे योनी

एकं मिथुनम् ॥११॥

वेद सविता है छन्द सावित्री। जहाँ वेद हैं वहाँ छन्द हैं जहाँ छन्द हैं वहाँ वेद हैं। यह दो योनि और एक मिथुन हैं।

यज्ञ एव सविता दक्षिणा सावित्री यज्ञ ह्येव यज्ञस्त्र दक्षिणा। यत्र वैदक्षिणाः स्तद्यज्ञ इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ॥१२॥

यज्ञ सविता है और दक्षिणा सावित्री, जहाँ यज्ञ है वहाँ दक्षिणा है, जहाँ दक्षिणा है वहाँ यज्ञ है, ये दोनों योनि तथा एक मिथुन हैं ॥१२॥

एतद्धस्मै तद्विद्वांसमोपकारो मासस्तुब्रह्मचारी ते संस्थित् इति।

विद्वान् तथा परोपकारी महाराज! आपकी सेवा में यह ब्रह्मचारी आया है।

अथैत आसस्तुरा चित इव चितो बभूव अथोत्थाय प्रावाजीदिति।

यह ब्रह्मचारी आपके यहाँ आकर ज्ञान से परिपूर्ण हो गया है। इसके बाद वे वहाँ से चले गये।

एतद्वा अहं वेद नैतासु योनिष्वितएतेभ्यो वा मिथुनेभ्यः संभवतो ब्रह्मचारी मम पुरायुषः प्रेयादिति।

और उन्होंने कहा कि अब मैं इसे जान गया हूँ, इन योनियों अथवा इन मिथुनों में आया हुआ मेरा कोई ब्रह्मचारी अल्पायु नहीं होगा।

अब प्रश्न होता है कि सविता क्या है? और सावित्री

क्या है ? गायत्री का देवता सविता माना गया है। प्रत्येक मंत्र का एक देवता है, जिससे पता चलता है कि इस मन्त्र का क्या विषय है। गायत्री का देवता सविता होने से यह प्रकट है कि इस मन्त्र का विषय सविता है । सविता की प्रधानता होने के कारण गायत्री का दूसरा नाम सावित्री भी है।

मैत्रेय पूछते हैं—भगवान् सविता क्या है ? और वह सावित्री क्या है ? महर्षि मौद्गल्य उन्हें उत्तर देते हैं कि सविता और सावित्री का अविच्छिन्न सम्बन्ध है, जो एक है वही दूसरा है। दोनों मिलकर एक जोड़ा बनता है, एक केन्द्र है दूसरा उसकी शक्ति है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

शक्ति मार्ग का महत्व उसकी शक्ति के विस्तार से है। यों तो प्रत्येक परमाणु अनन्त शक्ति का पुञ्ज है। एक परमाणु के विस्फोट से प्रलय उपस्थित हो जाती है। पर इस प्रकार की गतिविधि तभी होती है जब उस शक्ति का विस्तार एवं प्रकटीकरण होता है। यदि यह प्रकटीकरण न हो तो अनन्त शक्तिशाली पदार्थ का भी कोई अस्तित्व नहीं, उसे कोई जानता तक नहीं। सविता कहते हैं-तेजस्वी परमात्मा को और सावित्री कहते हैं—उसकी शक्ति को। सावित्री सविता से भिन्न नहीं, वरन् उसकी पूरक है, उसका मिथुन अर्थात जोड़ा है। सावित्री द्वारा ही अचिन्तन, अज्ञेय, निराकार एवं निर्लिप्त परमात्मा इस योग्य होता है कि उससे कोई लाभ उठाया जा सके।

यह बात बहुत सूक्ष्म और गम्भीर विचार के उपरान्त समझ में आने वाली है। इसलिए उपनिषद्कार उसे उदाहरण देदेकर सुबोध बनाते हैं और इस गूढ़ तत्व को इस प्रकार उपस्थित करते हैं कि हर कोई आसानी से समझ सके। वे कहते हैं—

मन सविता है, वाक् सावित्री है, जहाँ मन है वहाँ वाक् है, जहाँ वाक् है वहाँ मन है। ये दोनों योनियाँ हैं। एक मिथुन है। इसी प्रकार अग्नि और पृथ्वी का, वायु और अन्तरिक्ष का, आदित्य और द्यौ का, चन्द्रमा और नक्षत्रों का, दिन और रात्रि का, उष्ण और शीत का, अग्नि और वरुण का, विद्युत और तड़क का, प्राण और अन्न का, वेद और छन्द का, यज्ञ और दक्षिणा का मिथुन बताया गया है। यह तो थोड़े से उदाहरण मात्र हैं, यह उदाहरण बताकर उपनिषद्कार ने यह बताया है कि अकेली कोई वस्तु प्रकट नहीं हो सकती, प्रकाश में नहीं आ सकती, विस्तार नहीं कर सकती। अव्यक्त पदार्थ तभी व्यक्त होता है, जब उसकी शक्ति का प्रकटीकरण होता है। केवल परमात्मा बुद्धि की मर्यादा के बाहर है, उसे न तो हम सोच सकते हैं और न उसके समीप तक पहुँचकर कोई लाभ उठा सकते हैं। यह अव्यक्त परमात्मा-सविता, अपनी शक्ति सावित्री द्वारा सर्वसाधारण पर प्रकट होता है और उस शक्ति की उपासना द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

लक्ष्मीनारायण, सीताराम, राधाकृष्ण, उमाशंकर, सविता सावित्री, प्रकृति परमेश्वर के मिथुन, यही बताते हैं यह एक दूसरे के पूरक हैं, प्रकट होने के कारण हैं। जीव भी माया के कारण अव्यक्त से व्यक्त होता है। यह मिथुन हेय या त्याज्य नहीं हैं। वरन् क्रियाशीलता के विस्तार के लिए हैं। मनुष्य का विकास भी एकाङ्गी नहीं हो सकता; उसे अपनी शक्तियों का विस्तार करना पड़ता है। जो अपनी शक्तियों को बढ़ाता है वही उन्नति की ओर अग्रसर होता है।

शक्ति और शक्तिवान् का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। जैसे सविता अपनी सावित्री से ओत-प्रोत है, उसी प्रकार हमें भी

अपने आपको बहुमुखी शक्तियों से परिपूर्ण बनाना चाहिये। अपने साथ अनेक व्यक्तियों का सहयोग संगठित करना चाहिये। जिसके मिथुन जितने अधिक हैं वह उतना ही सुखी है।

इस शक्ति और शक्तिवान् के रहस्य को जानकर मैत्रेय संतुष्ट हुए, उन्होंने कहा—"मैं आपका शिष्य अब ज्ञान की वास्तविक जानकारी से परिपूर्ण हो गया हूँ। अब मैं जान गया हूँ कि मेरा जो भी शिष्य इस योनि और मिथुन के रहस्य को जान लेगा वह अल्पायु न होगा। वह शान्ति को अपना अविच्छिन्न अङ्ग मानकर उसका दुरुपयोग न करेगा वरन् सदुपयोग द्वारा सब प्रकार का लाभ उठायेगा। इस प्रकार शक्ति का महत्व समझकर उसका सदुपयोग करने वाले अल्पायु कदापि नहीं हो सकते।

ब्रह्म हेदं श्रियं प्रतिष्ठामायतनमैक्षत तत्तपस्का यदि तद्व्रते ध्रियेत् तत्सत्ये प्रत्यतिष्ठत्।

ब्रह्मा ने श्री, प्रतिष्ठा और आयतन को देखा, वह था कि—तप करो। यदि तप के व्रत को धारण किया जाय, तो सत्य में प्रतिष्ठा रहती है।

स सविता सावित्र्या ब्राह्मणं सृष्ट्वा तत्सावित्री पर्यदधात्।

उस सविता ने सावित्री से ब्राह्मण की सृष्टि की तथा सावित्री को उससे घेर दिया।

तत्सवितुर्वरेण्यं इति सावित्र्याः प्रथमः पादः।

'तत्सवितुर्वरेण्यं' यह सावित्री का प्रथम पाद है।

पृथिव्यर्चं समधात्। ऋचा अग्निम्। अग्निना-श्रियम् श्रिया स्त्रियम्। स्त्रियो मिथुनम्। मिथुनेन्

प्रजाम् । प्रजया कर्म । कर्मणा तपः । तपसा सत्य । सत्येन ब्रह्म । ब्रह्मणा ब्राह्मणम् । ब्राह्मणाम् व्रतम् । व्रतेन वै ब्राह्मणाः संशितो भवति । अशून्यो भवति, अविच्छिन्नो भवति ।

पृथ्वी से ऋक को जोड़ा,युक्त किया । ऋक से अग्नि को। अग्नि से श्री को। श्री से स्त्री को । स्त्री से मिथुन को । मिथुन से प्रजा को । प्रजा से कर्म को। कर्म से तप को । तप से सत्य को । सत्य से ब्रह्म को । ब्रह्म से ब्राह्मण को । ब्राह्मण से व्रत को। ब्राह्मण व्रत से ही तीक्ष्ण होता है, पूर्ण होता है और अविच्छिन्न होता है ।

अविच्छिन्नोऽस्य तन्तुरविच्छिन्न जीवनं भवति, य एवं वदेत्, यश्चैवं विद्वानेवेमेतं सावित्र्याः प्रथम पादं व्याचष्टे ।

जो इस प्रकार इसे जानता है और जानकर जो विद्वान् इसकी इस प्रकार व्याख्या करता है वह, उसका वंश तथा उसका जीवन अविच्छिन्न होता है ।

ब्रह्म जब तक अपने आप में केन्द्रित था, तब तक कोई पदार्थ न था । जब उसने "एकोहं बहुस्याम" की इच्छा की, एक से बहुत बनने का उपक्रम किया तो उस इच्छा शक्ति के कारण सृष्टि उत्पन्न हुई । जब ब्रह्म ने उस सृष्टि का साक्षात्कार किया तो उसमें से तीन वस्तुएँ प्रधान दिखाई दीं । (१) श्री (२) प्रतिष्ठा, (३) आयातन अर्थात् ज्ञान । इन विलक्षण सुख सामिग्रियों को किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है ? इस रहस्य का उद्-घाटन करते हुए ब्रह्म ने कहा—तप करो, अर्थात तन्मयतापूर्वक श्रम करो । यह किस प्रकार सम्भव है ? तप से अभीष्ट वस्तुएँ

प्रकार प्राप्त हो सकती हैं ? उसका भी ब्रह्म ने बड़े सुन्दर ढङ्ग से स्पष्टीकरण कर दिया। यदि तप का व्रत धारण किया जाय, तप को रुचिपूर्वक श्रमशीलता को अपना स्वभाव बना लिया जाय तो अवश्य ही सत्य में प्रतिष्ठित हो जाता है और अवश्य ही सही मार्ग मिल जाता है और उस मार्ग पर चलता हुआ प्राणी अभीष्ट को प्राप्त कर लेता है।

अब इस श्री, प्रतिष्ठा और ज्ञान का अधिकारी कौन नियुक्त किया जाय ? इस विलक्षण सुख-साधना का अधिकारी हर कोई नहीं हो सकता। सविता ने—परमात्मा ने अपनी सत् शक्ति से ब्राह्मण को बनाया और उसको सावित्री से घेर दिया। जिसमें सत् शब्द विशेष है, जो ब्रह्म परायण है, वह व्यक्ति ब्राह्मण है, ऐसे व्यक्ति ईश्वरीय दिव्य भावों से, दिव्य शक्ति से घिरे रहते हैं, उन्हें ही श्री, प्रतिष्ठा और ज्ञान की प्राप्ति होती है, वे ही उनका सदुपयोग करके लाभान्वित होते हैं, अन्यों को इन तीनों का अधिकार नहीं है, यदि बलात्, अनधिकृत रूप से कोई इन्हें प्राप्त कर लेता है तो उसके लिए यह वस्तुयें विपत्ति रूप बन जाती हैं।

आसुरी भावनाओं से आच्छादित मनुष्य तपस्वी नहीं होते। जिससे उचित मार्ग से, तप द्वारा, ईमानदारी से इन वस्तुओं को प्राप्त करें। वे अवैधानिक रूप से, अनुचित मार्ग से, चालाकी से इन्हें प्राप्त करते हैं। ऐसी दशा में वह श्री, प्रतिष्ठा और ज्ञान उनके खुद के लिए तथा अन्य लोगों के लिए विपत्ति का कारण बनते हैं। आज हम देखते हैं कि धनी लोग, धन संग्रह के लिए कैसे कैसे अनुचित तरीके अपनाते हैं और फिर उस संचित धन को कैसे अनुचित मार्ग में खर्च करते हैं। अपनी प्रतिष्ठा का दुरुपयोग करने वाले नेता, महात्मा, साधु-

संन्यासी आदि की संख्या कम नहीं है, लोग औंधे-सीधे मार्ग से नामवरी और वाहवाही लूटने के लिए प्रयत्न करते हैं। ज्ञान का दुरुपयोग करने वालों की तो कमी है ही नहीं। झूँठे को सच्चा, सच्चे को झूठा सिद्ध करने वाले वकीलों की कमी नहीं है, अश्लील, कुरुचिपूर्ण पुस्तकें लिखने वाले लेखक; चित्रकार कम नहीं हैं, झूठी विज्ञापनबाजी करके अपनी ज्ञान शक्ति का दुरुपयोग करने वालों की संख्या पर्याप्त है। ऐसे असत् प्रकृति के लोगों को जब यह तीन शक्तियाँ मिल जाती हैं तो वे इनका दुरुपयोग करते हैं। दुरुपयोग का निश्चित परिणाम उसका छिन जाना है। प्रकृति का नियम है कि वह अयोग्य हाथों में किसी वस्तु को अधिक समय नहीं रहने देती।

जो ब्राह्मण हैं, ब्रह्म प्रकृति के हैं ब्रह्म ने उन्हें ही उपरोक्त तीन लाभों का स्थायी अधिकारी बनाया है। यही ईश्वरीय नियम है। जिन्हें स्थायी रूप से श्री, प्रतिष्ठा और ज्ञान का अधिकारी बनना हो, सदा के लिए इनका रसास्वादन करना हो, उन्हें ब्राह्मण बनना चाहिये। अपने गुण, कर्म स्वभावों में ब्राह्मी भावों की प्रधानता रखनी चाहिये। तभी यह तीन तत्व स्थायी रूप से उसके पास ठहरेंगे। सविता ने-परमात्मा ने अपनी सावित्री से-सत् शक्ति से ब्राह्मण घेर दिया है, हमें तप द्वारा, योग द्वारा, यज्ञ द्वारा, सत्य द्वारा, प्रेम द्वारा, न्याय द्वारा ब्राह्मण बनने का प्रयत्न करना चाहिये जिससे संसार के इन तीन दिव्य सुखों के अधिकारी बन सकें।

ब्राह्मण के पास—सन्मार्ग गामी के पास, वैभव किस किस प्रकार पहुँचता और ठहरता है, इसका विवेचन करते हुए उपनिषद्कार ने परस्पर सम्बन्धों को गिनाया है कि यह परस्पर सम्बन्ध की शृङ्खला किस प्रकार सम्पन्नता को प्राप्त कराने में समर्थ होती है।

गायत्री के प्रथम पाद "तत्सवितुर्वरेण्यं" का भूः प्रतिनिधि कहा जाता है। तीन व्याहृतियों से—भूः भुवः स्वः से गायत्री के तीन पद आविर्भूत हुए हैं। भूः कहते हैं पृथ्वी लोक को। पृथ्वी को पृथ्वी के निवासियों से, ऋक् को ज्ञान से सम्बद्ध किया, ज्ञान से अग्नि अर्थात् क्रिया को सम्बद्ध किया अग्नि से श्री को अर्थात् क्रिया से वैभव को जोड़ दिया। वैभव को स्त्री से अर्थात् तृप्ति को जोड़ा। तृप्ति से मिथुन अर्थात जोड़ा बना, मैत्री हुई, मैत्री से प्रजा अर्थात् बहुजन सम्बन्ध स्थापित हुआ, बहुजन सहयोग से कर्म हुए, सत्कर्मों से तप के लिए साहस बढ़ा। तप से सत्य मार्ग मिला, सत्य मार्ग से ब्रह्म की प्राप्ति हुई, ब्रह्म प्राप्त करने वाला ब्राह्मण कहलाया, ब्राह्मण ने व्रत को अपनाया, आदर्शवादी आचरण की प्रतिज्ञा की। इस प्रकार जिसका जीवन आदर्शवादी आचरण की प्रतिज्ञा से ओत-प्रोत है, वह ब्राह्मण सुतीक्ष्ण, परिपूर्ण और अखण्डित होता है। उसकी तीक्ष्णता में, क्रियाशीलता में, पूर्णता में, कुछ कमी नहीं होती, उसे कोई खण्डित नहीं कर सकता।

जो इस प्रकार का ज्ञान रखता है, जो इस प्रकार गायत्री की व्याख्या करता है उसका जीवन और वंश अभिच्छिन्न रहता है।

गायत्री के प्रथम पाद का शब्दार्थ तो बहुत साधारण है। उसे समझने मात्र से उतना लाभ नहीं मिल सकता, जितना कि मिलना चाहिये। ब्रह्म ने श्री प्रतिष्ठा और ज्ञान रूपी तीनों रत्नों का जिसे अधिकारी बनाया है उसे गायत्री से घेर दिया है। इसका तात्पर्य यह है कि गायत्री की मर्यादा के भीतर जिन्होंने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया है—वे ही भौतिक और आत्मिक आनन्दों को प्राप्त करेंगे। जिनकी जठराग्नि तीव्र है उनके लिए

साधारण श्रेणी के पदार्थ भी रुचिकर और पुष्टिकर होते हैं और जिनकी जठराग्नि मन्द है, उनके लिए बढ़िया सोहन भोग भी रोग उत्पन्न करते हैं। गायत्री से आच्छादित ब्रह्मकर्मा मनुष्य की आत्मिक जठराग्नि ऐसी ही तीव्र होती है, वह थोड़ी मात्रा में प्राप्त हुए पदार्थों से भी रसास्वादन कर सकता है।

जो यह जानता है कि गायत्री के प्रथम पाद का वास्तविक उद्देश्य मानव जीवन को आदर्शवाद की प्रतिज्ञा से ओत-प्रोत बनाना है, वही उसका वास्तविक तात्पर्य जानता है। जो इस ज्ञान को व्यवहार में लाता है, अर्थात अपने को वैसा ही बनाता है, उसका जीवन अविच्छिन्न होता है—अर्थात जीवन पर पथ-भ्रष्ट नहीं होता और उसका वंश भी नष्ट नहीं होता। पीछे भी जन्म-जन्मान्तरों तक वह भावना नष्ट नहीं होती, इस अविच्छिन्नता के कारण उसे श्री, प्रतिष्ठा और ज्ञान का कभी भी अभाव नहीं होता।

भर्गो देवस्य धीमहि ति सावित्र्याः द्वितीयः पादः।

भर्गो देवस्य धीमहि—यह सावित्री का दूसरा पाद है।

अन्तरिक्षेण यजुः समुदधात् यजुषा वायुम् वायुना अभ्रम्। अभ्रे म वर्षम् वर्षणौषधि वनस्पतीन् औषधि वनस्पतिभिः पशून् पशुभि कर्मः कर्मणा तपः, तपस्या सत्यम्, सत्येन ब्रह्म, ब्रह्मणा ब्राह्मणम्, ब्राह्मणेन व्रतं व्रतेव वै ब्राह्मणः संशितो भवत्शून्यो भवत्यविच्छिन्नो भवति।

अन्तरिक्ष से यजु को युक्त करता है। यजुर्वेद से वायु को, वायु से मेघ को, मेघ से वर्षा को, वर्षा से औषधि वनस्पतियों को,

औषधि वनस्पतियों से पशुओं को, पशुओं से कर्म को, कर्म से तप को, तप से सत्य को, सत्य से ब्रह्म को, ब्रह्म से ब्राह्मण को, ब्राह्मण से व्रत को तथा व्रत से ब्राह्मण तीक्ष्ण, पूर्ण और अविच्छिन्न होता है।

अविच्छिन्नोऽस्यतन्तुरविच्छिन्नं जीवनं भवति एवं वेद यश्चैव विद्वानेवमेतं सावित्र्याः द्वितीय पादं व्याचष्टे ।

जो विद्वान् इस प्रकार जानकर सावित्री के द्वितीय पाद की व्याख्या करते हैं उनका वंश तथा जीवन अविच्छिन्न होता है।

पिछली काण्डिका में भूः से ऋक् को सम्बन्धित करके प्रथम पाद का रहस्य समझाया था। इस काण्डिका में गायत्री के दूसरे पाद का विवेचन करते हैं। भुवः से अंतरिक्ष से यजुः को सम्बद्ध किया है। यजुः कहते हैं यज्ञ को। यज्ञ कहते हैं परमार्थ को। पहली काण्डिका में ज्ञान द्वारा आदर्श जीवन की प्राप्ति का उपाय बतलाया था। यहाँ यज्ञ द्वारा व्रत मय जीवन होने की शृङ्खला का वर्णन करते हैं।

भुवः से अन्तरिक्ष में यजुः को संयुक्त किया, यजुः से वायु को, वायु से मेघ को, मेघ से वर्षा को, वर्षा से औषधि और वनस्पतियों को, वनस्पति से पशुओं को सम्बद्ध किया। गीता में भी यज्ञ विधान का ऐसा ही वर्णन है। यज्ञ से वायु शुद्ध, वायु के सम्पर्क से गुणदायक जल बरसता है। इससे वृक्ष, वनस्पति और पशु श्रेष्ठ तत्वों वाले होते हैं, उनका उपयोग करने से मनुष्य का मन श्रेष्ठ बनता है और श्रेष्ठ मन से श्रेष्ठ कर्म होते हैं।

कर्म से मन को, तप से सत्य को, सत्य से ब्रह्म को, ब्रह्म से ब्राह्मण को और ब्राह्मण व्रत से सम्बद्ध किया । अन्ततः वही क्रम आ गया। व्रत धारण करने से ब्राह्मण, सुतीक्ष्ण परिपूर्ण एवं अविच्छिन्न वंश वाला होता है।

जो ज्ञान से प्राप्त होता है वही प्रकारान्तर से यज्ञ द्वारा श्रेष्ठ कर्मों द्वारा भी प्राप्त हो सकता है। उच्च अन्तःकरण से निकली हुई सद्भावनाएँ समस्त आकाश को, वातावरण को सत्मय बना देती हैं और उस वातावरण में पलने वाले सभी पदार्थ सत् से परिपूर्ण होते हैं। जिस वातावरण के कारण मनुष्य ब्रह्म परायण व्रतवान् होकर अविच्छिन्न जीवन होजाता है, यह इस दूसरी कण्डिका का तात्पर्य है।

धियो योनः प्रचोदयादिति सावित्र्यास्तृतीयः पादः ।

धियो योनः प्रचोदयात्—यह सावित्री का तीसरा पद है।

दिवा साम समदधात् साम्नाऽऽदित्यम् आदित्येन रश्मीन् रश्मिभिर्वर्षम् वर्षेणौषधिवनस्पतीन् औषधि वनस्पतिभिः पशून्, पशुभिः कर्मः, कर्मणातपः तपसा सत्यम् सत्येन ब्रह्म ब्राह्मणा ब्राह्मणम् ब्राह्मणेन व्रतम् व्रतेन वै ब्राह्मणः संशितो भवत्यशून्यो भवत्यविच्छिन्नो भवति । अविच्छिन्नोऽस्य तन्तुरविच्छिन्नं जीवनं भवति य एवं वेद, यश्चैवं विद्वानेवमेतं सावित्र्यास्तृतीयं पादं व्याचष्टे ।

द्यु लोक से साम को युक्त करता है, साम से आदित्य को, आदित्य से रश्मियों को, रश्मियों से वर्षा को, वर्षा से औषधि वनस्पतियों को, औषधि वनस्पतियों से पशुओं को, पशुओं से कर्म

को, कर्म से तप को, तप से सत्य को, सत्य से ब्रह्म को, ब्रह्म से ब्राह्मण को, ब्राह्मण से व्रत को, व्रत से ब्राह्मण तीक्ष्ण, पूर्ण और अविच्छिन्न वंश वाला होता है। जो विद्वान यह जानकर सावित्री के तृतीय पाद की व्याख्या करते हैं वे अपने वंश एवं जीवन को अविच्छिन्न बनाते हैं।

गायत्री का तीसरा पद 'स्वः' से आविर्भूत हुआ है। 'स्वः' कहते हैं द्यु लोक को। द्यु लोक सामवेद से संयुक्त किया गया है। साम से आदित्य, आदित्य से रश्मियाँ, रश्मियों से वर्षा, वर्षा से औषधि वनस्पति, उनसे पशुओं का सम्बन्ध है। इनका प्रयोग करने से पूर्व कण्डिकाओं में वर्णित प्रकार से मनुष्य ब्रह्मचारी व्रतधारी बनकर अविच्छिन्न जीवन और वंशवाला बन जाता है।

गायत्री के तीन पादों में यह विज्ञान सन्निहित है जिसके द्वारा मनुष्य को श्री, प्रतिष्ठा और ज्ञान की उपलब्धि होती है। तीन पाद तीनों वेदों से बने हैं। प्रत्येक पाद तीन-तीन लोकों का प्रतीक है। इन तीनों लोकों से यह तीनों वेदों के मन्त्र आवश्यक सामिग्री को खींच कर लाते हैं और गायत्री साधक को सब प्रकार सुखी बना देते हैं। इससे व्यक्तिगत लाभ ही नहीं वरन् सामूहिक लाभ भी है। जैसे यज्ञ करने से वायु की शुद्धि, उत्तम वर्षा और उससे गुणकारी वनस्पति तथा दूध की उत्पत्ति होती है वैसे ही गायत्री द्वारा भी वह प्रकृया पूरी होती है।

यह सम्बद्ध शृङ्खलायें अपने में एक बड़ा भारी पदार्थ विज्ञान सम्बन्धी रहस्य छिपाये बैठी हैं। एक पदार्थ से दूसरे का सम्बन्ध किस प्रकार है इसकी थोड़ी सी विवेचना हमने आध्यात्मिक शैली से की है, परन्तु इसमें और भी विषद् रहस्य मौजूद है। भौतिक विज्ञान के अनुसार भी वह फलितार्थ उपस्थित होते हैं जिसके कारण गायत्री का साधक उन तीनों लाभों से श्री,

प्रतिष्ठा एवं ज्ञान से पर्याप्त मात्रा में लाभान्वित होता है और अन्त में ईश्वर की प्राप्ति करके अविच्छिन्न जीवन अर्थात अमर होजाता है। उसे जरा मृत्यु के जीवन बंधन में नहीं बँधना पड़ता। ऐसा है—इस त्रिपदा गायत्री का रहस्य।

तेन ह वा एवं विदुषा ब्राह्मणेन ब्रह्माभिपन्नं ग्रसितं परामृष्टम्।

सावित्री के तीन पाद जानने वाला ब्राह्मण, ब्रह्म प्राप्त, ग्रसित और परामृष्ट होता है।

प्राप्त–Approached
ग्रसित–Digested.
परामृष्ट–Realised.

ब्रह्मणा आकाशमभिपन्नं, ग्रसितं परामृष्टम आकाशेन वायुरभिपन्नो ग्रसितः परामृष्टः वायुना ज्योतिरभिपन्नो ग्रसितः परामृष्टः। ज्योतिषापोऽभिपन्नो ग्रसितः परामृष्टः। अद्भिर्भूमिरभिपन्ना ग्रसिता परामृष्टा। भूम्यान्नमभिपन्नं ग्रसितं परामृष्टम्।

अन्नेन प्राणोऽभिपन्नो ग्रसितः परामृष्टः। प्राणेन मनोऽभिपन्नं ग्रसितं परामृष्टम्। मनसा वागभिपन्ना ग्रसिता परामृष्टाः। वाचा वेदा अभिपन्ना ग्रसिताः परामृष्टाः। वेदैर्यज्ञोऽभिपन्नो ग्रसितः परामृष्टः। तानि ह वा एतानि द्वादश महाभूतान्येवं विदि प्रतिष्ठितानि। तेषां यज्ञ एव परार्ध्यः।

ब्रह्म से आकाश प्राप्त, ग्रसित एवं परामृष्ट है। आकाश से वायु प्राप्त,ग्रसित तथा परामृष्ट है। वायु से ज्योति अभिपन्न, ग्रसित और परामृष्ट है। ज्योति से जल प्राप्त, ग्रसित और परामृष्ट है। जल से पृथ्वी प्राप्त, ग्रसित और परामृष्ट है। भूमि से अन्न अभिपन्न,ग्रसित और परामृष्ट है। अन्न से प्राण अभिपन्न ग्रसित तथा परामृष्ट है। प्राण से मन अभिपन्न तथा परामृष्ट है। मन से वाक् अभिपन्न,ग्रसित तथा परामृष्ट है। वाक् से वेद अभिपन्न, ग्रसित एवं परामृष्ट हैं। वेदों से यज्ञ प्राप्त, ग्रसित एवं परामृष्ट है। इस प्रकार का ज्ञान रखने वालों में ये बारह महाभूत प्रतिष्ठित रहते हैं। इनमें यज्ञ ही सर्वश्रेष्ठ है।

पिछली तीन काण्डिकाओं में वर्णित गायत्री के तीन पादों के रहस्य को जो भली प्रकार जानता है, उस ब्राह्मण से ब्रह्म प्राप्त, ग्रसित और परामृष्ट होता है अर्थात् वह ब्राह्मण ब्रह्म को प्राप्त करता है, प्राप्त करके उसे अपने में पचाता है और उससे परामृष्ट--आच्छादित होता है। उसके भीतर बाहर सब ओर ब्रह्म की ही सत्ता काम करती है।

अब १२ ऐसी कड़ियाँ बताई जाती हैं, जिन पर विचार करने से यह प्रकट हो जाता है कि पंचभूत, अन्तकरण चतुष्टय, वेद और यज्ञ सबका मूल केवल ब्रह्म है। ब्रह्म से ही एक कड़ी के बाद दूसरी कड़ी की तरह यह सब जुड़े हुए हैं, उसी से ओत-प्रोत हैं।

बताया गया है कि ब्रह्म से आकाश, आकाश से वायु,वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से अन्न,अन्न से प्राण, प्राण से मन, मन से वाक्, वाक् से वेद और वेद से यज्ञ प्राप्त होता है,ग्रसित किया जाता है, आच्छादन होता है।

ब्रह्म प्रत्यक्ष रूप से आँखों से दिखाई नहीं पड़ता। स्वल्प ज्ञान वाले मनुष्य समझते हैं कि पंचभूतों का यह पुतला ही सब कुछ करता है। उन्हें यह बताया गया है कि पंचभूत और तुम्हारे अन्दर काम करने वाली मन बुद्धि आदि की चैतन्यता ब्रह्म से पृथक नहीं है वरन् उससे आच्छादित है। यदि ब्रह्म का आच्छादन इन पर न हो तो इनकी क्रियाशीलता समाप्त हो जाय और कोई तत्व कुछ भी काम करने में समर्थ न हो सके।

जो प्रकृति में, पंचभूतों में, शरीर में ब्रह्म को, परमात्मा को समाया हुआ देखता है, वह ब्राह्मण कहलाता है। वह वेद और यज्ञ से घिरा होता है अर्थात् सद्ज्ञान और सत्कर्म उसके कण-कण में व्याप्त होते हैं। इन सब ज्ञानों में यज्ञ ही, सत्कर्म ही सर्वोत्तम हैं, क्योंकि इस ज्ञान का तत्पर्य ही यह है कि मनुष्य सत्कर्म में लगे। जिसे यह सब रहस्य मालूम है, उसमें सब भूत प्रतिष्ठित रहते हैं अर्थात् समस्त सृष्टि-विस्तार को वह अपने भीतर ही समझता है।

त ह स्मैतमेव विद्वांसो मन्यन्ते विद्यैनमिति यथा-

तथ्यम विद्वांसः।

जो विद्वान् यह समझ लेते हैं कि हम इस यज्ञ के जानकर होगये हैं, वे इसे नहीं जानते।

अयं यज्ञो वेदेषु प्रतिष्ठितः। वेदा वाचि प्रतिष्ठिताः

वाङ् मनसि प्रतिष्ठिता। मनः प्राणे प्रतिष्ठितम्।

प्राणोऽन्ने प्रतिष्ठितः अन्नं भूमौ प्रतिष्ठितम्।

भूमिरप्सु प्रतिष्ठिता आपो ज्योतिषि प्रतिष्ठिताः

ज्योतिर्वायौ प्रतिष्ठितम्। वायुराकाशे प्रतिष्ठितः

आकाशं ब्रह्मणि प्रतिष्ठतम् । ब्रह्म ब्राह्मणे ब्रह्म विदि प्रतिष्ठितम् ।

यो ह वा एवं चित् स ब्रह्मवित्पुण्यां च कीर्तिं लभते सुरभींश्च गन्धान् । सोऽपहतपाप्मानन्तां श्रियमश्नुतेय एवं वेद, यश्चैवं विद्वानेवमेतां वेदानां मातारं सावित्री सम्पदमुपनिषदमुपास्त इति ब्राह्मणाम् ।

यह यज्ञ वेदों में प्रतिष्ठित है। वेद वाक् में प्रतिष्ठित है। वाक् मन में प्रतिष्ठित है। मन प्राण में प्रतिष्ठित है। प्राण अन्न में प्रतिष्ठित है। अन्न भूमि में प्रतिष्ठित है। भूमि जल पर प्रतिष्ठित है। जल तेज पर प्रतिष्ठित है। तेज वायु पर प्रतिष्ठित है। वायु आकाश पर प्रतिष्ठित है। आकाश ब्रह्म पर प्रतिष्ठित है। ब्रह्म ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण पर प्रतिष्ठित है। प्रकार जानने वाला ब्रह्मज्ञानी पुण्य एवं कीर्ति को प्राप्त करता है तथा सुरभित गन्धों को पाता है वह व्यक्ति पापहीन होकर अनन्त ऐश्वर्य को प्राप्त होता है।

पिछली कण्डिका में यज्ञ को सर्वोत्तम बताया है। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि जो यह कहते हैं कि हम यज्ञ को जानते हैं, वे नहीं जानते। कारण यह है कि दूसरे आदमी किसी कार्य के वाह्य रूप को देखकर ही उसके भले बुरे होने का अनुमान लगाते हैं परन्तु यथार्थ में काम के बाहरी रूप से यज्ञ का कोई सम्बन्ध नहीं, वह तो आन्तरिक भावनाओं पर निर्भर होता है। यह हो सकता है कि कोई व्यक्ति बड़े-बड़े दान-पुण्य, होम, अग्निहोत्र, ब्रह्म-भोज, तीर्थ-यात्रा आदि करता हो, पर इसमें उसका

उद्देश्य यश लूटना या कोई और लाभ उठाना हो। इसी प्रकार डाक्टर के आपरेशन करने के समान ऐसे कार्य भी हो सकते हैं, जो देखने में पाप प्रतीत होते हैं, परन्तु कर्त्ता की सद्भावना के कारण वे श्रेष्ठ कर्म हों। इसलिए कौन आदमी यज्ञ कर रहा है या नहीं, इसका निर्णय उन व्यक्तियों की अन्तरात्मा ही कर सकती है। बाहर के आदमी के लिए बहुत अंशों से उसका जानना संभव होने पर भी पूर्ण रूप से शक्य नहीं है।

पिछली कण्डिका में जिन बारह कड़ियों को एक ओर से गिनाया था, इस कण्डिका में उन्हें दूसरी ओर से गिनाया गया है अर्थात् क्रम उलटा कर दिया है—

यज्ञ वेदों में, वेद वाक् में, वाक् मन में, मन प्राण में, प्राण अन्न में, अन्न भूमि में, भूमि जल में, जल तेज में, तेज वायु में, वायु आकाश में, आकाश ब्रह्म में और ब्रह्म ब्राह्मण में प्रतिष्ठित है। इस प्रकार इस शृङ्खला का एक सिरा ब्राह्मण है, तो दूसरा यज्ञ। एक सिरा यज्ञ है, तो दूसरा ब्राह्मण। ब्राह्मण वही है, जो सद्ज्ञान और सत्कर्म से ओत-प्रोत है। दूसरी तरह से इसी को यों कह लीजिये कि जो सद्ज्ञान और सत्कर्म से ओत-प्रोत है, वही ब्राह्मण है।

जो इस प्रकार जानता है, जो ब्रह्मज्ञानी है, वह सुगन्ध की तरह उड़ने वाली पुण्यमयी कीर्ति को प्राप्त करता है। वह निष्पाप हो जाने से अनन्य ऐश्वर्यों को भोगता है। वह ज्ञान का उपासक बनकर इस वेदमाता गायत्री की उपनिषद् का उपासक बनता है अर्थात् इस उपनिषद् में वर्णित महान् ब्रह्मज्ञान को अपने अन्तःकरण में धारण करके उससे अपना जीवन ओत-प्रोत बनाता है। ऐसा व्यक्ति ही ब्राह्मण है, ऐसा शास्त्रों का अभिवचन है।

गायत्री तपोभूमि—एक महान् धर्म संस्थान

गायत्री तपोभूमि, मथुरा शहर से १ मील आगे—वृन्दावन रोड पर परम शांतिमय वातावरण में बना हुआ एक सुन्दर आश्रम है, जहाँ गायत्री माता का भव्य मन्दिर, भारतवर्ष के लगभग २४०० तीर्थों के जल-रज का एक तीर्थ सम्मेलन-गृह, १२५ करोड़ हस्तलिखित गायत्री-मन्त्रों का संग्रह-कक्ष, निवास के लिए २३ कमरे, एक प्रवचन हाल, तीन बड़ी यज्ञशालाऐं, प्रधान यज्ञशाला में कभी न बुझने दी जाने वाली अखण्ड-अग्नि की स्थापना, नित्य गायत्री-मन्त्र की एक हजार आहुतियों का हवन, तुलसी का उपवन, हजारों धार्मिक पुस्तकों का विशाल पुस्तकालय, लगभग ६० पत्र-पत्रिकाऐं आने वाला वाचनालय, बिना मूल्य चिकित्सा के लिए कल्प चिकित्सालय यह सब देखकर कोई भी दर्शक संस्था की गति-विधियों का सहज ही अनुमान लगा सकता है। गायत्री तपोभूमि में सदा अनेक धार्मिक भावना वाले व्यक्ति शिक्षा, तीर्थ-यात्रा, साधना, तपश्चर्या एवं विभिन्न कठिनाइयों के सम्बन्ध में आचार्य जी से परामर्श करने आते हैं। आगन्तुकों को तपोभूमि में निवास, भोजन आदि की समुचित सुविधा प्राप्त होती है।

गायत्री तपोभूमि द्वारा देश भर में गायत्री महायज्ञों एवं सांस्कृतिक सम्मेलनों की सुविस्तृत शृंखला चल रही है। सन् '५६ और '५७ में १००० बड़े गायत्री महायज्ञ तथा सांस्कृतिक सम्मेलन करने का निश्चय किया था। सो उस संकल्प से भारतवर्ष के कोने-कोने से हजारों यज्ञ हुए जिनमें से १०१ कुण्डों वाले, २५ कुण्डों वाले, ६ कुण्डों वाले विशाल यज्ञों की संख्या १००० थी। इनमें से कुछ यज्ञों में तो ५० हजार तक जनता एकत्रित हुई। ये यज्ञ अ० भा० गायत्री-परिवार की देश में फैली हुई १२०० शाखाओं द्वारा सम्पन्न हुये थे। इन यज्ञों और सम्मेलनों का उद्देश्य जनता में धर्म, सदाचार, नैतिकता,

तन्त्रयोग आदि ८४ प्रकार के योगों का आविर्भाव हुआ है। कोई भी साधना ऐसी नहीं है जिसका आधार गायत्री न हो। छोटा कीड़ा जो पत्ते पर बैठा है वह भले ही न जानता हो कि जड़ से भी उसका कोई सम्बन्ध है, यह अपना घर पत्ते को ही मानता है पर जानकार लोग समझते हैं कि कीड़ा वृक्ष पर ही बैठा है। कीड़े वाला पत्ता भी उस विशाल वृक्ष का एक अंश मात्र है।

इतिहास पुराणों से पता चलता है कि तप का आरम्भ गायत्री से ही हुआ है। विष्णु की नाभि से जो कमल-नालिका निकली वह गायत्री ही थी। सृष्टि निर्माण से पूर्व ब्रह्माजी को आकाशवाणी द्वारा गायत्री का ज्ञान मिला। उन्होंने एक हजार वर्ष तक गायत्री का तप करके सृष्टि-निर्माण की शक्ति पाई। शङ्करजी की योगमाया गायत्री ही है। वे इसी महा समाधि में लीन रहते हैं। इस महाशक्ति का जब तीन गुणों में पदार्पण होता है तो उस पदार्पण से सतोगुणी सरस्वती, रजोगुणी लक्ष्मी और तमोगुणी काली का अवतरण होता है। सविता सूर्य की आत्मा गायत्री ही कही गई है। इसी प्रकार अन्यान्य देव शक्तियों को भी इसी महाशक्ति-सागर की तरंगें कहा गया है।

प्राचीन युगों में प्रायः सभी ऋषियों ने इसी महामन्त्र के आधार पर अपनी योग-साधनाऐं एवं तपस्याऐं की हैं। सप्त ऋषियों को प्रधानता गायत्री द्वारा ही मिली। बृहस्पति इसी शक्ति की दक्षिण मार्गी साधना करके देवगुरु बने, शुक्राचार्य ने इस महामन्त्र का वाम मार्गी भाग अपनाया और वे असुरों के गुरु हुए। साधारण ऋषि, मुनि उन्नति करते हुए महर्षि, ब्रह्मर्षि एवं देवर्षि का पद प्राप्त करते थे तो इस उत्कर्ष का मूल आधार गायत्री ही रहती थी।

वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य, अत्रि, विश्वामित्र, पाराशर, भारद्वाज, गौतम, व्यास, शुकदेव, नारद, दधीचि, वाल्मीकि, च्यवन, शङ्ख, लोमस, तैत्तिरेय, जावालि, श्रृङ्गी, उद्दालक, वैशम्पायन, दुर्वासा, परशुराम, पुलस्त्य, दत्तात्रेय, अगस्त, सनत्कुमार, कण्व, शौनक आदि ऋषियों के जीवन-वृत्तान्त जिन्होंने पढ़े हैं वे जानते हैं कि उनकी महानता, शक्तियाँ एवं सिद्धियाँ जिस आधार-शिला पर अवस्थित थीं—वह गायत्री है। इन ऋषियों ने अपने ग्रन्थों में गायत्री की मुक्त कण्ठ से एक स्वर से महिमा गाई है और बताया है कि आत्मा को परमात्मा बनाने वाली, नरक से स्वर्ग पहुँचाने वाली, तुच्छ को महान् बनाने वाली शक्ति गायत्री ही है

प्राचीन काल की भाँति अब भी वही मार्ग है। यद्यपि यवनराज्य के पिछले अज्ञानान्धकार युग में अगणित सम्प्रदाय, मत-मतान्तर उपज पड़े और उनमें अपनी-अपनी सूझ-बूझ के अनुसार नाना प्रकार के साधना-पन्थ बना लिए फिर भी ऐसी साधना जो पूर्ण सिद्धावस्था तक साधक को पहुँचा सके गायत्री के अतिरिक्त और कोई सिद्ध न हो सकी। जिनने भी पूर्णता एवं परम सिद्धावस्था पाई है, उनने गायत्री माता का आश्रय अवश्य लिया है। मध्यकाल में महाभारत से लेकर अब तक के सभी सिद्ध पुरुष प्रायः इसी राजमार्ग से चले हैं। उनका मत, ग्रन्थ तथा विशेष साधन चाहे पृथक भले ही हैं पर मूल आश्रय को किसी ने नहीं छोड़ा है।

वर्तमान काल में भी जिनने आत्मिक दृष्टि से कुछ विकास किया है, उन्हें वेदमाता का पयपान करने का सौभाग्य अवश्य मिला। योगी ही नहीं पिछले दिनों के हमारे सार्वजनिक नेता और युग-पुरुष भी इस महामन्त्र की शक्ति को पहचानते रहे हैं। लोकमान्य तिलक कहा करते थे कि—"जिस

बहुमुखी दासता के बन्धनों में भारतीय प्रजा जकड़ी हुई है उनका अन्त राजनैतिक संघर्ष मात्र से न हो जायगा। उसके लिए आत्मा के अन्दर प्रकाश उत्पन्न होना चाहिए। जिससे सत् और असत् का विवेक हो, कुमार्ग को छोड़कर श्रेष्ठ मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिले। गायत्री मन्त्र में यही भावना विद्यमान है। महात्मा गान्धी का कथन है–"गायत्री मन्त्र का निरन्तर जप रोगियों को अच्छा करने और आत्माओं की उन्नति के लिए उपयोगी है। गायत्री का स्थिर चित्त और शान्त हृदय से किया हुआ जप आपत्ति काल के संकटों को दूर करने का प्रभाव रखता है।

महामना मदनमोहन मालवीय, कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ टैगोर, योगी अरविन्द, महर्षि रमण, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी दयानन्द सरस्वती आदि युग-पुरुषों ने भी अपने-अपने ढङ्ग से गायत्री का प्रतिपादन किया है।

आत्मा अनन्त शक्तियों और सिद्धियों का भण्डार है। वह ईश्वर का पुत्र और सत्‌चित आनन्द स्वरूप है। अपने पिता के इस पुण्य उद्यान संसार में क्रीड़ा-कल्लोल का आनन्द लेने आता है पर माया के बन्धनों में फँस कर वह अपने स्वरूप को, अपने लक्ष को, अपने कार्य-क्रम को भूल जाता है और विपन्न स्थिति में पड़ जाता है। इसी भूल का नाम माया बन्धन है। यह माया बन्धन जैसे-जैसे ढीले पड़ते जाते हैं वैसे ही वैसे वह अपने परम मंगलमय मूल रूप में अवस्थित होता चलता है। आत्मा स्वच्छ दर्पण के समान है पर माया मोह का मैल जम जाने के कारण उस पर धुँधलापन छा जाता है। आत्मा जलते हुए अँगार के समान है उस पर जब राख का पर्त चढ़ जाता है तो बुझी हुई सी दिखाई पड़ती है। यदि अङ्गार पर से राख के

पर्त को हटा दिया जाय तो वह फिर प्रकाशवान् एवं उष्णता युक्त दीखने लगता है। दर्पण पर लगे हुए मैल को यदि माँज धो कर साफ कर दिया जाय तो पुनः उज्वल हो जाता है। अज्ञानान्धकार में यदि ज्ञान का प्रकाश जल उठे तो अँधेरे में जो छिपा पड़ा था वह सब कुछ दीखने लगता है। यह सब काम गायत्री करती है। वह आत्मा पर चढ़े हुये सम्पूर्ण मलों, विक्षेपों, कषायों, कल्मषों एवं जन्म-जन्मान्तरों के चढ़े हुए कुसंस्कारों को धोकर उसे स्वच्छ एवं प्रकाशवान बनाती है। माया के बन्धनों को काटने में वह तेज छुरी सिद्ध होती है। इन बाधाओं से छूटकर आत्मा जब अपनी मूलभूत निर्मल स्थिति को पहुँच जाता है तो उसके सब त्रास दूर हो जाते हैं। आत्मा का परम निर्मल हो जाना ही परमात्मा की प्राप्ति है। इसे ही जीवनमुक्ति, ब्रह्मनिर्वाण परमपद, आत्म-साक्षात्कार एवं प्रभु-प्राप्ति कहते हैं। यह प्राप्त होना कठिन माना जाता है पर गायत्री माता इस महान् कठिन कार्य को भी सरल बना देती है।

गायत्री साधक की दिन-दिन आत्मिक उन्नति होती है। वह जैसे-जैसे ऊँचा उठता है वैसे ही वैसे उसे अपने पिंड (देह) में छिपी हुई ब्रह्मांड गत ईश्वरीय महान शक्तियों का भान होने लगता है। हमारा जो यह स्थूल शरीर दिखाई पड़ता है—इसे 'अन्नमय कोष' कहते हैं। इसी प्रकार के सूक्ष्म अदृश्य देह इसी के भीतर चार और हैं। मरने पर यह अन्नमय कोष मर जाता है पर चार शरीर—प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष, आनन्दमय कोष—जीवित रहते हैं। इनमें वासनाएँ, इच्छाएँ, भावनाएँ, आदतें भरी रहती हैं और जन्म-जन्मान्तरों के चले हुए संस्कार जमा रहते हैं। जैसे यह स्थूल देह जब तक जीवित है तब तक मृत्यु हो गई ऐसा नहीं कहा जा सकता, इसी प्रकार जब तक यह भीतर वाले चार देह—चार कोष—जीवित हैं

तब तक मुक्ति भी नहीं कही जा सकती। इन पाँचों कोषों के आवरण एवं आच्छादन से छुटकारा पाने के लिए गायत्री की पञ्चमुखी साधना की जाती है। इसीलिए चित्रों में कहीं-कहीं गायत्री को पाँच मुख वाली भी दिखाया जाता है। वह दशों दिशाओं में व्याप्त है, दशों इन्द्रियों की स्वामिनी है, दश महा-शक्तियों की अधीश्वरी है, इसलिए इसे दश भुजी भी चित्रित किया जाता है। गायत्री का पञ्चमुखी और दशभुजी रूप इस बात का संकेत है कि इस महाशक्ति की सहायता से हम अपने पाँचों शरीरों को समाप्त कर सकते हैं, पाँचों बन्धनों से छूट सकते हैं, दशों इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं, दशों दिशाओं में अपना विस्तार कर सकते हैं और दश महाशक्तिओं के स्वामी बन सकते हैं। गायत्री माता की कृपा से हम क्या नहीं कर सकते? जो कुछ इस लोक में तथा परलोक में हैं वह सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं।

गायत्री महाविज्ञान के तृतीय खण्ड में अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, आनन्दमय कोष, विज्ञानमय कोश को पार करने की गायत्री साधनाऐं विस्तारपूर्वक लिखी जा चुकी हैं। उस विधान के अनुसार साधना करने से एक-एक कोश खुलता जाता है। कोश का अर्थ देह भी है और खजाना भी। जहाँ पाँचों देहों एवं बन्धनों का परिमार्जन होता है, वहाँ इन कोशों में जो अलौकिक दिव्य शक्तियां के खजाने भरे पड़े हैं वे भी सामने आते हैं। यह कोश ही ऋद्धि-सिद्धियों के भण्डार हैं। जिनके हाथ में यह खजाने होते हैं उन्हें इस संसार में और कुछ प्राप्त करना नहीं रह जाता।

अन्नमय कोश की साधना में उपवास, आसन, तत्वशुद्धि और तपश्चर्या मुख्य हैं। जब इस कोश की साधना चलती है तो इन्धिका, दीपिका, मोचिका, आप्यायिनी, पूषा, चन्द्रिका,

धूम्रार्चि, अमाया, असिता आदि ६६ उपत्यकाओं की शुद्धि होती है, जिससे नाना प्रकार के मल दूर होते हैं। शरीर की छहों अग्नियाँ ऊष्मा, बहवृच, ह्रादि, रोहिता, आप्ता और व्यासि जागृति होती हैं। उत्तरायण-दक्षिणायन की गोलार्ध स्थिति का, चन्द्रमा की घटती-बढती कलाओं का, नक्षत्रों से भूमि पर आने वाले प्रभाव का, सूर्य की अंश किरणों का, शरीर लाभ उठाने लगता है। पाँचों प्रकार के उपवास, पाचक, शोधक, शामक, आतक, पावक—अपना-अपना प्रभाव दिखाने लगते हैं। सर्वाङ्गासन, सिद्धासन, हस्तपादासन, उत्कटासन, सर्पासन, मयूरासन, धनुरासन, पद्मासन आदि आसनों पर अधिकार हो जाता है। तत्व-शुद्धि से शरीर में मिट्टी, पानी, वायु, अग्नि, आकाश की मात्रा व्यवस्थित हो जाती है। पञ्च तत्वों पर अधिकार हो जाता है और चारों वाणियाँ वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ति, परा—अपना-अपना कार्य प्रभावशाली ढङ्ग से करने लगती हैं। तप के मार्ग में सरलता होती है। आस्वाद, तितीक्षा, कर्षण, कल्प, प्रदातव्य, निष्कासन, ब्रह्मचर्य, अर्जन आदि में कोई कठिनाई नहीं रहती। नेति, धोति, वस्ति, न्योली, बजोली, कपालभाति आदि हठ योग के षटकर्मों की आवश्यकता, अन्नमय कोश की गायत्री साधनों से आसानी के साथ पूर्ण हो जाती है। अन्नमय शरीर में जो आश्चर्यजनक शक्तियाँ और सिद्धियाँ भरी पड़ी हैं उनका विकास एवं जागरण इस प्रथम कोश की साधना से होता है।

प्राणमय कोश का गायत्री द्वारा जब परिमार्जन किया जाता है तो प्राणशक्ति की अजस्र धारा उसमें से फूट निकलती है। प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान यह पाँच प्राण और नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय यह पाँच उपप्राण ऐसे विद्युत प्रवाह हैं जिनका सम्बन्ध प्रकृति की सूक्ष्म शक्तियों से है। इनसे

दर्शों द्वारा प्रकृतिगत प्राण-तत्व में से मनुष्य बहुत कुछ अपने लिए खींच सकता है। मूलबन्ध, जालन्धर बन्ध और उड्डियान बन्ध से श्वाँस और नाड़ी तन्तुओं पर अधिकार प्राप्त होता है। महामुद्रा, खेचरी मुद्रा, विपरीत करणी मुद्रा, शांभवी मुद्रा, अगोचरी मुद्रा, भ्रूचरी मुद्रा मन को वश में करने और चित्त को स्थिर करने में अचूक हैं। लोम विलोम प्राणायाम, उज्जायी प्राणायाम, शीत्कारी प्राणायाम, शीतली प्राणायाम, भस्त्रिका प्राणायाम, मूर्च्छा प्राणायाम, भ्रामरी प्राणायाम तथा प्लावनी णायाम—यह अपने-अपने क्षेत्र में बड़े ही महत्वपूर्ण हैं। इनसे मृत्यु तक पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

गायत्री द्वारा मनोमय कोष का वेधन अनेक विशेषताएँ उत्पन्न करता है। मैस्मेरेजम, हिप्नोट्रिज्म, मेन्टल थ्रेपी, आकल्ट साइन्स आदि विद्याओं पर योरोपीय योगी बड़ा अभिमान करते हैं। यह मनोमय कोश के छोटे-छोटे खेल हैं। ध्यान योग की पाँच श्रेणियाँ—स्थिति, संस्थिति, विगति, प्रगति, संस्थिति इष्ट देव का साक्षात्कार कराने में समर्थ होती हैं। त्राटक से पत्थर को तोड़ देने वाली वेधक दृष्टि पैदा होती है। शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श, पंच तत्वों को इन पाँच तन्मात्राओं पर अधिकार होने से जो कुछ सूक्ष्म जगत में अदृश्य है वह सब दृश्यमान हो जाता है।

विज्ञानमय कोष को गायत्री द्वारा जब पार किया जाता है तो आत्मा के दिव्य प्रकाश का स्पष्ट अनुभव होने लगता है। गायत्री के अजपा जाप का 'सोऽहम्' मन्त्र अपने आप सिद्ध होता है। आत्मचिंतन, आत्म अनुभव, आत्म-दर्शन, आत्म-विकास एवं आत्म-प्राप्ति के द्वार इसी कोष में खुलते हैं। स्वर योग की इड़ा पिंगला, सुषुम्ना, गांधरी, हस्त, जिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलंबुषा, कुहू, शंखनी यह छहों नाड़ियाँ क्रियाशील

हो जाती हैं और साधक की पहुँच लोक-लोकान्तरों तक हो जाती है। रुद्रग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि तथा ब्रह्म ग्रन्थि खुलने से सत, रज, तम तीनों गुणों पर अधिकार प्राप्त हो जाता है।

आनन्दमय कोष की साधना अन्तिम है। इसी में २७ प्रकार की समाधियाँ लगती हैं। शब्द ब्रह्म का साक्षात्कार होता है, अनहद ध्वनि से देवी सन्देश सुनाई पड़ते हैं, बिन्दु साधना से ऋण और धन विद्युत कणों की गति-विधि पर नियन्त्रण करने की सामर्थ पैदा होती है। आप्ति और व्याप्ति कला के अभ्यास से ओजस् और रेतस् तत्वों पर अधिकार हो जाता है। तुरीयावस्था में जो सत् चित्त आनन्द का अनुभव होता है उसके बारे में तैत्तिरेयोपनिषद् में कहा गया है कि—"यदि कोई मनुष्य पूर्ण स्वस्थ, सुशिक्षित, गुणवान, सामर्थ्यवान् सौभाग्य-वान एवं समस्त संसार की धन सम्पत्ति का स्वामी हो तो उसे जो आनन्द हो सकता है उसे एक मानुषी आनन्द कहेंगे। ऐसे करोड़ों गुने आनन्द को तुरीयावस्था का ब्रह्मानन्द कहते हैं। इस सुख का आस्वादन करके मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है।"

इन पाँचों कोशों को पार करना और पार करने की इस यात्रा के समय में प्राप्त होने वाले सुखों एवं चमत्कारों का प्रत्यक्ष करना गायत्री साधना द्वारा ही होता है। अन्य अभ्यासों से साधना में बहुत समय तथा श्रम लगाना पड़ता है फिर भी पूर्ण सफलता नहीं मिलती। योगीजनों का कष्टसाध्य लम्बा मार्ग गायत्री द्वारा बहुत सरल हो जाता है और घर में रहते हुये गृहस्थ व्यक्ति-वनवासी तपस्वियों जैसी सफलता प्राप्त कर लेता है। पाँचों बन्धनों से छुटकारा पाकर परम लक्ष को प्राप्त करना जितना इस मार्ग से सरल है उतना और किसी मार्ग से सम्भव नहीं है।

गायत्री से सिद्धियाँ

माता से वार्तालाप करने की साधना

साधना की दिव्य ज्योति जैसे-जैसे अधिक प्रकाशित होती चलती है, वैसे ही वैसे अन्तरात्मा की आत्मशक्ति बढ़ती चलती है। रेडियो यन्त्र के भीतर बल्व लगे होते हैं, बिजली का सञ्चार होने से वे जलने लगते हैं। प्रकाश होते ही यन्त्र की ध्वनि पकड़ने वाला भाग जागृत हो जाता है और ईथर तत्व में भ्रमण करती हुई सूक्ष्म शब्द-तरङ्गों को पकड़ने लगता है, इसी क्रिया को 'रेडियो बजना' कहते हैं। साधना एक बिजली है, जिससे मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार के बल्व दिव्य ज्योति से जगमगाने लगते हैं। इस प्रकाश का सीधा प्रभाव अन्तरात्मा पर पड़ता है, जिससे उसकी सूक्ष्म चेतना जागृत हो जाती है और दिव्य सन्देशों को, ईश्वरीय आदेशों को, प्रकृति के गुप्त रहस्यों को समझने की योग्यता उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार साधक का अन्तःकरण रेडियो का उदाहरण बन जाता है और उसके द्वारा सूक्ष्म जगत की बड़ी-बड़ी रहस्यमय बातों का प्रकटीकरण होने लगता है।

दर्पण जितना ही स्वच्छ निर्मल होगा; उतनी ही उसमें प्रतिच्छाया स्पष्ट दिखाई देगी। मैला दर्पण धुँधला होता है, उसमें चेहरा साफ दिखाई नहीं पड़ता। साधना से अन्तरात्मा निर्मल हो जाती है और उसमें दैवी तत्वों का ईश्वरीय संकेतों का अनुभव स्पष्ट रूप से होता है। अँधेरे में क्या हो रहा है; यह जानना कठिन है, पर दीपक जला देने पर क्षण भर पहले के अन्धकार में छिपी हुई सारी बातें प्रकट हो जाती हैं और पहले का रहस्य भली प्रकार प्रत्यक्ष हो जाता है।

गायत्री-साधकों की मनोभूमि साफ हो जाती है, उसमें

अनेक गुप्त बातों के रहस्य अपने आप स्पष्ट होने लगते हैं। इसी तथ्य को गायत्री-दर्शन या वार्तालाप भी कह सकते हैं। साधना की परिपक्वावस्था में तो स्वप्न में या जागृत अवस्था में भगवती के दर्शन करने का दिव्य चक्षुओं को लाभ मिलता है और उसके सन्देश सुनने का दिव्य कानों को सौभाग्य प्राप्त होता है। किसी को प्रकाशमयी ज्योति के रूप में, किसी को अलौकिक दैवी रूप में, किसी को सम्बन्धित किसी स्नेहमयी नारी के रूप में दर्शन होते हैं। कोई उसके सन्देश प्रत्यक्ष वार्तालाप जैसे प्राप्त करते हैं, किसी को किसी बहाने घुमा-फिराकर बात सुनाई या समझाई गई प्रतीत होती है। किन्हीं को आकाशवाणी की तरह स्पष्ट शब्दों में आदेश होता है। यह साधकों की विशेष मनोभूमि पर निर्भर है। हर एक को इस प्रकार के अनुभव नहीं हो सकते।

परन्तु एक प्रकार हर एक साधक माता के समीप पहुँच सकता है और उससे अपनी आत्मिक स्थिति के अनुरूप स्पष्ट या अस्पष्ट उत्तर प्राप्त कर सकता है। वह तरीका यह है कि एकान्त स्थान में शान्त चित्त होकर आराम से शरीर को ढीला करके बैठें, चित्त को चिन्ता से रहित रखें, शरीर और वस्त्र शुद्ध हों। नेत्र बन्द करके प्रकाश ज्योति या हंसवाहिनी के रूप में हृदय-स्थान पर गायत्री-शक्ति का ध्यान करें और मन ही मन अपने प्रश्न को भगवती के सम्मुख बार-बार दुहरावें। यह ध्यान दस मिनट करने के उपरान्त तीन लम्बे श्वास इस प्रकार खींचें मानो अखिल वायु-मण्डल में व्याप्त महाशक्ति साँस द्वारा प्रवेश करके अन्तकरण के कण-कण में व्याप्त हो गई है। अब ध्यान बन्द कर दीजिए, मन को सब प्रकार के विचारों से बिलकुल शून्य कर दीजिए। अपनी ओर से कोई भी विचार न उठावें। मन और हृदय सर्वथा विचार-शून्य हो जाना चाहिए।

इस शून्यावस्था में स्तब्धता को भङ्ग करती हुई अन्तःकरण में स्फुरणा होती है, जिसमें अनायास ही कोई अचिन्त्य भाव उपज पड़ता है। यकायक कोई विचार अन्तरात्मा में इस प्रकार उद्भूत होता है मानो किसी अज्ञात शक्ति ने यह उत्तर सुझाया हो। पवित्र हृदय जब उपरोक्त साधना द्वारा और भी अधिक दिव्य पवित्रता से परिपूर्ण हो जाता है तो सूक्ष्म दैवी शक्ति जो व्यष्टि अन्तरात्मा और समष्टि परमात्मा में समान रूप से व्याप्त है, उस पवित्र हृदय-पटल पर अपना कार्य करना आरम्भ कर देती है और कई ऐसे प्रश्नों, सन्देहों और शङ्काओं का उत्तर मिल जाता है, जो पहले बहुत विवादास्पद, सन्देहयुक्त एवं रहस्यमय बने हुये थे। इस प्रक्रिया से भगवती वेदमाता गायत्री साधक से वार्तालाप करती है और उसकी अनेकों जिज्ञासाओं का समाधान करती है। यह क्रम व्यवस्थापूर्वक यदि आगे बढ़ता रहे तो आगे चलकर उस शरीर रहित दिव्य माता से उसी प्रकार वार्तालाप करना सम्भव हो सकता है, जैसा कि जन्म देने वाली नर-तन-धारी माता से बातें करना सम्भव और सुगम होता है।

माता से वार्तालाप का विषय अपनी निम्न कोटि की आवश्यकताओं के सम्बन्ध में न होना चाहिए। विशेषतः आर्थिक प्रश्नों को माध्यम न बनाना चाहिये, क्योंकि ऐसे प्रश्नों के साथ-साथ मन में लोभ, स्वार्थ, सांसारिकता आदि के अन्य अनेक मलीन भाव उठ आते हैं और अन्तःकरण की उस पवित्रता को नष्ट कर देते हैं, जो कि माता से वार्तालाप करने के सम्बन्ध में आवश्यक है। चोरी में गई वस्तु, जमीन में गढ़ा धन, तेजी-मन्दी, सट्टा, लाटरी, हार-जीत, आयु, सन्तान, स्त्री, मुकद्दमा, नौकरी, लाभ, हानि जैसे प्रश्नों को माध्यम बनाकर जो लोग उस दैवी

शक्ति से वार्तालाप करना चाहते हैं, वे माता की दृष्टि में इस योग्य ऐसे अधिकारी नहीं समझे जाते, जिनके साथ उसे वार्तालाप करना चाहिये। ऐसे अनाधिकारी लोगों के प्रयत्न प्रायः असफल रहते हैं। उनकी मनोभूमि में प्रायः कोई दैवी सन्देश आते ही नहीं, यदि आते हैं तो वे माता के शब्द न होकर अन्य स्रोतों से उद्भूत हुए होते हैं। फलस्वरूप उनकी सत्यता और विश्वस्तता सन्दिग्ध होती है।

माता से वार्तालाप आध्यात्मिक, धार्मिक, आत्म-कल्याणकारी, जनहितकारी, परमार्थिक, लोकहित के प्रश्नों को लेकर करना चाहिये। कर्तव्य और अकर्तव्य की गुत्थियों को विवादास्पद विचारों, विश्वासों और मान्यताओं को लेकर यह वार्तालाप आरम्भ होना चाहिये।

इस प्रकार के वार्तालाप में अपने तथा दूसरे मनुष्यों के पूर्व जन्मों, पूर्व सम्बन्धों के बारे में भी कई महत्त्वपूर्ण बातें प्रकाश में आती हैं। जीवन-निर्माण के सुझाव मिलते हैं तथा ऐसे संकेत मिलते हैं, जिनके अनुसार कार्य करने पर इसी जीवन में आशाजनक सफलताएँ प्राप्त होती हैं। सद्गुणों का, सात्विकता का, मनोबल का, दूरदर्शिता का, बुद्धिमत्ता का तथा आन्तरिक शान्ति का उद्भव तो अवश्य होता है। इस प्रकार माता का वार्तालाप साधक के लिए सब प्रकार कल्याणकारक ही सिद्ध होता है।

साधकों के स्वप्न निरर्थक नहीं होते

साधना से एक विशेष दिशा में मनोभूमि का निर्माण होता है। श्रद्धा, विश्वास तथा साधना-विधि की कार्यप्रणाली के अनुसार आन्तरिक क्रियायें उसी दशा में प्रवाहित होने लगती हैं, जिससे मन, बुद्धि और चित्त अहङ्कार का चतुष्टय वैसा ही रूप धारण करने लगता है। भावनाओं के संस्कार अन्तर्मन में गहराई तक प्रवेश कर जाते हैं। गायत्री-साधक की मानसिक गति-विधि में आध्यात्मिक एवं सात्विकता का प्रमुख स्थान बन जाता है। इसलिए जागृत अवस्था की भाँति स्वप्नावस्था में भी उसकी क्रियाशील सारगर्भित ही होती है, उसे प्रायः सार्थक ही स्वप्न आते हैं।

गायत्री-साधकों को साधारण व्यक्तियों की तरह निरर्थक स्वप्न प्रायः बहुत कम आते हैं। उनकी मनोभूमि ऐसी अव्यवस्थित नहीं होती, जिसमें चाहे जिस प्रकार के उलटे-सीधे स्वप्नों का उद्भव होता हो। जहाँ व्यवस्था स्थापित हो चुकी है, वहाँ की क्रियाऐं भी व्यवस्थित होती हैं। गायत्री-साधकों के स्वप्न को हम बहुत समय से ध्यानपूर्वक सुनते रहे हैं और उनके मूल कारणों पर विचार करते रहे हैं। तदनुसार हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ा है कि लोगों के स्वप्न निरर्थक बहुत कम होते हैं, उनमें सार्थकता की मात्रा ही अधिक रहती है।

निरर्थक स्वप्न अत्यन्त अपूर्ण होते हैं। उनमें केवल किसी बात की छोटी-सी झाँकी होती है, फिर तुरन्त उनका तारतम्य बिगड़ जाता है। दैनिक व्यवहार की साधारण क्रियाओं की सामान्य स्मृति मस्तिष्क में पुनः-पुनः जागृत होती रहती है और

भोजन, स्नान, वायु-सेवन जैसी साधारण बातों की दैनिक स्मृति के अस्त-व्यस्त स्वप्न दिखाई देते हैं, ऐसे स्वप्नों को निरर्थक कहा जा सकता है। सार्थक स्वप्न कुछ विशेषता लिए हुए होते हैं। उनमें कोई विचित्रता, नवीनता, घटनाक्रम एवं प्रभावोत्पादकता होती है। उन्हें देखकर मन में भय, शोक, चिन्ता, क्रोध, हर्ष, विषाद, लोभ, मोह आदि के भाव उत्पन्न होते हैं। निद्रा त्याग देने पर भी उनकी छाप मन पर बनी रहती है और चित्त में बार-बार यह जानने की जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि इस स्वप्न का अर्थ क्या है?

साधकों के सार्थक स्वप्नों को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है—(१) पूर्व सञ्चित कुसंस्कारों का निष्कासन, (२) श्रेष्ठ तत्वों की स्थापना का प्रकटीकरण, (३) किसी भी भविष्य-सम्भावना का पूर्वाभास, (४) दिव्य दर्शन। इन चार श्रेणी के अन्तर्गत विविध प्रकार के सभी सार्थक स्वप्न आ जाते हैं।

(१) कुसंस्कारों को नष्ट करने वाले स्वप्न—पूर्व सञ्चित कुसंस्कारों के निष्कासन इसलिए होते हैं कि गायत्री-साधना द्वारा आध्यात्मिक नये तत्वों की वृद्धि साधक के अन्तःकरण में हो जाती है। जहाँ एक वस्तु रखी जाती है, वहाँ से दूसरे को हटना पड़ता है। गिलास में पानी भरा जाय तो उसमें पहले से भरी हुई हवा को हटाना पड़ेगा। रेल के डिब्बे में नये मुसाफिरों को स्थान मिलने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें बैठे हुए पुराने मुसाफिर उतरें। दिन का प्रकाश आने पर अन्धकार को भागना ही पड़ता है। इसी प्रकार गायत्री-साधक के अन्तर्जगत में जिन दिव्य तत्वों की वृद्धि होती है, उन सुसंस्कारों के लिए स्थान नियुक्त होने से पूर्व उससे पूर्व नियुक्त कुसंस्कारों का

निष्कासन स्वाभाविक है। यह निष्कासन जागृत अवस्था में भी होता रहता है और स्वप्न अवस्था में भी। विज्ञान के सिद्धान्तानुसार विष्फोटक उष्णवीर्य के पदार्थ जब स्थान-च्युत होते हैं तो वे एक झटका मारते हैं। बन्दूक जब चलाई जाती है, तो वह पीछे की ओर एक जोरदार झटका मारती है। बारूद जब जलती है तो एक धड़ाके की आवाज करती है, दीपक बुझते समय एक बार जोर से लौ उठाता है। इसी प्रकार कुसंस्कार भी मानसलोक से प्रयाण करते समय मस्तिष्क तन्तुओं पर आघात करते हैं और उन आघातों की प्रतिक्रिया स्वरूप जो विक्षोभ उत्पन्न होता है उसे स्वप्नावस्था में भयंकर, अस्वाभाविक, अनिष्ट एवं उपद्रव के रूप में देखा जाता है।

भयानक हिंसक पशु, सर्प, सिंह, व्याघ्र, पिशाच, चोर, डाकू आदि का आक्रमण होना, सुनसान, एकान्त, डरावना जङ्गल दिखाई देना, किसी प्रियजन की मृत्यु, अग्निकाण्ड, बाढ़, भूकम्प युद्ध आदि के भयानक दृश्य दीखना, अपहरण, अन्याय, शोषण, विश्वासघात द्वारा अपना शिकार होना, कोई विपत्ति आना, अनिष्ट की आशंका से चित्त घबराना आदि भयंकर दिल धड़काने वाले ऐसे स्वप्न जिनके कारण मन में चिन्ता, बेचैनी, पीड़ा, भय, क्रोध, द्वेष, शोक, कायरता, ग्लानि, घृणा आदि के भाव उत्पन्न होते हैं वे पूर्व संचित इन्हीं कुसंस्कारों की अन्तिम झाँकी का प्रमाण होते हैं। यह स्वप्न बताते हैं कि जन्म-जन्मान्तरों की संचित यह कुप्रवृत्तियाँ अब अपना अन्तिम दर्शन और अभिवादन करती हुई विदा ले रही हैं और मन ने स्वप्न में इस परिवर्तन को ध्यानपूर्वक देखने के साथ-साथ एक अलंकारिक कथा के रूप में किसी शृङ्खलाबद्ध घटना का चित्र गढ़ डाला है और उसे स्वप्न रूप में देखकर जी बहलाया है।

कामवासना अन्य सब मनोवृत्तियों से अधिक प्रबल है।

काम भोग की अनियन्त्रित इच्छाएँ मन में उठती हैं, उन सबका सफल होना असम्भव है। इसलिए वे परिस्थितियों द्वारा कुचली जाती रहती हैं और मन मसोस कर वे अतृप्त, असन्तुष्ट प्रेमिका की भाँति अन्तर्मन के कोप-भवन में खटपाटी लेकर पड़ रहती हैं। यह अतृप्ति चुपचाप पड़ी नहीं रहती, वरन् जब अवसर पाती हैं, निद्रावस्था में अपने मनसूबों को चरितार्थ करने के लिये, मन के लड्डू खाने के लिये, मनचीते स्वप्नों का अभिनय रचती हैं। दिन में घर के लोगों के जागृत रहने के कारण चूहे डरते हैं और अपने बिलों में बैठे रहते हैं, पर रात्रि को जब घर के आदमी सो जाते हैं तो चूहे अपने बिलों में से निकलकर निर्भयता पूर्वक उछल कूद मचाते हैं। कुचली हुई कामवासना भी यही करती है और "खयाली पुलाव" खाकर किसी प्रकार अपनी क्षुधा को बुझाती है। स्वप्नावस्था में सुन्दर-सुन्दर वस्तुओं का देखना, उनसे खेलना, प्यार करना, जमा करना, रूपवती स्त्रियों का देखना, उनकी निकटता में आना, मनोहर नदी, तड़ाग, वन, उपवन, पुष्प, फल, नृत्य, गीत, वाद्य, उत्सव, समारोह जैसे दृश्यों को देखकर कुचली हुई वासनाएं किसी प्रकार अपने को तृप्त करती हैं। धन की, पद की, महत्व प्राप्ति की अतृप्त आकाँक्षाएं भी अपनी तृप्ति के झूँठे अभिनय रचा करती हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अपनी अतृप्ति के दर्द को, घाव को, पीड़ा को और स्पष्ट रूप से अनुभव करने के लिए ऐसे स्वप्न दिखाई देते हैं मानों अतृप्ति और भी बढ़ गई। जो थोड़ा बहुत सुख था वह भी हाथ से चला गया अथवा मनोवाञ्छा पूरी होते-होते किसी आकस्मिक बाधा के कारण विघ्न होगया।

अतृप्तियों को किसी अंश में या किसी अन्य प्रकार से तृप्त करने के एवं अतृप्ति को और भी उग्र रूप से अनुभव करने

के लिए उपरोक्त प्रकार के स्वप्न आया करते हैं। यह दबी हुई वृत्तियाँ गायत्री की साधना के कारण उखड़कर अपना स्थान खाली करती हैं। इसलिए परिवर्तनकाल में वे अपने गुप्त रूप को प्रगट करती हुई विदा होती हैं तदनुसार साधनाकाल में प्रायः इस प्रकार के स्वप्न आते रहते है। किसी मृत प्रेमी का दर्शन, सुन्दर दृश्यों का अवलोकन, स्त्रियों से मिलना-जुलना, मनोवाञ्छाओं का पूरा होना पर इच्छित वस्तुओं का और भी अधिक अभाव अनुभव होना आदि की घटनाओं के स्वप्न भी विशेष रूप से दिखाई देते हैं। इनका अर्थ है कि अनेकों दबी हुई अतृप्त तृष्णाऐं, कामनाऐं, वासनाऐं धीरे-धीरे करके अपनी विदाई की तैयारी कर रही हैं। आत्मिक तत्वों की वृद्धि के कारण ऐसा होना स्वाभाविक भी है।

(२) दिव्य तत्वों की वृद्धि-सूचक स्वप्न-

दूसरी श्रेणी के स्वप्न वे होते हैं जिनसे इस बात का पता चलता है कि अपने अन्दर सात्विकता की मात्रा में लगातार अभिवृद्धि हो रही है। सतोगुणी कार्यों को स्वयं करने या किसी अन्य के द्वारा होते हुए स्वप्न ऐसा ही परिचय देते हैं। पीड़ितों की सेवा, अभावग्रस्तों की सहायता, दान, जप, तप, यज्ञ, उपवास, तीर्थ, मन्दिर, पूजा, धार्मिक कर्मकाण्ड, कथा, कीर्तन, प्रवचन, उपदेश, माता, पिता, साधु महात्मा, नेता, विद्वान, सज्जनों की समीपता, स्वाध्याय, अध्ययन, आकाशवाणी, देवी-देवताओं के दर्शन, दिव्य प्रकाश आदि आध्यात्मिक, सतोगुणी, शुभ स्वप्नों में मन अपने-आप अपने अन्दर आये हुए शुभ तत्वों को देखता है और उन दृश्यों से शांति लाभ करता है।

(३) भविष्य का आभास एवं दैवी सन्देश का स्वप्न-

तीसरे प्रकार के स्वप्न भविष्य में घटित होने वाली किन्हीं

घटनाओं की ओर संकेत करते हैं। प्रायःकाल सूर्योदय से एक-दो घण्टे पूर्व देखे हुए स्वप्नों में सचाई का बहुत अंश होता है। ब्राह्म मुहूर्त में एक तो साधक का मस्तिष्क निर्मल होता है, दूसरे प्रकृति के अन्तराल का कोलाहल भी रात्रि की स्तब्धता के कारण बहुत अंशों में शांत हो जाता है। उस समय सत् तत्व की प्रधानता के कारण वातावरण स्वच्छ रहता है और सूक्ष्म जगत में विचरण करते हुए भविष्यों का, भावी विचारों का, बहुत कुछ आभास मिलने लगता है।

कभी-कभी अस्पष्ट और उलझे हुए ऐसे दृश्य दिखाई देते हैं, जिनसे मालूम होता है कि यह भविष्य में होने वाले किसी लाभ या हानि के संकेत हैं पर स्पष्ट रूप से यह विदित नहीं हो पाता कि इनका वास्तविक तात्पर्य क्या है। ऐसे उलझन भरे स्वप्नों के कई कारण होते हैं—(१) भविष्य का विधान प्रारब्ध कर्मों से बनता है, पर वर्तमान कर्मों से उस विधान में काफी हेर-फेर हो सकता है। कोई पूर्व निर्धारित विधि का विधान, साधक के वर्तमान कर्मों के कारण कुछ परिवर्तित हो जाता है, तो उसका निश्चित और स्पष्ट रूप बिगड़ कर अनिश्चित और अस्पष्ट हो जाता है, तदनुसार स्वप्न में उलझी हुई बात दिखाई पड़ती है, (२) कुछ भावी विधान ऐसे हैं जो नये कर्मों के, नई परिस्थितियों के अनुसार बनते और परिवर्तित होते रहते हैं। तेजी, मंदी, सट्टा, लाटरी आदि के बारे में जब तक भविष्य का भ्रूण ही तैयार हो पाता है पूर्णरूप से उसकी स्पष्टता नहीं हो पाती, तब तक उसका पूर्वाभास साधक को स्वप्न में मिले तो वह एकांगी एवं अपूर्ण होता है, (३) अपनेपन की सीमा जितने क्षेत्र में होती है। वह व्यक्ति के 'अहम' की एक आध्यात्मिक इकाई होती है। इतने विस्तृत क्षेत्र का भविष्य उसका अपना भविष्य बन जाता है

भविष्य सूचक स्वप्न इस 'अहम्' के सीमा क्षेत्र तक अपने को दिखाई पड़ सकते हैं, इसलिए ऐसा भी हो जाता है कि जो सन्देश स्वप्न में मिला है, वह अपनेपन की मर्यादा में आने वाले किसी कुटुम्बी, पड़ौसी, रिश्तेदार या मित्र के लिये हो, (४) साधक की मनोभूमि पूर्णरूप से निर्मल न हो गई हो तो आकाश के सूक्ष्म अन्तराल में बहते हुए तथ्य अधूरे या रूपान्तरित होकर दिखाई पड़ते हैं, जैसे कोई व्यक्ति अपने घर से हमसे मिलने के लिए रवाना हो चुका हो तो उस व्यक्ति के स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति के आने का आभास मिले। होता यह है कि साधक की दिव्य दृष्टि धुँधली होती है, जैसे दृष्टि दोष होने पर दूर चलने वाले मनुष्य पुतले से दिखाई पड़ते हैं, पर उनकी शकल नहीं पहचानी जाती। अब इस धुँधले, अस्पष्ट आभास के ऊपर हमारी स्वप्न माया एक कल्पित आवरण चढ़ा के कोई भूँठ-मूँठ की आकृति जोड़ देती है और रस्सी को सर्प बना देती है। ऐसे स्वप्न आधे सत्य आधे असत्य होते हैं, परन्तु जैसे-जैसे साधक की मनोभूमि अधिक निर्मल होती जाती है, वैसे ही वैसे उसकी दिव्य दृष्टि स्वच्छ होती जाती है और उसके स्वप्न अधिक सार्थकता युक्त होने लगते हैं।

(४) जागृत स्वप्न या दिव्य दर्शन–

स्वप्न केवल रात्रि में या निद्राग्रस्त होने पर ही नहीं आते वे जागृत दशा में भी आते हैं। ध्यान को एक प्रकार का जागृत स्वप्न ही समझना चाहिए। कल्पना के घोड़े पर चढ़कर हम सुदूर स्थानों के विविध, सम्भव और असम्भव दृश्य देखा करते हैं, यह एक प्रकार के स्वप्न ही हैं। निद्राग्रस्त स्वप्नों में अंतर्मन की क्रियाएँ प्रधान होती हैं, जागृत स्वप्नों में बहिर्मन की क्रियाएँ प्रमुख रूप से काम करती हैं। इतना अन्तर तो अवश्य है पर

उसके अतिरिक्त निद्रा, स्वप्न और जागृत स्वप्नों की प्रणाली एक ही है। जागृत अवस्था में साधक के मनोलोक में नाना प्रकार की विचारधाराएं और कल्पनाएं घुड़दौड़ मचाती हैं। यह भी तीन प्रकार की होती हैं। पूर्व कुसंस्कारों के निष्कासन, श्रेष्ठ तत्वों के प्रकटीकरण तथा भविष्य के पूर्वाभास की सूचना देने के लिए मस्तिष्क में विविध प्रकार के विविचार, भाव एवं कल्पना चित्र आते हैं। जो फल निद्रित स्वप्नों का होता है, वही जागृत स्वप्नों का भी होता हैं।

कभी-कभी जागृत अवस्था में भी कोई सूक्ष्म चमत्कारी, दैवी, अलौकिक दृश्य किसी-किसी को दिखाई दे जाते हैं। इष्ट-देव का किसी-किसी को चर्म चक्षुओं से दर्शन होता है, कोई-कोई भूत-प्रेतों को प्रत्यक्ष देखते हैं, किन्हीं-किन्हीं को दूसरों के चेहरे पर तेजोवलय और मनोगत भावों का आकार दिखाई देता है, जिसके आधार पर वह दूसरों की आन्तरिक स्थिति को पहचान लेते हैं, रोगों का अच्छा होना न होना, संघर्ष में हारना-जीतना, चोरी में गई वस्तु, आगामी लाभ-हानि, विपत्ति-सम्पत्ति आदि के बारे में कई मनुष्यों के अन्तःकरण में एक प्रकार की आकाशवाणी सी होती है और वह कई बार इतनी सच्ची निकलती है कि आश्चर्य से दङ्ग रह जाना पड़ता है।

सफलता के कुछ लक्षण

गायत्री-साधना से साधक में एक सूक्ष्म दैवी चेतना का आविर्भाव होता है। प्रत्यक्ष रूप से उसके शरीर या आकृति में कोई विशेष अन्तर नहीं आता, पर भीतर ही भीतर भारी हेर-फेर हो जाता है। आध्यात्मिक तत्वों की वृद्धि से प्राणमय कोष, विज्ञानमय कोष और मनोमय कोषों में जो परिवर्तन होता है, उसकी छाया अन्नमय कोष में बिलकुल ही दृष्टिगोचर न हो, ऐसा नहीं हो सकता। यह सच है कि शरीर का ढाँचा आसानी से नहीं बदलता, पर यह भी सच है कि आन्तरिक हेर-फेर के चिह्न शरीर में प्रकट हुए बिना नहीं रह सकते।

सर्प के माँस कोष में जब एक नई त्वचा तैयार होती है तो उसका लक्षण सर्प के शरीर पर परिलक्षित होता है, उसकी देह भारी हो जाती है, तेजी से वह नहीं दौड़ता, स्फूर्ति और उत्साह से वह वंचित हो जाता है, एक स्थान पर पड़ा रहता है। जब वह चमड़ी पक जाती है तो सर्प बाहरी त्वचा को बदल देता है, इसे केंचुली पलटना कहते हैं। केंचुली छोड़ने के बाद सर्प में एक नया उत्साह आता है, उसकी चेष्टाएँ बदल जाती हैं, उसकी नई चमड़ी पर चिकनाई, चमक और कोमलता स्पष्ट रूप से दिखलाई देती है। ऐसा ही हेर-फेर साधक में होता है। जब उसकी साधना गर्भ में पकती है तो उसे कुछ उदासी, भारीपन, अनुत्साह एवं शिथिलता के लक्षण प्रतीत होते हैं, पर जब साधना पूर्ण हो जाती है तो दूसरे ही लक्षण प्रकट होने लगते हैं। माता के उदर में जब गर्भ पकता है, तब तक माता का शरीर भारी, गिरा-गिरा सा रहता है उसमें अनुत्साह देखा जाता है, पर जब प्रसूती से निवृती हो जाती है तो वह अपने में एक हलकापन, उत्साह एवं चैतन्य अनुभव करती है।

साधक जब साधना करने बैठता है तो अपने अन्दर एक प्रकार का आध्यात्मिक गर्भ धारण करता है। तन्त्र शास्त्रों में साधना को मैथुन कहा है। जैसे मैथुन को गुप्त रखा जाता है, वैसे ही साधना को गुप्त रखने का आदेश किया गया है। आत्मा जब परमात्मा से लिपटती है, उसका आलिंगन करती है तो उसे एक अनिर्वचनीय आनन्द आता है, इसे भक्ति की तन्मयता कहते हैं। जब दोनों का प्रगाढ़ मिलन होता है, एक दूसरे में आत्मसात् होते हैं तो उस स्खलन को 'समाधि' कहा जाता है। आध्यात्मिक मैथुन का समाधि सुख अन्तिम स्खलन है। गायत्री उपनिषद् और सावित्री उपनिषद् में अनेक मिथुनों का वर्णन किया गया है। वहाँ बताया गया है कि सविता और सावित्री का मिथुन है। सावित्री की, गायत्री की आराधना करने से साधक अपनी आत्मा को एक योनि बना लेता है जिसमें सविता का तेज पुंज, परमात्मा का तेज वीर्य गिरता है। इसे शक्तिपात भी कहा गया है। इस शक्तिपात विज्ञान के अनुसार अमैथुनी सृष्टि से उत्पन्न हो सकती है। कुन्ती से कर्ण का, मरियम के पेट से ईसा का उत्पन्न होना असम्भव नहीं है। देव-शक्तियों की उत्पत्ति इसी प्रकार के सूक्ष्म मैथुनों से होती है, समुद्र-मन्थन एक मैथुन था, जिसके फलस्वरूप चौदह रत्नों का प्रसव हुआ। ऋण और धन (निगेटिव और पाज़ेटिव) परमाणुओं के आलिंगन से विद्युत प्रवाह का रस उत्पन्न होता है। तन्त्र शास्त्रों में स्थान-स्थान पर जिस मैथुन को प्रशंसित किया गया है वह यही साधना मिथुन है।

आत्मा और परमात्मा का, सविता और सावित्री का मिथुन जब प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध होता है तो उसके फल-स्वरूप एक आध्यात्मिक गर्भ धारण होता है। इसी गर्भ को आध्यात्मिक भाषा में भर्ग कहते हैं। भर्ग का जो साधक जितने

अंशों में धारण करता है उसे उतना ही स्थान अपने अन्दर इस नये तत्व के लिए देना होता है। नये तत्वों की स्थापना के लिये पुरानों तत्वों को पदच्युत होना पड़ता है, इस संक्रांति के कारण स्वाभाविक क्रिया-विधि में अन्तर आ जाता है और उस अन्तर के लक्षण साधक में उसी प्रकार प्रकट होते हैं, जैसे गर्भवती स्त्री को अरुचि, उबकाई, कोष्ठबद्धता, आलस्य आदि लक्षण होते हैं, वैसे ही लक्षण साधक को भी उस समय तक जब तक कि उसकी अन्तः योनि में गर्भ पकता रहता है, परिलक्षित होते हैं। केंचुली में भरे हुए सर्प की तरह वह भी अपने को भारी-भारी, विधा हुआ, जकड़ा हुआ, अवसादग्रस्त अनुभव करता है। आत्मविद्या के आचार्य जानते हैं कि साधनावस्था में साधक को कैसी विषम स्थिति में रहना पड़ता है, इसलिये वे अनुयायियों को साधनाकाल में बड़े आचार-विचार के साथ रहने का आदेश करते हैं। रजस्वला या गर्भवती स्त्रियों से मिलता-जुलता आहार-विहार साधकों को अपनाना होता है। तभी वे साधना संक्रांति को ठीक प्रकार से पार कर पाते हैं।

अण्डे से बच्चा निकलता है, गर्भ से सन्तान पैदा होती है। साधक को भी साधना के फलस्वरूप एक सन्तान मिलती है, जिसे शक्ति या सिद्धि कहते हैं। मुक्ति, समाधि, ब्राह्मीस्थिति, तुरीयावस्था आदि नाम भी इसी के हैं। यह सन्तान आरम्भ में बड़ी निर्मल तथा लघु आकार की होती हैं। जैसे अण्डे से निकलने पर बच्चे बड़े ही लुंज-पुंज होते हैं, जैसे माता के गर्भ से उत्पन्न हुए बालक बड़े ही कोमल होते हैं, वैसे ही साधना पूर्ण होने पर प्रसव हुई नवजात सिद्धि भी बड़ी कोमल होती है। बुद्धिमान साधक उसे उसी प्रकार पालपोस कर बड़ा करते हैं, जैसे कुशल माताएँ अपनी सन्तान को अनिष्टों से बचाती हुई पौष्टिक पोषण देकर पालती हैं।

साधना जब तक साधक के गर्भ में पकती रहती है, कच्ची रहती है, जब तक उसके शरीर में आलस्य और अवसाद के चिह्न रहते हैं, स्वास्थ्य गिरा हुआ और चहरा उतरा हुआ दिखाई देता है पर जब साधना पक जाती है और सिद्धि की सुकोमल सन्तति का प्रसव होता है, तो साधक में एक तेज, ओज, हलकापन, चैतन्य, उत्साह आ जाता है, वैसा, जैसा कि केंचली बदलने के बाद सर्प में आता है। सिद्धि का प्रसव हुआ या नहीं, सफलता मिली या नहीं, इसकी परीक्षा इन लक्षणों से हो सकती है। यह दस लक्षण नीचे दिए जाते हैं:—

१—शरीर में हलकापन और मन में उत्साह होता है।

२—शरीर में से एक विशेष प्रकार की सुगन्ध आने लगती है।

३—त्वचा पर चिकनाई और कोमलता का अंश बढ़ जाता है।

४—तामसिक आहार-विहार से घृणा बढ़ जाती है और सात्विक दिशा में मन लगता है।

५—स्वार्थ का कम और परमार्थ का अधिक ध्यान रहता है।

६—नेत्रों में तेज झलकने लगता है।

७—किसी व्यक्ति या कार्य के विषय में वह जरा भी विचार करता है, तो उसके सम्बन्ध में बहुत सी ऐसी बातें स्वयमेव प्रतिभाषित होती हैं, जो परीक्षा करने पर ठीक निकलती हैं।

८—दूसरों के मन के भाव जान लेने में देर नहीं लगती।

(६) भविष्य में घटित होने वाली बातों का पूर्वाभास मिलने वाला है।

(१०) शाप या आशीर्वाद सफल होने लगते हैं। अपनी गुप्त शक्तियों से वह दूसरों का बहुत कुछ लाभ या बुरा कर सकता है।

यह दस लक्षण इस बात के प्रमाण हैं कि साधक का गर्भ पक गया और सिद्ध का प्रसव हो चुका। इस शक्ति-सन्तति को जो साधक सावधानी के साथ पालते-पोसते हैं, उसे पुष्ट करते, वे भविष्य में आज्ञाकारी सन्तान वाले बुजुर्ग की तरह आनन्दमय परिणामों का उपभोग करते हैं। किन्तु जो फूहड़ जन्मते ही सिद्धि का दुरुपयोग करते हैं, अपनी स्वल्प शक्ति का विचार न करते हुए उस पर अधिक भार डालते हैं, उनकी गोदी खाली हो जाती है और मृतवत्सा माता की तरह उन्हें पश्चाताप करना पड़ता है।

सिद्धियों का दुरुपयोग न होना चाहिए

गायत्री साधना करने वालों को अनेक प्रकार की अलौकिक शक्तियों के आभास होते हैं। कारण यह है कि यह एक श्रेष्ठ साधना है। जो लाभ अन्य योग साधनों से होते हैं, जो सिद्धियाँ किसी अन्य योग में मिल सकती हैं, वे सभी गायत्री-साधना से मिल सकती हैं। जब थोड़े दिनों श्रद्धा, विश्वास और नियमपूर्वक उपासना चलती है तो आत्मशक्ति की मात्रा दिन-दिन बढ़ती रहती है। आत्मतेज प्रकाशित होने लगता है, अन्तःकरण पर चढ़े हुए मैल छूटने लगते हैं। आन्तरिक निर्मलता की अभिवृद्धि होती है। फलस्वरूप आत्मा की मन्द ज्योति अपने असली रूप में प्रकट होने लगती है।

अँगार के ऊपर जब राख का मोटा परत जम जाता है तो वह दाहक शक्ति से रहित हो जाता है। उसे छूने से कोई विशेष अनुभव नहीं होता, पर जब उस अँगार पर से राख का पर्दा हटा दिया जाता है तो धधकती हुई अग्नि प्रज्वलित हो जाती है। यही बात आत्मा के सम्बन्ध में है। आमतौर से मनुष्य मायाग्रस्त होते हैं, भौतिक जीवन की वहिर्मुखी वृत्तियों में उलझे रहते हैं। यह एक प्रकार से भस्म का पर्दा है, जिसके कारण आत्मतेज की उष्णता एवं रोशनी की झाँकी नहीं होती। जब मनुष्य अपने को अन्तर्मुखी बनाता है, आत्मा की झाँकी करता है और साधना द्वारा अपने मैलों को हटाकर आन्तरिक निर्मलता प्राप्त करता है तो आत्म-दर्शन की स्थिति प्राप्त होती है।

आत्मा परमात्मा का अंश है। उसमें वे सब तत्व, गुण एवं बल मौजूद हैं, जो परमात्मा में होते हैं। अग्नि के सब गुण

चिनगारी मौजूद है। यदि चिनगारी को अवसर मिले तो वह दावानल कार्य कर सकती है। आत्मा के ऊपर चढ़े हुए मलों का यदि निवारण हो जाय तो वही परमात्मा का प्रत्यक्ष प्रतिबिम्ब दिखाई देगी और फिर उसमें वे सब शक्तियाँ परिलक्षित होंगी, जो परमात्मा के अंश में होनी चाहिए।

अष्ट सिद्धियाँ, नव निद्धियाँ प्रसिद्ध हैं। उनके अतिरिक्त भी अगणित छोटी-बड़ी ऋद्धि-सिद्धियाँ होती हैं, वे साधना के परिपाक होने के साथ-साथ उठती, प्रकट होती और बढ़ती हैं। किसी विशेष सिद्धि की प्राप्ति के लिए चाहे भले ही प्रयत्न न किया जाय, पर युवावस्था आने पर जैसे यौवन के चिह्न अपने आप प्रस्फुटित हो जाते हैं, उसी प्रकार साधना के परिपाक के साथ-साथ सिद्धियाँ अपने आप आती जाती हैं। गायत्री का साधक धीरे-धीरे सिद्धावस्था की ओर अग्रसर होता जाता है। उसमें अनेकों अलौकिक शक्तियाँ प्रस्फुटित होती दिखाई पड़ती हैं। देखा गया है कि जो लोग श्रद्धा और निष्ठापूर्वक गायत्री-साधना में दीर्घकाल तक तल्लीन रहे हैं, उनमें यह विशेषताऐं स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं:—

१—उनका व्यक्तित्व आकर्षक, नेत्रों में चमक, वाणी में बल, चहरे पर प्रतिभा, गम्भीरता तथा स्थिरता होती है, जिससे दूसरों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। जो व्यक्ति उनके सम्पर्क में आते हैं, वे उनसे काफी प्रभावित हो जाते हैं तथा उनकी इच्छानुसार आचरण करते हैं।

२—साधक को अपने अन्दर एक दैवी तेज की उपस्थिति प्रतीत होती है। वह अनुभव करता है कि उसके अन्तःकरण में कोई नई शक्ति काम कर रही है।

३—बुरे कामों से उसकी रुचि हटती जाती है और भले कामों में मन लगता है। कोई बुराई बन पड़ती है तो उसके लिए बड़ा खेद और पश्चाताप होता है। सुख के समय वैभव में अधिक आनन्द न होना और दुःख, कठिनाई तथा आपत्ति में धैर्य खोकर किंकर्तव्य विमूढ़ न होना उसकी विशेषता होती है।

४—भविष्य में जो घटनाएं घटित होने वाली हैं, उनका उसके मन में पहले से ही आभास आने लगता है। आरम्भ में तो कुछ हलका-सा ही अन्दाज होता है, पर धीरे-धीरे उसे भविष्य का ज्ञान बिलकुल सही होने लगता है।

५—उसके शाप और आशीर्वाद सफल होते हैं। यदि वह अन्तरात्मा से दुखी होकर किसी को शाप देता है तो उस व्यक्ति पर भारी विपत्तियाँ आती हैं और प्रसन्न होकर जिसे वह सच्चे अन्तःकरण से आशीर्वाद देता है उसका मङ्गल होता है, उसके आशीर्वाद विफल नहीं होते।

६—वह दूसरों के मनोभावों को चहरा देखते ही पहचान लेता है। कोई व्यक्ति कितना ही छिपावे, उसके सामने वह भाव छिपते नहीं। वह किसी के भी गुण, दोषों, विचारों तथा आचरणों को पारदर्शी की तरह अपनी तरह अपनी सूक्ष्म दृष्टि से देख सकता है।

७—वह अपने विचारों को दूसरों के हृदय में प्रवेश कर सकता है। दूर रहने वाले मनुष्यों तक बिना तार या पत्र की सहायता के अपने पत्र पहुँचा सकता है।

८—जहाँ वह रहता है, उसके आस-पास का वातावरण बड़ा शान्त एवं सात्विक रहता है। उसके पास बैठने वालों को, जब तक वे समीप रहते हैं अपने अन्दर एक अद्भुत शान्ति, सात्विकता तथा पवित्रता अनुभव होती है।

९—वह अपनी तपस्या, आयु या शक्ति का एक भाग किसी को दे सकता है और उसके द्वारा दूसरा व्यक्ति बिना प्रयास या स्वल्प प्रयास में ही अधिक लाभान्वित हो सकता है। ऐसे व्यक्ति दूसरों पर "शक्तिपात" कर सकते हैं।

१०—उसे स्वप्न में, जागृत में, ध्यानावस्था में रंग-बिरंगे प्रकाश-पुञ्ज, दिव्य ध्वनियाँ, दिव्य प्रकाश एवं दिव्य वाणियाँ सुनाई पड़ती हैं। कोई अलौकिक शक्ति उसके साथ बार-बार छेड़खानी, खिलवाड़ करती हुई सी दिखाई पड़ती है। उसे अनेकों प्रकार के ऐसे दिव्य अनुभव होते हैं, जो बिना अलौकिक शक्ति के प्रभाव के साधारणतः नहीं होते।

यह चिन्ह तो प्रत्यक्ष प्रकट होते हैं। अप्रत्यक्ष रूप से अणिमा, लघिमा, महिमा आदि योगशास्त्रों में वर्णित अन्य सिद्धियों का भी आभास मिलता है। वह कभी-कभी ऐसे कार्य कर सकने में समर्थ होता है, जो बड़े ही अद्भुत, अलौकिक एवं आश्चर्य-जनक होते हैं।

जिस समय सिद्धियों का उत्पादन एवं विकास हो रहा हो, वह समय बड़ा ही नाजुक और बड़ी ही सावधानी का है। जब किशोर अवस्था का अन्त और नवयौवन का आरम्भ होता है, उस समय वीर्य का शरीर में नवीन उद्भव होता है। इस उद्भव काल में मन बड़ा उत्साहित, कामक्रीड़ा का इच्छुक एवं चञ्चल रहता है। यदि इस मनोदशा पर नियन्त्रण न किया जाय तो कच्चे वीर्य का अपव्यय होने लगता है और वह नवयुवक थोड़े ही समय में शक्तिहीन, वीर्यहीन, यौवनहीन होकर सदा के लिए निकम्मा बन जाता है। साधना में भी सिद्धि का प्रारम्भ ऐसी ही अवस्था है, जबकि साधक अपने अन्दर एक नवीन

आत्मिक चेतन अनुभव करता है और उत्साहित होकर प्रदर्शन द्वारा दूसरों पर अपनी महत्ता की छाप बिठाना चाहता है। यह क्रम यदि चल पड़े तो वह कच्चा वीर्य—प्रारम्भिक सिद्ध तत्व—स्वल्पकाल में ही अपव्यय होकर समाप्त हो जाता है और साधक को सदा के लिए छूँछ एवं निकम्मा हो जाना पड़ता है।

संसार में जो कार्य-क्रम चल रहा है, वह कर्मफल के आधार पर चल रहा है। ईश्वरीय सुनिश्चित नियमों के आधार पर कर्म-बन्धन में बँधे हुए प्राणी अपना-अपना जीवन-क्रम चलाते हैं। प्राणियों की सेवा का सच्चा मार्ग यह है कि उन्हें सत्कर्म में प्रवृत्त किया जाय, आपत्तियों को सहने का साहस दिया जाय, यह आत्मिक सहायता हुई। तात्कालिक कठिनाई का हल करने वाली भौतिक सहायता देनी चाहिए। आत्मशक्ति खर्च करके कर्तव्यहीन व्यक्तियों को सम्पन्न बनाया जाय तो यह उनको और अधिक निकम्मा बनाना होगा, इसलिये दूसरों की सहायता के लिए सद्गुण और विवेक का दान ही श्रेष्ठ है। दान देना हो तो धन आदि जो हो, उसका दान करना चाहिए। दूसरों का वैभव बढ़ाने में आत्मशक्ति का सीधा प्रत्यावर्तन करना अपनी शक्तियों को समाप्त करना है। दूसरों को आश्चर्य में डालने या उन पर अपनी अलौकिक सिद्धि प्रकट करने जैसी तुच्छ बातों में कष्ट-साध्य आत्मबल को व्यय करना ऐसा ही है, जैसे कोई मूर्ख होली खेलने का कौतुक करने के लिए अपना रक्त निकालकर उसे उलीचे, यह मूर्खता की हद है। आध्यात्मवादी दूरदर्शी होते हैं, वे संसारी मान-बड़ाई की रत्ती भर परवाह नहीं करते।

तान्त्रिक पद्धति से किसी मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण करना, सट्टा, लाटरी, फीचर आदि बताना, गढ़ा धन, चोरी में गई वस्तु बताना, किसी के गुप्त आचरण या मनोभावों

को जानकर उनका प्रकट कर देना और उसकी प्रतिष्ठा को घटाना आदि कार्य आध्यात्मिक साधकों के लिये सर्वथा निषिद्ध हैं। कोई ऐसा अद्भुत कार्य करके दिखाना, जिससे लोग यह समझलें कि यह सिद्ध पुरुष है, गायत्री-उपासकों के लिये कड़ाई के साथ वर्जित है। यदि वे इस चक्कर में पड़े तो निश्चित रूप से कुछ ही दिनों में उनकी शक्ति का स्रोत सूख जायगा और वे छूँछ बनकर अपनी कष्टसाध्य आध्यात्मिक कमाई से हाथ धो बैठेंगे। उनके लिये संसार का सद्ज्ञान दान का कार्य ही इतना बड़ा एवं महत्वपूर्ण है कि उसी के द्वारा वे जन साधारण के आन्तरिक, बाह्य और सामाजिक कष्टों को भली प्रकार दूर कर सकते हैं और स्वल्प साधनों में ही स्वर्गीय सुखों का आस्वादन कराते हुए लोगों का जीवन सफल बना सकते हैं। इस दिशा में कार्य करने से उनकी आध्यात्मिक शक्तियाँ बढ़ती हैं। इसके प्रतिकूल यदि वे चमत्कारों के प्रदर्शन के चक्कर में पड़ेंगे तो लोगों का क्षणिक कौतूहल, अपने प्रति उनका आकर्षण थोड़े समय के लिये भले ही बढालें, पर वस्तुतः अपनी और दूसरों की इस प्रकार भारी कुसेवा होनी ही सम्भव है।

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए हम इस पुस्तक के पाठकों और अनुयायियों को सावधान करते हैं, कड़े शब्दों में आदेश करते हैं कि वे अपनी सिद्धियों को गुप्त रखें, किसी पर प्रकट न करें, किसी के सामने प्रदर्शन न करें। जो दैवी चमत्कार अपने को दृष्टिगोचर हों, उन्हें विश्वस्त अभिन्न हृदय मित्रों के अतिरिक्त और किसी से न कहें। आवश्यकता होने पर ऐसी घटनाओं के सम्बन्ध में इस पुस्तक के लेखक से भी परामर्श किया जा सकता है। गायत्री साधकों की यह जिम्मेदारी है कि वे प्राप्त शक्ति का रत्ती भर भी दुरुपयोग न करें। हम सावधान करते हैं कि कोई साधक इस मर्यादा का उल्लङ्घन न करें।

गायत्री तपोभूमि—एक महान् धर्म संस्थान

गायत्री तपोभूमि, मथुरा शहर से १ मील आगे—वृन्दावन रोड पर परम शांतिमय वातावरण में बना हुआ एक सुन्दर आश्रम है, जहाँ गायत्री माता का भव्य मन्दिर, भारतवर्ष के लगभग २४०० तीर्थों के जल-रज का एक तीर्थ सम्मेलन-गृह, १२५ करोड़ हस्तलिखित गायत्री-मन्त्रों का संग्रह-कक्ष, निवास के लिए २३ कमरे, एक प्रवचन हाल, तीन बड़ी यज्ञशालाएं, प्रधान यज्ञशाला में कभी न बुझने दी जाने वाली अखण्ड-अग्नि की स्थापना, नित्य गायत्री-मन्त्र की एक हजार आहुतियों का हवन, तुलसी का उपवन, हजारों धार्मिक पुस्तकों का विशाल पुस्तकालय, लगभग ६० पत्र-पत्रिकाएं आने वाला वाचनालय, बिना मूल्य चिकित्सा के लिए कल्प चिकित्सालय यह सब देखकर कोई भी दर्शक संस्था की गति-विधियों का सहज ही अनुमान लगा सकता है। गायत्री तपोभूमि में सदा अनेक धार्मिक भावना वाले व्यक्ति शिक्षा, तीर्थ-यात्रा, साधना, तप एवं विभिन्न कठिनाइयों के सम्बन्ध में आचार्यजी से परामर्श करने आते हैं। आगन्तुकों को तपोभूमि में निवास, भोजन आदि की समुचित सुविधा प्राप्त होती है।

गायत्री तपोभूमि द्वारा देश भर में गायत्री महायज्ञों एवं सांस्कृतिक सम्मेलनों की शृंखला भी चलाई जा रही है। सन् '५६ और '५७ में १००० बड़े गायत्री महायज्ञ तथा सांस्कृतिक सम्मेलन करने का निश्चय किया था। सो उस संकल्प से भारतवर्ष के कोने-कोने से हजारों यज्ञ हुए जिनमें से १०१ कुण्डों वाले, २५ कुण्डों वाले, ९ कुण्डों वाले विशाल यज्ञों की संख्या १००० थी। इनमें से कुछ यज्ञों में तो ५० हजार तक जनता एकत्रित हुई। ये यज्ञ अ० भा० गायत्री-परिवार की देश में फैली हुई १२०० शाखाओं द्वारा सम्पन्न हुये थे। इन यज्ञों और सम्मेलनों का उद्देश्य जनता में धर्म, सदाचार, नैतिकता

लेखक-
श्रीराम शर्मा आचार्य
गायत्री तपोभूमि, मथुरा।

ॐ भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि
धियो योनःप्रचोदयात्।

प्रकाशक-
"अखण्ड ज्योति" प्रेस, मथुरा।

सन् १९५८ [मूल्य ।)

गायत्री-साधना के चमत्कार

'गायत्री-साधना' आत्मिक उन्नति का अपूर्व साधन है। कैसा भी व्यक्ति किसी भी लाभ के विचार से गायत्री का आश्रय ग्रहण करे, सबसे पहले उसे अपनी आत्मा में एक नवीन परिवर्तन अवश्य जान पड़ता है। उसे अनुभव होने लगता है कि आत्मा के विकार निकलकर सतोगुणी तत्वों की वृद्धि हो रही है। इसके फलस्वरूप अनेक दुर्गुण, बुरे विचार, खराब स्वभाव और ईर्ष्या, द्वेष आदि के भाव घटने लगते हैं और उनके स्थान पर संयम, पवित्रता, उत्साह, श्रमशीलता, ईमानदारी, सत्यनिष्ठा, उदारता, प्रेम, सन्तोष, सेवाभाव आदि सद्गुणों का विकास होने लगता है। इस परिवर्तन का स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि अन्य लोग भी उसके स्वभाव और आचरण से सन्तुष्ट होते हैं और उसके प्रति प्रशंसा, कृतज्ञता और सम्मान के भाव रखने लगते हैं और उसे चारों तरफ से सहानुभूति और सहायता प्राप्त होने लगती है। इसके सिवाय ये सद्गुण स्वयं साधना करने वाले का भी आत्मिक कायाकल्प कर देते हैं और उसमें एक ऐसा आत्म-सन्तोष का भाव उत्पन्न होने लगता है कि दुःख और कष्ट देने वाले विचार स्वयं बदल जाते हैं और उसे ऐसी मानसिक शांति मिल जाती है, जिससे वह विपरीत परिस्थितियों का सामना करने में कहीं अधिक समर्थ हो जाता है, उनके कुप्रभाव से मुक्त रहता है।

बहुत समय से गायत्री-साधना का प्रचार करते हुए हमें यही अनुभव हुआ है कि जो लोग दृढ़तापूर्वक इस मार्ग पर

चलते रहे हैं, उनको अवश्य लाभ पहुँचा है। वे स्वयं भी इन लाभों को गायत्री माता की कृपा ही समझते हैं। उनका कहना है कि साधक को सदैव माता के प्रति कृतज्ञता का भाव रखना चाहिए। सुख और दुःख तो मनुष्य को प्रारब्ध के अनुसार मिलते हैं, पर जो लोग श्रद्धा और भक्तिपूर्वक गायत्री-उपासना में लगे रहते हैं, उनकी कठिनाइयों में कहीं न कहीं से ऐसी सहायता मिल जाती है जिससे उनका बुरा प्रभाव बहुत कुछ घट जाता है और रक्षा का मार्ग निकल आता है। इस प्रकार के लाभ उठाने वालों ने दूसरे लोगों के उपकारार्थ जो स्वानुभव प्रकाशित कराये हैं उन्हीं में से कुछ अगले पृष्ठों में दिये जा रहे हैं। हमारा विश्वास है कि उनके अनुभवों से पाठकों के हृदय में भी गायत्री माता की श्रद्धा का उदय होगा और वे उसकी कृपा-दृष्टि प्राप्त करके सुख और शांति के मार्ग पर अग्रसर हो सकेंगे।

मुझे प्रेरणा कैसे हुई

(श्रीलाल मिश्र, एम० ए० बी० टी० डूँडलोद)

मुझे सर्व प्रथम १६४६ में अपने गाँव बिसाऊ में स्वामी गोपालदासजी द्वारा गायत्री महिमा सम्बन्धी एक पुस्तक पढ़ने का सौभाग्य मिला। उसे पढ़ने के बाद ही प्रतिदिन एक माला गायत्री जपने का निश्चय कर लिया।

वहीं के सेठ चेतरामजी खेमका मेरे मित्र थे। उन्होंने गायत्री-उपासना के अपने अनुभव मुझे सुनाये। वह वृत्तान्त श्रवण कर मेरी आस्था, गायत्री-उपासना के प्रति और भी दृढ़ हो गई। वह वृत्तान्त यों है:—

श्री चेतरामजी प्रतिदिन नियम निष्ठा के साथ ११ माला

गायत्री-मत्र का जप किया करते थे। एक बार उनकी पत्नी वीमार पड़ी। चिकित्सा के लिए जितना भी जो कुछ किया जा सकता था, उन्होंने दिल खोलकर अविश्रांत गति में सब कुछ किया, पर क्रमशः बीमारी की दशा विगड़ती ही गयी। एक दिन उनकी आसन्न मृत्यु हो गयी। उसे खाट से उतारकर नीचे सुला दिया गया। श्री चेतरामजी उपासना कर रहे थे—करते जा रहे थे, सहसा उन्हें सुश्वेत वर्ण दिव्य नारी के दर्शन हुए। उन्होंने रक्षा का संकेत और आश्वासन भाव प्रकट किया और तिरोहित हो गईं। श्री चेतरामजी उठे और सबों के विरोध करने पर प्रेयसी को नीचे से उठाकर पुनः शय्या पर सुला दिया।

दूसरे दिन सबों ने आश्चर्य के साथ देखा कि वह सम्पूर्ण सचेतन अवस्था में मन्दस्मित ध्वनि में बातें कर रही हैं। रात भर में ही वह उतने दिन की निर्बलता और शिथिलता कैसे नव-चेतना की उर्मियाँ ले रही थीं। माता की करुणा की प्रसाद स्वरूपा उनकी प्राणमयी प्रेयसी, आज भी अपने जीवन द्वारा सहस्रों अश्रद्धालुओं के विष भरे हृदय में, विश्वास-सुधा का परिपुनीत अभिसिञ्चन कर रही है।

उनकी उपासना और प्रेम, वर्षा की सरिता की भाँति बढ़ती हुई जा रही है—अनुष्ठान पर अनुष्ठान और पुरश्चरण पर पुरश्चरण किये जा रहे हैं। जरा भी शांति नहीं वरन् उत्साह की शुभ्र तरंगें ऊपर ही उठती जा रही हैं।

एक वार उनके पिताजी के ऊपर कानूनी जाल बिछाया गया। देखते-देखते लाखों के कारवार चौपट हो गये। व्यापार के सारे साधन--स्थानादि भी छिन गये। कल का राजा,

आज रङ्क बनकर दुनियाँ में प्रारब्ध भोग के नमूना बनकर जीने लगेगा।

चेतरामजी की उपासना बिना धैर्य खोये, गङ्गा की धारा के समान निरन्तर आगे ही आगे बहती जा रही थी। फिर उनके पिछले दिन कैसे लौट आये, यह किसी को पता नहीं चला और आज भी वे पूर्ववत् बाह्य ऐश्वर्य से सम्पन्न होकर माता की अञ्चल-छाया में विश्राम कर रहे हैं—उस विश्राम में माता की सेवा के कर्म और प्रेम की सुमधुरता लहरा रही है।

उस समय जयपुर में कोई कालेज नहीं था। सबको बनारस जाना पड़ता था, पर स्टेट के उम्मीदवारों के आगे किसी अन्य की बारी कभी आती ही नहीं थी। सन् १६३६ ई० में मैंने भी उम्मीदवारी का पर्चा साहस के साथ दाखिल कर दिया था और चेतरामजी के निर्देशानुसार सवा लक्ष गायत्री-अनुष्ठान का व्रत ले लिया था।

अनुष्ठान पूरा होने के प्रथम ही मेरा ट्रेनिङ्ग का नम्बर आगया और मैं १६४० में उत्तीर्ण हो गया।

सन् १६४८ में डूँडलोद आया तो यहाँ भी डाक्टर रावल जी एवं मास्टर कन्हैयालालजी की गायत्री-निष्ठा देखने का सौभाग्य मिला।

गायत्री-उपासना के बल से डाक्टर साहब अपने-आस-पास के सभी चिकित्सकों में अग्रगण्य और सफलता के लिए सुप्रसिद्ध हो रहे हैं। उनकी मुख-मुद्रा स्वभावतया ही स्थिर, गम्भीर, सौम्य एवं मृदुल है। सभी सन्तति भी सुन्दर एवं सदाचारी हैं। पूरी और सुखी गृहस्थी है। डाक्टर साहब इन सारी स्थितियों को गायत्री माता की ही दया और सद्प्रेरणा का परिणाम मानते हैं।

डाक्टर साहब के भाई रसिकलालजी रावल, अभी तक कई गायत्री-पुरश्चरण कर चुके हैं। एक बार ये कई महीने तक बीमार पड़े रहे, पर फिर भी अपनी दैनिक नियमित उपासना का परित्याग नहीं किया। उन्होंने बताया कि इस बीमारी में मुझे अपने बचने की आशा नहीं थी। गायत्री माता की कृपा से ही यह जीवन उपभोग कर रहा हूँ। उनकी सदा सुप्रसन्न--हास्यमयी--मुद्रा, बरबस हृदय को आकर्षित कर लेती है।

पं० कन्हैयालालजी का स्वभाव, प्रथम बहुत क्रोधी, उग्र, प्रतिहिंसामय एवं तिकड़मबाजी से भरा था। गायत्री-उपासना के प्रभाव से आज वे शांत, उदार एवं विश्व-प्रेम की भावना से भरते जा रहे हैं।

इन सारी सत् संगतियों के प्रभाव से मैं भी एक गायत्री-उपासक बन गया हूँ। शायद ही कोई ऐसा वर्ष हो, जिसमें मैंने सवा लक्ष जप न किया हो और इस उपासना के प्रभाव से अज्ञाततः ही मेरा मन ऐसा निर्मित कर दिया गया है कि, "यथा लाभ सन्तोप"। जिस स्वभाव और व्यवहार बनाने के लिए अनेकों को चिर दिनों तक साधना करनी पड़ती है, मेरा स्वभाव ही बन गया है। श्रद्धा और भक्ति को नित्यप्रति बढ़ते हुए अनुभव करता हूँ। कष्ट सहन करने में रस मिलता है। अहङ्कार क्रमशः घटता जा रहा है। अपने द्वारा होने वाले सभी सत्कर्मों को माता की कृपा-शक्ति से अनुप्रेरित मानता हूँ।

भयानक सङ्कटों से प्राण-रक्षा

(श्री प्रसादीलाल शर्मा, "दिनेश" कराहल)

मैं एक नितांत गरीब ब्राह्मण का बालक हूँ। मेरे बचपन

बड़े ही कष्ट से—कभी-कभी कई दिन तक भूखे और कभी अध-पेटे खाकर बीते हैं। पहले भी मैं अनियमित रूप से गायत्री-जप किया करता था किन्तु जब से किसी पवित्र प्रेरणा द्वारा मैं संयम-नियम सहित गायत्री - उपासना करने लगा, तब से हमारे सङ्कट क्रमशः हटते ही गये और आज १५०) डेढ़ सौ रुपये मासिक हमारी आय है। पत्नी, सन्तान, भाई आदि सारा परिवार सुखी और स्वस्थ है। सभी शांति और प्रेम से जीवन अतिवाहित कर रहे हैं।

मैंने "गायत्री महा विज्ञान" में पढ़ा था:—

"भगवान की अनेक शक्तियों में 'गायत्री' भी एक दिव्य शक्ति है, जिसकी उपासना करने से अनेक कठिन से कठिन सङ्कट भी टल जाते हैं और अभीष्ट मनोरथों की प्राप्ति होती है।" आज अपने अनुभव के बल से मैं उपरोक्त वाक्यों की सत्यता की घोषणा करता हूँ कि वे अविकल—सम्पूर्ण सत्य हैं। मैं अभी तक अनेकों गायत्री-अनुष्ठान कर चुका हूँ। अन्तर और बाहर के अनेक अनुभव जीवन में रत्न की भाँति संरचित हैं। उनमें से दो-एक अनुभव, उपासकों के विश्वास को स्थिर करने की भावना से लिख रहा हूँ।

विक्रम् सम्वत् २०११ के चैत्र नवरात्रि में, मैं सवा लक्ष का अनुष्ठान सम्पूर्ण करके उठा ही था कि स्वप्न में माता ने मुझे आदेश दिया कि पुनः सवा लक्ष का अनुष्ठान गङ्गा के पुनीत तटों पर जाकर करो। माता का आदेश पालन करने के लिए मैं चुपचाप श्रावण मास में, घर में किसी से बिना कुछ कहे ही हरिद्वार चला आया। यहाँ ब्रह्मकुण्ड पर कुछ समय ठहर कर अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिन जप करने के उपरान्त मेरी इच्छा गङ्गा-पुलिन पर ही जप करते हुए आगे बढ़ने की हुई

और बद्रीनारायण एवं केदारनाथ के दर्शन का लक्ष्य बनाकर चल पड़ा । अपना नियमित जप प्रतिदिन गङ्गा किनारे ही पूरा करता था । वर्षा ऋतु थी, अतः बारिश के कारण कभी-कभी गिरि-खण्ड टूट कर लुढ़कते-लुढ़कते नीचे आ गिरते थे, जिनके नीचे पिचकर अनेकों तीर्थ यात्री स्वर्ग-प्रस्थान कर जाते थे । मैंने ऐसे होते हुए कई बार अपनी आँखों देखा, फिर भी माता के भरोसे साहसपूर्वक आगे बढ़ता ही रहा । देवप्रयाग में मुझे बलदेवप्रसाद तथा उनकी भगिनी का साथ मिल गया, जिससे मेरे संयम-नियम एवं जप में बड़ी सहायता मिली । केदारनाथ जाते हुए कुण्ड-चट्टी का एक पर्वत-खण्ड टूटकर गिर पड़ा । दोनों ओर के यात्री खड़े होकर वह भयङ्कर दृश्य देख रहे थे । खण्ड गिरने के बाद लघु प्रस्तर खण्ड लुढ़क-पुढ़क कर बराबर गिरते जा रहे थे । रास्ता बन्द हो गया । सभी यात्री खड़े थे । मैं माता के भरोसे गायत्री-जप करते हुए पत्थरों के नीचे—टूटे हुए पहाड़ के बगल से चल दिया । सभी यात्री मुझे मना कर रहे, पर मुझे तो माता पर विश्वास था—सुरक्षित उस पार पहुँच गया । वहाँ सामान रखकर पुनः बलदेवजी तथा उनकी बहिन को लेने गया और उन्हें साथ लेकर आगे बढ़ा । वे दोनों भयभीत से मेरे पीछे आ रहे थे । सहसा ही एक बहुत बड़ा पत्थर ठीक मेरे शिर पर गिरा । दोनों ओर के यात्री यह देखकर एक बार ही हा हा कार कर उठे । मैं गायत्री-जप करता हुआ निश्चिन्तता से ही चलता रहा । ठीक जिस समय प्रस्तर खण्ड मेरे शिर पर गिर मुझे चूर-चूर कर देते, उस क्षण मैं एक थोड़े से झुके प्रस्तर खण्ड के नीचे आ गया । बड़ा पत्थर का टुकड़ा, उसी से आ टकराया और उछलकर गङ्गा की धारा में जा पड़ा । सारे यात्री हर्षित-विस्मित स्वर में नारायण-नारायण पुकार रहे थे ।

इस भाँति सुरक्षा सहित तीनों व्यक्ति केदारनाथ का दर्शन कर वापस लौटे। गणेश चट्टी पर ठहरा हुआ था। प्रातःकाल का समय था। काफी वर्षा हुई। सर्वत्र पानी ही पानी नजर आता था। वर्षा बंद होते ही हम तीनों उसी पानी में छप-छप करते हुए चले। कुछ दूर आने पर एक नाला ऊपर से गिरता हुआ मिला। हम लोग उसकी ओर बिना ध्यान दिये ही पूर्ववत् गति से आगे बढ़ते गये। सुभद्रा (बलदेवजी की बहन) इस समय आगे थी। नाले की धारा में पैर रखते ही वह गहरी जल-धारा में गिर गयी एवं बहती हुई गङ्गा की तीव्र प्रचण्ड धारा की ओर जाने लगी। मैं यह सोच ही रहा था कि उसका जीवन समाप्त हो चुका कि मैं भी एक प्रस्तर-खण्ड से टकराकर उसी नाले में जा गिरा। मेरा एक हाथ उसकी साड़ीपर जा पड़ा, जिसे मैंने जोर से पकड़ ली। जल में अचानक धँसते ही जिस भाँति सुभद्रा माँ! माँ! कहकर चिल्लाई थी, मैं भी उसी भाँति सहसा माँ! मा! कहकर पुकार उठा। सहसा ही लगा कि किसी ने हम दोनों को उठाकर, नाले के उस पार, गहरे जल से, छिछले जल में डाल दिया। सुभद्रा का भाई बलदेवजी तथा अन्य यात्री प्रसन्न और स्तम्भित थे। हम दोनों उठे और अगली चट्टी पर आकर ठहरे। उनके भाई एवं अन्य यात्री उस दिन नाले के इस पार आने का साहस नहीं कर सके। फिर दूसरे दिन हम सभी एक साथ मिले।

दूसरी चैत्र नवरात्रि में सरकारी कामों में लगे होने के कारण अनुष्ठान नहीं कर पाया--सोचा, पूर्णाहुति के दिन मैं भी गायत्री पोभूमि मथुरा जाकर पूर्णाहुति कर आऊँगा। नवरात्रि का छठा दिवस था। उस दिन हम सभी कार्य के सिलसिले

में एक धर्मशाला में ठहरे हुए थे। ब्राह्मी मुहूर्त्त की पवित्रता फैल रही थी। उसी समय अचानक ही मेरी नींद टूट गई। आँखें खोलकर देखा तो सामने एक परम स्वच्छ रूपवती कन्या खड़ी है। मेरे नेत्र खोलते ही वह कन्या अति माधुर्य्य भरी वाणी से कहने लगी—"पहले पुष्कर जाकर मेरे दर्शन कर आओ, तब गायत्री तपोभूमि जाना।" मैं कुछ पूछना ही चाहता था कि कन्या लुप्त हो गई। यह जाग्रत सपने की याद आज भी मेरे अन्तर में हलचल मचा जाती है। मैंने उसी दिन अपने घर में पुष्कर जाने के लिये तार दिया। मेरी पत्नी तथा तीन मेरे अन्य साथी अपनी-अपनी पत्नी और बच्चों सहित वहीं मोटर पर आ गये। सबों के सङ्ग प्रसन्नता से पुष्कर की यात्रा की।

रास्ते में मेरे एक अबोध नाती के चेचक हो गया और एक ही दो दिन में उसने भयङ्कर रूप धारण कर लिया। यहाँ तक कि हम लोग उसके जीवन से निराश हो गये। माता की कृपा से एक धर्मशाला में हमें ठहरने का स्थान मिल गया। वहाँ घर से भी अधिक सुविधा का स्थान था। हम उस बच्चे को उसी दशा में छोड़कर माता के भरोसे वहाँ से पुष्कर क्षेत्र के लिए चल दिये। परिवार के कुछ लोगों को बच्चे के साथ छोड़ आये। नवरात्रि के दिन ही वहाँ जाकर स्नान, दर्शन, जप, हवन किया। रात में स्वप्न में मुझे कहा गया—बच्चा स्वस्थ हो गया, तुम निश्चिन्त रहो। पुष्कर राज से लौटने पर मैंने धर्मशाला में आकर आश्चर्य से देखा—कल का मरणासन्न शिशु आज किलकारियाँ भर रहा है।

बोलिये गायत्री माता की जय!

गायत्री के प्रत्यक्ष अनुभव

(श्री प्रेमशङ्कर जैतली)

बात आज से लगभग पाँच वर्ष की है। जुलाई का मास था। हमारे कुटुम्ब के डाक्टर टी० सिन्हा महोदय और मेरे भाई साहब प्रयाग से आये, आगरे मेरे यहाँ रुके। वह मथुरा जा रहे थे। बातों-बातों में मथुरा जाने का उनका मन्तव्य पता चला कि कोई महात्मा हैं, उनसे मिलने जा रहे हैं। उन्होंने मुझसे कहा प्रेमजी, आप भी चलें। "मैं चलूँ" मैंने सोचा, हूँ; यह लोग भी किस मते के आदमी हैं—अच्छा चलो मथुरा की सैर ही कर लेंगे। कुछ मेरी धर्म परायण माताजी ने भी अनुरोध किया। मन से या बे मन से चल ही दिये।

हम लोग मथुरा पहुँचे और सायं लगभग छः बजे 'अखण्ड-ज्योति' के कार्यालय में पहुँचे। आचार्यजी से भेंट हुई। डाक्टर साहब ने आचार्यजी की प्रशंसा की। खैर, मेरे बोलने की बारी आई। कुतर्कवादी बोलता भी क्या, मैंने कहा "आप तो गायत्री महामन्त्र की बड़ी प्रशंसा कर रहे हैं। मुझे तो पर उल्टा अनुभव है" आदि-आदि अनेकों प्रकार से इस महा-मन्त्र की बुराई ही करता गया।

उत्तर में आचार्यजी चुप थे। फिर कुछ देर रुककर बोले, इस समय सन्ध्या हो गई है। इस समय इस विषय पर कुछ न कहूँगा। आप कल प्रातः ६ बजे आने का कष्ट करें।

हम लोग लौट आये।

अगले दिन स्नान आदि से निपट ६ बजे ठीक हम "अखण्ड-ज्योति" कार्यालय पर आये। आचार्यजी हमें तैयार ही मिले। वहाँ से हमें वह अपने पूजा के कमरे में लेगये। एक

छोटा सा कमरा एक ओर गायत्रीजी का बड़ा चित्र रखा था, अखण्ड दीपक उसके सामने जल रहा था। दूसरी ओर एक गद्दा उस पर साफ चादर थी। सब मिलकर एक सौम्य और सात्विक वातावरण उत्पन्न कर रहे थे।

सबसे पहले आचार्यजी ने मुझसे कहना प्रारम्भ किया बोले "आपका यह कहना है कि गायत्री-जप से आपको नुकसान हुआ सर्वथा गलत है।" और…… …

वह कुछ आगे कहते पर मैंने विषय बदलते कहा कि "गायत्री-मन्त्र से क्या भौतिक पदार्थ भी मिल सकते हैं।"

उत्तर था 'हाँ'

"क्या पैसा भी मिल सकता है जाप से ?"

"पैसा तो गायत्री माता के लिए एक अत्यन्त सामान्य-सी बात है।" आचार्यजी ने उत्तर दिया।

"अच्छा जी, तो फिर ठीक है आप कृपा कर ऐसा ही उपाय बतादें जिससे धन की प्राप्ति हो" मैंने कहा।

आचार्यजी ने एक साधारण सा विधान बताते हुए कहा– दो माला नित्य आप एक वर्ष तक जपें। दो माला में कितना समय लगेगा ?

मैंने उत्तर दिया, "लगभग आधा घण्टा।"

"आपको क्या वेतन मिलता है ?"

मैंने अपना वेतन बता दिया।

आचार्यजी बोले, "अच्छा तो आप एक वर्ष तक आधा घण्टा रोज जप करें। यदि आपको कोई लाभ न हो तो एक वर्ष बाद आधे घण्टे रोज के हिसाब से जो पारिश्रमिक बने, मुझसे ले जाइयेगा।"

मैं, यों तो समझिये एक पढ़ा-लिखा सभ्य आदमी ठहरा। यह अन्तिम वाक्य कुछ चुभ गये। साधना की सरलता और आडम्बरहीनता भी घर कर गई। निश्चय कर लिया चलो करेंगे ही। घर आकर आचार्यजी की विधि से और उन्हीं द्वारा मुफ्त दी हुई चन्दन की माला पर जाप करना प्रारम्भ कर दिया। दो-एक महीने बाद से ही स्पष्ट प्रभाव दीख पड़ने लगा। मैं उसी क्रम से जाप भी आगे बढ़ाने लगा। मालाएं दो से चार और चार से छः आदि क्रम से आगे बढ़ने लगीं। वर्षों की बुराइयाँ निकलने लगीं। असत्य में पर्याप्त कमी होने लगी और धीरे-धीरे आज मेरे जीवन में एक नवीनता है। कठिन से कठिन परिस्थिति भी सामने झुकती ही जाती है। आर्थिक परेशानी का तो प्रायः नाम भी नहीं है। मैं कह सकता हूँ कि मैं अपने ढङ्ग से सुखी हूँ।

यहाँ तक तो आपने मेरी कहानी सुनने का कष्ट किया। अब आइये मैं आपका कुछ ऐसे लोगों से परिचय करा दूँ जिन्होंने महामन्त्र की साधना बहुत कुछ मेरी देखा-देखी या मेरे अनुरोध से प्रारम्भ की। ऐसे व्यक्ति भी बहुधा मेरी ही भाँति पहिले भौतिक कष्टों को दूर करने के लालच से ही इस ओर आगे बढ़े। प्रायः उनकी कामना-पूर्ति हो गई और स्वतः उनकी साधना धीरे-धीरे निष्काम रूपिणी होती जा रही है। प्रारम्भ में आध्यात्मिक यात्रा की ओर अग्रसर होने या बढ़ते रहने का मार्ग सम्बल कामना ही थी। अतः तिथि क्रम का ध्यान न रखते हुए मैं कामना को ही प्रधानता देकर निम्नलिखित उप-शीर्षकों में उनसे आपकी भेंट कराऊँगा।

बिछुड़े हुए की वापसी एवं मिलन

(१) मेरी धर्म-पत्नी जी की एक सहेली श्रीमती रुक्मणी-देवी के पति रुष्ट होकर कहीं चले गये दे। ढाई वर्ष से उनका पता न था। मैं कुछ हस्त-रेखा सम्बन्धी ज्ञान रखता हूँ। अतः जब उनसे भेंट हुई तो उन्होंने उनके लौटने के विषय में पूछा। मैं उन दिनों "गायत्री के प्रत्यक्ष चमत्कार" पुस्तक पढ़ रहा था। उसी के एक लेख के आधार पर उनसे कहा यदि आप २६ दिन तक ११ माला नित्य अमुक विधि से जाप करेंगी तो आपके पति अवश्य लौट आयेंगे। ऐसी आर्त दशा में उन्होंने माता की आराधना विधिपूर्वक शुरू की और २७ वें दिन उनके पति जी उन्हें उनके घर आकर मिले।

(२) हमारे एक परम मित्र श्री मदनगोपाल जी वैजल के एक निकट सम्बन्धी का पुत्र घर से भाग गया था। उन्हें भी जाप करने को ऊपर वाली विधि से कहा गया। जाप मित्र जी की सुपुत्री ने ही बड़ी श्रद्धा और कष्ट सहते हुए किया। जाप के दो-तीन दिन बाद ही लड़के के गन्तव्य स्थान का पता चल गया और २३-२४ वें दिन तलाश कर वापिस लाया जा सका।

आर्थिक कठिनाइयों से छुटकारा

(३) इसमें यों तो सर्व प्रथम मेरा ही नाम आना चाहिए। पर मैं तो अपने विषय में पहिले ही लिख चुका हूँ। मेरे भाई पं० दयाशङ्कर जैतली, (वानवाली गली लखनऊ) पर कुछ कारणों से बड़ी आर्थिक अड़चनें आ गई थीं। कुम्भ के मेले में मेरी उनसे इस विषय पर बात-चीत हुई। मैंने उन्हें चन्दन की माला पर विधिपूर्वक २ माला नित्य जप करने की प्रार्थना की।

उन्होंने जप करना शुरू किया। आर्थिक परेशानियाँ स्वतः घटने लगीं और एक साथ ही उन्हें एक जगह से कुछ धन की प्राप्ति हुई।

(४) श्री कैलाशनाथजी माईथान आगरा का भी काम-धन्धा सब बन्द था। बड़ी कठिन परिस्थिति में वे विचारे आये। मेरे पास वह एक नौकरी के लिए सिफारिश के लिए आये थे। मैंने उनसे कहा भाई मेरी बात मानकर जाप शुरू करो तुम्हारा काम चलेगा। उन्होंने एक माला नित्य जाप करना प्रारम्भ कर दिया। वह नौकरी तो नहीं, पर अनायास ही तीन दिन के अन्दर ही उन्हें एक दूसरी नौकरी मिल गई और कार्य-व्यवस्था भी ठीक हो गई।

(५) एक दूसरे मित्र श्री हरीमोहनजी अग्रवाल ने शिक्षा कुछ क्रिश्चियन संस्थाओं में पाई है। वह अपनी देशी पूजा-प्रणाली को व्यर्थ का ढकोसला कहते थे। मेरे पास हस्त-रेखा दिखाने आये। उनका निकट भविष्य अन्धकारमय देखते हुए उन्हें मैंने सतर्क रहने को कहा। पर उन्हें तो विश्वास न था। दो-एक महीने बाद ही जब सामने भीषण परिस्थितियाँ आ गईं तो बोले, अच्छा भाई कोई उपाय है। उन्हें भी गायत्री-मन्त्र जपने को कहा। परिस्थिति की दारुणता स्वतः कम होती चली गई। आर्थिक कठिनाइयाँ भी एक अलौकिक ढङ्ग से कम होते देख उन्हें जाप की महत्ता एवं देशी पूजा-विधि एवं देवताओं में भी विश्वास हो गया।

बहिन का सुखपूर्ण विवाह

(६) पं० दयाशङ्करजी शर्मा माईथान आगरा मेरे एक सम्बन्धी हैं। उनकी आर्थिक परिस्थिति अत्यन्त ही सामान्य सी

है। इस पर भी उनके एक छोटी बहिन युवा रही जिसकी शादी करने की उन्हें अत्यन्त चिन्ता थी। उनके पिताजी मस्तिष्क से रोगग्रस्त हैं। विवाह के लिए लड़का तो कुछ लोगों की सहायता से मिल गया पर उस ओर के खर्चे से विचारों को विशेष परेशानी थी। सूखकर काँटा से हो गये थे। उनसे भी गायत्री माता का पल्ला पकड़ने को कहा और उनका सब कार्य ऐसे ढङ्ग, नियम, व्यवस्था और सजधज के साथ हुआ कि सामान्य हैसियत वाले न कर पाते। माता वास्तव में माता ही है।

कठिन रोगों से छुटकारा

(७) मेरी धर्म-पत्नी की एक सहेली को प्रसव में बड़ा भयङ्कर कष्ट होता था। जब से उन्होंने जाप प्रारम्भ कर दिया है तब से ऐसे कष्ट से उन्हें मुक्ति मिल गई है। ऐसी और भी बहिनें हैं जिन्हें गायत्री अभिमन्त्रित जल पिलाने से प्रसव पीड़ा में भारी कमी हुई है।

(८) एक अन्य सम्बन्धी श्री मुन्नूलालजी जैतली प्रयाग निवासी की लड़की श्रीमती प्रेमोजी के एक बच्चे की हालत अत्यन्त खराब हो गई थी। गला फूल गया था। डाक्टर अपना प्रयत्न कर रहे थे पर सब व्यर्थ। निदान प्रयागवासी पण्डित समुदाय की प्रचलित विचारधारा के प्रतिकूल बच्चे की माता और नाना ने गायत्री माता को पुकारा। रात्रि हो चुकी थी पर जाप और गायत्री चालीसा का पाठ चलता रहा। सवेरा होते-होते तबियत ठहर गई और साधारण सी से बिलकुल ठीक हो गया।

भूत व्याधा से मुक्ति

(६) मेरी एक विधवा भाभी हैं। प्रयाग में दूसरे भाई पं० ताराशङ्करजी जैतली के यहाँ आजकल रहती हैं। उनके ऊपर पिछले कुछ वर्षों पूर्व एक प्रेत-आत्मा आने लगी। पहले तो हिस्टीरिया समझ उसकी ही विविध चिकित्सा कराई गई पर कोई लाभ न हुआ। बाद में इसकी बात पता चली और अनेक भूतविद्या विशारदों से झड़वाया पर लाभ न हुआ। निदान उन्हें ही गायत्री-जप प्रारम्भ करने को कहा गया। जाप के प्रभाव से धीरे-धीरे उन्हें इस व्याधा से पूर्ण छुटकारा मिल गया।

विविध प्रयोजनों की सिद्धि

(१०) एक अन्य मित्र कई बार उच्च पी० सी० एस० एवं आई० ए० एस० की परीक्षाओं में बैठ चुके थे। एक बार तो उत्तीर्ण हो गये पर इन्टरव्यू में रह गये। निदान गायत्री माता का आश्रय लेने पर आज वह एक उच्च पदाधिकारी हैं।

(११) पूज्य भाई ताराशङ्करजी पर भी इन दिनों कुछ काली घटाऐं आई हैं पर गायत्री जाप के प्रभाव से एवं आचार्य जी की कृपा से उनका काम आगे बढ़ रहा है और आशा है पूर्ण विजय होगी।

(१२) श्री काशीनाथजी भी नित्य जप करते हैं। एक वार रोकड़ खाते में भूल से कागज पर गलत तिथि डालने के कारण उन पर कठिन दोष लग रहा था। माता से प्रार्थना करने पर वह कागज पुनः हाथ आ गया और इस प्रकार कलङ्क लगने से बचा।

निष्काम साधना एक उच्च कक्षा है। जो व्यक्ति परमार्जित दृष्टिकोण के एवं विश्वासी हैं, जिन्हें माता के सर्व शक्ति-

मान होने पर विश्वास ही नहीं वरन् जो जगत की क्षणभंगुरता को भी उसके सही रूप में जानते हैं, जो ईश्वर के नाम पर सांसारिक कष्टों को साहस से ही नहीं अपितु निर्लिप्त भाव से सह लेते हैं, वह श्रद्धा के पात्र निष्काम साधना से ही दैवी आत्मानुभूति अनुभव कर वास्तविक सुख के अधिकारी हैं। ऐसे लोगों को तो सकाम साधना एक परिहास मात्र लग सकती है। पर मेरी सबसे करबद्ध प्रार्थना है कि जिस कौतूहल से वह अपने छोटे से शिशु को 'अ' 'ब' सीखते देख उल्लसित होते हैं और उसकी छोटी सी जानकारी को भी पीठ थपथपा कर बड़ा बताते हुए उच्चकोटि की कक्षाओं एम० ए० आदि तक पहुँचा देते हैं, वैसे ही इन छोटी कक्षा वाले सकाम प्रवृत्ति के प्रारम्भिक विद्यार्थियों को आध्यात्म विद्या, गायत्री महामन्त्र की ओर रुचि उत्पन्न करने में सहायक हो।

गायत्री द्वारा आश्चर्यकारी लाभ

(श्री० विश्वनाथ पाण्डेय, दानापुर)

एक बार मैं उद्यान में बैठकर गायत्री-जप कर रहा था। सूर्यदेव अपनी किरणें समेट कर विदाई का उपक्रम कर रहे थे। अचानक करुण कराहों से भरी हृदय-बोधक वाणी मुझे सुनाई पड़ी। उसी समय मेरा जप भी समाप्त हो रहा था। मैं दौड़ा गया और जाकर देखा एक घायल लाश के समान निस्पन्द पड़ा था। उसमें उठ सकने की जरा भी सामर्थ्य नहीं रह गई थी। मैंने गायत्री-मन्त्र से जल को अभिमन्त्रित करके आँखों में छींटे मारे तथा मन्त्र पढ़ते हुए उसके शरीर पर हाथ फेरने लगा। सहसा ही वे पूर्ण स्वस्थ की भाँति अपने आप उठकर बैठ गये और मुझे आग्रह और सम्मान के साथ अपने घर ले गये। वहाँ

बहुत सी वार्ताऐं हुईं। उसने पूछा—मैंने तो समझ लिया था कि मैं अब मर ही चुका, फिर किस उपाय से आपने मुझे बचा लिया? मैंने उत्तर दिया—मैं तो सिवाय गायत्री-मन्त्र के और कुछ नहीं जानता। फिर उसने पूछा—आपने गायत्री उपासना कैसे और क्यों प्रारम्भ की? उसकी सच्ची जिज्ञासा देखकर मैंने अपने जीवन के पृष्ठ खोलकर उसके सामने रख दिये—

मैंने संसार के आकर्षणों के कारण अनेकों बुरे अभ्यासों को अपना स्वभाव बना लिया था। मेरे समझने और समझाने पर भी ये कुटेवें मेरा पीछा नहीं छोड़ती थीं, मैं परेशान था।

हमारे ज्येष्ठ भ्रात श्री भोलानाथजी गायत्री-उपासक हैं, उन्होंने गायत्री-उपासना के बल से, जिन्नों को हमारे घरों से सदा के लिए हटा दिया। ये जिन्न (प्रेत) सदा हमारे घरों में नाना प्रकार की भली-बुरी वस्तुऐं बर्षाया करते थे। इनके गायत्री-अनुष्ठान करते ही वे सारे उपद्रव सदा के लिए बन्द हो गये। गायत्री-मन्त्र का ऐसा प्रत्यक्ष प्रभाव देखकर मेरा भी मन इस ओर खिंचा और मैंने अपने कुटेवों को दूर करने की भावना से भ्राताजी की देख-रेख में २४००० के दो अनुष्ठान किए। मैं विस्मय से भर उठा कि जिन कुभावनाओं को हटाने में मैं वर्षों से परेशान था, मेरे सारे पुरुषार्थ जिसे दूर करने में सदा असफलता की निराशा भरे घूँट पीते रहे, उसे ये दो ही लघु अनुष्ठानों ने कैसे मुझसे सदा के लिए निकालकर बाहर कर दिया? इस अनुभव के आधार पर तो लगता है कि मैं दावापूर्वक कह दूँ कि इतनी शीघ्रता से अन्तर को निर्मल बनाने वाला, संसार भर में कोई मन्त्र नहीं है। कोई भी श्रद्धा निष्ठापूर्वक इस मन्त्र की अजमाइश कर ले।

हमारे पड़ोस की एक स्त्री को सदा ही प्रेत सताया करता था। एक दिन हमारे भ्राताजी को उस पर दया आ गई। उन्होंने एक दिन प्रेत लगने की हालत में गायत्री अभिमन्त्रित जल के छींटे उसके शरीर में मारे। वह मूर्च्छित हो गई। कुछ देर उपरान्त उठी। भाईजी ने गायत्री अभिमन्त्रित जल उसे पिला दिया। तब से वह सदा के लिए प्रेतों से मुक्त हो गयी।

एक बार हमारे आरा निवासी सम्बन्धी रामगोपालजी के छोटे भाई के विवाह की बरात जाने के लिए तैयार हो रही थी। उसी समय उनके पाँच वर्ष के पुत्र श्री अमरकुमार की दशा अचानक ही इतनी खराब हो गई कि सभी उसके जीवन से निराश हो गए। रामगोपालजी भी गायत्री-उपासना के प्रेमी थे और हमारे भ्राताजी भी संयोग से वहीं उपस्थित थे। यह दशा देख ये दोनों गायत्री माता की आराधना में लग गए। थोड़ी ही देर में जप किया था, कि बालक पूर्ण स्वस्थ होकर उठ खड़ा हुआ और उल्लास से बारात वालों ने अपनी मङ्गल यात्रा आरम्भ की।

आरा के श्री रामकरणजी निमन्त्रण पाकर किसी के यहाँ भोजन करने गए। भोजन करने के उपरान्त घर आते ही उनका मस्तिष्क विकृत हो गया। वे पागल होकर यत्र-तत्र फिरने लगे। एक दिन उसने स्वयं अपनी जाँघों को ईंटों से मार-मारकर हाथी-चर्म सदृश बना लिया। उनका मनुष्य-जीवन निरर्थक हो गया। एक दिन कुछ लोगों के परामर्श से उन्हें पकड़कर रामगोपाल जी (हमारे सम्बन्धी गायत्री-उपासक) के पास ले आए। उन्होंने उसकी कल्याण-भावना से चावल को गायत्री-मन्त्र से अभिमन्त्रित कर उनके शरीर पर छींटे मारे, जिससे वह मूर्च्छित के समान गिर पड़ा। कुछ देर बाद फिर वे उठे और पीने के

लिए जल माँगा। उन्हें फिर गायत्री अभिमन्त्रित जल पिलाया गया—इसके उपरान्त वे पूर्णतः स्वस्थ हो गए।

माता ने प्राण-रक्षा की

(श्री कृष्णलाल 'आनन्द' एम० ए० दिल्ली)

पाकिस्तान बनने के दिनों हिन्दू, मुसलिम दङ्गों की क्रिया का नङ्गा नृत्य हो रहा था। ११ अगस्त १६४७ ईसवी को मैं कराँची में था और मेरा आतङ्कित परिवार लाहौर छावनी में अस्त-व्यस्त था। पाकिस्तान बनने की घोषणा हो चुकी थी। सीमा पर गुण्डों की दुष्टता, क्रूरता तथा निर्दयता की वीभत्स और गर्हित क्रियाओं का कोई पारावार न था।

गायत्री माता को हृदय और मन में धारण कर कराँची से चल पड़ा। भीतर काँप रहा था। लाहौर छावनी स्टेशन आया। वहाँ गाड़ी तीन घण्टे तक रुकी रही। पूछने पर ज्ञात हुआ कि आगे लाहौर स्टेशन पर पहुँचने की पूर्व ही गुण्डे, हिन्दुओं को चुन-चुनकर गाड़ी से निकालकर मनमानी अनाचार और अत्याचार करते हैं। छुरे और गोलियों से शरीर को छलनी बना देते हैं। इन समाचारों को जानकर मेरे प्राण भयाकुल हो उठे, पर क्या परिवार को उस प्रलयङ्कर आतङ्कों के बीच ही छोड़ दूँ ? फिर माता को तीव्रता से धारण किया और अपनी सारी शक्ति और वेग से गायत्री जपते हुए चल पड़ा। मुझे यह भी खबर मिल चुकी थी, कि जिस छावनी में मेरे परिवार ने आश्रय लिया था, उसे लीगी-गुण्डों ने जला दिया। अन्तर में वेदना और दर्द से त्राहि-त्राहि मच रही थी और मैं जा रहा था। कुछ दूर ही गाड़ी आयी थी कि ईंट-पत्थरों की वर्षा से उसका स्वागत करना प्रारम्भ हो गया। ज्यों-ज्यों गाड़ी

आगे बढ़ती, हमारे सामने मृत्यु और नृशंस हत्या की भयङ्करता सम्मुख आती अधिक स्पष्ट दीखती जाती थी। झुण्ड के झुण्ड खड़ी भीड़ पैशाचिक नारे लगा रही थी, पर माता की कृपा से सिगनल की अवहेलना करती हुई गाड़ी ने स्टेशन पर जाकर ही विराम लिया।

स्टेशन पर सभी की आँखें भय-कातर हो चारों ओर निहार रही थीं। हम लोग उतरे। सभी डर से मृतक-शांति धारण किए हुए थे। विश्राम-गृह पठानों से भरा था। मैं अपना सामान चौकीदार के हवाले करके स्टेशन से बाहर, शरणार्थी-कैम्प पहुँचा। वहाँ हिन्दू सेवा-समिति वाले यथाशक्ति शरणार्थियों को सुरक्षित स्थान में पहुँचाने का प्रयत्न कर रहे थे, पर राक्षसी शक्ति की उद्दण्डता इतनी बढ़ रही थी कि वे लोग भी सुरक्षा की निश्चिन्तता देने में असमर्थ थे।

ज्यों-त्यों प्रातः हुआ। शौच-स्नान से निवटकर माता की उपासना की। अर्चना में पुष्प के बदले आँखों ने मोती-बूँदों की वर्षा की। इसके उपरांत "मीयामीर छावनी" जहाँ हमारा परिवार विविश और निसहाय पड़ा था, जाने की सोचने लगा। स्टेशन से बाहर गया। वहाँ सहसा ही एक मुसलमान ताँगे वाले ने आकर कहा—मैं तुम्हें उस छावनी में पहुँचा सकता हूँ। उस समय वहाँ तक पहुँचाने का ताँगे का भाड़ा २०) बीस रुपये साधारण सी बात थी। मैंने पूछ लिया—कितने रुपये लोगे? उसने बड़े प्रेम से कहा–ढाई रुपये। मैंने माता का स्मरण किया और सामान लेकर ताँगे पर चढ़ गया। कुछ ही दूर आगे देखा गुण्डों का एक दल छुरा, तलवार और लाठी लिए खड़ा है। उसे देखते ही मैंने समझ लिया, माता को इन्हीं दुष्टों के हाथों मुझे मरवाना था। मृत्यु को प्रत्यक्ष सामने देखकर मैं स्तब्ध हो रहा

ज्यों-ज्यों ताँगा गुण्डों के निकट पहुँचाने जा रहा था, त्यों-त्यों मृत्यु की विभीषिका मेरे सामने स्पष्ट से स्पष्टतर होती जा रही थी, पर आश्चर्य ! महाआश्चर्य !! निकट पहुँचते ही उन गुण्डों ने बिना कुछ पूछे-जाँचे ही ताँगे का रास्ता छोड़ दिया। कैसा चमत्कार ! अब तो सारे भयों को बिसार कर मेरा अन्तर-हृदय, माता की करुणा के मद से प्रमत्त और प्रफुल्ल हो रहा था। पथ में उसी भाँति दो-तीन और भी गुण्डों के दल मिले, पर सभी ने ताँगा देखते ही रास्ता खाली कर दिया और मैं सुरक्षा और प्रसन्नता सहित अपने आतङ्कित, निःसहाय परिवार से जा मिला।

माता ने मुझे मृत्यु के द्वार से बाहर निकाल लिया है। उनकी करुणा की यह सुरभि दिग्गिन्त में व्याप्त हो उठे, इसलिए मैंने उन्हीं की 'करुणा-गाथा' अपने हाथों लिख डाली है।

सिंह के चंगुल से बचा

(श्री० गोविन्दप्रसाद शर्मा, शिवपुरी)

मैंने एक बार सवा लक्ष तथा दूसरी बार चौबीस हजार के गायत्री-अनुष्ठान किये हैं। इससे मुझे जो लाभ और अनुभव हुए हैं, उसे मैं ठीक उसी प्रकार प्रगट करना नहीं चाहता, जिस प्रकार लोभी व्यक्ति अपना धन छिपाता है।

शिवपुरी के अनेक गायत्री-उपासकों के जो लाभ हमारी जानकारी में आये हैं, उन्हें लोक-हित के लिए प्रगट कर रहा हूँ।

पं० रामदास शर्मा, (शिवपुरी) अपने नव दाम्पत्य-जीवन में पारस्परिक कलह और विग्रह से अत्यन्त ही व्यथित और दुःखी रहते थे। किसी सद्‌प्रेरणा से उन्होंने इसकी शान्ति

के लिए गायत्री-उपासना प्रारम्भ कर दी। कुछ ही दिनों में दोनों के हृदय में रुका हुआ प्रणय-स्रोत फूट पड़ा और दो सरिताओं के सङ्गम की भाँति वे एक धारा बनकर बहने लगे। क्रोध और कलह के स्थान में सद्भावना, प्रेम और सेवा की वृत्ति संस्थापित हो गई। वे सीता-राम के दाम्पत्य को आदर्श बनाकर चल रहे हैं।

एक दिन वे सरकारी काम से एक गाँव जा रहे थे। रास्ते में अचानक ही एक झाड़ी से शेर निकल कर, उनके सामने खड़ा हो गया। उन्होंने समझ लिया—अब तो प्राण की रक्षा करना मेरी शक्ति से बाहर की बात है। ऐसा सोच वे उसी स्थान पर खड़े होकर गायत्री-जप, ग्राह-ग्रसित गज की भावना में करने लगे। शेर भी कुछ देर तक सामने गुर्राता रहा—फिर सहसा ही उसने छलाँगें मारीं और दूर की झाड़ियों की आड़ में चला गया।

ऐसे सङ्कट अवसर पर सिवाय माता के और कौन अपने पुत्र के प्राण बचा सकती है?

श्री माधोप्रसादजी (शिवपुरी) संग्रहणी रोग से संक्रमित थे। अनेकों चिकित्सकों से अनेकों प्रकार की चिकित्सा कराई, पर रोग-मुक्त नहीं हो सके। चिकित्सकों ने यह कह दिया यह असाध्य संग्रहणी है। यह इसके प्राण के सङ्ग ही जायगी। यह सुनते ही उनकी स्नेहप्लुतापत्नी—श्री लाड़ोदेवी की आँखें वर्षा की धारा-सी बह चलीं, पर मुख से आह तक भी नहीं निकली। पता नहीं किस प्रेरणा से वह मन ही मन गायत्री माता की शरण गयीं और उपासना में तल्लीन हो गयीं। सभी ने आश्चर्य से देखा कि—मृत्यु-घोषणा के दूसरे ही दिन उनके दस्तों की संख्या में काफी कमी हो गयी। उस दिन से दशा

सुधरती ही चली गई। उसके चिकित्सक आज भी पूछते रहते हैं कि किस औषधि से तुम्हारी असाध्य संग्रहणी आराम हो गयी? यह सुनकर पत्नी की आँखों में, माता के प्रति कृतज्ञता के आँसू उमड़ पड़ते हैं और टप-टप कर पृथ्वी के सूखे रज-कणों को गीली करने लगते हैं।

श्री भँवरसिंह की पत्नी गुलाबबाई (शिवपुरी) का अपने परिवार के अन्य लोगों से सदैव झगड़ा होता ही रहता था, इससे वह अपने जीवन से ही घबड़ा उठी। उन्होंने अपने आर्त्त-हृदय से गायत्री माता की प्रार्थना और जप करना शुरू किया, कुछ ही दिनों में वातावरण ऐसा बदल गया कि अब सबों को सबसे मिलकर ही रहने में रस आने लगा था। झगड़ा और कलह में अब किसी को रुचि ही नहीं रह गई।

श्री० देवीसिंहजी की पत्नी श्री० सावित्रीबाई (शिवपुरी) भूत-बाधा से कई वर्षों से कष्ट भोगती आ रही थी। एक दिन संयोग से इस सम्बन्ध में उसने बातें कीं। मैंने उसे विधिवत् गायत्री-उपासना करने को कहा। उस त्रस्त भयभीत नारी ने उपासना प्रारम्भ कर दी और आज वह भूत-बाधा से सदा के लिए मुक्त हो गयी है।

नास्तिक से आस्तिक बन गया

(श्री० सदाशिवकृष्ण बोंडखे, खामगाँव)

मैंने अपने इतने दिन के जीवन में, कभी देवी-देवताओं तथा भगवान का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया। मेरे पेट में रोगों ने अपना स्थायी निवास बना लिया था। उन्होंने अपने बाहुबल से अनेकों चिकित्सकों की औषधि-सेना का विनाश कर, अपना घर आबाद कर रक्खा था। मैं इन संघर्षों से ऊब गया था।

चुपचाप रोग देव का कटु-तीव्र दंशन सह लिया करता । मेरी पत्नी ने बड़े ही स्नेह-स्निग्ध स्वर में कहा--भगवदाराधन करो, तभी तुम्हारे रोग दूर होंगे, मैंने उसे हँसी में उड़ा दिया । साथियों ने समझाया, तो उनका उपहास किया ।

एक बार हमारे यहाँ के सेक्रेट्री महोदय श्री गायत्री तपोभूमि मथुरा से होकर आये और यहाँ आकर गायत्री-मन्त्र की बड़ी-बड़ी महिमा हमें बतायीं । मैंने उसका तीव्र प्रतिवाद किया । इस पर उन्होंने कहा--कि तुम इसका प्रयोग करके परीक्षण कर सकते हो । इस वाणी में उनकी सारी श्रद्धा-शक्ति केन्द्रित थी । मैंने भी इस बार, जाँच के तौर पर ही सही, उसे स्वीकार किया और नित्य-नियमित जप करने लगा । मैं स्वयं विस्मत था कि कैसे और क्यों स्वयं ही मेरे पेट के रोग एवं आर्थिक तथा अन्य समस्याएं स्वतः ही सुलझने लगीं थीं, जिन्हें मैं अपनी सारी बुद्धि एवं अन्य शक्ति लगाकर भी सुलभ न कर पाया था ?

आज मैं सबों का उपहास सहकर भी कट्टर आस्तिक हूँ और दुनियाँ के सभी नास्तिकों को चुनौती देता हूँ कि आप सभी गायत्री-महामन्त्र का परीक्षण करें ।

रोग किले को छोड़कर भाग गया है । आज वहाँ गायत्री माता की कृपा रूप स्वास्थ्य देव विराजमान हैं ।

श्री गणपत विठोवा, खामगाँव के परिवार के एक न एक व्यक्ति सदा किसी न किसी रोग से ग्रसित ही रहते थे । कितने रुपये खर्चा किये गये, पर इस क्रम में अन्तर नहीं आया । यहाँ तक कि आर्थिक दशा भी अब खर्च करने योग्य नहीं रही । इन्होंने भी उसी महामन्त्र की प्रेरणा से गायत्री उपासना प्रारम्भ की और कुछ ही दिनों में पारिवारिक रोगों के साथ आर्थिक कष्टों से भी छुटकारा पा गये ।

जीवन के सभी क्षेत्रों में लाभ

(पं० राधेश्याम शर्मा, टिमरनी)

माता की कृपा की कोई सीमा नहीं है, केवल हमें उसके अनुकूल होने की आवश्यकता है। मैं और मेरी धर्मपत्नी दोनों ही गायत्री उपासना करते आ रहे हैं, पर मेरी अपेक्षा पत्नी की निष्ठा और भक्ति विशेष है। 'अखण्ड ज्योति प्रेस' की दिव्य पुस्तकें ही मेरी पथ प्रदर्शिका हैं। हम अपने जीवन में पग-पग पर अनुभव करते हैं कि माता हमारी सहायता करने के लिये सदा खड़ी रहती हैं मेरी जीविका का आधार नौकरी है, फिर भी कभी अर्थ के अभाव का अनुभव होते ही माता उसे किसी भाँति पूरा कर देती है। मेरी नौकरी में जब बदली के अवसर आते तो माता ने सदा मेरे इच्छित स्थानों में ही मुझे नियुक्त करवाया और अनचाहे-चाहे, मेरे ऊपर के सभी पदाधिकारी गण मुझसे सदा प्रसन्न ही रहते हैं। ऐसी कृपाओं के हमारे जीवन में सदैव दर्शन होते ही रहते हैं।

एक बार किसी भयङ्कर ग्रह दोष के कारण मैं बीमार पड़ा। उपचार करते हुए भी रोग बढ़ते ही गये और एक दिन मैं बेहोश हो गया। शरीर शीतल हो गया, नाड़ियाँ शिथिल पड़ गयीं। सभी घबड़ा उठे और सिसकियाँ भरने लगे, पर मेरी धर्मपत्नी की श्रद्धा अविचल थी। उसके मुख पर घबड़ाहट की छाया भी न पड़ी, यद्यपि एक महीने मे मेरी सेवा करते हुए उसे भली प्रकार भोजन और शयन का भी पूरा अवसर नहीं मिल पाया था। पाँच घन्टे तक मैं बेहोश रहा और वह उपासना में तल्लीन रही। उसके आते ही मैं ठीक उसी भाँति होश में आ गया, जैसे कोई नींद पूरी होने पर उठ बैठता है। फिर तो एक सप्ताह में ही मैं पूरा चंगा हो गया।

इसी प्रकार मेरी बड़ी बच्ची मोतीझरे की बीमारी में अपना होश-हवास खो बैठी। उसने (मेरी पत्नी ने) माता से प्रार्थना की और बच्ची होश में आ गयी और दो-चार दिन में रोग-मुक्त भी हो गयी। हम तो सब काम करते हुए माता के भरोसे निश्चिन्त रहते हैं। हमें विश्वास है कि माता कभी बुरा न होने देगी।

निराश माता-पिता को सान्त्वना

(डा० जी० के शर्मा, करंजा)

मेरे जीवन में सबसे प्रथम, 'अखण्ड-ज्योति' रूपी गुरुदेव ने आकर्षित कर मुझे गायत्री-उपासना में प्रवृत्त कर दिया पर इसे सींचकर पुष्ट करने में जिस प्रत्यक्ष चमत्कार का हाथ है, आज मैं उसे ही वर्णन करना चाहता हूँ।

उपासना को स्वीकार करने के कुछ ही दिन बाद मुझे दक्षिण भारत का भ्रमण करने का अवसर प्राप्त हुआ और इस पुण्य यात्रा में श्री गायत्री स्वरूपजी महाराज के दर्शन का सौभाग्य मुझे गायत्री माता ने प्रदान किया। मैंने पाया कि अपनी उत्कृष्ट कल्पना के सहारे जिस ऋषित्व को अन्तर्गत में सुचित्रित कर रक्खा था, वह जैसे साक्षात्कार हो गया हो। मैंने श्रद्धावनत हो अपने को उन पावन पद-पद्मों में डाल दिया।

उस दिन एक गुजराती समाज में विवाहोत्सव था। उसका पुत्र, जो कई दिनों से बीमार था, उसकी हालत उस दिन बेहद खराब हो गयी। अनेकों डाक्टर आये। सभी ने कहा कि इसके बचने की कोई आशा नहीं है। परिवार में हाहाकार मच गया। रुदन-ध्वनि से आकाश भी प्रकम्पित हो गया।

उनके किसी हित-चिन्तक ने श्री गायत्रीस्वरूपजी महाराज को बुला लिया। उनके आते ही बालक के माता-पिता दोनों हाहाकार करते हुए चरणों में आ गिरे और लोटने लगे। उनके करुण विलास से महात्माजी के परम दयालु हृदय की वाणी फूट पड़ी, सहसा ही उनके मुख से निकला--तुम्हारे पुत्र का बाल-बाँका भी न होगा। सहसा ही आश्वासन का वातावरण छा गया। सभी के रुदन, एक वर्गीय ही रुक गये। उन्होंने पवित्र जल मँगाकर गायत्री से अभिमन्त्रित कर बालक को पिला दिया। घण्टों से बेहोश बालक नींद टूटने की भाँति उठ बैठा। चिकित्सकगण विस्मित और निस्तब्ध से देखते रहे।

उसके उपरान्त विवाहोत्सव किसी भाँति पूरा कर लिया गया। बालक का ज्वर छूटा नहीं था। फिर एक दिन वेग आया और बालक मुमुर्ष-अवस्था में पहुँच गया। आज तो आशा ही-नहीं रह गई थी। आज भी महात्माजी को बुलाया गया। मैं भी साथ था। महात्माजी भी उसकी मरणासन्न दशा से कुछ चिंतित दीख पड़े। सहसा ही वे बोले--आज या तो हम दोनों ही इस विश्व में रहेंगे या बालक और हम दोनों ही कूँच कर जाँयगे। ऐसा कहकर पुनः उन्होंने गायत्री अभिमन्त्रित-जल बालक को पिलाया और गायत्री यज्ञ का भस्म, जो अपने साथ लिए आये थे, रोगी के सार शरीर पर लगाना प्रारम्भ कर दिया। अब बालक पूर्ण होश में था और हम लोग विस्मित नेत्रों से यह आश्चर्य-लीला देख रहे थे। फिर उन्होंने और जल मँगवाया तथा उसे भी गायत्री से अभिमन्त्रित करके बोले-इसे प्रति दिन पिलाते रहना, मैं अभी कार्यवशात् बम्बई जा रहा हूँ।

गायत्री के प्रति अनजाने ही मेरी श्रद्धा गहरी होती जा रही थी।

बम्बई से कुछ दिनों के उपरान्त स्वामी जी लौटे। बालक स्वस्थ था। उसने चरणों से साष्टांग प्रणाम किया और कहा-गुरुदेव ? आज मुझसे आप गुरु-दक्षिणा लीजिये। उन्होंने कहा-गुरु दक्षिणा ? क्या सचमुच ही तुम देने को तैयार हो ?

बालक ने स्वीकृति जतायी, इस पर स्वामी जी बोले-मैं तुम्हें गुरुमन्त्र देता हूँ, तुम विधिपूर्वक जीवन भर इसकी नियमित उपासना करते रहना। यही मेरी गुरु दक्षिणा है।

इस घटना से प्रभावित होकर मैं मुग्ध होकर दंड की भाँति उनके चरणों में गिर पड़ा। वे मेरे शिर पर अपना कल्याण-वरद-हस्त फेर रहे थे।

गायत्री माता के आश्रय में

(प्रेमचन्द्र, अग्रवाल, महोबा)

"गायत्री मन्त्र का थोड़ा सा जप करते ही बहुतों के मन में यह भ्रम या झूठी आशा हो जाती है कि अब हमारे किये हुए पूर्व के पाप सदा के लिये नष्ट हो गये और पुण्य कर्म संरक्षित हो गये, पर ऐसा होने से तो कर्म का सारा विधान ही नष्ट हो जाय, फिर पाप करने वालों के लिये कोई दण्ड-विधान या किसी भय की कोई बात ही न रह जायगी।" ये शब्द मेरे जीवन के घात-प्रतिघातों से ध्वनित होकर साक्षात् सत्य पर आधारित हैं।

हमारे दुःखद प्रारब्ध ने हमारे दो पुत्रों को स्वल्प आयु में ही हम से छीन लिया। हमारी सारी चिकित्सा के प्रयत्न व्यर्थ हो गये। इस दुस्सह घटना से हम सब भी अवश्य ही व्यथित हुए पर बच्चे की माता तो इस सन्ताप से गल सी गयी। उसे नींद नहीं आती। कुछ दिनों में पागलपन के लक्षण प्रगट होने लगे। उसी समय हमारे सौभाग्य से एक ब्रह्मचारीजी पधारे। उन्होंने हमें प्रतिदिन गायत्री उपासना के साथ हवन करने की प्रेरणा दी

हम लोगों ने बड़ी आशा से माता का आश्रय लिया। पागलपन भी शांत हुआ और एक सन्तान की प्राप्ति हुई।

जब हमारी दृष्टि अतीत की ओर दौड़ जाती है, तो स्पष्ट भासित हो जाता है, कि हमारे पूर्व के दुष्कर्मों से बने प्रारब्ध के कारण हमारी पत्नी या तो पागल हो जाती या हृदय रोग से मर ही जाती, क्योंकि भौतिक जगत के सारे औषधि एवं चिकित्सक अपना पराजय स्वीकार कर चुके थे। इसी से हम बलपूर्बक कह सकते हैं कि गायत्री उपासना से दुष्ट से दुष्ट प्रारब्ध को भी थोड़ा बहुत बदल जाना ही पड़ता है। आज हमें धैर्य्य और सहनशीलता की जो शक्ति मिली है, वह हमारे अभ्यास या परिस्थिति की देन नहीं,वरन् स्पष्टतया गायत्री माता की कृपा ही है। आप आश्चर्य करेंगे कि हम सभी अपने को सुखी अवस्था में अनुभव करते हैं।

एक बार मुझे अपने सम्बन्धी से अनिवार्य आवश्यकता के कारण पाँच सौ ५००)रुपये लेने थे। इसके लिये तीन बार झाँसी जा-जाकर लौट आता था। चौथी बार अपने प्रयत्न और पुरुषार्थ का सारा भरोसा छोड़ कर केवल माता का सहारा लेकर गया। माँ के नाम पर बिना निवेदन और खुशामद के सीधे सादे शब्द में अपनी माँग उपस्थित कर दी। एक मुनीम महोदय आना-कानी करने लगे, पर दूसरे ने कहा—व्यर्थ की बहानाबाजी से क्या—इन्हें रुपये दे देना ही ठीक है।

मुझे रुपये मिल गये और मैं माता को धन्यवाद देता हुआ घर आकर काम को सम्पन्न एवं सफल बना सका।

गायत्री-उपासना के कुछ अनुभव

(श्री दिव्य ज्योति ए० जोशी, मालद)

मेरी आर्थिक दशा बड़ी खराब थी। कोई उपाय नजर नहीं आता था। लाचार होकर मैंने गायत्री माता से प्रार्थना की और अचानक एक दिन ऐसा हुआ कि एक सज्जन व्यक्ति आग्रह-पूर्वक मुझे बुला कर ले गये और मेरी रुचि के अनुकूल अपने काम पर नियुक्त कर दिया। वेतन भी इतना मिलता है, कि मैं परिवार सहित भली भाँति निर्वाह कर कुछ बचा भी लेता हूँ। ऐसी दयामयी माता की जय हो।

श्री कनुभाई त्रिभुवनदास एक वर्ष से बेकार बैठे समय गँवा रहे थे। गायत्री-उपासना से उन्हें भी एक अच्छी और स्थायी नौकरी मिल गयी।

श्री हीरालाल लोहाए गायत्री-उपासना के द्वारा ही नौकरी प्राप्त कर अपनी जीविका का भार सम्भाल पाया है।

श्री रसिकलालजी का लड़का बड़ा दुराचारी था। उसके पिता ने उसकी प्रवृत्ति बदलने की कामना से गायत्री-साधना आरम्भ की। फलतः कुछ कुछ दिनों के उपरान्त लड़के ने स्वतः ही आकर पिता से माफी माँगी और अब पिता के साथ मिलकर सदाचार सहित अपनी जीविका का उपार्जन करता है।

श्री सविता बहन के आधे अङ्ग में लकवा (अर्द्धाङ्ग-बात) हो गया था। चिकित्सा से लाभ नहीं होते देख, उसने गायत्री-उपासना प्रारम्भ कर दी, कुछ दिन उपासना के उपरांत अब उस अङ्ग से काम करने लग गई है। धीरे-धीरे वह अङ्ग अपनी पूर्व दिशा में आता जा रहा है।

मेरे पड़ौस के एक व्यक्ति की पत्नी उससे असन्तुष्ट होकर

अपने मायके में ही रहती थी। ये कई बार, आदर-आग्रह सहित उसे लिवाने गये, पर वह नहीं आई। मेरे परामर्श से उसने खुशामद छोड़कर गायत्री माता की उपासना प्रारम्भ करदी और एक दिन गायत्री माता की सद्‌प्रेरणा से वह स्वतः ही नैहर छोड़ कर चली आई और यहाँ आकर सुस्थिर हो गई। अब उनका दाम्पत्य-जीवन बड़ा ही मधुर और आनन्दमय हो गया है। दोनों परस्पर एक दूसरे को सुखी बनाने के लिए आतुर रहते हैं। माता की कृपा के सिवाय इस कलहपूर्ण दाम्पत्य-जीवन को सुधार कर रसमय बनाने की शक्ति किसमें है ?

गायत्री-साधकों के ये अनुभव निस्सन्देह श्रद्धाशून्य हृदयों में भी एक बार भक्ति-भाव उत्पन्न करने वाले हैं। जैसा इनमें से एक लेखक ने कहा है अगर मनुष्य किसी सङ्कट में पड़कर, कोई कामना लेकर भी गायत्री माता को उपासना करता है, तो इसमें कोई बुराई की बात नहीं। सकाम साधना से ही अधिकांश मनुष्यों में श्रद्धा और विश्वास के भावों का विकास होता है और एक समय आता है कि वे स्वयं निष्काम साधना के महत्व को समझ जाते हैं। इसलिए हमारा सबसे यही अनुरोध है कि किसी भी भाव से अथवा परिस्थिति के कारण उनको गायत्री जैसी सर्व-सुलभ और लोक-परलोक में कल्याण करने वाली साधना का आश्रय अवश्य लेना चाहिए।

गायत्री तपोभूमि—एक महान् धर्म संस्थान

गायत्री तपोभूमि, मथुरा शहर से १ मील आगे—वृन्दावन रोड पर परम शांतिमय वातावरण में बना हुआ एक सुन्दर आश्रम है, जहाँ गायत्री माता का भव्य मन्दिर, भारतवर्ष के लगभग २४०० तीर्थों के जल-रज का एक तीर्थ सम्मेलन-गृह, १२५ करोड़ हस्तलिखित गायत्री-मन्त्रों का संग्रह-कक्ष, निवास के लिए २३ कमरे, एक प्रवचन हाल, तीन बड़ी यज्ञशालाऐं, प्रधान यज्ञशाला में कभी न बुझने दी जाने वाली अखण्ड-अग्नि की स्थापना, नित्य गायत्री-मन्त्र की एक हजार आहुतियों का हवन, तुलसी का उपवन, हजारों धार्मिक पुस्तकों का विशाल पुस्तकालय, लगभग ६० पत्र-पत्रिकाऐं आने वाला वाचनालय, बिना मूल्य चिकित्सा के लिए कल्प चिकित्सालय यह सब देखकर कोई भी दर्शक संस्था की गति-विधियों का सहज ही अनुमान लगा सकता है। गायत्री तपोभूमि में सदा अनेक धार्मिक भावना वाले व्यक्ति शिक्षा, तीर्थ-यात्रा, साधना, तपश्चर्या एवं विभिन्न कठिनाइयों के सम्बन्ध में आचार्यजी से परामर्श करने आते हैं। आगन्तुकों को तपोभूमि में निवास, भोजन आदि की समुचित सुविधा प्राप्त होती है।

गायत्री तपोभूमि द्वारा देश भर में गायत्री महायज्ञों एवं सांस्कृतिक सम्मेलनों की सुविस्तृत शृंखला चल रही है। सन् '५६ और '५७ में १००० बड़े गायत्री महायज्ञ तथा सांस्कृतिक सम्मेलन करने का निश्चय किया था। सो उस संकल्प से भारतवर्ष के कोने-कोने से हजारों यज्ञ हुए जिनमें से १०१ कुण्डों वाले, २५ कुण्डों वाले, ६ कुण्डों वाले विशाल यज्ञों की संख्या १००० थी। इनमें से कुछ यज्ञों में तो ५० हजार तक जनता एकत्रित हुई। ये यज्ञ अ० भा० गायत्री-परिवार की देश में फैली हुई १२०० शाखाओं द्वारा सम्पन्न हुये थे। इन यज्ञों और सम्मेलनों का उद्देश्य जनता में धर्म, सदाचार, नैतिकता,

लेखक-
श्रीराम शर्मा आचार्य
गायत्री तपोभूमि, मथुरा ।

ॐ भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि
धियो योनः प्रचोदयात् ।

प्रकाशक-
"अखण्ड ज्योति" प्रेस, मथुरा ।

प्रथम बार]

मूल्य ।)

गायत्री-यज्ञ का महत्व

यज्ञ भारतीय संस्कृति का आदि प्रतीक है। हमारे धर्म में जितनी महानता यज्ञ को दी गई है, उतनी और किसी को नहीं दी गई। हमारा कोई भी शुभ-अशुभ धर्म-कृत्य यज्ञ के बिना पूर्ण नहीं होता। जन्म से लेकर अन्त्येष्टि तक १६ संस्कार होते हैं इनमें अग्निहोत्र आवश्यक है। जब बालक का जन्म होता है, तो उसकी रक्षार्थ सूतक-निवृत्ति घरों में अखंड अग्नि स्थापित रखी जाती है। नामकरण, यज्ञोपवीत, विवाह आदि संस्कारों में भी हवन अवश्य होता है। अन्त में जब शरीर छूटता है तो उसे अग्नि को ही सौंपते हैं। अब लोग मृत्यु के समय चिता जलाकर यों ही लाश को भस्म कर देते हैं, पर शास्त्रों में देखा जाय, तो वह भी एक यज्ञ है। इसमें वेद मन्त्रों से विधि पूर्वक आहुतियाँ चढ़ाई जाती हैं और शरीर को यज्ञ भगवान के अर्पण किया जाता है।

यज्ञ भारतीय धर्म का मूल है। आत्म-साक्षात्कार, स्वर्ग, सुख, बन्धन-मुक्ति, मनः शुद्धि, पाप-प्रायश्चित्त, आत्म-बल-वृद्धि और ऋद्धि-सिद्धियों के केन्द्र भी यज्ञ ही थे। यज्ञों द्वारा मनुष्य को अनेक आध्यात्मिक एवं भौतिक शुभ परिणाम प्राप्त होते हैं। वेद-मन्त्रों के साथ-साथ शास्त्रोक्त हवियों के द्वारा जो विधिवत् हवन किया जाता है, उससे एक दिव्य वातावरण की उत्पत्ति होती है। उस वातावरण में बैठने मात्र से रोगी मनुष्य निरोग हो सकते हैं। चरक ऋषि ने लिखा है कि "आरोग्य प्राप्त करने की इच्छा करने वालों को विधिवत् हवन करना चाहिये।" बुद्धि शुद्ध करने की यज्ञ में अपूर्व शक्ति है। जिनके मस्तिष्क दुर्बल

हैं या बुद्धि मलीन है, वे यदि यज्ञ करें तो उनकी अनेकों मानसिक दुर्बलताएं शीघ्र ही दूर हो सकती हैं। यज्ञ से प्रसन्न हुए देवता मनुष्य को धन, सौभाग्य, वैभव तथा सुख-साधन प्रदान करते हैं। यज्ञ करने वाला कभी दरिद्री नहीं रह सकता। यज्ञ करने वाले स्त्री-पुरुषों की सन्तान बलवान, बुद्धिमान, सुन्दर और दीर्घजीवी होती है। राजा दशरथ को यज्ञ द्वारा ही चार पुत्र प्राप्त हुए थे। गीता आदि शास्त्रों में यज्ञ को आवश्यक धर्मकृत्य बताया गया है और कहा गया है कि यज्ञ न करने वाले को यह लोक और परलोक कुछ भी प्राप्त नहीं होता। यजुर्वेद में कहा गया है कि जो यज्ञ को त्यागता है उसे परमात्मा त्याग देता है। यज्ञ के द्वारा ही साधारण मनुष्य देव योनि प्राप्त करते हैं और स्वर्ग के अधिकारी बनते हैं। यज्ञ को सर्व कामना पूर्ण करने वाली कामधेनु और स्वर्ग की सीढ़ी कहा गया है। याज्ञिकों की आत्मा में ईश्वरीय प्रकाश उत्पन्न होता है और इससे स्वल्प प्रयत्न द्वारा ही सद्‌गति का द्वार खुल जाता है। आत्म-साक्षात्कार और ईश्वर-प्राप्ति का तो यज्ञ अमोघ साधन है। यज्ञ में अमृतमयी वर्षा होती है उससे अन्न, पशु, वनस्पति, दूध, धातु, खनिज पदार्थ आदि की प्रचुर मात्रा में उत्पत्ति होती है और प्राणियों का पालन होता है। यज्ञ से आकाश में अदृश्य रूप से ऐसा सद्भावनापूर्ण सूक्ष्म वातावरण पैदा होता है, जिससे संसार में फैले हुए अनेक प्रकार के रोग, शोक, भय, क्लेश, कलह, द्वेष, अन्याय, अत्याचार नष्ट हो सकते हैं और सब लोग प्रेम और सुख-शान्तिपूर्वक रह सकते हैं।

प्राचीन काल में ऋषियों ने यज्ञ के इन लाभों को भली प्रकार समझा था। इसीलिए वे उसे लोक-कल्याण का अतीव आवश्यक कार्य समझ कर अपने जीवन का एक तिहाई समय

यज्ञों के आयोजन में ही लगाते थे। स्वयं यज्ञ करना और दूसरों से यज्ञ कराना उनका प्रधान कर्म था। जब घर-घर में यज्ञ की प्रतिष्ठा थी तब यह भारत भूमि स्वर्ण सम्पदाओं की स्वामिनी थी, आज यज्ञ को त्यागने से ही हमारी दुर्गति हो रही है।

वेदों में यज्ञाग्नि की पग-पग पर प्रशंसा और प्रार्थना है। इस प्रशंसा और प्रार्थना में यज्ञ में सन्निहित शक्तियों और लाभों का वर्णन है। इन पर थोड़ा ध्यान देने से यह सहज ही जाना जा सकता है कि यज्ञ की अग्नि कितनी उपयोगिताओं और महानताओं से परिपूर्ण है। नीचे कुछ ऐसी ही प्रार्थनाऐं दी जाती हैं--

शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्तेऽअस्तु मा मा हिंसीः। निवर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय। --यजु० ३।६३

अर्थ--हे यज्ञ! तू निश्चय से कल्याणकारी है। स्वयम्भू परमेश्वर तेरा पिता है। तेरे लिये नमस्कार है। तू हमारी रक्षा कर। दीर्घ आयु, उत्तम अन्न, प्रजनन शक्ति, ऐश्वर्य्य-समृद्धि, श्रेष्ठ सन्तति एवं मंगलोन्मुखी बल पराक्रम के लिए हम श्रद्धा-विश्वासपूर्वक तेरा सेवन करते हैं।

त्वामग्ने यजमानाऽअनुद्यून विश्वावसु दधिरे वार्याणि त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं गोमंत मुशिजो विवव्रुः।

--यजु० १२।२८

अर्थ--हे देव अग्ने! जो सदा यज्ञ करते रहते हैं, ऐसे सद्गृहस्थ सदा ही श्रेष्ठ सम्पत्तियों के स्वामी होते हैं, उन्हें इस यज्ञ के पुण्य प्रभाव से सदैव ज्ञानियों की सत्संगति के साथ ही धन की प्राप्ति भी होती रहती है।

पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः समिन्धतां पुनर्ब्रह्माणो वसुनीथ यज्ञैः। घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥ ४४ ॥

—यजु० १२।४४

अर्थ--हे ऐश्वर्य्य को प्राप्त कराने वाले यज्ञाग्ने ! तुझे ये यज्ञकर्ता आदित्य यज्ञ, वसु यज्ञ एवं रुद्र यज्ञ के द्वारा वारम्बार प्रदीप्त करें। इन यज्ञों से तुम अपने तेजों की अभिवृद्धि करके यज्ञ-कर्ताओं की कामना पूर्ण करो या पूर्ण करने में समर्थ होओ।

अयमग्निः पुरीष्यो रयिमान् पुष्टि वर्द्धनः।
अग्ने पुरीष्याभि द्युम्नमभि सहऽआयच्छस्व ॥

—यजु० ३।४०

अर्थ--यह यज्ञाग्नि वृष्टि कराने वाली, धन देने वाली तथा पुष्टि और शक्ति को बढ़ाने वाली है। हे पुरीष्य अग्नि ! तुम हमारे सब ओर बल और यश का विस्तार करो।

त्रिंशद्धाम विराजति वाक् पतङ्गाय धीयते।
प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥ ——यजु० ३।८

अर्थ--यह यज्ञ जो प्रति दिन किया जाता है, वह अपनी प्रदीप्त ज्वालाओं से युक्त निरन्तर यज्ञकर्त्ता के अन्तर में विराजता रहता है, फिर ऐसी दशा में किसी अन्धकार असुर, अज्ञान को ठहरने का (यहाँ) अवकाश ही कैसे हो सकता है ? सच्चे यज्ञकर्त्ता एक दिन सम्पूर्ण अन्धकार और अज्ञान से मुक्त होकर दिव्य परमात्मा के चरणों में पहुँच जाते हैं।

शर्मास्यवधूत ᳪ रक्षोऽवधूताऽरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु ॥ अद्रिरसि वानस्पत्यो ग्रावासि पृथुबुध्नः प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु। ——यजु० १।१४

अर्थ--हे यज्ञ ! तुम सुखकारक एवं आश्रय लेने योग्य

हो, तुम से रोग विनष्ट होते हैं तथा रोग के कीटाणु भी ध्वस्त होते हैं, तुम पृथ्वी के लिये त्वचा की भाँति रक्षक हो। तुम हरीतिमा पूरित वनस्पतियों से आच्छादित पर्वत के सदृश्य सुन्दर, सुहावने और हितकारी हो, तुम इस सुविस्तृत आकाश में जल से लबालब भरे वर्षाभिमुख बादलों के सदृश हो।

धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा। दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयोऽसि ॥

—यजु० १।२०

अर्थ—हे यज्ञ! तुम देवों का धान्य (भोजन) हो, अतः इस हवि के द्वारा तुम उसे प्रसन्न करो, जिससे वे प्रसन्न होकर यज्ञकर्त्ता को सुख और कल्याण प्रदान करें। हम तुम्हें प्राण, उदान, व्यान आदि प्राणों में, आयु में तथा जीवन की व्यापक उन्नति करने के लिए धारण करते हैं, आपके अनुग्रह से यह सब वस्तुएं हम प्राप्त करेंगे।

अदित्यै व्युन्दनमसि विष्णो स्तुपोऽस्यूर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थां देवेभ्यो भुवपतये स्वाहा भुवन पतये स्वाहा भूतानां पतये स्वाहा। —यजु० १।२।२

अर्थ—हे यज्ञ! तुम पृथ्वी को सींचने वाले हो, अर्थात् पृथ्वी निवासियों को सर्वाङ्गीण अभ्युन्नति और कल्याण के अमृत से अभिसिञ्चन करते हो। हे देवों को सुखद स्थिति देने वाले एवं सभी भाँति रक्षा करने वाले यज्ञ! हम तुम्हें सुविस्तृत और सूक्ष्म से सूक्ष्मतर बनाना चाहते हैं।

गीता में यज्ञ की महिमा

सहयज्ञाः प्रजा सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वो अस्त्विष्ट कामधुक् ॥३।१०

अर्थ—कल्प के प्रारम्भ में प्रजापति ने यज्ञ सहित ही प्रजाओं की रचना की और कहा कि इसके (यज्ञ के) द्वारा तुम लोग वृद्धि को प्राप्त करो और यह यज्ञ ही तुम लोगों की इष्ट कामनाओं को पूर्ण करने वाला है।

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥ ३।११

अर्थ—इस यज्ञ के द्वारा देवताओं की उन्नति (भावयत) करो और वे देवगण तुम लोगों की उन्नति करें। परस्पर उन्नति करते हुए श्रेय को प्राप्त होओगे।

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञ भाविताः।
तैर्दत्तान प्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥३।१२

अर्थ—यज्ञभाविताः देव गण तुम लोगों को इष्ट भोग प्रदान करेंगे। उनके द्वारा दिए हुए भोगों को जो पुरुष इनके लिये बिना दिये ही भोग करता है, वह निश्चय ही चोर है।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न सम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः ॥३।१४

अर्थ—सम्पूर्ण प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं और अन्न की उत्पत्ति पर्जन्य (वृष्टि) से होती है और वृष्टि यज्ञ से होती है और यज्ञ तो कर्म से ही उत्पन्न होने वाला है।

यज्ञशिष्टामृत भुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥४।३१

अर्थ—हे कुरुश्रेष्ठ! यज्ञों के परिणाम रूप अमृत को भोगने वाले योगीगण सनातन ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। यज्ञ से रहित जो पुरुष हैं, उन्हें तो यह (मनुष्य) लोक भी सुखदायक नहीं है, फिर परलोक की तो बात ही क्या ?

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥ ६।१६

अर्थ—(भगवान कहते हैं) श्रौतकर्म मैं हूँ, यज्ञ मैं हूँ, स्वधा मैं हूँ, औषधि मैं हूँ, मन्त्र मैं हूँ, आज्य (घृत) मैं हूँ, अग्नि मैं हूँ और हवन रूप क्रिया भी मैं ही हूँ ।

यज्ञ दानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेवतत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ १८।५

अर्थ—यज्ञ, दान और तप रूप कर्म त्यागने योग्य नहीं है वरन् वह कर्म तो करने ही योग्य है-करना कर्त्तव्य ही है । यज्ञ, दान और तप, यह तीनों तो मनीषियों को पवित्र करने वाले हैं ।

उपनिषदों में यज्ञ-रहस्य का वर्णन ।

कठोपनिषद् में प्रथम अध्याय प्रथम वल्ली में यम और नचिकेता सम्वाद में यज्ञों को स्वर्ग-प्राप्ति का प्रथम साधन बताया गया है:—

नचिकेता ने यमराज से पूछा:—

स त्वमग्नि ꣳ स्वर्गमध्येषि मृत्यो प्रब्रूहि त्वꣳश्रद्धानाय मह्यम् । स्वर्ग लोका अमृतत्व भजन्त एतद्द्वितीयेन वृणे वरेण ॥ १३ ॥

अर्थ—हे मृत्युदेव ! स्वर्ग की प्राप्ति के साधन रूप अग्नि को (यज्ञ प्रक्रिया को) भली भाँति जानते हैं । अतः आप उस अग्नि विद्या को मुझ श्रद्धालु को अच्छी तरह समझाकर कहिए, जिसे जानकर लोग स्वर्गलोक में रहकर अमृतत्व को प्राप्त होते हैं । यह मैं आपसे दूसरा वर माँगता हूँ ॥ १३ ॥

तब यमराज बोले—

प्र ते ब्रवीमि तदु मे निबोध स्वर्ग्यमग्निं नचिकेतः प्रजानन् ।
अनन्त लोकाप्ति मथो प्रतिष्ठां विद्धित्वमेतं निहितं गुहायाम् ॥१४॥

अर्थ-हे नचिकेता ! स्वर्गदायिनी अग्नि विद्या (यज्ञ-विधि को भली भांति जानने वाला मैं तुम्हारे लिये उसे अच्छी तरह बतलाता हूँ । उसे मुझसे भली भांति जान लो । तुम इस विद्या को अनन्त लोक की प्राप्ति कराने वाली, उसकी आधार स्वरूपा तथा बुद्धि रूपी गुहा में निहित (छिपी हुई) जानो ।

अग्नि विद्या यानी यज्ञ प्रकरण की सारी विधियाँ बताने के उपरान्त उस अग्नि विद्या का फल यमराज बताते हैं ।

त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य संधिं त्रिकर्मकृत्तरति जन्ममृत्यू ।
ब्रह्मजज्ञं देव मीड्यं विदित्वा निचाय्येमा शान्तिमत्यन्तमेति॥ १७

अर्थ-इस अग्नि का शास्त्रोक्त रीति से तीन बार अनुष्ठान करने वाला पुरुष ऋक , यजुः, साम-तीनों वेदों के साथ सम्बन्ध जोड़ कर, यज्ञ, दान, तप-रूप तीनों कर्मों को करता रहने वाला मनुष्य, जन्म-मृत्यु से तर जाता है । ब्रह्मा से उत्पन्न सृष्टि को जानने वाले स्तवनीय इस अग्नि को भली भांति जानकर, इसका ठीक रीति से चयन करके उस अनन्त शान्ति को प्राप्त कर लेता है, जो मुझको प्राप्त है ।। १७ ।।

मुण्डकोपनिषद द्वितीय खण्ड श्लोक ५

एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु यथाकालं चाहुतयो ह्य ददायन्
तं नयन्त्येताः सूर्यस्य रश्मयो यत्र देवानां पतिरेकोऽधि-वासः ॥ ५ ॥

अर्थ-जो कोई भी अग्निहोत्री इन देदीप्यमान ज्वालाओं में ठीक समय पर अग्निहोत्र करता है, उस अग्निहोत्री को निश्चय ही अपने साथ लेकर ये आहुतियाँ, सूर्य की किरणें बनकर उस स्वर्ग लोक में पहुँचा देती हैं, जहाँ देवताओं का एक मात्र पति निवास करता है ।

सरस्वती उपनिषद १४ में

"यज्ञं वष्टु धिया वसुः" वचन है, जिसका तात्पर्य है-यज्ञ से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। आगे चल कर मन्त्र १७ में "यज्ञ दधे सरस्वती" वचन है, जिससे प्रकट होता है कि यज्ञ से ही सरस्वती प्रसन्न होती है।

रामायण में यज्ञ-चर्चा

रामायण में यज्ञ की महत्ता का विशद् रूप से वर्णन है। दशरथ जी के चारों पुत्रों का जन्म पुत्रेष्टि यज्ञ द्वारा होता है। भगवान राम अपने अवतार का श्रेय यज्ञ भगवान को ही देते हैं। यज्ञ ही रामावतार का जनक है। पुत्र की इच्छा से प्रेरित होकर दशरथ जी ने पुत्रेष्टि यज्ञ किया और उन्हें अभीष्ट सत्परिणाम की प्राप्ति हुई इसका वर्णन तुलसीकृत रामायण में इस प्रकार मिलता है:--

एक बार भूपति मन माँही। भै गलानि मोरे सुत नाहीं ॥
गुरु गृह गयउ तुरत महिपाला। चरण लागि करि विनय विशाला
शृङ्गी ऋषि हि वशिष्ठ बोलावा। पुत्र काम शुभ यज्ञ करावा ॥
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें। प्रगटे अग्नि चरु कर लीन्हें ॥
यह हवि बाँटि देहु नृप जाई। जथा जोग जेहि भाग बनाई ॥
तब हि राय प्रिय नारि बुलाई। कौशल्यादि तहाँ चलि आई ॥
अर्ध भाग कौशल्य हिं दीन्हा। उभय भाग आधे कर लीन्हा ॥
कैकेई कहाँ नृप सो दयऊ। रह्यो सो उभय भाग पुनि भयऊ ॥
कौशल्या कैकेई हाथ धरि। दीन्ह सुमित्र हिं मन प्रसन्न करि ॥
एहि विधि गर्भ सहित सब रानी। भई हृदय हरषित सुख भारी ॥

राक्षस पति रावण को भी यज्ञ-शक्ति पर पूरा विश्वास है। इसे प्रकट करते हुए अपने अनुचरों को आदेश करता है कि जहाँ कहीं भी यज्ञ होते दिखाई दें, उन्हें नष्ट कराने और विघ्न डालने का प्रयत्न करो।

सुनहु सकल रजनीचर जूथा। हमरे वैरी विवुध वरूथा॥
तिन कर मरन एक विधि होई। कहहु बुझाई सुनहु अब सोई॥
द्विज भोजन मख होम सराधा। सब कै जाइ करहु तुम बाधा॥

छुधा छीन बलहीन सुर, सहजेहि मिलिहहिं आइ।
तब मारिहउँ कि छाड़िहउँ, भली भाँति अपनाइ॥

विश्वामित्र ऋषि के यज्ञ को नष्ट करने में असुर लोग भारी विघ्न कर रहे थे। उनसे रक्षा करने के लिए विश्वामित्रजी दशरथ के पास गये और रामचन्द्रजी तथा लक्ष्मणजी को माँग कर लाये। वाल्मीकि रामायण में इस प्रसंग का वर्णन इस प्रकार है--

अहं नियममातिष्ठे सिद्ध्यर्थं पुरुषर्षभः।
तस्य विघ्न करौ द्वौतु राक्षसौ काम रूपिणौ॥४॥
कृतश्रमो निरुत्साहस्तस्माद्देशादपा क्रमे।
न च मे क्रोध मुत्स्रष्टुं बुद्धिर्भवति पार्थिव॥७॥
तथाभूतहिंसाचर्या न शापस्तत्र मुच्यते।
स्वपुत्रं राजशार्दूल रामं सत्य पराक्रमम्॥८॥
काकपक्षधरं वीरं ज्येष्ठंमेदातु महंसि॥९॥
—वाल्मीकि रामायण आदि काण्ड। १९ सर्ग

अर्थ--(विश्वामित्र दशरथ से कहते हैं कि हे राजन्!) आजकल मैं एक महायज्ञ में दीक्षित हुआ हूँ। काम रूपी दो राक्षस उसकी समाप्ति न होते-होते ही विघ्न कर देते हैं॥ ४॥ जब हमारे यज्ञ की प्रतिज्ञा, करके भ्रष्ट हो जाती है, तो हमें केवल श्रम ही होता है, इस कारण भग्नोत्साह होकर मैं यहाँ चला आया हूँ। हे पार्थिव! मैं उनको शाप दे सकता हूँ, परन्तु इस यज्ञ में क्रोध करना वर्जित है॥ ७॥ कारण कि ऐसे यज्ञ साधन

काल में किसी को शाप नहीं देना चाहिये। हे राजों में सिंह! आपसे यह प्रार्थना है कि सत्य पराक्रमी रामचन्द्र को, जो काक पक्ष धारण किये महावीर श्रेष्ठ हैं, उनको मेरे हाथ में सौंप दीजिये। यह मेरे दिव्य तेज के प्रभाव से मुझ से रक्षित किये जाकर, मेरे यज्ञ की रक्षा करने में समर्थ होंगे।/

रावण को जब अपनी पराजय होती दीखती है तो वह चिन्तित और दुखी होकर अन्तिम ब्रह्मास्त्र, यज्ञ का ही सहारा लेता है। अपने पुत्र मेघनाद को एक बड़ा तांत्रिक यज्ञ करके ऐसी शक्ति प्राप्त करने के लिए आदेश करता है जिससे वह अजेय हो जाय और राम को सेना समेत परास्त कर सके। मेघनाद निकुम्भिला नामक स्थान में जाकर अपने पिता रावण के बताये हुए विधान के अनुसार तांत्रिक होम करने लगा। बाल्मीकि रामायण में इसका वर्णन इस प्रकार है--

एतस्तुहुत भोक्तारं हुत भुक्सदृशप्रभः।
जुहुवे राक्षस श्रेष्ठो विधिवन्मन्त्र सत्तमैः॥ १८॥
सहविलाज सत्कारैः माल्य गन्ध पुरस्कृतैः।
जुहुवे पावकंतत्र राक्षसेन्द्रः प्रतापवान॥ १६॥
शास्त्राणि शर पत्राणि समिधोथ विभीतकाः।
लोहिता निचवासांसिस्त्रुवं कार्ष्णायसंतथा॥ २०॥

अर्थ--इस स्थान का नाम निकुम्भिला था, अग्नि तुल्य तेजस्वी इन्द्रजीत यहाँ पर विधि पूर्वक अग्नि में होम करने लगा॥१८॥ उस प्रतापशाली राक्षसों में श्रेष्ठ इन्द्रजीत ने प्रथम अग्नि में माला और सुगन्धित द्रव्य चढ़ाकर उसके बाद खील एवं अक्षत से उसका संस्कार पूरा करके हवन कर्म को आरम्भ किया॥१६॥ इस हवन कुण्ड के चारों ओर जहाँ शरतप बिछाना चाहिये, वहाँ उसने सब शस्त्र बिछाये व बहेड़े की लकड़ी को

इन्धन बनाया, समस्त लाल ही वस्त्र धारण किया और लोहे का श्रुवा बनाया, मारण में यही पदार्थ काम आते हैं।

विभीषण सेना सहित लक्ष्मण को साथ लेकर मेघनाद का यज्ञ विध्वंस करने गये हैं। वह स्थान सेना से घिरा हुआ है। विभीषण जी लक्ष्मण से कहते हैं:—

सत्वमिन्द्राशनिप्रख्यैः शरैरव किरन्परान्।
अभिद्रवाशुयाद्वै नैतत्कर्मसमाप्यते ॥ ४ ॥

—वाल्मीकि रा० युद्ध का० सर्ग ८६

अर्थ—जब तक यह अभिचारिक होम पूरा नहीं होता, तब तक इन्द्र वज्र सदृश वाणों से आप राक्षसों की सेना को पीड़ा देते रहिये।

ऐसा ही किया उपरान्त—

स्वमनीकंविपण्णंतु श्रुत्वा शत्रुभिरर्दितम्।
उदतिष्ठत दुर्धपः सकर्मण्यनतुष्ठिते ॥ १४ ॥

अर्थ—इस ओर अजेय रावण पुत्र अपनी सेना को शत्रु दलों से मर्दित और व्याकुल देख अपने यज्ञ को विना पूरा किये ही उठ बैठा।

इस प्रकार उस यज्ञ के असफल हो जाने पर असुरों को वह शक्ति प्राप्त न हो सकी, जिससे वे राम-सेना को नष्ट करने और स्वयं अजेय बनने में समर्थ होते।

श्रीमद्भागवत में यज्ञ महात्म्य

श्रीमद्भागवत में यज्ञ की महत्ता का विस्तारपूर्वक प्रतिपादन किया है। अनेकों ऐसे प्रसंगों का भागवत में वर्णन है जिनसे यज्ञ की महाशक्ति का पूरा परिचय मिलता है। सृष्टि का आरम्भ यज्ञ से ही हुआ, इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है।

जिज्ञासा के अनुसार उत्तर रूप में ब्रह्माजी विराट भगवान् के स्वरूप का वर्णन करते हैं:—

यदास्य नाभ्यां नलिनादहमासं महात्मनः ।
नाविदं यज्ञ संभारान्पुरुषा वयवाहृते ॥
तेषु यज्ञस्य पशवः सवनस्पतयः कुशा ।
इदं च देवयजनं कालश्चो सगुणान्वितः ॥
वस्तून्योषधयः स्नेहारसलोह मदोजलम् ।
ऋचोयजूंषि सामानि चतुर्होत्रं च सत्तम ॥

—भागवत, स्क० २, अ० ६ श्लोक २२,२३,२४

अर्थ—जिस समय व्यापक ब्रह्म की नाभि से मैं उत्पन्न हुआ, तब पुरुष के अवयव को छोड़ कर, यज्ञ की कुछ भी सामिग्री नहीं देखी ।

उनके यज्ञ के पशु वनस्पति कुशा और देवताओं के यज्ञ करने योग्य भूमि और जिसमें बहुत से गुण भरे हों ऐसे समय की रचना की । सब पात्रादि रचे । औषधि, घृतादिक, मधुरादिक, स्वर्णादिधातु, मृतिका, जल, ऋक, यजुः, साम एवं अथर्ववेद, चार ब्राह्मण और जिससे हवन किया जाय, ऐसे कर्मों की भी सृष्टि की ।

गतयोमतयोश्चैव प्रायश्चित्तम् समर्पणम् ।
पुरुषावयवैरेते संभाराः संभृता मया ॥ २६ ॥
इति सम्भृतसंभारः पुरुषावयवैरहम् ।
तमेव पुरुषं यज्ञं तेनैवायजमीश्वरम् ॥ २७ ॥
ततश्च मनवः काले ईजिरे ऋषयोऽपरे ।
पितरो विधा दैत्या मनुष्याः क्रतुभिर्विभुम् ॥ २८ ॥

अर्थ—विष्णु क्रमादि गति, देवताओं का ध्यानादि मति, प्रायश्चित्त, उसे भगवदर्पण करना आदि पुरुष अवयवों से ही

मैंने रचना की। पुरुष के अवयवों की ऐसी सब सामिग्री से पूजनीय परमात्मा ने पुरुष का यज्ञ किया। उसके पीछे अपने-अपने समय में सभी मनुष्य, ऋषि, पितर, देवगण तथा दैत्यादिकों ने भी यज्ञ के द्वारा यज्ञेश्वर और यज्ञरूप भगवान् का पूजन किया। राजा दक्ष ने अपने यज्ञ का विध्वंस होने तथा सुपुत्री सती के निधन के उपरान्त बहुत दुःख माना और शिवजी से क्षमा माँगने के पश्चात् अपनी भूल के प्रायश्चित्त रूप में ही विशद्-यज्ञ को पूरा किया। उसका वर्णन भागवत चतुर्थ स्कन्ध के सातवें अध्याय में इस प्रकार है:—

क्षमाप्यैवं स मीढ्वासं ब्रह्मणा चानु मन्त्रितः।
कर्म सन्तानयामास सोपाध्यायर्त्विगग्निभिः॥
वैष्णवं यज्ञ संतत्यै त्रिकपालं द्विजोत्तमाः।
पुरोडाशं निरवपन् वीर संसर्ग शुद्धये॥
अध्वर्युणात्त हविषा यजमानो विशाम्पते।
धिया विशुद्धया दध्यौ तथा प्रादुरभूद्धरिः॥

—भागवत, स्क० ४, अ० ७, श्लो० १६, १७, १८

अर्थ—इस भाँति दक्ष ने अपना अपराध क्षमा कराया और ब्रह्मा जी से सम्मति लेकर उपाध्याय, ऋत्विज, अग्नि सहित यज्ञ कर्म आदि को सुन्दरता सहित विस्तार किया। तीन कपाल का पुरोडाश, विष्णु के निमित्त, यज्ञ सम्पूर्ण करने के हेतु प्रमथादिक वीरों की शुद्धि के लिये, श्रेष्ठ ब्राह्मणों को दिया। अध्वर्यु ने जब हवि हाथ में लेकर, यजमान सहित विशुद्ध बुद्धि पूर्वक हवन कर भगवान् वासुदेव का ध्यान किया—उसी समय भगवान् साक्षात् रूप से प्रगट हो गये।

ऋषभदेवजी भगवान् के अवतार माने जाते हैं। उन्हीं

के पुत्र भरत के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष हुआ है। भरत ने यज्ञों द्वारा ही इस देश को तपोभूमि बनाया था।

> द्रव्य देश कालवय-श्श्रुद्धर्त्विग्विधोद्देशोपचितैः।
> सर्वैरपि क्रतो भिर्यथोपदेशं शशतकृत्व इयाज ॥१६॥
> भगवतर्षभेण परिरक्ष्य माण एतस्मिन्वर्षे न
> कश्चन पुरुषो वाँछन्त्य विद्यमान मिवात्मनो-
> ऽन्यस्मात्कथंचन किमपि कर्हिचिदवेक्षते
> भर्तर्यनु सवनं विजृम्भित स्नेहातिशयमन्तरेण ॥१७॥
>
> —भागवत पंचम स्क० अ० ४

अर्थ—भरत ने सब भाँति पूर्ण विधि के साथ सौ-सौ बार अश्वमेध यज्ञ किये। उनके वे सब यज्ञ साधारण नहीं हुए। द्रव्य, देश, काल, यौवन, श्रद्धा, ऋत्विक अनेक देवताओं के अर्थ इत्यादिक द्वारा अतिशय बढ़-चढ़कर सम्पन्न हुए थे। उस समय किसी पुरुष की दूसरे पुरुष से अपने लिये आकाश पुष्प-वत् कुछ भी प्रार्थना करने की इच्छा नहीं हुई और कोई दूसरे की वस्तु पर लोभ दृष्टि नहीं करता था। सबों में स्नेह और शील का उद्रेक होता रहता था।

यज्ञ द्वारा देव-शक्तियों की तुष्टि-पुष्टि

सृष्टि-सञ्चालन करने वाली ईश्वर की शक्तियों का नाम देवता है। यह अनेक शक्तियाँ अनेक देवताओं के नाम से कही जाती हैं। इनका समस्त संसार की विभिन्न समस्याओं से तथा मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन की सुख-समृद्धि, उन्नति-अवनति, हानि-लाभ, रोग, शोक आदि से अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। इन देव शक्तियों की अनुकूलता प्राप्त करके मनुष्य बड़ी सरलता पूर्वक अपनी उन्नति का द्वार खोल सकता है और यदि ये देव प्रति-कूल हों तो मनुष्य का कठोर परिश्रम भी निष्फल चला जाता है।

देव शक्तियों को अनुकूल बनाने के लिए जितने भी साधन आदि याज्ञिक क्षेत्र में गिनाये गये हैं, उनमें यज्ञ सर्वश्रेष्ठ है। यज्ञ से देवता प्रसन्न होते हैं और अभीष्ट परिणाम प्रदान करते हैं, इसके अनेक प्रमाण उपलब्ध होते हैं। उनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं--

प्रीयतां पुण्डरीकाक्षः सर्वयज्ञेश्वरो हरिः।
तस्मिंस्तुष्टे जगत् तुष्टं प्रीणिते प्रीणितं भवेत् ॥३८॥

—मत्स्य पुराण, अ० २३६ श्लो० ३८

अर्थ--कमल नयन भगवान् विष्णु यज्ञ से प्रसन्न होते हैं। उनके सन्तोष से जगत् संतुष्ट है, उनकी प्रसन्नता से जगत् प्रसन्न होता है।

यज्ञेन देवा जीवन्ति यज्ञेन पितरस्तथा।
देवाधीनाः प्रजास्सर्वा यज्ञाधीनाश्च देवताः ॥ १ ॥
यज्ञो हि भगवान्विष्णुर्यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्।
यज्ञार्थं पशवः सृष्टा देवास्त्वौषधयस्तथा ॥ २ ॥
यज्ञार्थं पुरुषाः सृष्टाः स्वयमेतस्य भुवा।
यज्ञश्च भूत्यै सर्वस्य तस्माद्यज्ञपरो भवेत् ॥ ३ ॥
यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
धनं यज्ञशीलानां देवस्वं तं विदुर्बुधाः ॥ ४ ॥
यज्ञेन सम्यक्सुकृतस्तु नाके सम्पूज्यमानस्त्रिदशैर्महात्मा।
प्राप्नोति सौख्यानि महानुभावस्तस्मात्प्रयत्नेन यजेत यज्ञैः ॥५॥

अर्थः--यज्ञ से देवता जीते हैं तथा पितृ जीते हैं, देवताओं के आधीन सब प्रजा है और यज्ञ के आधीन सब देवता हैं। यज्ञ ही भगवान् विष्णु हैं, जिन विष्णु भगवान् में सब प्रतिष्ठित हैं। यज्ञ के लिये देवता तथा औषधियों की सृष्टि की गई है।

स्वयम्भूजी ने यज्ञ के लिये ही मनुष्यों की सृष्टि की और कहा—यज्ञ सब का कल्याणकारी है इसलिये यज्ञ में तत्पर रहो। यज्ञावशिष्ट का भोजन करने वाले सब पापों से मुक्त हो जाते हैं, यज्ञशीलों के धन को पण्डितों ने देवस्व, दिव्य माना है।

यज्ञ के द्वारा महात्मा पुरुष स्वर्ग में जाकर देवताओं द्वारा अच्छी तरह पूजित होते हैं। हे महानुभाव ऋषियो! यज्ञकर्त्ता महात्मा पुरुष स्वर्ग में जाकर अनेक सौख्यों को प्राप्त करते हैं, इसीलिये प्रयत्न पूर्वक यज्ञों द्वारा भगवान् का यजन करे।

दैवेकर्मणियुक्तोहि विभर्त्तीदं चराचरम ॥७५॥
अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्य मुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥ ७६ ॥

—मनुस्मृति तीसरा अध्याय

अर्थात् "जो देव होम कर्म युक्त है, वह चराचर का पोषण करता है, क्योंकि अग्नि में डाली आहुति आदित्य को पहुँचती है और सूर्य से वृष्टि होती है और वृष्टि से अन्न, अन्न से प्रजा होती है। इसलिए जो यज्ञ करता है, वह सम्पूर्ण प्रजा का पालन करता है।"

यज्ञैराप्यापिता देवा वृष्ट्युत्सर्गेणवैप्रजाः।
आप्याययन्तेधर्मज्ञयज्ञाः कल्याण हेतवः ॥ ८ ॥

—श्रीविष्णुपुराण प्र० अंश अध्याय ६

अर्थ-हे धर्मराज ! यज्ञ से तृप्त होकर देवगण जल बरसा-कर प्रजा को तृप्त करते हैं। यज्ञ सर्वथा कल्याण का हेतु है।

यो यज्ञैरिज्यते देवो वासुदेवः सनातनः।
स सर्वे दैवत तनुः पूज्यते परमेश्वर ॥

—कूर्मपुराण पूर्वार्ध अ० २० श्लो० ४०

भावार्थः--जो यज्ञों में सनातन वासुदेव का भजन करते हैं; वह सब देवों के शरीर रूप परमेश्वर का पूजन करते हैं अर्थात् सनातन वासुदेव का यज्ञों में यजन करने से सर्व देवताओं का यजन हो जाता है।

तस्मादीश प्रसादार्थं यूयं गत्वा भुवंद्विजाः।
दीर्घसत्रं समाकृध्वं यूयं वर्ष सहस्रकम् ॥ १ ॥

--शिव पुराण वि० स० १ अ० ४

अर्थ--(यज्ञ ही शिव को प्रसन्न करने का श्रेष्ठ साधन है) इसीलिये हे ऋषिगणो ! तुम सभी पृथ्वी पर जाकर एक सहस्र वर्ष तक दीर्घकालीन-विशाल यज्ञ करो।

ये विष्णुभक्ता निष्कामा यंजंति परमेश्वरम्।
त्रिसप्ताकुला संयुक्तास्ते यांति हरिमंदिरम् ॥

—बृहद नारदपुराण अ० ३६ श्लो० ६१

"जो निष्काम भाव से यज्ञ के द्वारा परमात्मा का पूजन करता है, वह अपने इक्कीस पीढ़ियों को हरि-मन्दिर पहुँचाता है।"

युधिष्ठिर ने शान्ति, पुष्टि को बढ़ाने वाले तथा सब कामों को सिद्ध करने वाले कृत्य को श्रीकृष्ण भगवान् से पूछा। श्रीकृष्णजी बोले--

श्रीकामःशान्तिकामोवाग्रह यज्ञं समारभेत्।
दृष्टयायु पुष्टि कामो वा तथैवाभिचरन्पुनः ॥
ग्रहयज्ञस्त्रिधाप्रोक्तः पुराण श्रुतिकोविदैः।
प्रथमोऽयुत होमः स्याल्लक्षहोमस्ततः परम् ॥
तृतीयःकोटिहोमस्तु सर्वकामफलप्रदः।
अयुतेनाहुतीनां च नवग्रह मख स्मृतः ॥
होमं समारभेत्सर्पि यव व्रीहितिला दिना।
अर्कःपलाश खदिरोह्यपामार्गोऽथ पिप्पलः ॥

उदुम्बर शमीदूर्वा कुशाश्च समिधः क्रमात् ।
एकैकस्य चाष्टशतमष्टाविंशति वा पुनः ॥
दक्षिणाभिःप्रयत्ने बहून्वा बहु वित्तवान् ।
लक्षहोमस्तु कर्त्तव्यो यदिवित्तं गृहे गृहे ॥
यतः सर्वानवाप्नोति कुर्वन्कामान्विधानतः ।
पूज्येतशिव लोके च वस्वादित्य मरुद्गणैः ॥
यावत्कल्प शतान्यष्टावथ मोक्षमवाप्नुयात् ।
सकामोयस्त्विमं कुर्याल्लक्ष होमं यथा विधिः ॥
सतंकाममवाप्नोति पदं चानन्त्यमश्नुते ।
पुत्रार्थीलभते पुत्रं धनार्थी लभतेधनम् ॥
भार्यार्थी शोभनांभार्यां कुमारी च शुभ पतिम् ।
भ्रष्टराज्यस्तथाराज्यं श्रीकामश्रियमाप्नुयात् ॥
यं यं कामयेतकामं तंतं प्राप्नोति पुष्कलम् ।
निष्कामःकुरुतेयस्तु परं ब्रह्म सगच्छति ॥

—अग्नि पुराण

अर्थ—लक्ष्मी की इच्छा करने वाला अथवा शान्ति चाहने वाला नवग्रह यज्ञ करे। उसी प्रकार दृष्टि, आयुः की पुष्टि चाहने वाले को भी ग्रह यज्ञ करना चाहिए। ग्रह यज्ञ तीन प्रकार कहा गया है, पुराणवेत्ता, श्रुतिवेत्ताओं के द्वारा।

"पहला अयुतहोम दूसरा लक्ष होम तीसरा कोटि होम सम्पूर्ण कामनाओं के फल के देने वाले हैं। अयुत (दस हजार) आहुतियों के देने से वह नवग्रह यज्ञ कहा गया है।"

"अर्क पलाश, खदिर अपामार्ग, पिप्पल, उदुम्बर, शमी (छोंकर). दूब और कुशा इन समिधाओं के क्रम से घी, जौ, व्रीहितिलादि से एक २ ग्रह को एक सौ आठ अथवा अट्ठाईस आहुतियों से हवन करे।"

"बहुत धन वालों को प्रयत्नपूर्वक बहुत से लक्ष होम करना चाहिये। यदि घर में धन हो तो विधि-विधान से लक्ष होम को करने से सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्ति होती है और आठ सौ कल्प तक वसु-आदित्य, मरुद्गणों आदि के द्वारा शिव लोक में पूजित होता है, इसके बाद मोक्ष पद को प्राप्त करता है।"

"जो मनुष्य सकाम भावना से इस लक्ष होम को विधि-विधान से करता है, उसको इच्छित काम की प्राप्ति होती है और अन्त समय परम पद को प्राप्त करता है।"

"पुत्रार्थी पुत्र को प्राप्त करते हैं, धनार्थी धन को प्राप्त करते हैं, भार्यार्थी सुन्दर स्त्री को प्राप्त करते हैं और कन्या शुभ पति को प्राप्त करती हैं। राज्य से च्युत राजा राज्य को प्राप्त करता है—लक्ष्मी की कामना वाला लक्ष्मी को प्राप्त करता है।"

"जो पुरुष जिस-जिस कामना की इच्छा करता है, उसी-उसी कामना को अधिक मात्रा में प्राप्त करता है, जो निष्काम भाव से लक्ष हवन करता है वह परब्रह्म को प्राप्त करता है।"

यज्ञ से सुसन्तति की प्राप्ति

यज्ञों का आश्चर्यजनक प्रभाव, जहाँ मनुष्य की आत्मा, बुद्धि एवं निरोगता पर पड़ता है वहाँ प्रजनन प्रणाली की भी शुद्धि होती है। याज्ञिकों को सुसंतति प्राप्त होती है। रज-वीर्य में जो दोष होते हैं, उनका निवारण होता है। साधारण और औषधियों का सेवन केवल शरीर के ऊपरी भागों तक ही प्रभाव दिखाता है, पर यज्ञ द्वारा सूक्ष्म की हुई औषधियाँ याज्ञिक स्त्री पुरुषों के श्वांस तथा रोम कूपों द्वारा शरीर के सूक्ष्मतम भागों तक पहुँच जाती हैं और उन्हें शुद्ध करती हैं। गर्भाशय एवं वीर्य कोषों की शुद्धि में यज्ञ विशेष रूप से सहायक होता है।

जिन्हें संतति नहीं होती, गर्भपात हो जाते हैं, कन्या ही

होती हैं, बालक अल्पजीवी होकर मर जाते हैं, वे यज्ञ भगवान् की उपासना करें तो उन्हें अभीष्ट सन्तान-सुख मिल सकता है। कई बार कठोर प्रारब्ध संतान न होने का प्रधान कारण होता है, वैसी दशा में भी यज्ञ द्वारा उन पूर्ण संचित प्रारब्ध का शमन हो सकता है।

गर्भवती स्त्रियों को पेट से बच्चा आने से लेकर जन्म होने तक चार बार यज्ञ संस्कारित करने का विधान है ताकि उदरस्थ बालक के गुण, कर्म, स्वभाव, स्वास्थ्य, रङ्ग-रूप आदि उत्तम हों। गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्त, जातक यह चार संस्कार यज्ञ द्वारा होते हैं, जिनके कारण बालक पर उतनी छाप पहुँचती है, जितनी जीवन भर की शिक्षा-दीक्षा में नहीं पड़ती। ऋषियों ने षोडस संस्कार-पद्धति का आविष्कार इसी दृष्टि से किया था। उस प्रणाली को जब इस देश में अपनाया जाता था, तब घर-घर सुसंस्कृत बालक पैदा होता था। आज उस प्रणाली को परित्याग करने का ही परिणाम है कि सर्वत्र अवज्ञाकारी, कुसंस्कारी सन्तान उत्पन्न होकर माता-पिता तथा परिवार के सब लोगों को दुख देती हैं।

सन्तान-उत्पादन के कार्य में यज्ञ का अत्यन्त ही महत्त्व-पूर्ण स्थान है। जिनके सन्तान होती है, वे अपने भावी बालकों को यज्ञ भगवान् के अनुग्रह से सुसंस्कारी, स्वस्थ, बुद्धिमान, सुन्दर और कुल की कीर्ति बढ़ाने वाले बना सकते हैं। जिन्हें सन्तान नहीं होती है, वे उन बाधाओं को हटा सकते हैं जिनके कारण वे सन्तान-सुख से वञ्चित हैं। प्राचीन काल में अनेक सन्तान हीनों को सन्तान प्राप्त होने के उदाहरण उपलब्ध होते हैं, जिनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं।

अयोध्या नरेश श्री दशरथजी अपने यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों से कहते हैं, जिनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं:—

धर्मार्थ सहितं युक्तं श्लक्ष्णं वचनमब्रवीत्।
ममता तप्यमानस्य पुत्रार्थं नास्ति वैसुखम् ॥ ८ ॥

—वाल्मीकि रामायण, आ० ख०, द्वादश सर्ग

अर्थ—हे विप्रगणो! मैं पुत्र-प्राप्ति की कामना से बहुत ही सन्तप्त और व्याकुल हूँ। मुझे कहीं जरा भी सुख नहीं मिल रहा है। मैंने पुत्र की प्राप्ति के लिये यज्ञ करने का विचार किया है।

ऋषि पुत्र प्रभावेण कामान्प्राप्स्यामि चाप्यहम् ॥१०॥
तद्यथा विधि पूर्वं मे क्रतुरेष समाप्यते।
तथा विधानं क्रियतां समर्थाः करणेष्विह ॥ ११ ॥

अर्थ—ऋषि पुत्र शृङ्गी ऋषि के यज्ञ क्रिया की निपुणता के प्रभाव से अवश्य ही हमारी पुत्र-कामना पूरी होगी। अतः आप विधिपूर्वक यज्ञ करने-कराने में समर्थ द्विजगण सावधान होकर यज्ञ करावें, जिससे यह सांगोपांग विधिपूर्वक पूर्ण हो जाय।

राजा चित्रकेतु के पुत्र होने का वर्णन 'भागवत पुराण' में इस प्रकार कहा गया है:—

इत्यर्थितं स भगवान् कृपालु ब्राह्मणः सुतः।
अपयित्वा चरुं त्वाष्ट्रं त्वष्टारम यज्ञद्विजम् ॥२७॥
ज्येष्ठा श्रेष्ठा च या राज्ञो महिषीणां च भारत।
नाम्ना कृतद्युतिस्तस्यै यज्ञोच्छिष्ट मदाद्विज ॥२८॥
सापि तत्प्रशनादेव चित्रकेतोरधारयत्।
गर्भं कृतद्युतिर्देवी कृतिकाऽग्नेरिवात्मज ॥ ३० ॥
अथकाल उपावृत्ते कुमारः समजायत।
जनयञ्छूर सेनानां शृण्वतां परमांमुदम् ॥ ३१ ॥

हृष्टो राजा कुमारस्य स्नातः शुचि रलंकृतः ।
वाचयित्वाऽऽशिषो विप्रैः कारयामासजातकम् ॥२३॥

—भागवत पुराण, छ० स्क०, १४ अ०

अर्थ—जब राजा चित्रकेतु ने अङ्गिरा ऋषि की प्रार्थना की, तो ब्रह्मा के पुत्र परम दयालु अङ्गिरा ऋषि ने उसी समय त्वाष्ट्र चरु लेकर उसे सिद्ध कर त्वष्टा की पूजा करवाई और यज्ञ किया ॥ २७ ॥

हे भारत! (परीक्षित!) यज्ञ समाप्त होने पर, राजा की अनेकों रानियों में जो सब से श्रेष्ठ और बड़ी कृताद्युति थी, ब्रह्मर्षि अङ्गिरा ने उसे यज्ञ का शेष अन्न (यज्ञोच्छिष्ट) दिया।

यज्ञ शेष (चरु) भोजन करके चित्रकेतु की रानी कृतद्युति ने—जिस भाँति कृत्तिका ने अग्नि की आत्मा को धारण किया था, उसी भाँति धारण किया ॥ ३० ॥

इसके पीछे जब गर्भ मास पूर्ण हो गये, तब राजकुमार उत्पन्न हुआ। पुत्र का जन्म सुनकर शूरसेन देश निवासियों को अपार आनन्द प्राप्त हुआ ॥ ३२ ॥

राजा चित्रकेतु पुत्र का जन्म श्रवण कर, आनन्द-सागर में निमग्न हो गया। शान्त चित्त से स्नान-ध्यान कर, पवित्र हो स्वच्छ वस्त्र धारण किया और विधिपूर्वक ब्राह्मणों से आशीर्वाद प्राप्त कर अपने पुत्र का जातकर्म संस्कार सविधि सम्पन्न किया ॥ ३३ ॥

यज्ञ का महान विज्ञान

जिस दिन से ऋग्वेद की प्रथम ऋचा की कृपा से मनुष्य ने अग्नि प्रज्वलित करना सीख लिया, उसी दिन से यह संसार का सबसे प्रभावशाली सत्व बन गया। उसी दिन से बड़े से बड़े हिंसक जीव भी इससे भयभीत होने लगे। जिसके हाथ में प्रकाश और ताप का स्वेच्छा नियन्त्रण आ गया, उसकी शक्ति का

सामना अन्य प्राणी कर भी कैसे सकते थे। सङ्गतिकरण से उत्पन्न हुये अग्नि को संगतिकरण में ही लगा दिया तब उससे सहस्र गुणित संवृद्धि प्राप्त होने लगी। जिसे हम संगतिकरण कह रहे हैं, इसी का वैदिक नाम "यज्ञ" है। अतः यज्ञ से उत्पन्न हुआ अग्नि यज्ञ के ही कार्यों में नियोजत किया गया। यज्ञाग्नि ने थोड़े ही समय में प्रकृति की मुख्य शक्तियों को जिनको वैदिक भाषा में हम देवता कहते हैं अपने वश में करके यजमान को सौंप दिया। यजमान अग्नि के माध्यम से समस्त देवताओं को पूजा करके उनको वश में कर सकने में समर्थ हो गया। अग्नि की कृपा से भौतिक विज्ञान का मार्ग खुल गया, इससे कोई आधुनिक विज्ञान वेत्ता भी इनकार नहीं कर सकता है।

इस प्रभावशाली अग्नि को प्रारम्भ में कृत्रिम रूप से ऋग्वेद की प्रथम ऋचा की प्रेरणा से ही उत्पन्न किया गया था और उसे उत्पन्न करने में जो प्रयत्न किया गया था उसी का नाम यज्ञ है। ऋग्वेद की ऋचा में अग्नि की स्तुति में पाँच विशेषण दिये हैं, वे पाँचों यज्ञ के ही विभिन्न व्यक्तियों से सम्बन्धित हैं। आप उनकी संज्ञा मात्र से ही उनको पहिचान सकते हैं। वे इस प्रकार हैं-१ पुरोहित २ यज्ञ का देव ३ ऋत्विज ४ होता ५ रत्न-धातम। इन पाँचों विशेषणों से पता चलता है कि अग्नि के प्रथम उत्पादकों के सामने अग्नि उत्पन्न करने का लक्ष्य यज्ञ करना ही था और यज्ञ ही के द्वारा सम्पूर्ण संवृद्धियों का पाना था। हमारे आदि पूर्वजों ने यज्ञ के द्वारा ही अनेक विज्ञानों का आविष्कार किया और उससे मानव समाज तथा सभ्यता का विकास हुआ। सामूहिक रूप से विश्वात्मा की तृप्ति के लिये प्रयत्न करना अर्थात् विश्व-कल्याण के स्तर पर संवृद्धि के लिये प्रयत्न करने का ही नाम यज्ञ है और अग्नि ही ऐसे यज्ञ का देव है।

नवीन विज्ञान में भी पृथ्वियों, लोक-लोकान्तरों, ग्रह नक्षत्रों आदि की उत्पत्ति तेजोमय वाष्पपुञ्जों रूपी निहारिकाओं से मानी गई है। द्रव्यों के तीन रूप वाष्प, द्रव तथा ठोस होते हैं। आदिम काल में सभी ठोस तथा द्रव वाष्प रूप में थे। सेर भर तोल का लोहपिण्ड यदि विद्युत की भट्टी में डालकर गलाया जाय, तो पहिले पानी जैसा पतला होकर फिर वाष्प बनकर उड़ जाता है तथा पुनः प्रक्रिया द्वारा ठोस लोह पिण्ड में परिवर्तित किया जा सकता है। पाश्चात्य जगत पृथ्वी की उत्पत्ति ऐसे मानता है कि पूर्व में यह सूर्य्य से टूटकर अलग हुये तथा दहकते हुये द्रव का एक गोला था जो क्रमशः ठण्डा होकर ठोस हो गया। फिर इस पर धीरे-धीरे वनस्पति तथा जीव जन्तुओं का आविर्भाव हुआ। इस प्रकार पाश्चात्य दृष्टिकोण से भी सृष्टि-क्रम सूक्ष्म से स्थूल की ओर ही है।

यज्ञ ही सृष्टि की वृद्धि का सूक्ष्म कारण था जो वायु-मण्डल में अनेकों प्रकार की सिद्धि, समृद्धि, सुख, सम्पत्ति, ज्ञान, जिज्ञासा, संयम, सदाचार आदि के प्राण रूप में विद्यमान था। यही यज्ञ रूपी सूक्ष्म प्राण, अग्नि में होकर जल व पृथ्वी तत्व का रूप धारण करके अभीष्ट फलों में बदल जाता है। इसी प्रकार वह शुद्ध तथा उचित स्थूल द्रव्य जिनमें जल व पृथ्वी के अंश अधिक हैं, उनको अग्नि में पुनः डालकर वायु, वाष्प या धुयें के रूप में परिवर्तित् व विशद् करके वायु-मण्डल में सुख-समृद्धि तथा नाना प्रकार के अभीष्टों के प्राण पुनः बनाए जा सकते हैं।

सृष्टि के आदि में सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्राणियों की सृष्टि हुई, जो जन्मना प्रत्येक सिद्धिओं से सम्पन्न थे, प्रकट व लोप हो सकते थे, आकाशचारी थे तथा संकल्प मात्र से लोक-लोकान्तरों में जा सकते थे। यह ऋषिगण थे, इनको श्रुति सिद्धि थी, इनको

ब्रह्म शब्दों द्वारा अनेकों प्रकार की यज्ञ की विधियाँ ज्ञात थीं। ऋषिसर्ग के पश्चात् देवसर्ग, पितृसर्ग, मनुष्यसर्ग तथा अनेकों अन्य सर्ग हुए जो ऋषियों के प्रति ब्रह्म द्वारा कथित यज्ञों का पालन करके अपना तथा लोक का कल्याण करते चले आए।)

सृष्टि के प्रारम्भ में ऋषि सर्ग व देवसर्ग के प्राणी सिद्धि सम्पन्न होने के कारण केवल संकल्प मात्र से अभीष्ट फलों की प्राप्ति कर लेते थे अर्थात् सूक्ष्म सृष्टि होने के कारण यज्ञों की स्थूल प्रक्रिया न होकर केवल कल्प व संकल्पों द्वारा ही वर्ता जाता था अर्थात् उनको अग्नि में हवन द्वारा स्थूल द्रव्यों को वाष्प, वायु अथवा धुँए में परिवर्तित करके वायु-मण्डल में अभीष्ट फलों के प्राण, कारण व बीज बनाने की आवश्यकता न थी। परन्तु सतयुग के अन्तिम तथा त्रेतायुग के प्रारम्भ काल में जब कि मनुष्यादि सर्गों का आविर्भाव तथा वृद्धि हो चुकी थी तथा साथ ही साथ, मनुष्यों में इच्छा, आवश्यकता तथा रजोगुण की उत्तरोत्तर वृद्धि हो चली थी तो विविध संकल्पों के साथ उचित तथा शुद्ध व अभीष्ट फल सिद्धिकारक स्थूल द्रव्यों को अग्नि में हवन कर धुयें के रूप में विशद बनाकर वायु-मण्डल में अभीष्ट फलों के कारण रूप प्राण बनाकर प्राप्ति व वृद्धि करने लगे।)

(त्रेतायुग के विद्वान् व वैज्ञानिक ऋषियों ने इस विद्या में बड़ी उन्नति की। व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र की कोई भी आवश्यकता हो उसके लिये तत्काल ही एक यज्ञ की व्यवस्था कर देते थे। संकल्पों के साथ उचित द्रव्यों को अग्नि में हवन करके अभीष्ट फल की प्राप्ति करने लगे। यहाँ तक उन्नति हुई कि इन्हीं यज्ञों द्वारा विशिष्ट शक्ति सम्पन्न देवता, असुर, गन्धर्व, राक्षस आदि प्राणियों को प्रकट करना, रथ, विमान, खीर अनेकों प्रकार की औषधियाँ, राजमहल, घोड़ा, वृक्ष, गौ, नदी आदि मनचाही

वस्तुओं को सद्यः प्राप्त करने के अनेकों उदाहरण हैं, जो पुराणों व उपनिषदों में वर्णित हैं। ऋषियों ने उन भिन्न-भिन्न द्रव्यों का पता लगाया, जिनको संकल्प के साथ अग्नि में हवन करने से भिन्न-भिन्न अभीष्टों की सिद्धि होती है। उन्होंने गौ को यज्ञ के लिये सर्वथा उपयुक्त पाया।

जितने भी हवनीय द्रव्य हैं उनमें गोघृत के हवन द्वारा बने हुए सुगन्धित वायु-मण्डल का आयतन सबसे अधिक है, यह प्रत्यक्ष देखा गया है। गोघृत के पश्चात् सुगन्धित आयतन बनाने का नम्बर शक्कर का है। कपूर, गुग्गुल, राल, देवदारु, चंदन, अगरु, खस, नागरमोथा, पान, सुपारी, नारियल, खजूर, जटामाँसी, गोरोचन, केशर, कस्तूरी, सुगंधवाला, लौंग, इलायची, तेजबल, कपूरकचरी, मखाना, छुहारा, किशमिश, अंगूर, सेवादि फल, जौ, तिल, धान्य आदिकों में भी हवन द्वारा वायु-मण्डल में अधिकाधिक सुगन्धित आयतन बनाने का गुण है परन्तु गोघृत इन सब में मुख्य है। गोघृत के योगवाही तथा विशद होने के कारण अन्य द्रव्य भी इसके संयोग से हवन द्वारा प्राण रूप होकर वायु-मण्डल में विशद या वृहद् आयतन धारण कर लेते हैं।

इस विषय का एक क्रमबद्ध शास्त्र था कि गोघृत के साथ किन-किन द्रव्यों को कितनी-कितनी मात्राओं में किन-किन सङ्कल्पों द्वारा हवन करने से किन-किन अभीष्ट फलों के वायु-मण्डल में कारण व बीजरूप प्राण बन जाते हैं, जो समय के फेर से व्यवहार भ्रष्ट हो जाने के कारण अधिकांश नष्ट हो गया है। थोड़ा बहुत प्राप्य भी है तथा खोज द्वारा पुनः बहुत कुछ प्राप्त किया जा सकता है।

यहाँ तक तो सृष्टि क्रम, ब्रह्मा से यज्ञ की उत्पत्ति, सृष्टि

के आदि ही से लोकों का यज्ञ से सम्बन्ध, त्रेतायुग के ऋषियों द्वारा यज्ञ का प्रचार व विस्तार, यज्ञ द्वारा अभीष्ट फलों की प्राप्ति का वैज्ञानिक व व्यवहारिक आधार व प्रमाण, गोघृत का महत्व आदि के विषय में वर्णन हुआ। अब हम यह दर्शाते हैं कि हवन किये द्रव्यों से वायु-मण्डल में बना हुआ अभीष्ट फलों का कारण व बीज रूप प्राण द्वारा अंकुरित फल, अन्य देशों में न होकर विशेषतः उसी देश में कैसे होता है जहाँ कि यज्ञ किया जाता है:--

नव्य विज्ञान में एक सिद्धान्त प्रतिक्रियावाद का है। शक्ति का प्रयोग चाहे जिस द्रव्य या पदार्थ पर किया जाय, वह द्रव्य या पदार्थ भी उतने ही वेग के साथ शक्ति को उसके पूर्व स्थानों को लौटा देता है। अब तक यह प्रतिक्रियावाद सैकड़ों उदाहरणों द्वारा सिद्ध किया गया है। इसकी मान्यता के अनुसार यज्ञ द्वारा अभीष्ट फलों की प्राप्ति भी उसी व्यक्ति, समाज, राष्ट्र अथवा देश को होती है, जिसके द्वारा यज्ञ का संकल्प, संयोजन, वर्तन तथा पूर्ण किया जाता है।

एक बात और यह है कि पृथ्वी का विषय गन्ध है। पृथ्वी सदा वायु से गन्धों का शोषण करके वायु को निर्गन्ध किया करती है। पृथ्वी के विकार रूप पशु, मनुष्य, वृक्षादि स्थिर अथवा चंचल वायु की गन्ध सदा खींचते रहते हैं। सगंध वायु कुछ मीलों तक चलने पर स्वयं निर्गन्ध हो जाती है। गन्ध से भारी होने के कारण यह सदा पृथ्वी के धरातल पर ही बहता है। ऊपर आकाश का सूक्ष्म वायु निर्गन्ध होता है। इस प्रकार यज्ञ में हवन द्वारा बने अभीष्ट फलों के कारण व बीजरूप वाष्प, धुँआ व गन्ध को यज्ञ प्रदेश वाली पृथ्वी शोषण कर लेती है। पुनः अभीष्ट अन्न, फल, दुग्ध, सुख, प्रसाद आदि उत्पन्न कर उस प्रदेश को अर्पण करता है।

मान लिया कि किसी देश में लोक-कल्याण के निमित्त एक बहुत बड़ा यज्ञ किया गया। यज्ञ का प्राणस्वरूप बहुत बड़ा धुँआ उठा, जिसने वायु-मण्डल के एक विशाल आयतन को घेर लिया। इतने में जोरों की आँधी आई और वह पवित्र धुँआ आँधी के झकोरों के साथ एक पड़ौसी शत्रु देश में पहुँच गया तो इसका फल भी बड़ा उत्तम होता है। वह पड़ौसी शत्रु देश धीरे-धीरे आपके देश का मित्र बन जायगा। आपके देश से सहानुभूति रखने लगेगा। वह आपके देश के साथ भलाई करने लगेगा। उस शत्रु देश के निवासी भी आप ही के से विचार वाले हो जाँयगे तथा प्रति उपकार द्वारा इस पुण्य का फल आपको प्राप्त होगा। इस प्रकार शत्रु-मित्र दोनों प्रकार के देशों का इससे कल्याण ही होगा।

हम श्रीमद्भागवत पुराणों में नगर वर्णन में द्वारका, मथुरा, अयोध्या, काशी आदि नगरों के विषय में ऐसा पढ़ते हैं कि इन नगरों पर सदा यज्ञ का धुँआ मँडराया करता था। गलियाँ अगर, कस्तूरी, चन्दन आदि सुगंधित द्रव्यों की सुगन्ध से सुवासित रहती थीं। शुद्ध, सुगन्धमय, प्रसन्नता व प्रीतिदायक वातावरण बना रहता था जो समाधिवर्धक, मन को एकाग्र व भावमय बनाने में सहायक होता था, जन समुदाय की बुद्धि, स्मृति, बल, प्रसन्नता आदि का कारण होता था। दैहिक, दैविक तथा भौतिक परमाणुओं का शमन होता था।

यज्ञ के महत्व के विषय में हमने अपने जीवन में भी इसे शुद्ध गोघृत द्वारा सम्पन्न करने से इसके सुन्दर फलों की प्रत्यक्षता अनेकों बार देखी है।

प्राचीन काल से भारत के वेदज्ञान, अध्यात्म धर्म, संस्कृति का यज्ञ ही प्रधान कारण रहा है। इसी भारतीय प्राचीन संस्कृति

ने अनेक अवतारों, संत, महात्माओं, विद्वानों, वैज्ञानिकों, ऋषि, मुनियों तथा धार्मिक राजाओं को जन्म दिया जो इतिहास प्रसिद्ध है तथा इस समय भी संसार में मान है।

पहले बड़े-बड़े राजा, सम्राट दिग्विजय द्वारा सम्पत्ति का अर्जन करके यज्ञ द्वारा उसका पुनः निःशेष वितरण कर दिया करते थे। महाराजा रघु ने दिग्विजय के उपरान्त विश्वजित् नामक यज्ञ में समस्त खजाना खाली कर दिया था। उनके पास धातु का एक पात्र तक नहीं बचा था। वरतन्तु शिष्य कौत्स के आने पर राजा ने उनका मिट्टी के अर्घ्यपात्र से सत्कार किया था। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्र के यज्ञों में इतना दान दिया गया कि माता सीतादेवी के कण्ठ में सौभाग्य-चिह्न मङ्गल सूत्र मात्र बच रहा था। कई उदारचेता यजमान यज्ञ में ऋत्विजों को अपनी समस्त अधिकृत भूमि प्रदान कर देते थे। यज्ञ की साङ्गता के लिए वे निःस्पृह ऋत्विक् दान ले तो लेते थे, किन्तु बाद में उस सम्पत्ति को फिर वापिस लौटा दिया करते थे। राजा भी निक्षेप समझ कर निरपेक्ष वृत्ति से उस लौटाई हुई भूमि की व्यवस्था करते थे। ऋत्विजों द्वारा त्यक्त सुवर्ण, रत्न आदि चल सम्पत्ति वहाँ ही पड़ी रहती थी, कोई भी परस्वापहरण के पाप का भय होने से उसको हाथ भी नहीं लगाता था। महाराज मरुत्त के विश्वविख्यात यज्ञ में ऋत्विजों द्वारा इसी प्रकार छोड़ी हुई अपार संपत्ति का धर्मराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में महर्षियों की अनुमति से उपयोग किया गया था।

पुण्यकार्य में यथाकथञ्चित् सहयोग करना भी पुण्यजनक होता है, अतः यज्ञों में अधिकतर लोग बिना अर्थ-लिप्सा के ही सहायक बनकर यज्ञ कार्य के सम्पादन में भाग लेते थे। बड़े-बड़े शूर-वीर, सम्मान्य, विद्वान् एवं मूर्धन्य लोग भी निरभिमान,

निर्दम्भ होकर यज्ञ सम्बन्धी साधारण से भी साधारण कार्य के सम्पादन का भार सहर्ष वहन किया करते थे। महाराज मरुत्त के यज्ञ में साक्षात् देव मरुद्गणों ने परोसने का कार्य किया था। महर्षि वेदव्यास ने मरुत्त यज्ञ के लिए जो प्रशंसा-पत्र प्रदान किया है, वह 'श्रीमद्भागवत' से उद्धृत किया जा रहा है—

"मरुत्तस्य यथा यज्ञो न तथान्यस्य कञ्चन।
सर्वं हिरण्मयंत्वासीन यत् किञ्चिच्चास्य शोभनम् ॥२७॥
अमाद्यदिन्द्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः।
मरुतः परिवेष्टारो विश्वेदेवाः सभासदः॥ २८ ॥"

धर्मराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में रसोई घर की व्यवस्था भीमसेन ने, खजाञ्ची का काम दुर्योधन ने, पूजा सत्कार सहदेव ने, सामिग्री जुटाने का कार्य नकुल ने, बड़ों की सेवा अर्जुन ने, पाद-प्रक्षालन करने का सत्कार्य स्वयं श्रीकृष्ण ने, परोसने का भार महाभागा द्रौपदी ने, दानाध्यक्षता महामना कर्ण ने तथा युयुधान, विकर्ण, विदुर आदि ने महायज्ञ में विविध कर्मों का भार सँभाला था। वह कैसा सुवर्ण समय होगा जिसकी कल्पना में भी आज चित्त आनन्दविभोर हो जाता है।

यज्ञ में सावधानी की आवश्यकता

यज्ञ की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि उसके सब कार्य विधि-व्यवस्था पूर्ण हों। आग तापने या होली जलाने जैसा कौतूहल करने के लिये हवन करना व्यर्थ ही नहीं हानिकारक भी है। कहा भी है-"नास्ति यज्ञ समं रिपु" अविधि पूर्वक किया हुआ हवन शत्रु के समान हानिकारक भी होता है, जबकि विधिपूर्वक किया हुआ हवन कामधेनु गौ एवं कल्पवृक्ष के समान हमारे सभी अभावों को दूर करने वाला सिद्ध हो सकता है।

यज्ञ एक प्रकार की वैज्ञानिक प्रक्रिया है। जो वैज्ञानिक

प्रक्रिया जितनी शक्तिशाली होती है, उसमें उतनी ही सावधानी वरतनी पड़ती है। बढ़िया बारूद बनाने के कारखाने में यदि रासायनिक पदार्थों के संमिश्रण में लापरवाही होने लगे तो वहाँ रद्दी बारूद बनेगी, और जब उसका बन्दूक में उपयोग किया जायगा तो लक्ष वेध में सफलता न मिलेगी। इसलिये उस बारूद के कारखाने के व्यवस्थापक पूरी सावधानी से यह देख भाल करते रहते हैं कि कारखाने का हर कार्य पूर्ण रूपेण नियमपूर्वक हो। यदि बारूद पीसने वाले या कारतूस भरने वाले कर्मचारी ढील पोल की नीति से काम करें, लापरवाही वरतें, बीड़ी पीकर चिनगारी बखेर दें तो सारे कारखाने को ही स्वाहा कर सकते हैं। घटिया कार्यों में लापरवाही चल सकती है पर जो कार्य जिम्मेदारी के हैं उनमें पूर्ण जागरूकता एवं पूर्ण व्यवस्था की ही आवश्यकता रही है। यज्ञ में ऐसी ही विधि-व्यवस्था वरती जानी चाहिये।

ब्रह्मा, अध्वर्यु, उद्गाता, ऋत्विक आचार्य आदि कार्य कर्ताओं की जिम्मेदारियाँ पहले से ही बाँट दी गई हैं कि वे अपने विभाग की सुव्यवस्था रखें और करवावें। यों हवन का काम मामूली सा है। एक सुपरवाइजर बड़े बड़े मिलों का इन्तजाम कर सकता है तो छोटे से हवन के लिए भी एक मैनेजर काफी होना चाहिए पर यज्ञ बहुत गंभीर बात है, उसकी प्रत्येक पर पूर्ण गतिविधि मनयोग के साथ ध्यान रखना सामान्य मस्तिष्क के एक आदमी का काम नहीं है, इसलिए यज्ञ के प्रत्येक कार्य में पूरी सावधानी रखने के लिए कई कार्यकर्ता विभागाध्यक्ष नियुक्त करते हैं। आचार्यादिवरण की यही प्रक्रिया है। यह लोग पूरे जिम्मेदार, पूर्ण श्रद्धालु और अपनी जिम्मेदारी को निवारने के लिये भरपूर परिश्रम करने वाले होने चाहिये।

गायत्री तपोभूमि—एक महान् धर्म संस्थान

गायत्री तपोभूमि, मथुरा शहर से १ मील आगे—वृन्दावन रोड पर परम शांतिमय वातावरण में बना हुआ एक सुन्दर आश्रम है, जहाँ गायत्री माता का भव्य मन्दिर, भारतवर्ष के लगभग २४०० तीर्थों के जल-रज का एक तीर्थ सम्मेलन-गृह, १२५ करोड़ हस्तलिखित गायत्री-मन्त्रों का संग्रह-कक्ष, निवास के लिए २३ कमरे, एक प्रवचन हाल, तीन बड़ी यज्ञ-शालाऐं, प्रधान यज्ञशाला में कभी न बुझने दी जाने वाली अखण्ड-अग्नि की स्थापना, नित्य गायत्री-मन्त्र की एक हजार आहुतियों का हवन, तुलसी का उपवन, हजारों धार्मिक पुस्तकों का विशाल पुस्तकालय, लगभग ६० पत्र-पत्रिकाऐं आने वाला वाचनालय, बिना मूल्य चिकित्सा के लिए कल्प चिकित्सालय यह सब देखकर कोई भी दर्शक संस्था की गति-विधियों का सहज ही अनुमान लगा सकता है। गायत्री तपोभूमि में सदा अनेक धार्मिक भावना वाले व्यक्ति शिक्षा, तीर्थ-यात्रा, साधना,तपश्चर्या एवं विभिन्न कठिनाइयों के सम्बन्ध में आचार्यजी से परामर्श करने आते हैं। आगन्तुकों को तपोभूमि में निवास, भोजन आदि की समुचित सुविधा प्राप्त होती है।

गायत्री तपोभूमि द्वारा देश भर में गायत्री महायज्ञों एवं सांस्कृतिक सम्मेलनों की सुविस्तृत शृंखला चल रही है। सन् '५६ और '५७ में १००० बड़े गायत्री महायज्ञ तथा सांस्कृतिक सम्मेलन करने का निश्चय किया था। सो उस संकल्प से भारतवर्ष के कोने-कोने से हजारों यज्ञ हुए जिनमें से १०१ कुण्डों वाले, २५ कुण्डों वाले, ९ कुण्डों वाले विशाल यज्ञों की संख्या १००० थी। इनमें से कुछ यज्ञों में तो ५० हजार तक जनता एकत्रित हुई। ये यज्ञ अ० भा० गायत्री-परिवार की देश में फैली हुई १२०० शाखाओं द्वारा सम्पन्न हुये थे। इन यज्ञों और सम्मेलनों का उद्देश्य जनता में धर्म, सदाचार, नैतिकता,

लेखक—
श्रीराम शर्मा आचार्य
गायत्री तपोभूमि, मथुरा

ॐ भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि
धियो योनः प्रचोदयात् ।

प्रकाशक—
"अखण्ड ज्योति" प्रेस, मथुरा।

१ वार] सन् १९५८ [मूल्य ।)

गायत्री द्वारा मनुष्य-जीवन की सार्थकता

गायत्री के जप की महिमा

हिन्दू धर्म-शास्त्रों में मनुष्य को आत्मिक शक्ति प्रदान करने वाले और मनोकामनाओं को सिद्ध करने वाले जो अनेक मंत्र बतलाये गये हैं, उन सब में गायत्री को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। विश्वामित्र ऋषि का मत है कि "चारों वेदों में गायत्री के समान कोई मंत्र नहीं है। इतना ही नहीं सम्पूर्ण वेद गायत्री मंत्र की एक कला के समान भी नहीं है।" भगवान मनु ने कहा है कि "ब्रह्माजी ने तीन वेदों के सार रूप गायत्री मंत्र को खोज कर निकाला है। इस मंत्र के पढ़ने से वेद जानने का फल प्राप्त होता है।" याज्ञवल्क्य, पाराशर, शंख, शोनक आदि ऋषियों ने भी गायत्री को मनुष्य के उद्धार और मोक्षप्राप्ति के निमित्त सर्वश्रेष्ठ उपाय बतलाया है।

वर्तमान समय के महापुरुष भी गायत्री की महिमा स्वीकार करते हैं। महात्मा गाँधी जी ने कहा है कि "स्थिर चित्त और शान्त हृदय से किये हुये गायत्री जप में आपत्तिकाल के संकटों को दूर करने की शक्ति है।" लोकमान्य तिलक ने कहा है कि "गायत्री मंत्र में कुमार्ग से हटाकर सत्य-मार्ग पर चलाने की प्रेरणा विद्यमान है।" पं० मदनमोहन मालवीय की सम्मति है कि "ऋषियों ने हमको जो अनेक रत्न दिये हैं उनमें गायत्री सर्वश्रेष्ठ रत्न है।" कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है कि "गायत्री मंत्र ही राष्ट्र की आत्मा को जागृत करने वाला है इसमें सन्देह नहीं।" स्वामी दयानन्द कहते हैं कि "चारों वेदों का मूल गुरुमंत्र गायत्री ही है। आदिकाल में सभी ऋषि मुनि इसी का जप किया करते थे।" स्वामी रामतीर्थ कहा करते थे कि "राम को प्राप्त करना सबसे बड़ा काम है और गायत्री मनुष्य के मन को सांसा-

रिक वासनाओं से हटाकर राम में लगा देती है।" योगी अरविंद के कथनानुसार "गायत्री में महत्वपूर्ण शक्ति मौजूद है।" श्रीराम कृष्ण परमहंस ने स्वानुभव से बतलाता है कि "गायत्री द्वारा बड़ी से बड़ी सिद्ध प्राप्त की जा सकती है।" स्वामी विवेकानन्द का मत है कि "गायत्री मंत्र समस्त मन्त्रों का मुकुटमणि है।"

इससें सन्देह नहीं कि जिस प्रकार आयुर्वेद शास्त्रों में अनेक ऐसे प्रयोग बतलाये गये हैं कि जिनके द्वारा मनुष्य शरीर के परमाणु बदल कर उसके शरीर का कायाकल्प हो जाता है, इसी प्रकार गायत्री-मत्र का सच्चे हृदय से जप करनें से मनुष्य का आत्मिक कायाकल्प हो जाता है और उसे ऐसा जान पड़ता है कि उसके हृदय से सब प्रकार के विकार दूर होकर सत्त्वगुणी तत्वों की अभिवृद्धि हो रही है। इसके प्रभाव से विवेक, दूरदर्शिता, तत्वज्ञान का उदय होकर अनेक अज्ञान जनित दुखों का निवारण होता है। गायत्री-साधना से मनुष्य के अन्तर में ऐसी दृढ़ श्रद्धा का आविर्भाव होता है कि वह सब प्रकार के विघ्न-वाधाओं और प्रतिकूल परिस्थितियों को हँसते-हँसते सहन कर लेता है। भली-बुरी सब प्रकार की अवस्थाओं में वह साम्यभाव रखकर शान्ति-पूर्ण जीवन व्यतीत करता है। उसको संसार की सबसे बड़ी शक्ति "आत्मवल" प्राप्त हो जाता है जिसके द्वारा फिर वह अनेक प्रकार के सांसारिक लाभों और मनोकामनाओं को भी सहज में प्राप्त कर लेता है।

गायत्री मन्त्र देखने में बहुत बड़ा नहीं है और उसका अर्थ भी ऐसा सरल है कि कोई भी साधारण पढ़ा लिखा मनुष्य उस को सहज में समझ सकता है और याद कर सकता है। पर इस सीधे सादे मंत्र में ऐसी अमोघ शक्ति भरी है कि लोक और परलोक का बड़े से बड़ा काम उसके द्वारा सिद्ध हो सकता है। स्वामी

दयानन्द के उपदेशों को सुनने एक गरीब धुनिया आया करता था। एक दिन अवसर पाकर वह स्वामी जी से पूछ बैठा—"महाराज, मैं तो कुछ पढ़ा लिखा नहीं हूँ और आपके उपदेश विद्वतापूर्ण होते हैं। इसलिये कोई ऐसा उपाय बतलाइये कि मेरे जैसे मूर्ख का भी कल्याण हो सके।" यह सुनकर स्वामी जी ने गायत्री-मंत्र अर्थ सहित लिखकर उसे दे दिया और कहा—"इस मन्त्र का उसके अर्थ को स्मरण कर जप करते रहो और साथ ही रुई धुनने के धन्धे में सच्चे और ईमानदार रहने का प्रण करो। इसीसे तुम्हारा कल्याण हो जायगा।" इसी प्रकार स्वामी विवेकानंद ने एक अवसर पर उपदेश देते हुये कहा था कि "आत्मघात करने के लिये मनुष्य के पास एक मामूली-सा चाकू होना ही काफी है। उसको गले में घुसा कर वह अपने जीवन का अन्त कर सकता है। पर दूसरे को मारने के लिये बड़े-बड़े हथियारों की आवश्यकता पड़ती है। इसी प्रकार किसी व्यक्ति के लिये अपने उद्धार के लिये 'ओम्' और गायत्री मन्त्र का जप ही पर्याप्त है।"

मनुष्य जन्म का सबसे बड़ा फल सन्मार्ग पर चलकर परमात्मा की भक्ति प्राप्त करना ही बतलाया गया है। इसके लिये भी गायत्री की विधिवत् उपासना और उसके आदेशानुसार आचरण करना अत्यन्त फलदायी होती है। 'मनुस्मृति' में कहा गया है:—

कामान्माता पिता चैनं यदुत्पादयतो मिथः।
सं भूतिं तस्य तांविद्याद् यद्योनावभिजायते॥
आचार्यस्त्वस्य यांजातिं विधिवद्वेद पारगः।
उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साऽजराऽमरा॥

(मनु० अ० २ श्लोक १४७-१४८)

अर्थात् "माता-पिता तो काम वश होकर भी बालक को

उत्पन्न करते हैं, इससे जिस योनि में वह जाता है, उसी प्रकार के उसके हस्तपादादिक हो जाते हैं। परन्तु सम्पूर्ण वेद का जानने वाला आचार्य विधिवत् गायत्री उपदेश द्वारा इस बालक को जो जाति उत्पन्न करता है, वही जाति सत्य है और अजर अमर है।"

गायत्री की महिमा भारतवर्ष में अति प्राचीन काल से चली आई है, जिसका प्रमाण सभी शास्त्रों, इतिहासों और पुराणों में मिलता है। हिन्दुओं के षोडश संस्कारों में यज्ञोपवीत सबसे मुख्य और सर्वमान्य समझा जाता है। इस संस्कार के अवसर पर गुरु शिष्य को इसी मंत्र का उपदेश करता है। इसी प्रकार संन्यास ग्रहण करने के अवसर पर भी जल में खड़े होकर "ॐ भूर्भुवः स्वः। सावित्री प्रवक्ष्यामि"—का पाठ करना पड़ता है, जिसका आशय यह है कि "आज से मेरी माता सावित्री (गायत्री) है।"

वाल्मीकीय-रामायण में लिखा है कि जिस समय विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को यज्ञ की रक्षा के लिये साथ ले जा रहे थे उस समय रात्रि के समय विश्राम के लिये मार्ग में ठहरे। प्रातः होने पर ऋषि ने उनको उठाकर कहा—

कौशल्या सुप्रजा राम पूर्वा संध्या प्रवर्तते।
उत्तिष्ठ नरशार्दूल कर्तव्य दैव मान्हिकम्॥
तस्यर्षेः परमोदारं वचः श्रुत्वा नरोत्तमौ।
स्नात्वा कृतोदकौ वीरौ जपेतुः परमं जपम्॥

"राम, तू कौशल्या का सुपुत्र है, अब उठकर आन्हिक कर्म करो। इस परम हितकारी वचन को सुनकर दोनों भाई स्नान आचमन करके गायत्री-जप करने लगे।"

इसी प्रकार महाभारत में कहा गया है कि जब श्री कृष्ण पांडवों की तरफ से संधि का प्रस्ताव लेकर हस्तिनापुर जा रहे थे

तो उन्होंने मार्ग में रथ से उतर कर नित्य कर्म करके यथाविधि संध्या की—

> अवतीर्य रथात् तूर्णं कृत्वा शौचं यथाविधि ।
> रथ मोचन मादिश्य सन्ध्यामुपविवेश ह ॥
>
> (उद्योग पर्व ८४–२१)

इसके पश्चात् हस्तिनपुर पहुँच कर स्नान, हवन और जप करके वे कौरवों की सभा की ओर चले—

> "कृतोदकानुजप्यः सहुताग्नि समलंकृतः ।"
>
> (उद्योग० ६४–६)

भारतीय ही नहीं विदेशों के विद्वानों ने भी गायत्री की महिमा को स्वीकार किया है। सर मोनियर विलियम ने अपनी 'बुद्धिज्म' नाम की पुस्तक में लिखा है कि "ईसाई धर्म ईसा के बिना कुछ नहीं, इस्लाम धर्म हजरत मुहम्मद के बिना कुछ नहीं, बौद्ध धर्म महात्मा बुद्ध के बिना कुछ नहीं । परन्तु मुझे यह सत्य बात कहने में कोई संकोच नहीं, यद्यपि मैं ईसाई हूँ, कि हिन्दुओं का मूल-मंत्र गायत्री है, जो बिना किसी ऋषि, मुनि या महान पुरुष के जीवित रह सकता है । हिन्दू धर्म का आधार किसी विशेष मनुष्य पर नहीं है । इस मंत्र के द्वारा हर एक मनुष्य सीधा परमेश्वर से ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है ।"

इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि गायत्री मन्त्र मनुष्य के आत्मिक और मानसिक उत्थान का सबसे बड़ा साधन है । जिस प्रकार गीता को समस्त उपनिषदों का सार कहा गया है, इसी प्रकार गायत्री मंत्र वेदों का सार है इसमें कोई संदेह नहीं । गायत्री मन्त्र के जप से सब देवताओं का अनुग्रह प्राप्त किया जा सकता है । इसके द्वारा देवी की आराधना की जा सकती है, विष्णु की आराधना की जा सकती है, सूर्य की आराधना की

जा सकती है, और निर्गुण परमात्मा की भी आराधना की जा सकती है।

ब्रह्मचारी में जो तेज पाया जाता है वह गायत्री मंत्र के जप का ही होता है। गृहस्थ के यहाँ जो वैभव अथवा समृद्धि दिखलाई पड़ती है वह भी गायत्री की ही होती है। वानप्रस्थ में जो शक्ति और संतोष प्राप्त होता है वह भी गायत्री का ही है। इस प्रकार जिस क्षण से बालक यज्ञोपवीत धारण करता है और जिस समय वह संन्यास की सर्वोच्च स्थिति में प्रवेश करता है, उसकी मार्ग दर्शक, सहायक, शक्ति दाता गायत्री ही रहती है। उसके लिये गायत्री ही सर्वस्व होती है। सत्य तो यह है कि एक हिन्दू का आध्यात्मिक जीवन गायत्री से ही आरम्भ होता है और अन्त समय तक गायत्री उसका साथ देती है। यही कारण है कि शास्त्रों ने गायत्री का जप प्रत्येक हिन्दू का अनिवार्य कर्तव्य बतलाया है। चाहे उसका कुल देवता कोई भी हो, चाहे वह किसी भी ईश्वरीय अवतार की पूजा क्यों न करता हो, पर नित्य प्रति गायत्री का उच्चारण करके सूर्य को अर्घ्य देना प्रत्येक हिन्दू का धर्म है। इस मंत्र के रूप में हमारे प्राचीन ऋषि मुनि हमको ऐसी शक्ति प्रदान कर गये हैं कि जिसकी तुलना की अन्य कोई शक्ति संसार में नहीं मिल सकती।

गायत्री का अद्भुत प्रभाव

यजुर्वेद के पहले अध्याय में एक मन्त्र आया है जिसमें बतलाया गया है कि यह मानव देह कहाँ से आया और इसका क्या प्रयोजन है? वास्तव में ये दोनों विषय सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। इनका ज्ञान न होने से ही मनुष्य अज्ञानान्धकार में ठोकरें खाता है और कुमार्गगामी हो जाता है। यदि हमको निश्चय रूप से यह समझ में आ जाय कि हम वास्तव में कौन

हैं और इस संसार में हमारे आने का उद्देश्य क्या है, तो फि हमारे मार्ग की अधिकांश कठिनाइयां हल हो जाती हैं और ह निरन्तर प्रगति के मार्ग पर अग्रसर हो सकते हैं। यजुर्वेद का व मन्त्र इस प्रकार है—

> कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति।
> तस्मै त्वा युनक्ति। कर्मणे वांवेषायवाम्॥ (१–६)

अर्थात्—तुमको किसने युक्त किया? अर्थात् इस शरी के साथ आत्मा का सम्बन्ध किसने जोड़ा? इसका उत्तर य दिया गया कि उस परमात्मा ने तुम्हारे शरीर और आत्मा क युक्त किया। दूसरा प्रश्न है कि तुमको किस प्रयोजन के लि युक्त किया गया? इसका उत्तर है कि (१) उस परमात्मा क भजन-दर्शन-मिलाप के लिये (२) सत्यव्रत, यज्ञ, धर्म प्रचार, शुभ गुणों और विद्याओं को धारण करने के लिये तथा (३) ज्ञान-की उपलब्धि के लिये। इस प्रकार वेद ने मनुष्य-जन्म के तीन प्रधान प्रयोजन बतलाये—ज्ञान, कर्म और उपासना, इन्हीं तीनों तथ्यों का निरूपण चारों वेदों में किया गया है। गायत्री मंत्र में भी इन्हीं तीनों तथ्यों का समन्वय विज्ञान और तर्कयुक्त ढंग से किया गया है; और वह भी ऐसे संक्षिप्त रूपमें कि प्रत्येक मनुष्य सर्वदा उसे स्मरण रख सकता है और उसका मनन कर सकता है। यही कारण है कि इसे 'गुरु मंत्र' अथवा 'महा मंत्र' का दर्जा दिया गया है। इसी ज्ञान के प्रभाव से प्राचीनकाल में हमारे देश ने इतनी उन्नति की थी कि वह 'जगद् गुरु' के नाम से विख्यात हो गया था। आज भी आध्यात्मिक विषयों में संसार भर के जिज्ञासु उसको उसी प्राचीन भाव से देखते हैं और आत्मिक शांति प्राप्त करने के निमित्त यहाँ आते हैं। इस संबंध में महात्मा आनन्द स्वामी ने अपने अनुभव की एक घटना बतलाई है—

"पहली बार सन् १९५० में जब मैं गंगोत्री गया और वहाँ एक कुटिया में रहकर योगाभ्यास करने लगा, तो उन्हीं दिनों अमरीका के एक अच्छे पढ़े-लिखे पति-पत्नी वहाँ पहुँचे। एक दिन बातचीत में दुनियां के दुःखी होने की चर्चा जो चली, तो मैंने अमरीकन सज्जन से पूछा कि "हम लोग अभी तक यही सुनते रहते हैं कि अमरीका बड़ा धनी देश है, वहाँ वैज्ञानिक उन्नति भी बहुत होगई है; मानव के सुख, आराम तथा एश्वर्य के हर प्रकार के साधन विद्यमान हैं; जितना सोना, अन्न, दूध, कपड़ा, मोटरें, शानदार इमारतें अमरीका में हैं और कहीं भी नहीं। तब इतने सब के सब सुभीते, आराम के साधन छोड़कर आप गंगोत्री जैसे स्थान पर क्यों आये ? यहां न ठहरने का स्थान है, न बिजली है, न मोटर, न रेडियो, न कोलतार की सड़कें, न फल मिलते हैं, न शाक, न होटल है, न सिनेमा। यहाँ तो केवल बीहड़ जंगल है, देवदारु और भोजपत्र के वृक्षों का। कोई भी आराम का साधन यहाँ नहीं। तब आपको अमरीका जैसे वैभवशाली देश से कौनसी वस्तु इस तपोभूमि में खींच लाई ?"

"इस प्रश्न के उत्तर में अमरीकन महिला तो मुस्करा के रह गई, पर उसके पति ने बड़ी गम्भीरता से लम्बा श्वांस लेकर कहा—'ठीक है, अमरीका में सब कुछ है, परन्तु वहां एक चीज नहीं। उसी को प्राप्त करने के लिये, उसी की खोज में अमरीका से निकल कर हम कठिन पैदल यात्रा करते गंगोत्री पहुँचे हैं और वह वस्तु जो वैभवशाली अमरीका में नहीं है, परन्तु यहां हमको प्राप्त हो गई, उसका नाम 'शान्ति और आनन्द' है।"

श्रीकृष्णमूर्ति आध्यात्मिक-जगत के एक प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। भारत ही नहीं संसारके अनेक देशों में उनके भक्त और अनुयायी मौजूद हैं, जो उनसे उपदेश और प्रेरणा लेकर आध्यात्मिक साधन में संलग्न हैं। इन कृष्णमूर्ति ने आरम्भ में मद्रास के अद्यार

स्थान में रहकर गायत्री उपासना द्वारा आत्म साक्षात्कार प्राप्त किया था। इसके फल से उनकी आत्मिक शक्ति की ऐसी वृद्धि और विकास हुआ कि लाखों मनुष्य उनको भगवान का अवतार मानने लग गये। उन्होंने इस सम्बन्ध में अपना जो अनुभव प्रकट किया था उसका कुछ अंश पाठकों के लाभार्थ यहां दिया जाता है—

"विशेष रूप से गायत्री मंत्र का प्रयोग करके उसका अवलोकन किया गया तो परिणाम अद्भुत जान पड़ा। इस मंत्र का उपयोग स्वार्थ के लिये नहीं, परार्थ के लिये करना चाहिये। मुझे स्वयं ऐसा अनुभव हुआ है कि जहां गायत्री मंत्र का उच्चारण होता है वहां देवता भी सहायता देते हैं।

"गायत्री भगवान सूर्य नारायण का आवाहन मंत्र है। गायत्री मंत्र का उच्चारण होते ही जप करने वाले के ऊपर प्रकाश की एक शक्तिशाली झलक स्थूल सूर्य में से पड़ जाती है। प्रार्थना के समय चाहे सूर्य उदय हो रहा हो, चाहे मध्याह्न का समय हो, चाहे सूर्य अस्त हो रहा हो, चाहे आधी रात का समय हो, पर जिस दिशा में सूर्य होगा, उसी तरफ से झलक आयेगी। रात्रि के समय तो झलक पृथ्वी को भेदकर आती है। यह झलक श्वेतवर्ण की कुछ सुनहलापन लिये होती है। जब उससे जप करने वाले का हृदय पूर्ण हो जाता है, तो वह मेघ-धनुष के सात रङ्गों में बाहर निकलती है और जप करने वाले के सामने जो कोई होता है उस पर उसका शुभ प्रभाव पड़ता है। वह प्रभाव केवल जप करने वाले के हृदय से ही बाहर नहीं निकलता, वरन् उसकी प्रभा (ओरा) में से भी अर्द्ध चन्द्र के आकार में निकलता है। प्रत्येक किरण त्रिकोणाकार और जीवनी शक्ति युक्त होती है। उस किरण के सामने जो मनुष्य बैठा हो अथवा सामने से आता हो तो यह किरण उसके हृदय और मस्तक को

स्पर्श करती है और इन अंगों के दोनों चक्रों को अल्प समय के लिए जाग्रत करती है। प्रत्येक किरण एक नहीं अनेक मनुष्यों पर प्रभाव डालने में समर्थ होती है और ऐसी किरणें संख्या में सात होने से उनका असर अनगिनती मनुष्यों पर पड़ सकता है।

"यदि एक साधारण मनुष्य की प्रभा उसके शरीर से १८ इञ्च बाहर तक फैलती हो तो उसकी प्रभा द्वारा जो किरणें निकलेंगी उनके नीचे का भाग नौ फीट लम्बा और पांच फीट चौड़ा होगा। जिस मनुष्य का अधिक विकास हो चुका है उसकी प्रभा यदि हर तरफ ५० गज तक फैलती हो तो उसका प्रभाव क्षेत्र बहुत विस्तीर्ण होगा। मनुष्य की ऐसी प्रभा उसकी वासना तथा मानसिक प्रकृति की बनी होती है और उसकी देह में ओत-प्रोत रहती है। यह प्रभा मस्तक से जितने ऊपर तक जाती है उतनी ही पैरों के नीचे पृथ्वी के भीतर भी फैलती है। गायत्री मन्त्र जप करने वाले की प्रभा जितनी अधिक विस्तीर्ण होगी उतना ही अधिक प्रभाव उसका पड़ेगा। यदि एक बड़ा समुदाय गायत्री मन्त्र का उच्चारण कर रहा हो तो उससे बहुत बड़ी झलक उत्पन्न होती है। इससे मन्त्र का उच्चारण करने वाले सब एक रूप हो जाते हैं और उन सबमें से सात-सात किरणें निकलती हैं। ये किरणें कितने विशाल क्षेत्रफल में फैलेंगी और उनका प्रभाव कितनी अधिक होगा यह सहज में समझा जा सकता है।"

अब आधुनिक विज्ञान ने भी यह पता लगा लिया है कि संसार में कोई शब्द या विचार नष्ट नहीं होता। जो बात मनुष्य कहता या सोचता है वे तरंग रूप में आकाश में फैल जाती हैं और हजारों लाखों वर्ष तक आकाश मंडल में व्याप्त रहती हैं। बहुत से वैज्ञानिकों ने तो यहाँ तक कल्पना की है कि हम दो-चार हजार वर्ष पुराने समय में कही गई बातों को इन तरंगों को यन्त्र द्वारा फिर से ज्यों का त्यों सुनकर उसका रिकार्ड

बना सकते हैं। वैज्ञानिकों के लिये इस कल्पना को व्यवहारिक रूप देना चाहे अभी असम्भव हो पर जो भारतीय योगी त्रिकाल की बातें जान लिया करते थे वे इस शक्ति से सम्पन्न अवश्य थे। सारांश यह कि शब्दों और विचारों का अस्तित्व नष्ट नहीं होता। यही बात गायत्री-मन्त्र के विषय में है। अब तक असंख्यों महापुरुष श्रद्धा और साधना पूर्वक जो गायत्री का जप करते आये हैं उसका प्रभाव नष्ट नहीं हो गया है, वरन् सूक्ष्म जगत में उसका अस्तित्व बना हुआ है। इतना ही नहीं एक प्रकार के पदार्थों का एक स्थान पर सम्मिलन होने के नियमानुसार उस समस्त गायत्री साधना का सूक्ष्म जगत में एकीकरण होकर एक ऐसी प्रबल आध्यात्मिक शक्ति उत्पन्न हो गई है, कि यदि उसे विधि पूर्वक आकर्षित किया जाय तो उसके द्वारा बड़े-बड़े कार्य सम्पन्न किये जा सकते हैं। यही कारण है कि गायत्री-साधना में हम जितना श्रम करते हैं उससे कई गुना फल हमको इस एकत्रित गायत्री-शक्ति से प्राप्त हो जाता है। अनेक बार हम देखते है कि कोई व्यक्ति गायत्री-साधना करते ही बड़े-बड़े चमत्कार अनुभव करने लगता है, बड़ी-बड़ी आपत्तियों से बच जाता है, तो इसका रहस्य यही है कि वह हार्दिक श्रद्धा या विश्वास के फलस्वरूप गायत्री के असीम शक्ति-भंडार से सहायता पा जाता है, और उसके असंभव समझे जाने वाले कार्य दैवी रीति से सिद्ध हो जाते हैं।

पर गायत्री का मुख्य प्रभाव केवल कुछ सांसारिक लाभ प्राप्त कर लेना अथवा विपत्तियों से रक्षा पा जाना नहीं है। उसका सबसे बड़ा प्रभाव तो यह है कि वह मनुष्य के मन को, अन्तःकरण को, मस्तिष्क को, विचार धारा को सन्मार्ग की तरफ़ प्रेरित करती है और एक सच्चे मनुष्यत्व का विकास करती है। सत्-तत्व की वृद्धि करना ही इसका प्रधान कार्य है। साधक जब

इस महामंत्र के अर्थ पर विचार करता है तो वह समझ जाता है कि संसार की सबसे बड़ी समृद्धि और जीवन की बड़ी सफलता यही है कि हमारी बुद्धि शुद्ध हो जाय और हम सत्य-मार्ग पर चलने लगें। इस विचार के प्रभाव से उसकी मानसिक और शारीरिक क्रियाएँ सतोगुणी होने लग जाती हैं और वह आध्यात्मिक क्षेत्र में अग्रसर होता हुआ अपना और दूसरों का कल्याण करने में समर्थ होता है।

शरीर और मन में सतोगुण की मात्रा बढ़ने से और भी अनेक लाभ होते हैं। हमारे अन्तर जगत से तमोगुण और रजोगुण का हटकर उनके स्थान पप सत-तत्व का बढ़ना ऐसा ही है, जैसे शरीर में भरे हुये रोग, मल, विष और विजातीय पदार्थों का घटकर उनके स्थान पर शुद्ध, सजीव रक्त और वीर्य की मात्रा का बढ़ जाना। यह परिवर्तन चाहे हमको प्रत्यक्ष होता न जान पड़े पर उसका प्रभाव हमारे शारीरिक स्वास्थ्य पर स्पष्ट रूप से जान पड़ेगा। गायत्री द्वारा सतोगुण की वृद्धि होकर नीची श्रेणी के तत्वों का निवारण होता है और इससे साधक का सूक्ष्म काया कल्प हो जाता है। इसका प्रभाव हमारे मन और विचारों पर पड़ता है और इन्द्रियों के भोगों की हानिकारक लालसा मन्द पड़ जाती है। चटोरपन, तरह-तरह के स्वादों के पदार्थों के लिये मन ललचाते रहना, बार-बार खाने की इच्छा करना, अधिक मात्रा में खा लेना, भक्ष्याभक्ष्य का विचार न रहना, चटपटे, मीठे, गरिष्ठ पदार्थों की रुचि जैसी बुरी आदतें धीरे-धीरे कम होने लगती हैं। हलके, सुपाच्य, सरस, सात्विक भोजनों से तृप्ति मिलने लगती है। इस प्रकार जिह्वा के वश में आ जाने से कुपथ्य का एक भारी संकट दूर हो जाता है। इसी प्रकार कामेन्द्रिय की उत्तेजना सतोगुणी विचारों के द्वारा शांत हो जाती है। कुमार्ग में, व्यभिचार में, वासना में मन कम दौड़ता है, ब्रह्मचर्य के प्रति

श्रद्धा बढ़ने लगती है। फलस्वरूप वीर्य रक्षा होकर शारीरिक और मानसिक शक्ति की वृद्धि होने लगती है। स्वादेन्द्रिय और कामेन्द्रिय दो ही इन्द्रियाँ विशेष बलवान हैं जो मनुष्य को पतन की ओर आकर्षित करती हैं। इनका संयम हो जाने पर स्वास्थ्य की उन्नति और मन का निर्विकार होना स्वाभाविक ही है। इनके साथ-साथ साधना के फल से स्नान, समय पर सोना और जागना, सफाई, सादगी आदि अन्य बातों का भी समावेश होने लगता है और इससे आरोग्य और दीर्घ जीवन की जड़ें मजबूत हो जाती हैं।

शरीर की तरह मानसिक क्षेत्र में भी सतोगुण की वृद्धि से अभूतपूर्व उन्नति हो जाती है। काम, क्रोध, लोभ, मोह मत्सर आदि दोष कम होने लगते हैं। इनके स्थान पर संयम, नियम, त्याग, सत्यनिष्ठा, निरालस्पता आदि गुणों का आविर्भाव होने लगता है। इस परिवर्तन के फल से जीवन में नित्य अनुभव होने वाले दुःखों से अधिकांश में छुटकारा मिल जाता है। विद्या, बुद्धि, विवेक के जागृत होने से अनेक प्रकार की चिन्ताओं, भय, आशंका, मोह, ममता आदि मनोविकारों में कमी होने लग जाती है। धर्म-प्रवृत्ति की वृद्धि के फलसे अन्याय, अनाचार से चित्त वृत्ति हटने लगती है। इस प्रकार शारीरिक और मानसिक दोनों क्षेत्रों में सत् तत्व की वृद्धि होने से मनुष्य को वास्तविक आनन्द की प्राप्ति होने लगती है और साधक स्वयं ही सांसारिक दुर्गुणोंसे दूर हटकर आत्मानन्द का अनुभव करने लगता है। इसी लिये शास्त्र में कहा गया है—

गायन्तं त्रायते यस्मात् गायत्रीत्वं ततः स्मृता

अर्थात् जो साधक जन गायत्री का गान करते-सदैव उसका जप करते रहते हैं गायत्री उनकी रक्षा करती है। गायत्री मंत्र की साधना करने से सब तरह की कामनायें सिद्ध होती हैं।

जो व्यक्ति निष्काम भाव से इसका जप करते हैं उनको सब प्रकार के सांसारिक फलों की प्राप्ति के साथ मुक्ति की प्राप्ति होती है। इसी लिये हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों ने संसार के कल्याणार्थ इसको प्रकट किया और परम्परा द्वारा इसकी उपासना अनिवार्य रूप से प्रचलित की। इसी गायत्री-उपासना के फल से यह देश लाखों वर्ष तक उन्नति करता हुआ जगत का सिरमौर बना रहा। जब कालक्रम से भोगों में फँस कर अथवा आपस में लड़कर देश का पतन हुआ तब भी आंशिक गायत्री के प्रभाव से दूसरे राष्ट्रों की तरह इसका जड़मूल से नाश न हो सका। राजनैतिक दृष्टि से पराधीन होने पर भी यह नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से अपनी बहुत कुछ रक्षा कर सका। विदेशी आक्रमण कारियों ने साम-दाम-दण्ड-भेद चारों उपायों का उपयोग करके बहुत कुछ प्रयत्न किया कि इसे धर्मच्युत करके पूर्ण रूप से हजम कर लिया जाय पर न तो मुसलमानों को और न ईसाइयों को इस उद्देश्य में सफलता मिली। इसका कारण स्पष्टतया यही था कि यहाँ के धर्म का आधार उन लोगों के धर्मों के आधार से कहीं अधिक उच्च, दृढ़ और सत्य था, जिसके सामने ये नये धर्म निस्तेज प्रतीत होते थे। इस आपत्ति-काल में भी यहाँ धर्म के अनेक साधक गायत्री की महान उपासना में संलग्न रहे और समय-समय पर उन्हीं ने ऐसी शक्तियाँ उत्पन्न करदीं जिन्होंने विदेशियों के प्रभाव को नष्ट करके उनके पैर न जमने दिये। इस दृष्टि से देखा जाय तो गायत्री उपासना सदा से भारतीय जनता की उन्नति और सुरक्षा का आधार रही है और उसके प्रभाव से यहां का सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन प्रगति की ओर अग्रसर होता रहा है।

गायत्री से मनुष्यत्व की प्राप्ति

मनुष्यत्व का सबसे बड़ा लक्षण विवेक और सदासद्-

सम्बन्धी ज्ञान है। केवल चार हाथ पैर हो जाने और आँख, कान, मुँह आदि इन्द्रियों के होने से मनुष्य नहीं कहा जा सकता, सब लक्षण तो पशुओं में भी होते हैं और अनेक अंशों में पशुओं की कुछ इन्द्रियाँ हमसे अधिक शक्तिशाली होती हैं। गायत्री इसी विवेक शक्ति का विकास करने वाला-महामंत्र है और इसी से उसकी श्रेष्ठता सभी विद्वान स्वीकार करते हैं, चाहे वे किसी धर्म के मानने वाले अथवा किसी देश के रहने वाले हों।

गायत्री-मन्त्र का सबसे पहला शब्द ॐ है। यह ईश्वर का बोध कराने वाला मुख्य शब्द है। 'अ' से सृष्टि की उत्पत्ति, 'उ' से जगत की स्थिति या विस्तार और 'म' से सृष्टि का अन्त या प्रलय का बोध होता। यही तीनों ऐसे गुण हैं जिनसे हम परमात्मा के अस्तित्व और उसकी शक्ति का अनुमान और अनुभव करते हैं। इस सम्बन्ध में 'मुण्डकोपनिषद्' में कहा गया है—

अराइव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः।
स राषो अन्तश्चरते बहुधा जायमानः॥
ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं।
स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात॥

अर्थात्—"रथ की नाभि (धुरे) में अरों की भांति जिस हृदय देश में सब नाड़ियाँ आश्रित हैं, परमात्मा उसी हृदय-देश के भीतर विचरता है। उस परमात्मा का 'ओम्' के रूप में ध्यान करो। अन्धकार से पार होने के लिए यह ओम् का ध्यान तुम्हारे लिये कल्याणकारी हो।"

गुरू नानकदेव ने सिक्ख-धर्म की जो मुख्य प्रार्थना बनाई है उसके आरंभ में ही कहा जाता है—

"एक ओंकार, सत नाम, कर्ता पुरुष, निर्भो, निर्वैर, अकालमूर्त, अयोनि से भंग, गुरू परसाद जप, आद सच, जुगाद

सच है भी सच, नानक होसी भी सच।"

अर्थात्—"वह परमेश्वर जिसका सत्य नाम ओंकार है, अथवा ओंकार ही सत् नाम ईश्वर का है। वह सृष्टि कर्ता तीनों कालों—भूत, भविष्यत्, वर्तमान—में है। अपने आप होने वाला, भय रहित और वैर रहित है—जो अजन्मा और अमर है, उसी का जाप गुरु कृपा से करो। वह परमात्मा आदि में सत् था, युगों के आदि में सत् था, वर्तमान में सत् है और भविष्य में भी सत् रहेगा।"

गायत्री का प्रथम वाक्य 'भूर्भुवः स्वः' यह शिक्षा देता है कि परमात्मा ही स्वयं प्राण-स्वरूप है और उसी से समस्त प्राणियों को जीवन प्राप्त होता है। वह परमात्मा सब प्रकार के दुःखों से दूर है और हमारे समस्त दुःखों का प्रतिकार उसी की सहायता से सम्भव है। संसार में और कोई साधन ऐसा नहीं जो वास्तविक रूप से हमारे कष्टों को दूर कर सके। जो स्वयं बन्धन में पड़ा है, स्वयं कामना और याचना करता है, वह दूसरे को कैसे दुःखों या अभावों से मुक्त कर सकता है? परमात्मा ही आनन्द स्वरूप है और उसी का आश्रय प्राप्त करके हम सब प्रकार के विकारों से छूट कर स्थायी सुख को प्राप्त कर सकते हैं। यही स्थायी सुख मनुष्यत्व का अन्तिम लक्ष्य है।

यदि विचार किया जाय तो गायत्री-मन्त्र के इस छोटे से वाक्य में अपार शिक्षाएँ भरी हुई हैं। जिस समय हमको यह ज्ञान हो जाता है कि एक ईश्वर ही सब प्राणियों में व्याप्त है, उसी का विस्तार होने से असंख्यों प्रकार के प्राणियों की, जिनमें मनुष्य भी सम्मिलित है, उत्पत्ति हुई है, तो हम अनेक प्रकार के पापों से, अन्याय और अत्याचार के कामों से बच सकते हैं। उस समय हम सहज ही में यह अनुभव करने लगते हैं कि जिन बातों से हमको कष्ट होता है या पीड़ा पहुँचती है, वे बातें दूसरों

के लिये भी हितकारी नहीं मानी जा सकतीं। परमात्मा की दृष्टि में एक छोटा सा कीड़ा भी उतना प्रिय है जितना कि एक राजा-महाराजा। इसलिये किसी कमजोर या असमर्थ मनुष्य के साथ निर्दयता या कठोरता का व्यवहार करना मनुष्यत्व के विपरीत है। हमको सब प्राणियों में समदृष्टि रखनी चाहिये, कुल, वंश, देश, जाति आदि के कारण किसी को नीच-ऊँच नहीं समझना चाहिये।

दूसरी शिक्षा यह है कि मनुष्य को कर्म करने का अधिकार है और किसी भी दशा में उसको अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होना चाहिये। अनेक मनुष्य पुण्य-कर्मों का उत्तम फल न मिलते देखकर यह विचार करने लगते हैं कि इस संसार में पाप-पुण्य की बातें केवल भ्रम हैं और हमको दूसरों के भले-बुरे का ख्याल छोड़कर अपने लाभ, स्वार्थ का ही ध्यान रखना चाहिये। पर गायत्री की शिक्षा है कि ऐसा विचार बहुत गलत है। जब समस्त संसार एक ईश्वर से उत्पन्न हुआ है तो उसमें अपने को सबसे अलग समझना और दूसरों के हित-अनहित का ख्याल छोड़ देना बुद्धि हीनता का सबसे बड़ा लक्षण है। इससे प्रकट होता है कि उस मनुष्य को आत्मा का कोई ज्ञान ही नहीं है, और वह अपने को केवल हाड़-मांस का एक पुतला मानता है। यह मनुष्य का निकृष्टतम् स्वरूप है। इसलिये हमको गायत्री की शिक्षानुसार अपने उच्च आध्यात्मिक रूप को समझना चाहिये और अपने उचित कर्तव्य से किसी दशा में विमुख न होना चाहिये।

मनुष्यत्व को प्राप्त कराने वाली तीसरी शिक्षा यह है कि हमको प्रत्येक दशा में अपने विवेक की रक्षा करनी चाहिये और प्रत्येक काम में उचित अनुचित का निर्णय कर लेना चाहिये। बहुत से मनुष्य थोड़ी सी सफलता सम्पत्ति, सम्मान आदि पाकर

खुशी से फूल उठते हैं और अभिमान वश दूसरों का छोटा और अपने को सर्वोच्च समझने लगते हैं। इसी प्रकार ऐसे ही मनुष्य विपरीत परिस्थिति में पड़ जाने से गरीबी, निर्धनता, रोग, शोक, निर्बलता का शिकार हो जाने से एक दम हताश और निराश होकर अपने को मृतक तुल्य समझ लेते हैं। ये दोनों ही अविवेकी पुरुषों के लक्षण हैं। जो मनुष्य विवेक से काम लेता है वह दोनों ही तरह की परिस्थितियों में अपना मानसिक सतुलन स्थिर रखता है और यह समझ कर कि संसार परिवर्तन शील है, अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियों से कभी विशेष चलाय मान नहीं होता। ऐसा ही स्थिर चित्त व्यक्ति संसार में अपना और दूसरों का हित साधन करने में समर्थ हो सकता है।

गायत्री का दूसरा वाक्य—'तत्सवितुर्वरेण्यं' मनुष्य को आत्म निर्माण सम्बन्धी अन्य कर्तव्यों की शिक्षा देता है। मनुष्य का जीवन अनिश्चित है। किसी भी समय कोई स्वाभाविक घटना उसका अन्त कर सकती है। बड़े से बड़ा शक्तिशाली व्यक्ति भी यह दावा नहीं कर सकता कि वह दैहिक, दैविक और भौतिक प्रकोपों से कभी आक्रान्त नहीं होगा। यह समझ कर मनुष्य को जीवन का सदैव उत्तम से उत्तम उपयोग करना चाहिये। परोपकार, समाज सेवा, धर्म-प्रचार आदि श्रेष्ठ कामों में कभी विलम्ब न करना चाहिये। साथ ही जीवन की क्षण भंगुरता को समझ कर खोटे कर्मों से दूर रहना भी आवश्यक है, क्योंकि थोड़े समय के लिये कुमार्ग पर चलना भी मनुष्य को पतन के गढ़े में डालने वाला होता है। जब मनुष्य एक बार पतन की ओर अग्रसर हो गया तो उसके उद्धार की सम्भावना कठिन हो जाती है, क्योंकि पतन का मार्ग निम्नगामी होने से मनुष्य को सुगम जान पड़ता है और वह शीघ्र ही एक के बाद दूसरा अवगुण ग्रहण करके उनके फंदे में इस प्रकार फँस जाता

है कि जब तक भगवान की विशेष कृपा न हो उसका पाप-पंक से मुक्त हो सकना असम्भव होताहै। इसलिये मनुष्यको सदैव श्रेष्ठ मार्ग पर आरूढ़ रहने का प्रयत्न करना चाहिये और फिसलने का कोई भी अवसर सामने आते ही सावधान होकर उससे दूर हट जाना चाहिये। यह कोई आवश्यक बात नहीं कि हम कोई बहुत बड़ा कार्य करें। पर जिस परिस्थिति में हम हों उसके अनुकूल उत्तम कार्य हमको अवश्य करना चाहिये। अपना भाग्य-निर्माण करना मनुष्य के अपने हाथ में है। इसलिये यदि हम अपनी वर्तमान साधारण परिस्थिति में भी कर्तव्य शीलता का परिचय देंगे और नीच कर्मों से बचते रहेंगे तो हमको यथा समय उच्च स्थिति भी अवश्य प्राप्त हो सकती है। इसलिये हमको सदैव श्रेष्ठ कार्यों और श्रेष्ठ विचारों की तरफ ही अपना झुकाव रखना चाहिये। जो व्यक्ति निरन्तर उत्तम मनुष्यों की सङ्गति में रहेगा, सत् साहित्य का पठन पाठन करेगा, कल्याणकारी विचार मन में लायेगा और वैसी ही बातचीत करेगा, तो उसके नीचे गिरने की संभावना बहुत कम रहेगी, और वह स्वयं भी श्रेष्ठता के मार्ग का पथिक बनेगा।

इसी प्रकार गायत्री के तीसरे वाक्य 'भर्गो देवस्य धीमहि' में 'भर्ग' शब्द बड़े महत्व का है। इसका संदेश यह है कि मनुष्य को पापों का नाश करके प्रभु की कृपा को प्राप्त करने योग्य बनना चाहिये। संसार में मनुष्य को जो तरह-तरह के कष्ट, यंत्रणाएँ, त्रास दिखलाई पड़ते हैं उनका मूल कारण पाप ही है। जो मनुष्य पापों की तरफ से सावधान रहकर उनको अपने भीतर प्रवेश नहीं करने देता और जो पाप पूर्व जन्म या इस जन्म की पिछली भूलों के कारण हो चुके हैं उनको प्रयत्न पूर्वक नष्ट करता है वही आत्मिक उन्नति करने में समर्थ होता है। तभी वह यह अनुभव करने लगता है कि परमात्मा की सृष्टि में जो

कुछ है वह पवित्र और आनन्दमय ही है। पाप और बुराइयाँ तो ऐसे विकार हैं, जो परमात्मा के नियमों के प्रतिकूल चलने से उत्पन्न होते हैं। इसलिये सच्चा मनुष्य वही है जो सदैव अपनी और दूसरों की बुराइयों को दूर करते रहने का प्रयत्न करे। इस प्रकार वह सृष्टि को निर्मल और आनन्द दायक बनाने में सहायक होगा, जो परमात्मा को प्रसन्न करने वाला कार्य है। इससे मनुष्य देवत्व के गुणों को धारण करने योग्य बनने लगता है। उसको वह ज्ञान प्राप्त होता है जिसके द्वारा मनुष्य अपने को भौतिक-स्वरूप के स्थान में आत्म-स्वरूप में देखने लगता है। चूंकि आत्मा का स्वभाव अजर-अमर है, इसलिये आत्म-स्वरूप के समझ लेने से मनुष्य संसार के झूठे भय और प्रलोभनों से मुक्त हो जाता है और उस मार्ग का पाथिक बन जाता है जो वास्तव में श्रेष्ठ पुरुषों के उपयुक्त कहा गया है।

यह ठीक है कि वर्तमान समय में भौतिक उन्नति की तरफ ही लोगों का ध्यान विशेष रूप से लगा है। प्रत्येक मनुष्य अपनी शक्ति को अधिक से अधिक धन, वैभव, प्रतिष्ठा, नामवरी प्राप्त करने में लगा रहा है। आत्मिक उन्नति का महत्व या तो लोग भूल गये हैं अथवा उसे अव्यवहारिक चीज समझते हैं। पर यदि गम्भीर विचार किया जाय तो स्पष्ट जान पड़ता है कि ये भौतिक सफलताएँ भले या बुरे किसी भी मार्ग से प्राप्त की जायें, वे स्थायी नहीं हो सकतीं। वर्तमान समय में तो हम ऐसे परिवर्तन बड़े उग्र रूप में होते देख रहे हैं। बड़े से बड़े राजा, महाराजा सम्राट, बादशाह अपने ऊँचे पदों से गिरते और साधारण श्रेणी में मिलते देखे जा चुके हैं। ऐसी अवस्था में भौतिक उन्नति को सर्वोपरि महत्व देना और उसी को मनुष्यता की कसौटी समझ लेना बड़ी भूल है। हमको सबसे पहले विवेक, संयम, सत्य, दया, परमार्थ आदि दैवी गुणों को प्राप्त करने का

प्रयत्न करना चाहिये । इन्हीं के द्वारा मनुष्य की आत्मोन्नति होती है। इनका पालन करते हुये जो भौतिक लाभ स्वभावतः प्राप्त हो जाते हैं, वे ही वास्तव में उपयोगी और कल्याणकारी होते हैं। अन्याय, अत्याचार अथवा चालाकी और धूर्तता आदि द्वारा प्राप्त की गई सांसारिक सफलता कभी स्थायी नहीं होती और उससे मनुष्य का आत्मिक पतन ही होता है। इसलिये मनुष्यत्व की प्राप्ति की आकांक्षा रखने वाले को सदैव दैवी गुणों को ही प्रधानता देनी चाहिये।

गायत्री का अन्तिम वाक्य 'धियोयोनः प्रचोदयात्' में परमात्मा से यह प्रार्थना की गई है कि वह हमारी बुद्धि को ऐसी प्रेरणा दे कि जिससे हम असत् मार्ग को त्याग कर सत्-मार्ग को जानने और उस पर चलने में समर्थ हो सकें। हमारे सब प्रकार के मनोरथों और प्रयत्नों के सफल होने का प्रधान साधन सद्-बुद्धि ही है। जिन लोगों की बुद्धि लोभ, मोह अथवा अहंकार के वशीभूत होकर विपरीत हो जाती है, वे संसार में सच्चा सुख कभी नहीं पा सकते। चाहे प्रकट में वे वैभव सम्पन्न अच्छे मकानों में रहते और बढ़िया वस्त्र पहिनते दिखलाई पड़ें, और चाहे वे ऊपर से दूसरे लोगों पर अपना रौब, शान अथवा आतंक जमालें, पर अपने मन के भीतर वे स्वयं अपने को श्रेष्ठ अनुभव नहीं कर सकते। इसलिये मनुष्य के लिये सबसे पहला आवश्यक गुण सद्बुद्धि ही है, जिससे वह प्रत्येक कार्य में भले-बुरे अथवा उचित अनुचित का निर्णय करके सत्पथ पर चल सके।

सद्बुद्धि की दूसरी विशेषता यह भी है कि वह अनेक मार्गों में से अपने अनुकूल मार्ग का निर्णय कर सके। संसार में अनेक महापुरुष हो चुके हैं और उन्होंने अपने युगके देश-काल के अनु-सार उपदेश मनुष्यों को दिये हैं। इनमें से बहुत सी बातें एक दूसरे के विरुद्ध भी जान पड़ती हैं। विभिन्न देशों और मजहबों

की बात छोड़दें तो हमारे धर्मशास्त्रों में ही ऐसे विभिन्न सिद्धान्त पाये जाते हैं जिनके आधार पर लोग विभिन्न सम्प्रदायों में बँट गये हैं और एक दूसरे के मत पर आक्षेप करते हैं। ऐसी अवस्था में सद्‌बुद्धि द्वारा ही हम इस बात का निर्णय कर सकते हैं कि हमारी वर्तमान परिस्थिति में किस मार्ग का कितना अंश उपयोगी है। इसका यह आशय नहीं कि हम किसी सम्प्रदाय या उसके संचालक की निन्दा करें, पर हमको सब में से वे ही बातें ग्रहण करनी चाहिये जो विवेक, बुद्धि और तर्क के द्वारा वर्तमान परिस्थिति के अनुकूल सिद्ध हों और जिनसे अपना ही नहीं वरन् सभी का हित साधन हो!

यह बात भी सत्य है कि ज्ञान, बल, वैभव आदि शक्तियाँ मनुष्यों में समान रूप से नहीं होतीं और वे परमात्मा की कृपा से ही मिलती हैं। पर जो व्यक्ति इनका प्रयोग केवल अपने लिये न करके लोकहित के लिये करते हैं वे ही उनके सच्चे अधिकारी होते हैं और उन्हीं में आगे चलकर इन शक्तियों का विशेष रूप से विकास होता है। जैसा किसी कवि ने कहा है कि विद्या एक ऐसा धन है कि जिसे ज्यों-ज्यों खर्च किया जाता है, त्यों-त्यों ही वह बढ़ता है, ऐसी ही बात अन्य सद्‌गुणों के लिये भी सत्य है। विद्वान, धनवान या बलवान की सार्थकता और गौरव इसी में है कि वह अपने से कम ज्ञान वालों, निर्बलों, निर्धनों को ऊँचा उठाने में सहायता दें। ऐसा करने से केवल हमीं को सुख प्राप्त नहीं होगा, वरन् जगत में सुख का साम्राज्य स्थापित हो सकेगा। इसके विपरीत यदि हम अपनी विशेष शक्तियों का उपयोग इस दृष्टि से करेंगे कि दूसरे लोग आगे न बढ़ सकें, तो परिणाम यह होगा कि दुनिया की अवनति तो होगी ही हम स्वयं भी अपने को प्राप्त दैवी वरदानों का समुचित लाभ न उठा सकेंगे। खेद का विषय है कि वर्तमान समय में अधिकतर लोगों की मति

ऐसी ही दिखलाई पड़ती है। वे दूसरे लोगों को आगे बढ़ाने, ऊँचा उठाने के बजाय, उनको नीचे ढकेलने उनकी उन्नति के मार्ग को अवरुद्ध करने में ही अपना लाभ समझते हैं। वे ख्याल करते हैं कि ऐसा करने से उन लोगों को मिलने वाला लाभ भी हमको प्राप्त हो जायगा और हम ही सब से बड़े बने रहेंगे। पर ऐसी नीयत का परिणाम प्रायः उलटा ही देखने में आता है, अपनी संकीर्णता अथवा लोभ की प्रवृत्ति के कारण वे लोग सर्वसाधारण में बदनाम हो जाते हैं और इसके फल से उनकी स्थिति उच्च होने के बजाय गिरने लगती है। अगर हम आँख खोलकर देखें तो ऐसे उदाहरण समाज में लाखों की संख्या में मिल सकते हैं।

इसलिये जो व्यक्ति इस मनुष्य-जन्म को वास्तव में सार्थक करना चाहता है, उसका कर्तव्य है कि परमात्मा से सदैव यही प्रार्थना करे कि वह उसकी बुद्धि को ऐसी प्रेरणा दे जिससे वह सत्पथ पर स्थिर रह सके। हमारे देश के भक्तों ने भगवान से जो यह प्रार्थना की है कि उनको ऐसी भक्ति प्राप्त हो जिससे उनका ध्यान किसी सांसारिक विषय की ओर न जाय, उसका आशय भी यही है। मनुष्य का वास्तविक लक्षण यही है कि वह श्रेष्ठ गुणों को प्राप्त करे और फिर उनका उपयोग लोकहित के लिये करे। हमारे बड़े-बड़े महपुरुष बता गये हैं कि दीन-दुखी और किसी भी प्रकार के अभावग्रस्त व्यक्तियों की सेवा, सहायता करना ही भगवान की सच्ची भक्ति है। परमात्मा इसी प्रकार के कार्यों से प्रसन्न हो सकता है। इसलिये हमारा कर्तव्य यही है कि हमको जो भी शक्ति और साधन अब तक प्राप्त हो चुके हैं और आगे प्राप्त होने वाले हैं उनका सर्वोपरि उपयोग लोकहित-दूसरों के साथ भलाई करना ही समझें। अपना और अपने परिवार का भरण-पोषण करना तो मनुष्य का सहज स्वाभाव है, उसके

लिये किसी प्रकार की शिक्षा या चिन्तन की आवश्यकता नहीं होती। पर यदि हम परमात्मा की दया से अच्छी शक्ति और साधन पाकर भी उन सबका उपयोग केवल अपना पेट भरने के लिये करते हैं, तो हम वास्तविक मनुष्य कहलाने के अधिकारी नहीं हैं। इसलिये सम्पूर्ण गायत्री-मंत्र का आशय यही है कि हम परमात्मा से ऐसी शुद्ध बुद्धि प्रदान करने की प्रार्थना करें जिससे अपना और दूसरों का कल्याण करने का भाव सदैव बना रहे और स्वार्थ के साथ ही परमार्थ को प्रधानता देकर हम इस मनुष्य जन्म को सफल बनावें।

हमारा कर्तव्य

गायत्री की महिमा, उसकी अमोघ शक्ति और मानव-जीवन पर उसके कल्याणकारी प्रभाव को भली प्रकार समझ लेने पर, इस बात को कहने की बहुत कम आवश्यकता रह जाती है कि मनुष्य का परम कर्तव्य है कि इस अमूल्य साधन से लाभ उठाकर अपने जीवन को सार्थक बनाये। वैसे हिन्दू शास्त्रों में साधनों की कमी नहीं है, ज्ञान, योग, भक्ति, वैराग्य आदि अनेक साधन परलोक को सुधारने और मुक्ति प्राप्त करने के बतलाये गये हैं, इसी प्रकार सांसारिक विषयों में कृतकार्य होने के लिये अनेक प्रकार के यज्ञ, जप-तप, जंत्र-मन्त्र आदि का विधान है, पर गायत्री के समान लोक परलोक के उद्देश्यों को एक साथ पूरा करने वाला और सर्व सुलभ साधन दूसरा कदाचित् ही मिलेगा। इसके सम्बन्ध में एक विद्वान् ने निम्न सम्मति दी है:—

"इस महामंत्र के २४ अक्षरों का संगठन इतना अद्भुत है कि इसके मानसिक अथवा वाणी द्वारा उच्चारण करने से विशेष दिव्य तरंगें उठती हैं, जो बुद्धि-मंडल, मन-मंडल, मूला-

धार चक्र तथा अन्य मर्म-स्थलों पर जाकर चोट लगाती है। जिस प्रकार वीणा के तार छेड़ने से अद्भुत मधुर स्वर सुनाई पड़ते हैं, इसी प्रकार गायत्री मंत्र का जप करने से, अथवा इसके शब्दों के मौन अथवा मुख के भीतर ही उच्चारण से भी हृदय-देश में तरंगें उठने लगती हैं, जो एक अलौकिक प्रभाव डालती हैं। यह क्रिया इतनी सूक्ष्म होती है कि इसे पूरे सावधान और समाहित चित्त वाले साधक ही अनुभव कर सकते हैं। परन्तु यह अनुभव सिद्ध है कि गायत्री-जप करने तथा तदनुकूल आचरण बनाने से साधक का हृदय-कमल खिलने लग जाता है। उसे जीवन में एक ऐसा माधुर्य प्रतीत होने लगता है कि जगत के कार्य फिर अधिक घबराहट उत्पन्न नहीं करते।

"यह कहना तो अत्युक्ति होगी कि इस साधन के पश्चात् सांसारिक कष्ट तथा चिन्ताएँ आती ही नहीं। आती तो हैं; बड़े-बड़े योगियों, तपस्वी महानुभावों पर भी आपत्तियाँ आती हैं, परन्तु गायत्री उपासक या साधक की बुद्धि तथा हृदय इस प्रकार का बनने लगता है कि आपत्ति आने पर भी वह शान्त रहता है, सच पूछा जाय तो साधक और असाधक—भक्त और अभक्तमें यही मुख्य अंतर है। "योग दर्शन" में जो "वृत्ति सारूप्यमितरत्र" सूत्र दिया गया है उसका अर्थ यही है कि सांसारिक व्यवहार में योगी की वृत्ति तो सदा हर्ष-शोक रहित, आनन्द से प्रकाशित होकर उत्साह और उल्लासयुक्त रहती है। इसके विपरीत सांसारिक मनुष्य की वृत्ति सदा हर्ष-शोक रूपी समुद्र में डूबती और उछलती रहती है।

गायत्री का जप ऐसी मनोवृत्ति बनाने में बड़ा सहायक होता है। चौबीस अक्षरों से जो गायत्री के शब्द बने हैं, उनके उच्चारण से शरीर, मन, बुद्धि और हृदय पर दिव्य प्रभाव पड़ता है। जब निरन्तर प्रतिदिन यह क्रिया जारी रहती है तो बुद्धि का

मोटापन दूर होने लगता है और वह तीक्ष्ण बनने लगती है। मनोविज्ञान के ज्ञाताओं ने भी अब यह स्वीकार कर लिया है कि एक ही शब्द और विचार के बार-बार दुहराने—जप करने से मन पर स्थायी प्रभाव पड़ता है और वह बार-बार दुहराया हुआ विचार जीवन में ओत-प्रोत होने लगता है, जिससे हृदय तथा बुद्धि दोनों की मलिनता दूर हटाने में पूरी सहायता मिलती है।"

गायत्री की साधना का मुख्य उद्देश्य यही है कि बुद्धि की मलिनता को दूर करके शुद्धता, निर्मलता प्राप्त करने के निमित्त परमात्मा से प्रार्थना की जाय। जब मनुष्य की बुद्धि शुद्ध और सुमार्ग पर चलने वाली हो जाती है, तो मनुष्य स्वयमेव ही धन, बल, विद्या आदि सांसारिक विषयों में सफलता प्राप्त करने लगता है। महाभारत में कहा गया है—

न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्।
यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या संविभजन्तितम्॥
यस्मै देवाः प्रयच्छन्ति पुरुषाय पराभवम्।
बुद्धिं तस्यापकर्षन्ति सोऽवाचीनानि पश्यति॥

(उद्योग पर्व ३४।८०,८१)

अर्थात्—'देवता दण्ड लेकर पशु-रक्षक की भाँति पुरुष की रक्षा नहीं करते। वे जिसकी रक्षा करना चाहते हैं उसे बुद्धि देते हैं, और जिसे असफल बनाना चाहते हैं उसकी बुद्धि पहले छीन लेते हैं।"

इस लये जो मनुष्य लौकिक और पारलौकिक उन्नति करके आत्म-कल्याण की अभिलाषा रखते हैं—मनुष्य जीवनको सफल बनाना चाहते हैं उनके लिये गायत्री-साधना द्वारा सद्बुद्धि की प्राप्ति करना ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। इसमें कुछ लोग संदेह कर

सकते हैं कि योरोप, अमरीका आदि के देश, जो गायत्री से कोई सम्बन्ध नहीं रखते, क्या विद्या-बुद्धि में हमसे किसी प्रकार कम हैं ? इस विषय में हमारा उत्तर यह है कि उन देशों के लोग विद्या-बुद्धि में हमसे आज कल बहुत बढ़े-चढ़े हैं, पर हमको देखना चाहिये कि उनका क्या परिणाम निकल रहा है। इन देशों ने पिछले दो-डेढ़ सौ वर्षों में विज्ञान की विविध शाखाओं में अभूत पूर्व उन्नति करके दिखलाई है। पर उस उन्नति का नतीजा यही निकला है कि वे सदैव एक दूसरे के संहार की योजना करते रहते हैं और परिणाम स्वरूप सभी नाशोन्मुख हो रहे हैं। ऐसी उन्नति को हम आसुरी उन्नति कह सकते हैं और प्राचीन ग्रंथों से पता चलता है कि रावण, मेघनाद आदि राक्षसों ने भी इन सब विषयों में अद्भुत उन्नति करली थी, पर उससे न तो वे स्वयं सुखी हो सके और न उन्होंने दूसरों का हित किया। वे जब तक जीवित रहे तब तक मानवता का उच्छेद ही करते रहे, और अन्त में अपने कर्मों के फल से स्वयं जड़मूल से नष्ट हो गये। इसलिये केवल विद्या बुद्धि अथवा उसके द्वारा धन और बल की प्राप्ति को ही उन्नति समझना भूल है। विद्या और बुद्धि वही श्रेष्ठ है जिसका आधार अध्यात्मिकता पर हो। इसी विचार से बुद्धि के दैवी और आसुरी, दो विभाग कर दिये गये हैं। मनुष्य का सच्चा हित दैवी बुद्धि अथवा सद्बुद्धि से ही हो सकता है। भगवान् कृष्ण ने कहा है—

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥

"साधन रहित पुरुष के अन्तःकरण में श्रेष्ठ बुद्धि नहीं हो सकती और उसके बिना श्रेष्ठ भावना का विकास भी नहीं हो सकता। बिना श्रेष्ठ भावना के शांति प्राप्त नहीं हो सकती और शान्ति रहित पुरुष सुख प्राप्त नहीं कर सकता।"

गायत्री द्वारा जो बुद्धि प्राप्त होती है वह श्रेष्ठ बुद्धि या सद्बुद्धि होती है। उसके द्वारा हमारे भीतर वास्तविक मनुष्यता का विकास होता है और हम अपना तथा दूसरों का कल्याण कर सकते हैं।

आत्मबुद्धि जागृत कीजिये

मानव जीवन की सफलता के लिये सबसे मुख्य बात यह भी है कि हम अपने भीतर 'आत्म बुद्धि' को जागृत करें, अर्थात् संसार के अन्य व्यक्तियों और प्राणियों को भी अपने ही समान समझें और उनके साथ सदैव ऐसा ही व्यवहार करें जो हितकारी हो। गायत्री-मन्त्र तो आध्यात्मिकता का महान स्रोत है और उसकी शिक्षाओं पर आचरण करने से मनुष्य में आत्मबुद्धि का विकास होना अवश्यम्भावी है। गायत्री की शिक्षा आध्यात्मवाद की व्यवहारिक प्रक्रिया है। श्रेष्ठ नागरिक बनने का मर्म इसमें है कि अन्य लोगों को अपने समान समझा जाय। दूसरे शब्दों में इसी बात को यों कह सकते हैं कि 'दूसरों से वैसा व्यवहार करना चाहिये जैसा कि आप अपने लिये चाहते हैं।' आप जैसा व्यवहार अपने साथ होता हुआ देख कर प्रसन्न होते हैं, जिस आचरण की दूसरों से आशा करते हैं वैसा ही आप स्वयं भी दूसरों के साथ में कीजिए। दूसरों के सुख में सुखी होने से मुफ्त में ही वह सुख प्रचुर मात्रा में मिल जाता है, जिसको प्राप्त करने में बहुत खर्च करना पड़ता है। सुख के लिये बहुत प्रयत्न करने की आवश्यकता होती है यदि आप दूसरों को सुखी देख कर प्रसन्न हुआ करें दूसरों की बढ़ती देख कर आनन्द अनुभव किया करें तो अनायास ही सुखी होने के असंख्य अवसर प्राप्त होते रह सकते हैं। पास पड़ौस में, सगे संबंधियों में, परिचितों अपरिचितों में ईश्वर की कृपा से सुख दायक घड़ियों का आगमन हुआ ही करता है। यदि उनकी बढ़ती

को देख कर उदार हृदय व्यक्ति की नाईं खुश होने की आदत डाली जाय तो निस्संदेह अपने आनन्द की सीमा अनेक गुनी बढ़ सकती है। जिसके घर में मुफ्त का माल आकर जमा होता रहता है उसका अमीर बन जाना स्वाभाविक है, जिसको दूसरों के सुख में आनन्द आता है उसका हर घड़ी प्रसन्नता से परिपूर्ण रहना स्वाभाविक है। यदि आनन्द और सुख की प्राप्ति के लिए आप लालायित हैं तो आत्मबुद्धि को जागृत करके अपना आत्मभाव दूसरों के साथ जोड़ दें, उनके सुख में अपने को सुखी करने का अभ्याम करें तो जिसके लिये आप लालायित हैं उस वस्तु को आसानी से पा सकते हैं। बाटिका में खिले हुए पुष्पों को देख कर, सुन्दर चित्रों को देख कर, मन मोहक प्राकृतिक दृश्यों को देख कर आपका चित्त प्रसन्न हो जाता है, जड पदार्थों का वैभव देख कर दिल की कली खिल उठती है तो क्या कारण है कि चैतन्य स्वजातीय प्राणियों के उत्कर्ष पर हृदय आनन्द से पुलकित नहीं होता? ईर्षा, डाह, कुढ़न जलन के दुर्गुणों को यदि आपने अपना नहीं लिया है तो कोई कारण नहीं कि अपने सुखी पड़ोसियों के सौभाग्य पर आनन्द प्रकट न करें।

दूसरों के दुख में दुखी होने की वृत्ति को अपना कर आप दया, करुणा, उदारता, सेवा, सहायता जैसी अमूल्य निधियों को प्रचुर मात्रा में संचय कर सकते हैं। यह संचय कुछ कम मूल्यवान नहीं है। दूसरों के दुख में दुखी होने से तामसी कष्ट नहीं होता, जो कष्ट होता है उसे पीडा नही कहते, पराये दुख में दुखी होने की वृत्ति को शब्दों में दुख अवश्य कहा जाता है पर यथार्थ में वह एक प्रकार का आर्द्र सुख है। उससे कर्तव्य की प्रेरणा करने वाली एक कसक उठती है जो प्रेम की तरह मीठी, श्रद्धा की तरह पवित्र, और करुणा की तरह तरल होती

है। वह दुख स्वर्गीय शान्ति को अपने अन्दर छिपाये रहता है। पराये दुख को देख कर जो आँसू गिरता है वह भीतर के अनेक पापों को वहा ले जाता है और हृदय को हलका तथा पवित्र वना देता है।

पराये सुख में सुखी और पराये दुख में दुखी होने की वृत्तियां परम सात्विक एवं उच्च कोटि की हैं। इनका संचार जिसके अन्दर होने लगता है उसको भीतर ही भीतर शान्ति और सन्तोष की आनन्द दायक सरिता वहती हुई दृष्टि गोचर होती है। अन्य सद्गुणों और उत्तम स्वभावों की खेती इस शीतल जल को प्राप्त करके फलने फूलने लगती है। केवल अपने ही हानि लाभ से प्रभावित होने वाले और दूसरों की स्थिति में कुछ भी दिलचस्पी न लेने वाले स्वार्थी लोग वहुत ही सीमित क्षेत्र में वँधे रहते हैं, वे ऐश आराम, या दुख दर्द का निकृष्ट कोटि का हर्ष विषाद अनुभव करते रहते हैं। सात्विक और उच्च आध्यात्मिक अनुभूतियां स्वार्थ में नहीं परमार्थ में मिलती हैं। जिनको पराये सुख-दुखों में दिलचस्पी है वे ही उस ऊँचे आनन्द का अनुभव कर सकते हैं।

आप दूसरों से यह आशा करते होंगे कि यदि कोई व्यक्ति कुछ चीज उधार ले जाय तो उसे अच्छी हालत में ठीक समय पर वापिस कर दे। यदि किसी ने कुछ वचन दिया है तो उसे यथोचित रीति से पालन करे। सभ्य व्यवहार की, समय की पावंदी की, दूसरों से आशा की जाती है और यह ख्याल किया जाता है कि यदि कुछ कष्ट हमारे ऊपर आ पड़ेगा तो अन्य लोग हमारी सहायता करेंगे। जिस प्रकार की आशाऐं आप दूसरे लोगों से करते हैं ठीक वैसी ही दूसरे आपसे करते हैं। यह भलमनसाहत का तकाजा है। मनुष्यता के प्रारम्भिक कर्तव्यों का पालन करना हर मनुष्य का कर्तव्य है।

कोई नहीं चाहता कि उसे बेढंगे बरताव का सामना करना पड़े, इस लिए उसे भी चाहिए कि इस प्रकार का आचरण स्वयं भी न करे ।

मनुष्य जीवन की सार्थकता के लिये जितनी बातों या गुणों की आवश्यकता है, उनमें यह 'आत्मबुद्धि' की भावना अत्यावश्यक है। क्योंकि जो मनुष्य केवल अपने व्यक्तिगत हित का ही ध्यान रखता है और दूसरों की भलाई-बुराई के प्रति उपेक्षा का भाव रखता है, वह चाहे कैसा भी गुणी या त्यागी तपस्वी भी क्यों न हो कभी सम्माननीय पद का अधिकारी नहीं हो सकता। मनुष्य का सर्व प्रथम लक्षण यही है कि अपनी शक्ति और साधनों का उपयोग दूसरों के हितार्थ करे। यही कारण है कि वेद से लेकर आज तक के ज्ञानी मनुष्यों ने एक स्वर से यही कहा है कि जो केवल अपने लिये जीता है उसका जीवन व्यर्थ है। मनुष्य में परोपकार या परमार्थ की भावना का होना परमावश्यक है और यह तब तक सम्भव नहीं जब तक हम अन्य प्राणियों के प्रति आत्मबुद्धि का भाव न रखें । इसीसे शास्त्रों में कहा गया है—

नहीदृशं संवननं त्रिषुलोकेषु विद्यते ।
दया मैत्री च भूतेषु दानं च मधुरा त्ववाक् ।

"परमेश्वर को प्रसन्न करने का सर्व प्रधान मार्ग यही है कि दुखियों पर दया करनी, समान स्थिति वालों से प्रेम रखना, उदारता का व्यवहार करना और मीठी वाणी बोलना।"

तप्यन्ते लोक तापेन प्रायशः साधवो जनाः ।
परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः ॥

"सज्जन पुरुष दूसरे मनुष्यों की विपत्ति देख कर व्याकुल हो जाते हैं और उसे दूर करने के लिये स्वयं दुख उठाते हैं । यही भगवान की सबसे बड़ी आराधना है।"

लेखक—
श्रीराम शर्मा आचार्य
गायत्री तपोभूमि, मथुरा।

ॐ भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि
धियो योनः प्रचोदयात्।

प्रकाशक—
"अखण्ड ज्योति" प्रेस, मथुरा।

प्रथम वार] सन् १९५८ [मूल्य ।)

गायत्री की दिव्य शक्ति

गायत्री-साधना करने वालों को अनेक लाभों से लाभान्वित होते हुए देखा और सुना गया है। चौबीस अक्षरों के एक संस्कृत भाषा के पद्य (मन्त्र) को जपने या साधना करने से किस प्रकार इतने लाभ होते हैं यह एक आश्चर्यजनक पहेली है। इस पहेली को ठीक प्रकार न समझ सकने के कारण कई लोग गलत धारणाऐं बना लेते हैं।

गायत्री एक ऐसा विश्व-व्यापी दिव्य तत्व है जिसे ह्रीं-बुद्धि, श्रीं-समृद्धि, और क्लीं-शक्ति, इन त्रिगुणात्मक विशेषताओं का उद्गम कहा जा सकता है। यह महा चैतन्य दैवी शक्ति जब विश्व-व्यापी पञ्च तत्वों से आलिंगन करती है तो उसकी बड़ी ही रहस्यमयी प्रतिक्रियाऐं होती हैं। ईश्वरीय दिव्य शक्ति-गायत्री की पञ्च भौतिक प्रकृति-सावित्री से सम्मिलन पाने के समय जो स्थिति होती है उसे ऋषियों ने अपनी सूक्ष्म दिव्य दृष्टि से देख कर साधना के लिए मूर्तिमान कर दिया है। विश्व-व्यापिनी गायत्री शक्ति जब आकाश तत्व से टकराकर शब्द तन्मात्रा में प्रतिध्वनित होती है तब उस समय चौबीस अक्षरों वाले गायत्री मन्त्र के समान ध्वनि तरंगें उत्पन्न होती हैं। हम उसे अपने स्थूल [कानों] से नहीं सुन सकते पर ऋषियों ने अपनी दिव्य कर्णेन्द्रियों [से] सुना कि सृष्टि के अन्तराल में एक दिव्य ध्वनिलहरी गुंजित हो रही है। उसी ध्वनि लहरी को उन्होंने चौबीस अक्षर गायत्री के रूप में पकड़ लिया। इसी प्रकार अग्नि तत्व के साथ इस सूक्ष्म शक्ति का सम्बन्ध होते समय, रूप तन्मात्रा में जो आकृति उत्पन्न हुई वह गायत्री का रूप मान लिया। इसी प्रकार वायु,

जल, पृथ्वी की तन्मात्राओं में जो उस सम्मिलित की प्रतिक्रिया हुई उस स्पर्श, रस और गन्ध का गायत्री के साथ सम्बन्ध किया गया।

मनुष्य का शरीर और मन पंच तत्वों का बना हुआ है। पञ्च तत्वों से गायत्री शक्ति का सम्मिलिन होते समय सूक्ष्म जगत में जो प्रतिक्रिया होती है उसी के अनुरूप मानसिक प्रतिक्रिया यदि हम अपनी ओर से अपने मनः क्षेत्र में उत्पन्न करें तो आसानी से उस दैवी शक्ति गायत्री तक पहुँच सकते हैं। पञ्च भौतिक जगत और सूक्ष्म दैवी जगत के बीच एक नसेनी, रस्सी, पुल, सम्बन्ध सूत्र, ऋषियों को दिखाई दिया था उसे ही उन्होंने गायत्री-उपासना के रूप में उपस्थित कर दिया है। मन्त्रोच्चारण, ध्यान, तपश्चर्या, व्यवस्था आदि के साथ किये हुए साधन लटकती हुई रस्सियाँ हैं जिन्हें पकड़ कर हमारी भौतिक चेतना, गायत्री की सर्व शक्तिमान दिव्य चेतना से जा मिलती है। जैसे नन्दन वन में पहुँचने पर भूख, प्यास और थकान मिटाने के सब साधन मिल जाते हैं। वैसे ही गायत्री का सान्निध्य प्राप्त कर लेने से आत्मा की सभी त्रुटियाँ वासनाएँ तृष्णाएँ, मलीनताऐं दूर हो जाती हैं और स्वर्गीय सुख के आस्वादन का अवसर मिलता है।

गायत्री साधना का प्रभाव सबसे प्रथम साधक के अन्तःकरण पर होता है। उसकी आत्मिक भूमिका में सतोगुणी तत्वों की अभिवृद्धि होनी आरम्भ हो जाती है। किसी पानी के भरे कटोरे में यदि कंकड़ डालना शुरू किया जाय तो पहले का भरा हुआ पानी नीचे गिरने और घटने लगेगा। इसी प्रकार सतोगुण बढ़ने से दुर्गुण, कुविचार, दुस्वभाव, दुर्भाव घटने आरम्भ हो जाते हैं। इसी परिवर्तन के कारण साधक में ऐसी अनेक विशेष-

ताएं उत्पन्न हो जाती हैं जो जीवन को सरल, सफल और शान्तिमय बनाने में सहायक होती हैं। दया, करुणा, प्रेम, मैत्री, त्याग, सन्तोष, शान्ति, सेवा-भाव, आत्मीयता, सत्य, निष्ठा, ईमानदारी, संयम, नम्रता, पवित्रता, श्रमशीला, धर्मपरायणता आदि सद्गुणों की मात्रा दिन २ बड़ी तेजी से बढ़ती जाती है। फलस्वरूप संसार में उसके लिए प्रशंसा, कृतज्ञता, प्रत्युपकार, श्रद्धा, सहायता एवं सम्मान के भाव बढ़ते हैं और लोग उसे प्रत्युपकार से संतुष्ट करते रहते हैं। इसके अतिरिक्त यह सद्गुण स्वयं इतने मधुर होते हैं कि जिस हृदय में इनका निवास होगा, वहाँ आत्म-सन्तोष की शीतल निर्झरिणी सदा बहती रहेगी। ऐसे लोग चाहे जीवित अवस्था में हों, चाहे मृत अवस्था में सदा स्वर्गीय सुख का आस्वादन करते रहेंगे।

गायत्री साधना से मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार के चतुष्टय में असाधारण हेर-फेर होता है। विवेक, दूरदर्शिता, तत्वज्ञान और ऋतम्भरा बुद्धि का विशेष रूप से उत्पन्न होने के कारण अनेक अज्ञान जन्य दुखों का निवारण हो जाता है। प्रारब्ध-वश विपरीत, कष्टसाध्य परिस्थितियाँ हर एक के जीवन में आती रहती हैं। हानि, शोक, वियोग, आपत्ति, रोग, आक्रमण, विरोध, आघात आदि की विपन्न परिस्थितियों में जहाँ साधारण मनोभूमि के लोग मृत्यु तुल्य मानसिक कष्ट पाते हैं वहाँ आत्मबल सम्पन्न गायत्री साधक अपने विवेक, ज्ञान, वैराग्य, साहस, आशा, धैर्य, सन्तोष और ईश्वर-विश्वास के आधार पर इन कठिनाइयों को हँसते-हँसते आसानी से काट लेता है। बुरी अथवा साधारण परिस्थितियों में भी अपने आनन्द का मार्ग ढूँढ निकालता है और मस्ती, प्रसन्नता एवं निराकुलता का जीवन बिताता है।

संसार में समस्त दुःखों के तीन कारण हैं-(१) अज्ञान (२) अशक्ति (३) अभाव। अन्तकरण में सतोगुण बढ़ने से इन तीनों का ही निवारण होता है। सद्ज्ञान के बढ़ने से दुखदायी भ्रान्त धारणाऐं, कल्पनाएँ और इच्छाऐं समाप्त होकर सद्गुण बढ़ते हैं। इन गुणों के कारण आहार-विहार एवं ज़ीवन-क्रम संयम पूर्ण एवं सुव्यवस्थित हो जाता है। फलस्वरूप शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ बढ़ती हैं। स्वस्थता, स्वच्छता और सुरक्षा रहती है। लोगों का सहयोग बढ़ता है। योग्यताऐं बढ़ने, आवश्यकताएँ संयमित होने और व्यवस्था शक्ति तीक्ष्ण होने से साधारण आर्थिक स्थिति में भी कोई अभाव नहीं रहता। उसे सब दिशाओं में अपना भण्डार भरा-भरा ही दिखाई पड़ता है। जैसे उत्तम भूमि में उगे हुए पौधे के सभी भाग, सभी अंग-प्रत्यंग परिपुष्ट और सुविकसित रहते हैं वैसे ही गायत्री भूमिका से सम्बन्धित मनुष्य का मानसिक, शारीरिक एवं सांसारिक जीवन सदा शान्त, स्वस्थ्य एवं समृद्ध बना रहता है।

प्राचीन काल में प्रायः सभी योगी, तपस्वी, ऋषि,-मुनि गायत्री को माध्यम बना कर योग साधना करते थे। इस महाशक्ति का अवलम्बन करके वे अनेकों ऋद्धि-सिद्धियाँ प्राप्त करते हुए आत्म-साक्षात्कार का, ब्रह्म-निर्वाण का परमानन्द उपलब्ध करते थे। गायत्री को भूलोक की कामधेनु कहा जाता है, क्योंकि उसकी उपासना करने से सभी तृष्णाएँ शान्त हो जाती हैं। असम्भव, अनावश्यक, अवांछनीय लालसाओं का शमन हो जाने से अपने आप ही वह स्थिति प्राप्त हो जाती है जिसे "मनोकामना पूर्ति" कहते हैं। कामधेनु का दूध पीकर समस्त तापताप दूर हो जाते हैं। गायत्री का दिव्य रस पान करने वाला भी

वैसा ही तृप्ति अनुभव करता है। गायत्री को ब्रह्मास्त्र भी कहते हैं। यह लोहे से बनी वह साधारण तोप तलवार नहीं है जो केवल किसी का प्राण हरण करने मात्र की शक्ति रखती है वरन् इस शास्त्र में वह शक्ति है जिससे जीवन को दुखमय बनाये रखने वाली उलझनें सुलझ जाती हैं, कठिनाइयाँ हल हो जाती हैं। डाइनामाइट की सुरंग लगाकर बड़े-बड़े पर्वत उड़ा दिते जाते हैं। गायत्री के ब्रह्मास्त्र की शक्ति भी ऐसी ही है उसके द्वारा उत्पन्न की हुई अग्नि में मनुष्य भी, पदार्थ भी, प्रदेश भी, समूह भी और पाप-ताप तथा दुख-दारिद्र के पुंज भी जलकर खाक हो सकते हैं। इसी कामधेनु को लेकर, इसी ब्रह्मास्त्र को पाकर ऋषियों ने यह बल प्राप्त किया था जिसके आगे चक्रवर्ती राजा भी नत-मस्तक होते थे।

इन दो तीन शताब्दियों में भी कितने ही सन्त-महात्मा ऐसे हुए हैं जिनने गायत्री की साधना करके महत्वपूर्ण स्थिति प्राप्त की थी। आज भी उच्चकोटि के तपस्वियों में अधिकांश ऐसे हैं जो अपना तप गायत्री द्वारा ही कर रहे हैं। ऐसे कितने ही ग्रहस्थ और विरक्त सन्तों को हम जानते हैं जो वेदमाता का अञ्चल पकड़ कर उसकी गोदी में पहुँच गये हैं और आनन्द की किलोलें कर रहे हैं। जो सांसारिक सम्पदाओं की अपेक्षा आत्मिक सम्पदाओं को अधिक महत्व देते हैं उन्हें अपनी अभीष्ट मनोभिलाषाऐं पूरी करने में वेदमाता से भारी सहायता मिलती है।

आत्मा ईश्वर का अंश होने से वह उन सब शक्तियों को बीज रूप से अपने अन्दर छिपाये रहता है जो ईश्वर में होती हैं। मानसिक पापों-तापों के, विषय-विकारों के, दोष-दुर्गुणों के ढेर में दबी हुई वे प्रसुप्त एवं अज्ञात् अवस्था में पड़ी रहती

हैं। अग्नि के ऊपर राख ढक दी जाय तो वह छिप जाती है पर जब राख को हटा दिया जाय तो वह फिर दहकता हुआ अङ्गार प्रकट हो जाता है। यह छोटा अङ्गार अनुकूल अवसर पावे तो प्रचण्ड दावानल के रूप में परिणित हो सकता है। गायत्री साधना करने से आत्मा पर पड़ा हुआ विकारों का मलीन आवरण हट जाता है और यह पर्दा फटते ही तुच्छ मनुष्य, महान् आत्मा, महात्मा, परम आत्मा, परमात्मा बन जाता है। चूँकि आत्मा में अनेकों ज्ञान-विज्ञान, साधारण-असाधारण, अद्भुत आश्चर्यजनक शक्तियों के भण्डार छिपे पड़े हैं, वे जब खुल जाते हैं तो साधक, सिद्ध योगी के रूप में दिखाई पड़ता है। सिद्धियाँ प्राप्त करने के लिए बाहर से कुछ लाना नहीं पड़ता, किसी देव दानव की कृपा की जरूरत नहीं पड़ती, केवल अन्तःकरण पर पड़े हुए आवरणों को हटाना पड़ता है। साधना रूपी सूर्य से, अयोग्ताओं का, तुच्छताओं का पर्दा हट जाता है। और आत्मा का यह निर्मल रूप स्वभावतः सभी ऋद्धि-सिद्धियों से परिपूर्ण होता है।

गायत्री को मन्त्र राज कहा गया है। जो कार्य संसार के अन्य किसी मन्त्र से हो सकता है वह गायत्री द्वारा भी अवश्य हो सकता है। लोग अपने विविध कष्ट निवारण के लिए अनेक मन्त्र, तन्त्र, जप, साधन, अनुष्ठान, पुरश्चरण आदि का विनियोग करते हैं। यह सभी कार्य केवल गायत्री से पूरे हो सकते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान को समझने वाले जानते हैं कि शरीर में विष या विकारों के भर जाने का नाम ही रोग है और उपवास, फलाहार, ऐनीमा, मिट्टी पानी का उपचार आदि द्वारा सब रोग दूर हो जाते हैं। प्राकृतिक चिकित्सक सब रोगों का एक ही कारण मानते हैं और एक ही चिकित्सा से

उन सबका ठीक होना सम्भव सिद्ध करते हैं। गायत्री विद्या के आचार्यों का कहना भी यही है कि आत्मिक भूमिका में सतोगुण का घट जाना ही नाना प्रकार के कष्टों और क्लेशों का हेतु है। सत् तत्व के बढ़ने के साथ-साथ ही दोष घटते हैं और दोषों की कमी होना, दुखों को घटाने का प्रत्यक्ष उपाय है।

पाप से, बुराई से, बुरी आदतों से, असंयम से, अपव्यय से, स्वार्थपरता से, सङ्कीर्णता से, दुर्बुद्धि से, समस्त प्रकार के दुख उत्पन्न होते हैं। गायत्री से जो सतोगुण शक्ति बढ़ती है उसके कारण इन सब विष-वृक्षों की जड़ कटनी शुरू हो जाती है। फलस्वरूप नाना प्रकार के कष्ट, दुख, भय, शोक अपने आप शमन हो जाते हैं। गायत्री के उपासक देखते हैं कि साधना ने हमारी अमुक विपत्तियों को दूर कर दिया। यह लाभ आकस्मिक या अनायास प्राप्त दैवी वरदान जैसे प्रतीत होते हैं पर वस्तुतः इनके पीछे एक वैज्ञानिक प्रक्रिया रहती है। भीतर का सुधार बाहर के सुधार से प्रकट होता है। जिस कोठरी में पहले गन्दगी और दुर्गन्ध रहती थी तब उसे घृणा की दृष्टि से देखा जाता था पर जब उसकी सफाई करके इत्र के पीपे भर दिये गये तो उस कोठरी की ओर सभी को आकर्षण होता है। गायत्री साधक के विरोधी, शत्रु, दुखदायी व्यक्ति यदि मित्र, समर्थक, सहयोगी और सुख दायकों में बदल जाँय तो उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

यह सभी लोग जानते हैं कि संसार दर्पण की तरह है जिसमें हमें अपनी ही भली बुरी छाया दिखाई पड़ती है। जैसी भी भली बुरी परिस्थितियाँ सामने हैं उन सबके जन्मदाता हम स्वयं हैं, हमारे गुण, कर्म और स्वभाव ही चारों ओर का वातावरण तैयार करते हैं, हम स्वयं ही अपने शत्रु हैं। आत्म-निर्माण

का कार्य गायत्री द्वारा बड़ी ही उत्तमता, सरलता एवं सूक्ष्म वैज्ञानिक प्रक्रिया के साथ होता है। यह परिवर्तन हमारे अज्ञान, अशक्ति और अभाव को मिटाता जाता है। फलस्वरूप हमारे सभी प्रकार के बाह्य और आन्तरिक दुःख-दारिद्र मिटते जाते हैं।

गायत्री अनन्त सुख-शान्ति की जननी है। उससे इस जन्म की कठिनाइयाँ दूर होकर सुविधाएँ सम्पत्तियाँ तो बढ़ती ही हैं साथ ही आत्मिक भूमिका की विचार-धारा और कार्यप्रणाली का ऐसा सुन्दर परिवर्तन हो जाता है कि दूसरा जन्म समग्र मोक्ष तक न पहुँच सका तो भी स्वर्गीय सुख-सम्पदाओं से परिपूर्ण अवश्य होता है।

साधना और कामना की विवेचना

जब गायत्री महाशक्ति को निखिल अन्तरिक्ष में से साधना की वैज्ञानिक विधि द्वारा खींच कर अपने अन्दर धारण करते हैं तो शरीर और मस्तिष्क के अन्दर छिपे हुए कितने ही शक्ति केन्द्र जाग्रत होने लगते हैं। सूखी हुई दूब पर वर्षा का पानी पड़ते ही उसमें चैतन्यता दौड़ जाती है और वह मनोरम हरियाली के रूप में परिणित हो जाती है। गायत्री शक्ति का आह्वान एक अमृत वर्षा है जिससे अनेकों गुप्त शक्तियों के गुप्त उद्गम, चैतन्य, प्रस्फुटित, पल्लवित एवं प्रफुल्लित होने लगते हैं। यही प्रकृया मङ्गलमयी दैवी कृपा या सिद्धि के रूप में परिलक्षित होती है।

दीर्घकाल से हम गायत्री उपासना की ब्राह्मणोचित तपश्चर्या कर रहे हैं। अपने व्यक्तिगत प्रयोगों में हमें जितने आश्चर्य-जनक अनुभव हुए हैं उनसे शास्त्रकारों के इस वचन पर हमें

पूर्ण श्रद्धा हो गई है कि—गायत्री भूलोक की कामधेनु है। थोड़े से जीवन काल में इतनी अधिक विद्या का प्राप्त होना, जितना कि हिसाब लगाने पर सौ वर्ष में भी सम्भव नहीं हो सकता है वेदमाता का ही चमत्कार है। योग विद्या के पारंगत सिद्ध पुरुषों का अनुग्रह, आशीर्वाद एवं वात्सल्य अनायास ही प्राप्त होना, माता की कृपा के बिना हमारे लिए किसी प्रकार सम्भव न था। जिन मनोविकारों, वासनाओं, तृष्णाओं एवं भ्रान्तियों से मानव प्राणी अशान्त और मायावद्ध बना रहता है उनका शमन होकर अन्तःज्योति का साक्षात्कार होना बिना माता के विशेष अनुग्रह के किस प्रकार सम्भव हो सकता था ? प्राणघातक संकटों के अवसरों पर आकस्मिक सहायताऐं प्राप्त होना, पर्वत के समान दुर्ल्लंघनीय प्रतीत होने वाली कई कठिनाइयों का आश्चर्य की तरह हल हो जाना, आदि इतने आश्चर्यजनक अवसर हमारे सामने आये हैं कि व्यक्तिगत रूप से हमें गायत्री की महत्ता के सम्बन्ध में अटूट विश्वास हो गया है।

इस प्रकार का सौभाग्य हर व्यक्ति को मिल सकता है। शर्त एक ही है कि उसका मन शङ्का, सन्देहों, अविश्वासों, आशंकाओं, उद्वेगों से भरा हुआ न हो। अडिग श्रद्धा और अटूट विश्वास के साथ जो उपासना की जाती है उसमें ही वह चुम्बकत्व एवं आकर्षण बल उत्पन्न होता है जिसके द्वारा उस महाशक्ति को खींचा जा सके। कितने ही अविश्वासी स्वभाव के लोग कहीं कुछ प्रशंसा सुनकर अधूरे मन से अविधि पूर्वक शंका और अविश्वास की भावनाओं के साथ साधना का लङ्गड़ा लूला कर्मकाण्ड पूरा करते हैं। भक्ति भावना और विश्वासी श्रद्धा ही साधना की रीढ़ है उसके अभाव में कर्मकाण्ड केवल एक वाह्योपचार मात्र, निष्प्राण आधार रह जाता है। जो साधक अगाध

मातृ भक्ति को उत्पन्न तो कर नहीं पाते, इसके लिए त्याग और प्रयत्न भी नहीं करते परन्तु अपनी मनोकामना, वासना एवं स्वार्थ साधन का लाभ मिलने की ही बात उतावली पूर्वक सोचते रहते हैं। ऐसे लोगों की उपासना माता को नहीं पहुँचती वरन् उस लालसा में ही उलझी रहती है। दस बीस दिन यह विडम्बना करने पर भी जब उन्हें मन-मोदक मिलते नहीं दीखते तो खीज कर अपने लङ्गड़े प्रयत्न को भी छोड़ बैठते हैं। ऐसे स्वभाव के लोगों को किसी आशाजनक सफलता का मिलना असंभव है। परन्तु जो जानते हैं कि अडिग श्रद्धा और असंदिग्ध विश्वास ही साधना का मेरुदण्ड है वे लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल नहीं होते।

कितने ही व्यक्तियों ने हमारे पथ-प्रदर्शन का सहारा लेकर गायत्री उपासनाऐं की हैं। हमारा अनुभव है कि उनकी कितनी कठिनाइयाँ हल होती हैं, गुत्थी सुलझती हैं, और आपत्तियाँ मिट जाती हैं। कितने ही रोगी, पीड़ित, अभावग्रस्त, सताये हुए, क्लेश मग्न, शोक संतप्त, कुटेवों में जकड़े हुए, निराश, भयभीत, चिन्तातुर, स्त्री-पुरुषों ने माता की शरण लेकर अपने दुर्भाग्य को सौभाग्य में परिणित किया है। उन्होंने अन्धकार में भटकते समय प्रकाश और डूबते समय उबारने वाला सहारा पाया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्हें केवल मन्त्र जप के अतिरिक्त और कुछ नहीं करना पड़ा और जादू की छड़ी घुमाने की तरह मनोवांछा पूरी हो गई। ऐसा नहीं होता, न ऐसा होना ही चाहिए। अन्यथा ईश्वर प्रदत्त आपत्ति, जिसका एक मात्र उद्देश्य उस व्यक्ति की चैतन्यता, जागरूकता, प्रयत्नशीलता बढ़ाना है अपना उद्देश्य पूरा कैसे कर पावेगी ? यदि माता बच्चे को गोदी में ही लिए रहे, उसे खड़े होने, चलने का कष्ट

न सहने दे तो वह बालक निष्क्रिय और लुंज-पुंज हो जायगा। कोई बालक ऐसा आलस्य करे भी तो माता उससे सहमत नहीं हो सकती।

आरम्भ में ही यह बताया जा चुका है कि साधना कोई आकस्मिक उपहार नहीं वरन् विशुद्ध वैज्ञानिक प्रकृया है इससे साधक में सतोगुण बढ़ता है। जैसे दीपक जलाते ही कमरे में चारों ओर उजाला छा जाता है वैसे ही सतोगुण की अभिवृद्धि होते ही शरीर और मन के वे गुप्त प्रकट दोष घटने आरम्भ हो जाते हैं जिनके कारण आये दिन बीमारियाँ, कठिनाइयाँ, पीड़ाएँ, असफलताऐं उपस्थित होती रहती हैं। जड़ पर कुठाराघात होगा तो पत्र पल्लवों का नाश भी हो ही जावेगा। सतोगुण एक शक्ति है जिसकी अभिवृद्धि के कारण नई-नई योग्यताऐं बढ़ती हैं और उनके कारण उन वस्तुओं का प्राप्त होना सुगम हो जाता है जो अयोग्यों को प्राप्त नहीं हुआ करतीं।

अनेक व्यक्तियों को अनेक प्रकार के लाभ गायत्री उपासना द्वारा होते हैं। बीमारी, कमजोरी, बेकारी, घाटा, गृह-कलह, मनोमालिन्य, मुकद्दमा, शत्रुओं का आक्रमण, दाम्पत्ति-सुख का अभाव, मस्तिष्क की निर्बलता, चित्त की अस्थिरता, सन्तान सम्बन्धी दुःख, कन्या के विवाह की कठिनाई, बुरे भविष्य की आशङ्का, परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने का भय, बुरी आदतों के बन्धन, जैसी कठिनाइयों से ग्रसित व्यक्तियों ने गायत्री-अराधना करके अपने दुखों से छुटकारा पाया है। इन कठिनाइयों के पीछे जड़ में निश्चयपूर्वक कुछ न कुछ अपनी त्रुटियाँ, अयोग्यताऐं, खराबियाँ रहती हैं, सतोगुण की वृद्धि के साथ-साथ आहार-विहार, विचार, दिनचर्या, दृष्टिकोण, स्वभाव एवं कार्यक्रम में परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन ही सुख-शान्ति का, आपत्ति

निवारण का, राजमार्ग बन जाता है। कई बार हमारी इच्छाऐं, तृष्णाऐं, लालसाऐं, कामनाऐं ऐसी होती हैं जो अपनी योग्यता एवं परिस्थितियों से मेल नहीं खातीं। मस्तिष्क शुद्ध होने पर बुद्धिमान व्यक्ति इन शेखचिल्ली की मृगतृष्णाओं को त्याग देता है और अनुकूल इच्छाऐं करने लगता है। इस प्रकार अवांछनीय तृष्णाओं से दुखी रहने का जञ्जाल अनायास ही छूट जाता है। अवश्यंभावी न टल सकने वाले प्रारब्ध का भोग जब सामने आता है तो साधारण व्यक्ति बुरी तरह रोते और चिल्लाते हैं किंतु गायत्री-साधक में इतना आत्मबल और साहस बढ़ जाता है कि उन्हें हँसते-हँसते झेल लेता है। सत्कर्म-परायण, धर्म-सङ्गत, लोक-सेवी, तपस्वी जीवन विताने में जो कष्ट होता है उसे आत्मबल सम्पन्न व्यक्ति कभी गिनता ही नहीं। धर्म-लाभ के साथ इतने मामूली कष्ट भी मिलना उसे गुलाब के साथ रहने वाले कांटे के समान स्वाभाविक मालूम देते हैं।

गायत्री-साधना का प्रत्यक्ष परिणाम है—सात्विक आत्मबल की अभिवृद्धि। सात्विक आत्मबल के दश लक्षण हैं—उत्साह, सतत परिश्रम, कर्त्तव्य परायणता, संयम, मधुर स्वभाव, धैर्य, अनुद्वेग, उदारता, अपरिग्रह, तत्वज्ञान। यदि कोई व्यक्ति सच्ची गायत्री-साधना कर रहा है, तो उसमें अवश्य ही यह गुण बढ़ेंगे और जैसे-जैसे यह बढ़ोतरी आगे चलेगी वैसे ही वैसे जीवन की कठिनाइयों का समाधान होता चलेगा। जब साधक की आत्मा गायत्री-शक्ति से परिपूर्ण हो जाती है तो उसे किसी भी प्रकार का कोई कष्ट, अभाव या दुख नहीं रह जाता वह निरन्तर पूर्ण परमानन्द का, ब्रह्मानन्द का अलौकिक रसास्वादन करता रहता है।

भ्रान्त, पथभ्रष्ट, अश्रद्धालु, लालची गायत्री को मुफ्त में

ठगाने का षड्यन्त्र करने वाले धूर्त सच्ची साधना नहीं कर सकते। करना तो दूर, उसे ठीक तरह समझ भी नहीं सकते। वे जिह्वा के अग्रभाग से चौबीस अक्षरों की तोता रटन्त करते हैं पर अन्तःकरण में श्रद्धा-विश्वास का नाम भी नहीं होता, मातृ-भक्ति का प्रेमांकुर कहीं दीख नहीं पड़ता। जितने मिनट चौबीस अक्षर रटते हैं उतने समय अपनी अवांछनीय अनैतिक अवास्तविक मृगतृष्णाओं में ही मन को लपलपाते रहते हैं। दस-पाँच दिन जप करने पर भी यदि उनकी सब तृष्णाऐं पूरी नहीं होगईं तो उनका साहस टूट जाता है और साधना को छोड़ बैठते हैं। साधना-विधि के छोटे-छोटे नियम बन्धनों तक को गवारा नहीं करना चाहते। स्नान करके ही जप किया जाय इसकी क्या जरूरत है। बिना स्नान के ही साधन क्यों नहीं किया जा सकता? ऐसे-ऐसे तर्क प्रायः रोज ही हमारे सामने रखे जाते हैं। किसी को पथ-प्रदर्शक या गुरू मानते हुए उन्हें अपनी तौहीन मालूम देती है। दान पुण्य के नाम पर एक कौड़ी खर्च करना वज्र उठाने के समान भारी मालूम पड़ता है। ऐसे लोगों की साधना, बिडम्बना प्रायः निष्फल रहती है। कई बार तो वह पहले की अपेक्षा भी घाटे में रहते हैं। वे सोचने लगते हैं कि हमारे सब काम गायत्री करके रख जायगी इसलिए हमें अब कुछ करना नहीं है, वे अपने रहे बचे प्रयत्न को भी छोड़ बैठते हैं। आलस्य, अकर्मण्यता और परावलम्बन की मनोवृत्ति में केवल कार्य नाश ही हो सकता है। ऐसी दशा में उनका लङ्गड़ा-लूला विश्वास भी नष्ट हो जाता है और भविष्य में आत्म-विद्या के दुरुपयोग से कोई लाभ उठाने का उनमें उत्साह भी नहीं रहता।

इन खतरों से हम अपने पाठकों को भली प्रकार आगाह

कर देना चाहते हैं। उपरोक्त प्रकार की छिछोरी बुद्धि के साथ बालक्रीड़ा के साथ साधना करना निष्प्रयोजन है। कभी-कभी तत्काल आश्चर्यजनक परिणाम भी होते अवश्य हैं, पर सदा ही वैसी आशा नहीं की जा सकती। वेदमाता की आराधना एक प्रकार का आध्यात्मिक कायाकल्प करना है। जिन्हें कायाकल्प कराने की विद्या मालूम है वे जानते हैं कि इस महा अभियान को करते समय कितने धैर्य और संयम का पालन करना होता है, तब कहीं शरीर की जीर्णता दूर होकर नवीनता प्राप्त होती है। गायत्री आराधना का आध्यात्मिक कायाकल्प और भी अधिक महत्वपूर्ण है। उसके लाभ केवल शरीर तक ही सीमित नहीं हैं वरन् शरीर, मस्तिष्क, चित्त, स्वभाव, दृष्टिकोण सभी का नव-निर्माण होता है और स्वास्थ्य, मनोबल एवं सांसारिक सुख सौभाग्यों में वृद्धि होती है। ऐसे असाधारण महत्व के अभियान में समुचित श्रद्धा, सावधानी, रुचि एवं तत्परता रखनी पड़े तो इसे कोई बड़ी बात न समझना चाहिये। केवल शरीर को पहलवानी के योग्य बनाने में काफी समय तक धैर्यपूर्वक व्यायाम करते रहना पड़ता है। दण्ड, बैठक, कुश्ती आदि के कष्ट-साध्य कर्म-काण्ड करने होते हैं।

दूध, घी, मेवा, बादाम आदि में काफी खर्च होता रहता है तब कहीं जाकर पहलवान बना जा सकता है। क्या आध्यात्मिक कायाकल्प करना पहलवान बनने से भी कम महत्व का है ? बी० ए० की उपाधि लेने वाले जानते हैं कि उनने कितना धन, समय, श्रम और अध्यवसाय लगाकर तब उस उपाधि पत्र को प्राप्त कर पाया है। गायत्री की सिद्धि प्राप्त करने में यदि पहलवान या ग्रेजुएट के समान प्रयत्न करना पड़े तो यह कोई घाटे की बात नहीं है। प्राचीन काल में हमारे पूर्वजों ने

जो आश्चर्यजनक सिद्धियाँ प्राप्त की थीं उसका उन्होंने समुचित मूल्य चुकाया था। हर एक लाभ की उचित कीमत देनी होती है। गायत्री-साधना का आध्यात्मिक काया-कल्प यदि अपना उचित मूल्य चाहता है तो उसे देने में किसी भी ईमानदार साधक को आनाकानी न करनी चाहिए।

यह सत्य है कि कई बार जादू की तरह गायत्री-उपासना का लाभ होता है। आई हुई विपत्ति अति शीघ्र दूर हो जाती है और अभीष्ट मनोरथ आश्चर्यजनक रीति से पूरे हो जाते हैं। पर कई बार ऐसा भी होता है कि अकाट्य प्रारब्ध-भोग न टल सके और अभीष्ट मनोरथ पूरा न हो। राजा हरिश्चन्द्र, नल, पाण्डव, राम, मोरध्वज जैसे महापुरुषों को होनहार भवतव्यता का शिकार होना पड़ा था। इसीलिए सकाम उपासना की अपेक्षा निष्काम उपासना ही श्रेष्ठ है। गीता में भगवान ने निष्काम कर्मयोग का ही उपदेश दिया है। साधना कभी निष्फल नहीं जाती। उसका तो परिणाम मिलेगा ही। पर हम अल्पज्ञ होने के कारण अपना प्रारब्ध और वास्तविक हित नहीं समझते। माता सर्वज्ञ होने से सब समझती है और वह वही फल देती है जिसमें हमारा वास्तविक लाभ होता है। साधना-काल में एक ही काम हो सकता है या तो मन भक्ति में तन्मय रहे या कामनाओं के मनमोदक खाता रहे। मनमोदकों में उलझे रहने से भक्ति नहीं रह पाती, फलस्वरूप अभीष्ट लाभ नहीं हो पाता। यदि कामना को हटा दिया जाय तो उस ओर से निश्चिन्त होकर समग्र मन भक्ति पूर्वक साधना में लग जाता है, तदनुसार सफलता का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

कोई युवक किसी दूसरे युवक को कुश्ती में पछाड़ने के लिए व्यायाम और पौष्टिक भोजन द्वारा शरीर को सुदृढ़ बनाने

की उत्साह पूर्वक तैयारी करता है। पूरी तैयारी के बाद भी कदाचित् वह कुश्ती पछाड़ने में असफल रहता है तो ऐसा नहीं समझना चाहिए कि उसकी तैयारी निरर्थक चली गई। वह तो अपना लाभ दिखावेगी ही। शरीर की सुदृढ़ता, चहरे की कान्ति, अंगों की सुडौलता, फेफड़ों की मजबूती, बलवीर्य की अधिकता, निरोगता, दीर्घजीवन, कार्यक्षमता, बलवान सन्तान आदि अनेकों लाभ उस बढ़ी हुई तन्दुरुस्ती से प्राप्त होकर रहेंगे। कुश्ती की सफलता से वंचित रहना पड़ा ठीक, पर शरीर की बलवृद्धि द्वारा प्राप्त होने वाले अन्य लाभों से उसे कोई वञ्चित नहीं कर सकता। गायत्री-साधक अपने काम्य प्रयोजन में सफल न हो सके तो भी उसे अन्य अनेकों मार्गों से ऐसे लाभ मिलेंगे जिनकी आशा बिना साधना किये नहीं की जा सकती।

बालक अनेकों चीजें माँगता है पर माता उसे वह चीजें नहीं देती। रोगी की सब माँगें भी बुद्धिमान परिचर्या करने वाले पूरी नहीं करते। ईश्वर की सर्वज्ञता की तुलना में मनुष्य बालक और रोगी के समान ही है। जिन अनेकों कामनाओं को हम नित्य करते हैं उनमें से कौन हमारे लिए वास्तविक लाभ और हानि करने वाली हैं इसे हम नहीं जानते पर ईश्वर जानता है। यदि हमें ईश्वर की दयालुता और भक्त वत्सलता पर सच्चा विश्वास है तो कामनाओं को पूरा करने की बात उसी पर छोड़ देनी चाहिये और अपना सारा मनोयोग साधना पर लगा देना चाहिए। ऐसा करने से हम घाटे में नहीं रहेंगे वरन् सकाम साधना की अपेक्षा अधिक लाभ में ही रहेंगे।

इतिहास जानता है कि अकबर रास्ता भूल कर एक

निर्जन वन में भटक रहे थे वहाँ एक अपरिचित बनवासी ने उनका उदार आतिथ्य किया। उसकी रूखी-सूखी रोटी का अकबर ने कुछ दिन बाद विपुल धन-राशि में बदला दिया। यदि उस बनवासी ने अपनी रोटी की कीमत उसी वक्त माँगली होती तो वह राजा का प्रीति-भाजन नहीं बन सकता था। सकाम-साधना करने वाले मतलबी भक्तों की अपेक्षा माता को निष्काम भक्तों की श्रद्धा अधिक प्रिय लगती है। वे उसका प्रतिफल देने में अकबर से भी अधिक उदारता दिखाती हैं।

हमारा दीर्घकालीन अनुभव है कि कभी किसी की गायत्री-साधना निष्फल नहीं जाती। न उलटा परिणाम ही होता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि हम धैर्य, स्थिरता, विवेक और मनोयोग पूर्वक कदम बढ़ावें। इस मार्ग में छिछोरपन से नहीं, सुदृढ़ आयोजन से ही लाभ होता है। इस दिशा में किया हुआ सच्चा पुरुषार्थ अन्य किसी भी पुरुषार्थ से अधिक लाभ-दायक सिद्ध होता है।

गायत्री-साधना से शक्ति कोषों का उद्भव

पिछले पृष्ठों में बताया जा चुका है कि गायत्री कोई देवी-देवता, भूत-पलीत आदि नहीं वरन् ब्रह्म की स्फुरणा से उत्पन्न हुई आद्य शक्ति है, जो संसार के प्रत्येक पदार्थ का मूल कारण है और उसी के द्वारा जड़ चेतन सृष्टि में गति, शक्ति, प्रगति, प्रेरणा एवं परिणति होती है। जैसे घर में रखे हुए रेडियो यन्त्र का सम्बन्ध विश्व व्यापी ईथर तरंगों में स्थापित करके देश-विदेशों में होने वाले प्रत्येक ब्राडकास्ट को सरलता पूर्वक सुन सकते हैं उसी प्रकार आत्म-शक्ति का विश्वव्यापी गायत्री-शक्ति से सम्बन्ध स्थापित करके सूक्ष्म प्रकृति की सभी हलचलों को जान सकते हैं

और उस सूक्ष्म शक्ति को इच्छानुसार मोड़ने की कला विदित हो जाने पर सांसारिक, मानसिक और आत्मिक क्षेत्र में प्राप्त हो सकने वाली सभी सम्पत्तियों को प्राप्त कर सकते हैं। जिस मार्ग से यह सब हो सकता है, उसका नाम है—साधना।

कई व्यक्ति सोचते हैं—'हमारा उद्देश्य ईश्वर-प्राप्ति, आत्म-दर्शन और जीवन-मुक्ति है, हमें गायत्री के सूक्ष्म-प्रकृति के चक्कर में पड़ने से क्या प्रयोजन? हमें तो केवल ईश्वराराधना करनी चाहिए।' ऐसा सोचने वालों को जानना चाहिए कि ब्रह्म सर्वथा निर्विकार, निर्लेप, निरञ्जन, निराकार गुणातीत है। वह न किसी से प्रेम करता है, न द्वेष। वह केवल दृष्टा एवं कारण रूप है उस तक सीधी पहुँच नहीं हो सकती, क्योंकि जीव और ब्रह्म के बीच में सूक्ष्म प्रकृति (energy) का सघन आच्छादन है। इस आच्छादन को पार करने के लिए प्रकृति के साधनों से ही कार्य करना पड़ेगा। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, कल्पना, ध्यान, सूक्ष्म शरीर, षट्चक्र, इष्टदेव की ध्यान प्रतिमा भक्ति, भावना, उपासना, व्रत, अनुष्ठान, साधन यह सब भी तो माया-निर्मित ही हैं। इन सबको छोड़कर ब्रह्म-प्राप्ति किस प्रकार होनी सम्भव है? जैसे ऊपर आकाश में पहुँचने के लिए वायुयान की आवश्यकता पड़ती है, वैसे ही ब्रह्म-प्राप्ति के लिये भी प्रतिमूलक आराधना का ही आश्रय लेना पड़ता है। गायत्री के आवरण में होकर पार जाने पर ही ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। सच तो यह है कि साक्षात्कार का अनुभव गायत्री के गर्भ में ही होता है इससे ऊपर पहुँचने पर सूक्ष्म इन्द्रियाँ और उनकी अनुभव-शक्ति भी लुप्त हो जाती है। इसलिये मुक्ति और ईश्वर-प्राप्ति चाहने वाले भी गायत्री मिश्रित ब्रह्म की—राधेश्याम, सीताराम, लक्ष्मी-नारायण की-ही उपासना करते हैं। निर्विकार ब्रह्म का सायुज्य

तो तभी होगा, जब ब्रह्म 'बहुत से एक होने' की इच्छा करेगा और सब आत्माओं को समेट कर अपने में धारण कर लेगा। उससे पूर्व सब आत्माओं का सविकार ब्रह्म में ही सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य आदि हो सकता है। इस प्रकार गायत्री मिश्रित सविकार ब्रह्म ही हमारा उपास्य रह जाता है। उसकी प्राप्ति के साधन जो भी होंगे, वे सभी सूक्ष्म प्रकृति गायत्री द्वारा ही होंगे। इसलिए ऐसा सोचना उचित नहीं कि ब्रह्म-प्राप्ति के लिए गायत्री अनावश्यक है। वह तो अनिवार्य है। नाम से कोई उपेक्षा या विरोध करें यह उनकी इच्छा, पर गायत्री तत्व से बचकर अन्य मार्ग से जाना असम्भव है।

कई व्यक्ति कहते हैं कि हम निष्काम साधना करते हैं। हमें किसी फल की कामना नहीं, फिर सूक्ष्म प्रकृति का आश्रय क्यों लें? ऐसे लोगों को जानना चाहिये कि निष्काम साधना का अर्थ—भौतिक लाभ न चाह कर आत्मिक साधना का है। बिना परिणाम सोचे या चाहें तो किसी कार्य में प्रवृत्ति ही नहीं हो सकती, यदि कुछ किया भी जाय तो उनसे समय एवं शक्ति के अपव्यय के अतिरिक्त और कुछ परिणाम नहीं निकलता। निष्काम कर्म का तात्पर्य दैवी, सतोगुणी, आत्मिक कामनाओं से है। ऐसी कामनाएँ भी गायत्री के प्रथम पाद में, 'ह्रीं' तत्व में, सरस्वती भाग में आती हैं। इसलिए निष्काम भाव की उपासना भी गायत्री-क्षेत्र से बाहर नहीं है।

मन्त्र-विद्या के वैज्ञानिक जानते हैं कि जीभ से जो भी शब्द निकलते हैं, उनका उच्चारण कण्ठ, तालु, मूर्धा, ओष्ठ, दंत, जिह्वा, मूल आदि मुख के विभिन्न अङ्गों द्वारा होता है। इस उच्चारण काल में मुख के जिन भागों से ध्वनि निकलती है, उन अङ्गों के नाड़ी तन्तु शरीर के विभिन्न भागों तक फैलते हैं। इस

फैलाव क्षेत्र में कई सूक्ष्म ग्रन्थियाँ होती हैं, जिन पर उस उच्चारण का दवाब पड़ता है। जिन लोगों की कोई सूक्ष्म ग्रन्थियाँ रोगी या नष्ट हो जाती हैं, उनके मुख से कुछ खास शब्द अशुद्ध या रुक-रुककर निकलते हैं, इसी को हकलाना या तुतलाना कहते हैं। शरीर में अनेकों छोटी-बड़ी दृश्य-अदृश्य ग्रन्थियाँ होती हैं। योगी लोग जानते हैं कि उन कोषों में कोई विशेष शक्ति-भंडार छिपा रहता है। सुषुम्ना से सम्बद्ध षट्चक्र प्रसिद्ध हैं, ऐसी अगणित अनेकों ग्रन्थियाँ शरीर में हैं। विविध शब्दों का उच्चारण इन विविध ग्रन्थियों पर अपना प्रभाव डालता है और उस प्रभाव से उन ग्रन्थियों का शक्ति-भण्डार जागृत होता है। मन्त्रों का गठन इसी आधार पर हुआ है। गायत्री मन्त्र में २४ अक्षर हैं। इनका सम्बन्ध शरीर में स्थित ऐसी २४ ग्रन्थियों से है, जो जागृत होने पर सद्बुद्धि प्रकाशक शक्तियों को सतेज करती हैं। गायत्री मन्त्र के उच्चारण से सूक्ष्म शरीर का सितार २४ स्थानों से झङ्कार देता है और उससे एक ऐसी स्वर-लहरी उत्पन्न होती है, जिसका प्रभाव अदृश्य जगत के महत्वपूर्ण तत्वों पर पड़ता है। यह प्रभाव ही गायत्री-साधना के फलों का प्रभाव हेतु है।

शब्दों का ध्वनि प्रवाह तुच्छ चीज नहीं है। शब्द-विद्या के आचार्य जानते हैं कि शब्द में कितनी शक्ति है और उसकी अज्ञात गतिविधि के द्वारा क्या-क्या परिणाम उत्पन्न हो सकते हैं? शब्द को ब्रह्म कहा गया है। ब्रह्म की स्फुरणा कम्पन उत्पन्न करती है। वह कम्पन ब्रह्म से टकराकर 'ॐ' ध्वनि के साथ बार-बार ध्वनित होता रहता है। जैसे दीवाल घड़ी का लटकन घंटा पैण्डुलम झूलता हुआ घड़ी के पुर्जों में चाल पैदा करता रहता है, इसी प्रकार वह 'ॐ' कार ध्वनि प्रवाह सृष्टि को चलाने वाली

गति पैदा करता है। आगे चल कर उस प्रवाह में ह्रीं, श्रीं, क्लीं की तीन प्रधान सत्, रज, तममयी धाराएँ बहती हैं। तदुपरान्त उसकी और भी शाखा-प्रशाखाएँ हो जाती हैं, जो बीजमंत्र के नाम से पुकारी जाती हैं। यह ध्वनियाँ अपने-अपने क्षेत्र में सृष्टि-कार्यों का सञ्चालन करती हैं। इस प्रकार सृष्टि का सञ्चालन कार्य शब्द तत्व द्वारा होता है। ऐसे तत्व को तुच्छ नहीं कहा जा सकता। गायत्री की शब्दावली ऐसे चुने हुए शृंखलाबद्ध शब्दों से बनाई गई है, जो क्रम और गुम्फन की विशेषता के कारण अपने ढङ्ग की एक अद्भुत ही शक्ति-प्रवाह उत्पन्न करती है।

दीपक-राग गाने से बुझे हुए दीपक जल उठते हैं, मेघ-मल्हार गाने से वर्षा होने लगती है, वेणु-नाद सुनकर सर्प लहराने लगते हैं, मृग सुधि-बुधि भूल जाते हैं, गौएँ अधिक दूध देने लगती हैं। कोयल की बोली सुनकर काम-भाव जागृत हो आते हैं। सैनिकों के कदम मिलाकर चलने की शब्द-ध्वनि से लोहे के पुल तक गिर सकते हैं, इसलिये पुलों को पार करते समय सेना को कदम मिलाकर न चलने की हिदायत करदी जाती है। अमेरिका के डाक्टर हचिसन ने विविध सङ्गीत ध्वनियों से अनेक असाध्य और कष्टसाध्य रोगियों को अच्छा करने में सफलता और ख्याति प्राप्त की है। भारतवर्ष में तांत्रिक लोग थाली को घड़े पर रख कर एक विशेष गति से बजाते हैं और उस बाजे से सर्प बिच्छू आदि जहरीले जानवरों के काटे हुए कण्ठमाला, विषवेल, भूतोन्माद आदि के रोगी बहुत करके अच्छे होजाते हैं। कारण यह है कि शब्दों के कम्पन सूक्ष्म प्रकृति से अपनी जाति के अन्य परमाणुओं को लेकर ईथर का परिभ्रमण करते हुए जब अपने उद्गम-केन्द्र पर कुछ ही क्षणों में लौट

आते हैं तो उनमें अपने प्रकार की एक विशेष विद्युत शक्ति भरी होती है और परिस्थिति के अनुसार उपयुक्त क्षेत्र पर उस शक्ति का एक विशिष्ट प्रभाव पड़ता है। मन्त्रों द्वारा विलक्षण कार्य होने का भी यही कारण है। गायत्री मन्त्र द्वारा भी इसी प्रकार शक्ति का आविर्भाव होता है। मंत्रोच्चारण में मुख के जो अङ्ग क्रियाशील होते हैं, उन भागों के नाड़ी-तन्तु कुछ विशेष ग्रन्थियों को गुदगुदाते हैं। उनमें स्फुरणा होने से एक वैदिक छन्द का क्रमबद्ध योगिक सङ्गीत प्रवाह ईथर तत्व में फैलता है और अपनी कुछ क्षणों में पूरी होने वाली विश्व परिक्रमा से वापिस आते-आते एक स्वजातीय तत्वों की सेना वापिस ले आता है, जो अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति में बड़ी सहायक होती है। शब्द संगीत के शक्तिमय कम्पनों का पञ्चभौतिक प्रवाह और आत्म-शक्ति की सूक्ष्म प्रकृति की भावना, साधना, आराधना के आधार पर उत्पन्न किया गया सम्बन्ध, यह दोनों ही कारण गायत्री-शक्ति को ऐसी बलवान बनाते हैं, जो साधकों के लिये दैवी वरदान सिद्ध होती है।

गायत्री मन्त्र को और भी अधिक सूक्ष्म बनाने वाला कारण है साधक का 'श्रद्धामय विश्वास'। विश्वास की शक्ति से सभी मनोविज्ञानवेत्ता परिचित हैं। हम अपनी पुस्तकों और लेखों में ऐसे असंख्य उदाहरण अनेकों बार दे चुके हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि केवल विश्वास के आधार पर लोग केवल भय की वजह से अकारण काल के मुख में चले गये और विश्वास के कारण मृत प्रायः लोगों ने नवजीवन प्राप्त किया। रामायण में तुलसीदासजी ने 'भवानी शङ्करौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ' गाते हुए श्रद्धा और विश्वास को भवानी शङ्कर की उपमा दी है। झाड़ी को भूत, रस्सी को सर्प, मूर्ति को देवता बना देने की

क्षमता विश्वास में है। लोग अपने विश्वासों की रक्षा के लिये धन, आराम तथा प्राणों तक को हँसते-हँसते गँवा देते हैं। एकलव्य, कबीर आदि के ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जिनसे प्रगट है कि गुरु द्वारा नहीं, केवल अपनी श्रद्धा के आधार पर गुरु द्वारा प्राप्त होने वाली शिक्षा से भी अधिक विज्ञ बना जा सकता है। हिप्नोटिज्म का आधार रोगी को अपने वचन पर विश्वास कराके उससे मनमाने कार्य करा लेना ही तो है। तांत्रिक लोग मन्त्रसिद्धि की कठोर साधना द्वारा अपने मन में इस मंत्र के प्रति अगाध श्रद्धा जमाते हैं। आमतौर पर जिसके मन में जितनी गहरी श्रद्धा जमी होती है, उस तांत्रिक का मन्त्र भी उतना ही काम करता है। जिस मन्त्र से श्रद्धालु तांत्रिक चमत्कारी काम कर दिखाता है, उसी मंत्र को अश्रद्धालु साधक चाहे सौ बार बकें, कुछ लाभ नहीं होता। गायत्री मंत्र के सम्बन्ध में भी यह तथ्य बहुत हद तक काम करता है। जब साधक श्रद्धा और विश्वासपूर्वक आराधना करता है, तो शब्द-विज्ञान और आत्म-सम्बन्ध दोनों महता से संयुक्त गायत्री का प्रभाव और भी अधिक बढ़ जाता है और वह एक अद्वितीयशक्ति सिद्ध होती है।

गायत्री-साधना का अधिकार

गायत्री मन्त्र का अधिकार केवल द्विजों को ही है। जिनका दूसरा जन्म नहीं हुआ है उनके लिए गायत्री व्यर्थ है। अनाधिकारी होने के कारण न तो उनका इस महान साधना में मन लगता है न विश्वास होता है और न वे तद्नुकूल आचरण कर पाते हैं। आयुर्वेद पढ़ना हो तो आरम्भ में हिन्दी और संस्कृत का ज्ञान होना आवश्यक है। अशिक्षित व्यक्ति आयुर्वेद

कालेज में नाम लिखाने जाय तो प्रिंसिपल को यही कहना पड़ेगा कि आपको प्रविष्ट नहीं किया जा सकता।

द्विजत्व का अर्थ है--दूसरा जन्म। एक जन्म माता-पिता से होता है। पशु-पक्षियों का जन्म भी इसी प्रकार होता है। चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने के बाद मानव शरीर पाने पर भी उसमें पिछले पाशविक संस्कार ही प्रधान रहते हैं। पेट भरना, कामवासना, लोभ, स्वार्थ एवं अहंकार आदि की पाशविक वृत्तियों से प्रेरित होकर वह सोचता है, इच्छा करता है और कार्य-प्रवृत्त होता है। यदि यही गति-विधि जारी रहे तो वह नर पशु ही बना रहता है।

पशु की विचार-धारा और कार्य-प्रणाली से ऊँचा उठ कर मनुष्यता की जिम्मेदारियों को कन्धे पर लेना मानवोचित इच्छाऐं करना, विचार एवं कार्यों का अपनाना दूसरा जन्म है। पशु का आदर्श इन्द्रिय भोग और स्वार्थ है। मनुष्य का आदर्श आत्मोन्नति और परमार्थ है। पशु अपने लाभ के लिए दूसरों की हानि की परवाह नहीं करता, मनुष्य दूसरे की सेवा के लिए अपने सुख और स्वार्थ को बलिदान कर देता है। शूद्र का तात्पर्य है--नर पशु। ऐसे व्यक्तियों को शास्त्रों में श्वान समान पर तिरष्कृत और बहिष्कृत किया है। गायत्री से भी उन्हें उनकी आत्मिक अयोग्यता के कारण ही वञ्चित रखा गया है।

पानी नीचे की ओर अपने आप बहता है। जितनी अधिक निचाई होगी उतना ही बहाव तेज होगा। पर यदि पानी को ऊपर की ओर, ऊँचाई की ओर चढ़ाना हो तो कितने ही कष्ट-साध्य प्रयत्न करने पड़ते हैं। पशुता की ओर, पतन की ओर, भोग और स्वार्थ की ओर मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है, इस प्रवृत्ति पर नियंत्रण करके धर्म की ओर, संयम की ओर,

कल्याण की ओर, अग्रसर होने के लिए जो विशेष अवरोध करना पड़ता है उसका नाम है द्विजत्व का व्रत, यज्ञोपवीत संस्कार, गुरु दीक्षा।

पहला स्थूल जन्म माता-पिता के रज वीर्य से होता है। दूसरा सूक्ष्म जन्म माता गायत्री और पिता गुरु के संयोग से होता है। रोगी अपना इलाज आप नहीं कर सकता, अपने दोषों को समझना, अपनी मानसिक स्थिति को तोलना और आत्म-निर्माण का कार्यक्रम बनाना इस महान योजना को बिना अनुभवी पथ-प्रदर्शक के पूरा नहीं किया जा सकता। जैसे सभी बीमारों को एक दवा नहीं दी जाती उनकी अनेक सूक्ष्म परिस्थितियों को समझ कर अनुभवी वैद्य प्रथक-प्रथक प्रकार की औषधियों और अनुपानों का विधान करता है ऐसे ही हर व्यक्ति की भिन्न मनोभूमि के अनुरूप ही आत्मोन्नति की योजना बनाई जाती है। यह कार्य दिव्य दर्शी, सूक्ष्म बुद्धि, स्वार्थ रहित, सदाचारी, ज्ञान वृद्ध महापुरुष ही कर सकते हैं। ऐसे ही लोगों को गुरु कहा जाता है। बगीचे का व्यवस्थित विकाश करने के लिए ऐसे माली का संरक्षण आवश्यक है जो ठीक समय पर बोना, जोतना, सींचना एवं काट-छाँट करना जानता है। इस प्रकार नियुक्ति हो जाने पर द्विजत्व का एक महत्वपूर्ण भाग पूरा हो जाता है।

गायत्री के चौबीस अक्षर जीवन की गति-विधि का निर्णय करने में कसौटी का काम देते हैं। प्रत्येक अक्षर एक-एक स्वर्ण शिक्षा का प्रतीक है। 'ॐ' की शिक्षा है कि—सर्वत्र परमात्मा को व्यापक समझकर कहीं भी गुप्त या प्रकट रूप से बुराई न करो। 'भूः' की शिक्षा है कि—अपने अन्दर सम्पूर्ण उत्थान-पतन के हेतुओं को ढूँढ़ो। 'भुवः' का अर्थ है—कर्त्तव्य-कर्म में

तत्परता से प्रवृत्त रहो और फल के लालच में अधिक न उलझो। 'स्वः' का सन्देश है कि--स्थिर रहो, हर्ष शोक में उद्विग्न न बनो। 'तत्' का तात्पर्य है कि--इस शरीर के क्षणिक सुखों को ही सब कुछ मत समझो, जन्म जन्मान्तरों के स्थायी सुखों का महत्व समझो। 'सवितुः' का भावार्थ है कि--अपने को विद्या, बुद्धि, स्वास्थ्य, धन, यश, मैत्री, साहस आदि शक्तियों से अधिकाधिक सुसम्पन्न करना। 'वरेण्यं' का सन्देश है कि--इस दुरंगी दुनियाँ में से केवल श्रेष्ठता का ही स्पर्श करो। 'भर्गो' का उपदेश है कि-शरीर, मन, मकान, वस्त्र तथा व्यवहार को स्वच्छ रखना। 'देवस्य' का अर्थ है कि--उदारता, दूरदर्शिता। 'धीमहि' अर्थात् सद्गुण, उत्तम स्वभाव, दैवी सम्पदाऐं, उच्च विचार। 'धियो' का तात्पर्य है कि--किसी व्यक्ति, ग्रन्थ या सम्प्रदाय का अन्धानुयायी न होकर विवेक के आधार पर केवल उचित को ही स्वीकार करना। 'योनः' की शिक्षा है--संयम, तप, ज्ञान, सहिष्णुता, तितीक्षा, कठोर श्रम, मितव्ययता, शक्तियों का संयम और सदुपयोग। 'प्रचोदयात्' अर्थात् प्रेरणा देना, गिरे हुओं को ऊँचा उठाना, उत्साहित करना, प्रफुल्लित, सन्तुष्ट एवं सेवा-परायण रहना।

सम्पूर्ण वेद शास्त्रों में अनेक शिक्षाऐं अपने-अपने ढङ्ग से दी गई हैं उन सब का सार भाग उपरोक्त पंक्तियों में आ गया है। उतनी बातें भली प्रकार हृदयङ्गम करली जायें तो समझ लीजिये कि चारों वेदों के पण्डित हो गये। गायत्री के २४ अक्षरों में दिव्य जीवन की समस्त योजना, नीति, विचार-धारा, कार्य-प्रणाली सन्निहित है, इस पर चलने में व्यवहारिक सहयोग देना, पथ-प्रदर्शन करना, गुरु का काम है। इस प्रकार गायत्री माता और गुरु पिता द्वारा हमारे आदर्शवादी जीवन का जन्म होता है। यही द्विजत्व है।

यज्ञोपवीत में तीन लड़ें होती हैं प्रत्येक लड़ में तीन-ती धागे होते हैं। जैसे देवताओं की मूर्ति पाषाण या धातुओं व होती हैं वैसे ही हर घड़ी छाती से लगाये रहने योग्य गायत्री व मूर्ति यज्ञोपवीत रूपी बनाई गई है। गायत्री में तीन पद औ नौ शब्द हैं। यज्ञोपवीत में तीन लड़ें और नौ सूत्र हैं। ती व्याहृतियों की प्रतीक तीन ग्रन्थियाँ हैं। ॐकार ब्रह्म ग्रन्थि है यज्ञोपवीत धारण करने का अर्थ है—"गायत्री से सन्निहि शिक्षाओं को जीवन व्यवहार में क्रियात्मक रूप से चरिता करने का उत्तरदायित्व कन्धे पर उठाना।" इस जिम्मेदारी के स्वीकार करने की प्रतिज्ञा लेना ही यज्ञोपवीत संस्कार या द्विजत्व में प्रवेश कहलाता है।

यज्ञोपवीत का धारण का अर्थ उसी दिन इन सब गुणं से परिपूर्ण हो जाना एवं पुराने कुसंस्कारों से तत्क्षण मुक्त हो जाना नहीं है। यह पूर्ण सिद्धावस्था तो अन्तिम लक्ष है। "हम सच्चे हृदय से गायत्री में निर्धारित जीवन नीति की उत्तमता को स्वीकार करेंगे।" इस प्रतिज्ञा के साथ द्विजत्व का आरम्भ होता है। जन्म-जन्मान्तरों के कुसंस्कार एक दिन में नहीं छूट जाते वरन् उन्हें हटाने के लिए काफी लम्बा धर्म-युद्ध करना पड़ता है। कई बार हम कुसंस्कारों पर विजय पाते हैं, कई बार कुसंस्कारों की जीत होती है। यह लड़ाई निरन्तर जारी रहनी चाहिए। पाप एवं पतन के सामने कभी भी आत्म-समर्पण न करना चाहिये। उसके प्रति घृणा और प्रतिरोध के भाव सदा जारी रहें। कोई बुराई अपने में हो और वह छूट न पा रही हो तो भी उसे अपनी कमजोरी या भूल समझकर पश्चाताप ही करें और उससे छुटकारा पाने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न जारी रखें। बुराई को भलाई के रूप में स्वीकार करना, उसका समर्थन करना, उसका विरोध

छोड़ देना, उसमें रस लेना, यह शूद्रत्व का चिह्न है। हम पाप के प्रतिरोध में अपनी अन्तःचेतना को सूक्ष्म रखें तो हम द्विजत्व की प्रतिज्ञा पर दृढ़ कहे जा सकते हैं। चाहे पूर्ण विशुद्ध होने में, पूर्ण सफलता मिलने में, पूर्ण विजय प्राप्त होने में, कितनी ही देर क्यों न लग जाय।

पशुत्व का विरोध और मनुष्यता का समर्थन करने की प्रतिज्ञा लेना, द्विजत्व का व्रत स्वीकार करना, आत्मोन्नति का सर्व प्रथम एवं अत्यन्त आवश्यक धर्मकृत्य है। इसे करने के उपरान्त आदर्शवाद के अनुयायियों में अपनी गणना करा लेने के पश्चात् ही हमें वह अधिकार मिलता है कि गायत्री-साधना द्वारा दैवी शक्ति को प्राप्त करें। अनाधिकारी व्यक्ति किसी प्रकार उसे प्राप्त भी करलें तो उसका दुरुपयोग ही करेंगे इसलिए शास्त्रकारों ने प्रतिज्ञा-हीन, व्रत-हीन, यज्ञोपवीत-हीन व्यक्तियों को शूद्र संज्ञा देकर गायत्री का अनाधिकारी ठहरा दिया है। यह प्रतिबन्ध सर्वथा उचित एवं दूरदर्शिता पूर्ण ही है।

शास्त्रों में ऐसा उल्लेख है कि बिना गुरु का मंत्र निष्फल होता है। किसी को पथ-प्रदर्शक नियुक्त किये बिना अपनी स्थिति के अनुकूल साधना-विधि को मालूम कर लेना और समय-समय पर अपनी मनोभूमि के परिवर्तनों को ध्यान में रखकर अपने आप साधना में परिवर्तन करते रहना कठिन है। किसी बड़े औषधालय की चाबी मिल जाने पर भी रोगी अपने आप अपने मर्ज के लिए उपयुक्त औषधि लेकर निरोग नहीं हो सकता। यदि उसे बीमारी से पीछा छुड़ाना है तो किसी अनुभवी वैद्य की सलाह अवश्य लेनी पड़ेगी। "औषधि में भारी शक्ति है" यह सत्य है। पर यह भी सत्य है कि बिना वैद्य की सलाह के कीमती

रस, भस्में भी निरथक होती हैं और कई बार तो वे उलटा परिणाम भी उपस्थित करती हैं।

कहा गया है कि गायत्री को वशिष्ठ और विश्वामित्र का शाप लगा हुआ है, इसलिये शापमोचन किये बिना गायत्री-साधना निष्फल होती है। वशिष्ठ कहते हैं--विशिष्ठ गुणवान्, अनुभवी विद्वान को और विश्वामित्र कहते हैं--संसार का हित चाहने वाले सच्चरित्र तपस्वी को। यह दोनों गुण जिनमें हों--जो वशिष्ठ और विश्वामित्र तत्वों का प्रतिनिधित्व करता हो, ऐसे गुरु का अनुवर्ती होना ही शापमोचन है। जो शापमुक्त गायत्री जपता है-गुरु के आदर्श और नियंत्रण में साधना करता है उसकी सफलता में कोई शङ्का नहीं रह जाती।

आजकल गुरु-शिष्य की एक उपहासास्पद विडम्बना चल रही है। जिन व्यक्तियों को आत्म-निर्माण के भारतीय मनोविज्ञान (योग) का समुचित ज्ञान नहीं है, जो अपना तक भी आत्म-निर्माण नहीं कर पाये हैं, ऐसे लोग भी गुरु बनने का दुस्साहस करते हैं। चिकित्सा-शास्त्र का परिचय प्राप्त किए बिना डाक्टर बन बैठने वाला व्यक्ति जितना खतरनाक होता है, उससे भी अधिक खतरनाक यह गुरू होते हैं। "निगुरा" कहलाने के पातक से छूटने के लिए लोग किसी भी पोथीपांडे को गुरु बना लेते हैं और हर साल कुछ दान-पुण्य मिलते रहने के लोभ से गुरूजी भी चेले के कान फूँक देते हैं। इस प्रकार की चिह्न पूजा से गुरुदीक्षा का महान् उद्देश्य पूरा हो सकना कठिन है।

ईश्वरीय शक्तियों को पकड़ने, आकर्षित करने का एक मात्र अवलम्बन जो मनुष्य के पास है, वह है-श्रद्धायुक्त प्रेम। इसी को भक्ति कहते हैं। 'भगवान् भक्त के वश में होते आये' की

उक्ति इसी महासत्य का समर्थन करती है। प्रगाढ़ प्रेम से परिपूर्ण मनोभावना में एक ऐसा दैवी चुम्बकत्व हो जाता है, जिससे मनुष्यों और दैवी शक्तियों को अपने पक्ष में द्रवित एवं आकर्षित किया जा सकता है। कोई चतुराई, बुद्धिमत्ता, विधि-व्यवस्था ऐसी नहीं है जिससे श्रद्धायुक्त प्रेम (भक्ति) के समान चुम्बकत्व, आकर्षण पैदा होता हो और यह आकर्षण ही समस्त आत्मिक लाभों का उद्गम स्रोत है।

अपने में भक्ति-भावना बढ़ाने का अभ्यास पहले पहल किसी मनुष्य को माध्यम बनाकर किया जाता है। ईश्वर-भक्ति का प्रारम्भिक अभ्यास गुरु-भक्ति से होता है। आरम्भ में छोटे तालाब में तैरना सीख कर तब समुद्र को तैर जाने में सफलता मिलती है। माता, पिता, मित्र, पति, पत्नी, पुत्र आदि को माध्यम बनाकर भक्ति का अभ्यास करने में यह कठिनाई है कि इनके साथ सांसारिक व्यवहारिक सम्बन्ध रहने से कभी अनुकूल कभी प्रतिकूल भावनायें आती रहती हैं। दूसरे इनमें ज्ञान, सदाचार, विद्या, दिव्य दृष्टि, सात्विकता एवं निस्वार्थता आदि विशेषताओं की उनकी मात्रा न होने से स्वाभाविक श्रद्धा भी अधिक मात्रा में उत्पन्न नहीं होती। सद्गुरु के सम्बन्ध में यह कठिनाइयाँ नहीं आतीं। इसलिये उनको माध्यम बनाकर अपने अन्तःकरण में श्रद्धा, सात्विकता एवं पवित्रता से परिपूर्ण प्रेम का अभ्यास करना सरल होता है। हमारी प्रेम-भावना जितनी ही प्रगाढ़ होती जाती है, उतना ही ईश्वर-प्राप्ति की सफलता के निकट पहुँचते जाते हैं। गुरु-भक्ति का दूसरा लाभ यह है कि उनके आदेशानुसार गायत्री शिक्षाओं को व्यवहार रूप में लाने के लिए उनका प्रभाव विशेष उपयोगी सिद्ध होने लगता है।

यों सभी मनुष्य समान हैं, सभी ईश्वर के पुत्र होने से

भाई-भाई हैं, सभी में दोष हैं, कोई भी पूर्ण निर्दोष नहीं है, गुरु भी यदि पूर्ण निर्दोष होते तो उन्हें संसार में रहने की आवश्यकता ही क्यों होती, अपूर्णता के कारण ही तो हम सब इस स्कूल की विभिन्न कक्षाओं में पढ़ रहे हैं। इतना होते हुए भी किसी अपेक्षाकृत सत्पुरुष को माध्यम बनाकर गुरु-भक्ति की जा सकती है। रबड़ की गेंद को जितने जोर से फेंक कर दीवार पर मारते हैं वह टकराकर उतने ही जोर से वापिस लौट आती है। गुरु-भक्ति रूपी साधना से हमारी आध्यात्मिक भक्ति-भावना तेजी से समुन्नत होती है, तदनुसार ईश्वर की गायत्री शक्ति को शीघ्रता एवं अधिक मात्रा में प्राप्त करना सुगम हो जाता है।

प्रत्येक गायत्री-साधक को आदर्शवादी विचार-धारा का अनुयायी होने की, द्विजत्व का अवलम्बन करने की प्रतिज्ञा लेनी चाहिए। तुच्छ, स्वार्थपूर्ण, भोगवादी, पाशविक दृष्टिकोण रखकर जो व्यक्ति गायत्री को उपासना करना चाहता है, उस अनाधिकारी के लिए द्वार बन्द है। साधक को अपने आत्म-निर्माण के लिए गायत्री में सन्निहित नीति-योजना और कार्य-प्रणाली को अपनाना चाहिए। गायत्री माता है, माता ही जीवन-निर्माता होती है। हमारा आध्यात्मिक जीवन गायत्री शिक्षा के अनुरूप होना चाहिए। प्रत्येक साधक को एक सुयोग्य, अनुभवी, सूक्ष्म बुद्धि, पथ-प्रदर्शक होना चाहिए, जो मार्ग बताने, भूल सुधारने, सुप्त शक्तियों को जगाने एवं भक्ति-भावना को बढ़ाने में सहायक हो सके।

स्मरण रखना चाहिए कि द्विज ही गायत्री के अधिकारी हैं। गुरु, पिता और गायत्री-माता के अनुसरण की धर्म-प्रतिज्ञा लेना ही दीक्षा है। आत्मिक उन्नति के लिए दूसरा जन्म होना आवश्यक है। यज्ञोपवीत उस जन्म का प्रमाण-पत्र है। यह मूर्ति-

मान प्रतिज्ञा हर समय कन्धे और छाती पर अवस्थित रहनी चाहिए ताकि बार-बार घड़ी-घड़ी वह हमारी प्रतिज्ञा का स्मरण करती रहे। स्त्री और बालक कण्ठी के रूप में या कण्ठ में पड़े रहने वाले तृतीयांश सूत्र का यज्ञोपवीत धारण कर सकते हैं।

जो लोग मल-मूत्र आदि के समय कान पर यज्ञोपवीत चढ़ाने के नियम को ठीक प्रकार पालन नहीं कर पाते उनके लिए एक तिहाई लम्बाई का छोटा यज्ञोपवीत बना दिया जाता है, जो कण्ठ में पड़ा रहता है। जो लोग यज्ञोपवीत बनाना नहीं जानते वे गायत्री की शिक्षाओं को एक डोरे में गाँठ लगाकर बाँध लेते हैं। ६ लड़ें, ३ गाँठें, १ ब्रह्म गाँठ तथा १ पूर्ण यज्ञोपवीत के अभाव को पूर्ण करना, इस प्रकार १४ गाँठें लगे हुए डोरे को यज्ञोपवीत के स्थान पर धारण करते हैं। अनन्त चतुर्दशी को पहने जाने वाले १४ गाँठ का अनन्त सूत्र, बालकों के गले में ओझा लोगों द्वारा बाँधे गये १४ ग्रन्थि वाले गण्डासूत्र, स्त्रियों की सोने, चाँदी या काँच की कण्ठियाँ इस प्रकार के आंशिक यज्ञोपवीत के ही प्रतीक हैं।

गायत्री के प्रत्येक उपासक को यज्ञोपवीत पहिनना अवश्य चाहिए, क्योंकि यह उसकी विधिवत् ली हुई धर्म-प्रतिज्ञा-दीक्षा का न त्यागने योग्य उत्तरदायित्व है। यह धारणा उसके उद्देश्य को प्राप्त करने में बड़ी सहायक होती है। नौ धागे का यज्ञोपवीत नव रत्नों का हार है इसका महत्व रत्नजटित आभूषण से अधिक ही है, कम नहीं।

गायत्री तपोभूमि—एक महान् धर्म संस्थान

गायत्री तपोभूमि, मथुरा शहर से १ मील आगे—वृन्दावन रोड पर परम शांतिमय वातावरण में बना हुआ एक सुन्दर आश्रम है, जहाँ गायत्री माता का भव्य मन्दिर, भारतवर्ष के लगभग २४०० तीर्थों के जल-रज का एक तीर्थ सम्मेलन-गृह, १२५ करोड़ हस्तलिखित गायत्री-मन्त्रों का संग्रह-कक्ष, निवास के लिए २३ कमरे, एक प्रवचन हाल, तीन बड़ी यज्ञशालाऐं, प्रधान यज्ञशाला में कभी न बुझने दी जाने वाली अखण्ड-अग्नि की स्थापना, नित्य गायत्री-मन्त्र की एक हजार आहुतियों का हवन, तुलसी का उपवन, हजारों धार्मिक पुस्तकों का विशाल पुस्तकालय, लगभग ६० पत्र-पत्रिकाऐं आने वाला वाचनालय, बिना मूल्य चिकित्सा के लिए कल्प चिकित्सालय यह सब देखकर कोई भी दर्शक संस्था की गति-विधियों का सहज ही अनुमान लगा सकता है। गायत्री तपोभूमि में सदा अनेक धार्मिक भावना वाले व्यक्ति शिक्षा, तीर्थ-यात्रा, साधना, तपश्चर्या एवं विभिन्न कठिनाइयों के सम्बन्ध में आचार्यजी से परामर्श करने आते हैं। आगन्तुकों को तपोभूमि में निवास, भोजन आदि की समुचित सुविधा प्राप्त होती है।

गायत्री तपोभूमि द्वारा देश भर में गायत्री महायज्ञों एवं सांस्कृतिक सम्मेलनों की शृंखला भी चलाई जा रही है। सन् '५६ और '५७ में १००० बड़े गायत्री महायज्ञ तथा सांस्कृतिक सम्मेलन करने का निश्चय किया था। सो उस संकल्प से भारतवर्ष के कोने-कोने से हजारों यज्ञ हुए जिनमें से १०१ कुण्डों वाले, २५ कुण्डों वाले, ९ कुण्डों वाले विशाल यज्ञों की संख्या १००० थी। इनमें से कुछ यज्ञों में तो ५० हजार तक जनता एकत्रित हुई। ये यज्ञ अ० भा० गायत्री-परिवार की देश में फैली हुई १२०० शाखाओं द्वारा सम्पन्न हुये थे। इन यज्ञों और सम्मेलनों का उद्देश्य जनता में धर्म, सदाचार, नैतिकता

मानवता, सदाचार, संयम आदि विश्व-कल्याणकारी सत्प्रवृत्तियों को बढ़ाना है।

"गायत्री तपोभूमि द्वारा इन दिनों सामूहिक 'गायत्री ब्रह्मास्त्र अनुष्ठान' देश भर में गायत्री-उपासकों के सहयोग से चल रहा है, जिसके अन्तर्गत प्रतिदिन २४ करोड़ गायत्री-जप, २४ लाख आहुतियों का हवन, २४ लाख मन्त्र-लेखन, २४ लाख गायत्री पाठ एवं धर्म-प्रचार का कार्य-क्रम चल रहा है। इसकी पूर्णाहुति कार्तिक सुदी १२ से १५ सं० २०१५ में १००० कुण्डों की १०१ यज्ञशालाओं में १ लाख होताओं द्वारा होगी। आगुन्तकों के ठहरने तथा भोजन की निःशुल्क व्यवस्था रहेगी। इतना बड़ा यज्ञ इस युग में अभी तक कहीं नहीं हुआ है।

गायत्री-तपोभूमि के संचालक श्री आचार्यजी ने गायत्री सम्बन्धी हजारों ग्रन्थों के अध्ययन का सार, अपनी ३० वर्षों की साधना एवं व्यक्तिगत अनुभव का ज्ञान, सर्व साधारण के कल्याणार्थ लगभग ८० पुस्तकों के रूप में प्रकाशित कर दिया है। इन पुस्तकों के आधार पर साधारण व्यक्ति भी गायत्री महाशक्ति के रहस्यों एवं विधानों को जानकर घर रहते हुए योगियों की जैसी सफलताएँ प्राप्त कर सकता है। गायत्री-तपोभूमि की मुख-पत्रिका 'अखण्ड-ज्योति' विगत १६ वर्षों से मासिक रूप में निकल रही है और ग्राहक संख्या की दृष्टि से 'कल्याण' के बाद धार्मिक पत्रों में 'अखण्ड-ज्योति' का ही नम्बर है। गायत्री-तपोभूमि की सारी हल-चलों, योजनाओं तथा आचार्यजी की विचारधारा का परिचय 'अखण्ड-ज्योति' पढ़कर ही प्राप्त किया जा सकता है।

आपको मथुरा कभी पधारना हो तो तपोभूमि अवश्य देखिये। पत्र-व्यवहार द्वारा भी आप आवश्यक विषयों पर जवाबी पत्र भेजकर परामर्श प्राप्त कर सकते हैं।

पता—गायत्री तपोभूमि, मथुरा।

मुद्रक—रमनलाल बंसल, पुष्पराज प्रेस, मथुरा।

गोपनीय गायत्री तंत्र

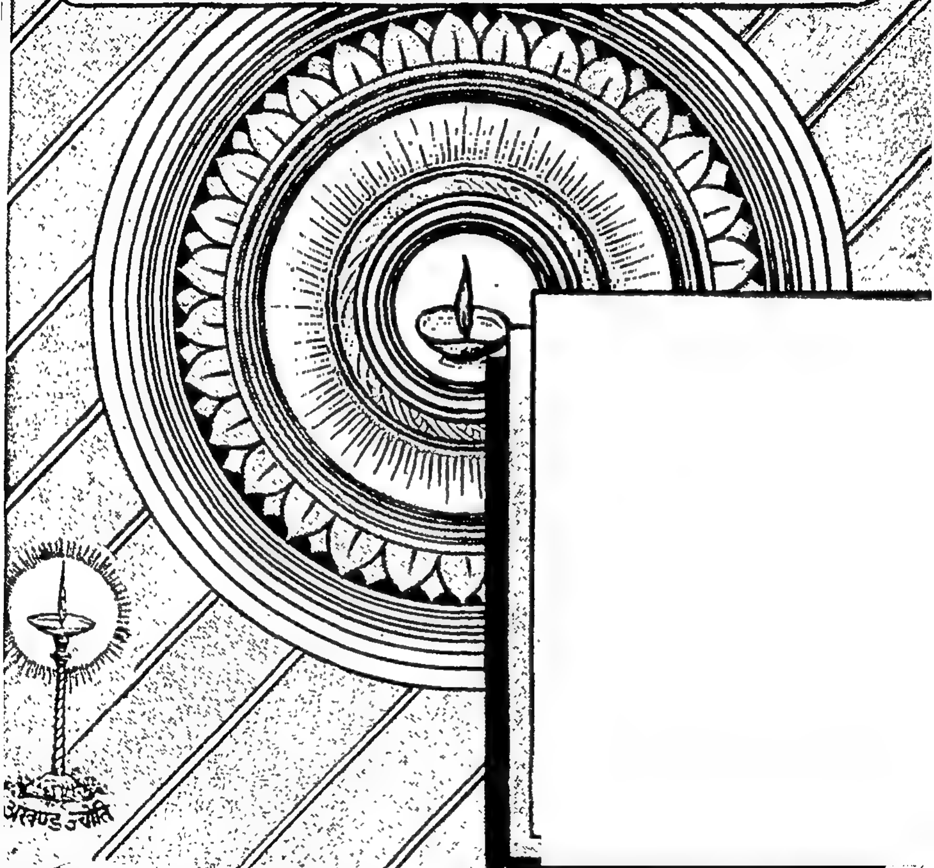

श्रीराम शर्मा आचार्य

लेखक-
श्रीराम शर्मा आचार्य
गायत्री तपोभूमि, मथुरा ।

ॐ भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि
धियो योनः प्रचोदयात् ।

प्रकाशक-
"अखण्ड ज्योति" प्रेस, मथुरा ।

प्रथम बार] सन् १९५६ मूल्य ।)

गोपनीय गायत्री तन्त्र

योग-साधना के दो मार्ग हैं, एक दक्षिण मार्ग दूसरा वाम मार्ग। दक्षिण मार्ग का आधार यह है कि—'विश्वव्यापी ईश्वरीय शक्तियों को आध्यात्मिक चुम्बकत्व से खींच कर अपने में धारण किया जाय, सतोगुण को बढ़ाया जाय और अन्तर्जगत में अवस्थित पञ्च कोष, सप्त प्राण, चेतना चतुष्टय, षटचक्र एवं अनेक उपचक्रों, मात्रिकाओं, ग्रन्थियों, भ्रमरों, कमलों, उपत्यिकाओं को जागृत करके आनन्ददायिनी अलौकिक शक्तियों का आविर्भाव किया जाय।"

वाम मार्ग का आधार यह है कि—"दूसरे प्राणियों के शरीरों में निवास करने वाली शक्ति को इधर से उधर हस्तान्तरित करके एक जगह विशेष मात्रा में शक्ति संचित कर ली जाय और उस शक्ति का मनमाना उपयोग किया जाय।"

तांत्रिक साधनाओं की कार्य-पद्धति इसी आधार पर चलती है। किन्हीं पशुओं का वध करके उनके पाँच प्राणों का उपयोगी भाग खींच लिया जाता है। जैसे शिकारी लोग सुअर के शरीर में निकलने वाली चर्बी को अलग से निकाल लेते हैं वैसे ही तन्त्र साधक उस बध होते हुए पशु के सप्त प्राणों में से पाँच प्राणों को चूस जाते हैं और उससे अपनी शक्ति बढ़ा लेते हैं। बकरे, भैंसे, मुर्गे आदि के बलिदानों का आधार यही है। मृत मनुष्यों के शरीर में एक सप्ताह तक कुछ उपचक्र एवं ग्रन्थियें में चैतन्यता बनी रहती है। श्मशान भूमि में रह कर मुर्दे द्वारा शव साधना करने वाले अघोरी उन मृतकों से भी शक्ति चूसते हैं। देखा जाता है कि कई अघोरी मृत बालकों की लाशें

को जमीन में से खोद ले जाते हैं, मृतकों की खोपड़ी लिए फिरते हैं, चिताओं पर भोजन पकाते हैं। यह सब इसी प्रयोजन के लिए किया जाता है। कुछ तांत्रिक कोमल प्रकृति के वयस्क स्त्री, पुरुषों या छोटे बालकों पर अपना अदृश्य दांत गढ़ा कर उनका प्राण चूस जाते हैं। ऐसे अघोरी, कापालिक, रक्तबीज, वैतालिक, ब्रह्म राक्षस पुरुष तथा डाकनी, शाकिनी, कपाल कुण्डली, सर्पसूत्रा आदि स्त्रियाँ अब भी गुप्त प्रकट रूप से जहाँ-तहाँ देखी जाती हैं।

इस प्रकार मनुष्य या पशु-पक्षियों के शरीर से चूसी हुई शक्ति अधिक समय तक ठहरती नहीं, उसका तात्कालिक कार्य के लिये ही उपयोग हो सकता है। किसी पर मारण प्रयोग करना होता है, कृत्या, घात, चौकी या मूँठ चलानी होती है तो उसके लिए किन्हीं प्राणियों का बलिदान आवश्यक हो जाता है। तांत्रिकों का आधार ही दूसरे की शक्ति का अपहरण करके अपना काम चलाना है। इसी प्रकार उनके जितने भी काम होते हैं वे इसी प्रकार एक स्थान से शक्ति का अपहरण करके दूसरे पर फेंकने के आधार पर होते हैं।

किसान और डाकू में जो अन्तर है वही अन्तर दक्षिण मार्गी योगी और वाममार्गी तांत्रिक में है। किसान अपने खेत में बाहर से लाकर बीज, खाद और पानी डालता है, परिश्रम करके उसकी जुताई, नराई, गुड़ाई, सिंचाई, कटाई करता है तब फसल का लाभ उठाता है। डाकू इन सब झंझटों में नहीं पड़ता, वह किसी भी रास्ता चलते को लूट लेता है। किसान की अपेक्षा डाकू अधिक नफे में रहता मालूम देता है। वह एक दिन में अमीर बन जाता है और रईसी शान के साथ दौलत खर्च करता है। किसान वैसा नहीं कर सकता। कारण यह है कि उसे धन कमाने में काफी समय, श्रम, धैर्य एवं सावधानी से

काम लेना पड़ता है। उसे खर्च करते समय दर्द लगता है, पर डाकू की स्थिति दूसरी है, वह लूटकर लाता है तो होली की तरह उसे फूँक भी सकता है। तांत्रिक चमत्कारी होते हैं। थोड़े ही दिनों के प्रयत्न में वे प्रेत, पिशाच सिद्ध कर लेते हैं और उनके द्वारा अपना आतङ्क फैलाते हैं। किसान और डाकू की कोई तुलना नहीं, इसी प्रकार योगी और तांत्रिक की भी समता नहीं हो सकती।

गायत्री द्वारा भी तांत्रिक प्रयोग हो सकते हैं। जो कार्य संसार के अन्य किसी मंत्र से होते हैं, वे गायत्री से भी हो सकते हैं। तन्त्र-साधना भी हो सकती है। पर हम अपने अनुयायियों को उस ओर न जाने की सलाह देते हैं, क्योंकि स्वार्थ-साधना का कितना ही बड़ा प्रलोभन उस दिशा में क्यों न हो पर अनैतिक एवं धर्म-विरुद्ध कार्य होने से उसका अन्तिम परिणाम अच्छा नहीं होता।

तन्त्र का शक्ति-स्रोत दैवी, ईश्वरीय शक्ति नहीं वरन् भौतिक शक्ति है, प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु अपनी धुरी पर द्रुतगति से भ्रमण करते हैं, तब उनके घर्षण से ऊष्मा पैदा होती है उसका नाम काली या दुर्गा है। इस ऊष्मा को प्राप्त करने के लिए अस्वाभाविक, उलटा, प्रतिगामी मार्ग ग्रहण करना पड़ता है। जल के बहाव को रोका जाय तो उस प्रतिरोध से एक शक्ति का उद्भव होता है। तांत्रिक वाम मार्ग पर चलते हैं, फलस्वरूप काली शक्ति का प्रतिरोध करके अपने को एक तामसिक, पञ्चभौतिक बल से सम्पन्न कर लेते हैं। उलटा आहार, उलटा विहार, उलटी दिनचर्या, उलटी गतिविधि सभी कुछ उनका उलटा होता है।

द्रुतगति से एक नियत दिशा में दौड़ती हुई रेल, मोटर, नदी, वायु आदि के आगे आकर उसकी गति को रोकना और उस

प्रतिरोध से शक्ति प्राप्त करना यह खतरनाक खेल है। हर कोई इसे कर भी नहीं सकता, क्योंकि प्रतिरोध के समय झटका लगता है। प्रतिरोध जितना ही कड़ा होगा झटका भी उतना ही जबर-दस्त लगेगा। तन्त्र-साधक जानते हैं कि जन-कोलाहल से दूर एकान्त खण्डहरों, श्मशानों में अर्धरात्रि के समय जब उनकी साधना का मध्यकाल आता है तब कितने रोमाञ्चकारी भय सामने आ उपस्थित होते हैं। गगन चुम्बी राक्षस, विशालकाय सर्प, लाल नेत्रों वाले शूकर और महिष, छुरी से दाँतों वाले सिंह साधक के आस-पास जिस रोमाञ्चकारी भयङ्करता से गर्जन-तर्जन करते हुए कुहराम मचाते और आक्रमण करते हैं। उनसे न तो डरना और न विचलित होना साधारण काम नहीं है। साहस के अभाव में यदि इस प्रतिरोधी प्रतिक्रिया से साधक भयभीत हो जाय तो उसके प्राण संकट में पड़ सकते हैं। ऐसे अवसरों पर कई व्यक्ति पागल,बीमार,गूँगे,बहरे,अन्धे हो जाते हैं, कइयों को प्राणों तक से हाथ धोना पड़ता है। इस मार्ग में साहसी और निर्भीक प्रकृति के मनुष्य ही सफलता पाते हैं।

तांत्रिक साधन गुप्त रखे जाते हैं। उनका सार्वजनिक रूप से प्रकटीकरण करना निषिद्ध है, क्योंकि अधिकारी अनधिकारी का निर्णय किये बिना वाम मार्ग में हाथ डालना, आग से खेलना है। पग-पग पर आने वाली कठिनाइयों का समाधान अनुभवी पथ-प्रदर्शक ही कर सकता है। बिना गुरु के, अनधिकारी व्यक्ति तन्त्र-साधना करें तो परिणाम कैसा होगा इसकी कल्पना करना कुछ विशेष कठिन नहीं है। एक नौ सिखिया एक बार ऐसी ही विपत्ति में फँस गया। प्रतिरोध की प्रतिक्रिया को वह सहन नहीं कर सका, फलस्वरूप उसकी छाती में रक्त-वाहिनी तीन नाड़ियाँ फट गईं। मुख, नाक और मल-मार्ग से खून बह रहा था, ज्वर

चढ़ा हुआ था और शरीर काँप रहा था, भय से भरी हुई चीत्कारें बार-बार मुख से निकलती थीं। हमने उसका उपचार किया, कई दिन में उसका कष्ट दूर हो पाया और पूर्ण स्वस्थ होने में तो उसे प्रायः सात महीने लग गये।

गायत्री-तन्त्र द्वारा प्रकृति के परमाणुओं के घर्षण की ऊष्मा (काली) का आह्वान होता है। प्राणियों के शरीर में रहने वाली विद्युत को अत्यधिक उत्तेजित करके उत्तेजना समय की बढ़ी हुई शक्ति को भी अपहरण कर लिया है। प्राण बलिदान या आंशिक रक्त मांस आदि के प्रतिघात करते समय प्राणी की अन्तःचेतना व्याकुलता, पीड़ा एवं उत्तेजना की स्थिति में होती है उस अवसर से तांत्रिक लोग लाभ उठा लेते हैं।

तन्त्र के चमत्कारी प्रलोभन असाधारण हैं। दूसरों पर आक्रमण करना तो उसके द्वारा बहुत ही सरल है। किसी को बीमारी, पागलपन, बुद्धिभ्रम, उच्चाटन उत्पन्न कर देना, प्राणघातक सङ्कट में डाल देना आसान है। सूक्ष्म जगत में भ्रमण करती हुई किसी "चेतना ग्रन्थि" को प्राणवान बनाकर उसे प्रेत, पिशाच, बेताल, भैरव, कर्ण पिशाचनी, छाया पुरुष आदि के रूप में सेवक की तरह काम लेना, सुदूर देशों से अजनबी चीजें मँगा देना, जेब की चीजें या अज्ञात व्यक्तियों के नाम पते बता देना तांत्रिकों के लिए सम्भव है। आगे चलकर वेष बदल लेना या किसी वस्तु का रूप बदल देना भी उनके लिए सम्भव है। इसी प्रकार की अनेकों विलक्षणताऐं उनमें देखी जाती हैं जिससे लोग बहुत प्रभावित होते हैं और उनकी भेंट पूजा भी खूब होती है। परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि इन शक्तियों का स्रोत परमाणुगत ऊष्मा (काली) ही है जो परिवर्तनशील है। यदि थोड़े दिनों साधना बन्द रखी जाय या प्रयोग छोड़ दिया जाय

तो उस शक्ति का घट जाना या समाप्त हो जाना अवश्यम्भावी है।

तन्त्र द्वारा कुछ छोटे-मोटे लाभ भी हो सकते हैं। किसी के तांत्रिक आक्रमण को निष्फल करके किसी निर्दोष की हानि को बचा देना ही सदुपयोग है। तांत्रिक विधि से 'शक्तिपात' करके अपनी उत्तम शक्तियों का कुछ भाग किसी निर्बल मन वाले को देकर उसे ऊँचा उठा देना भी सदुपयोग ही है। और भी कुछ ऐसे ही प्रयोग हैं जिन्हें विशेष परिस्थिति में काम में लाया जाय तो वह भी सदुपयोग ही कहा जायगा। परन्तु असंस्कृत मनुष्य इस तमोगुण प्रधान शक्ति का सदा सदुपयोग ही करेंगे इसका कुछ भरोसा नहीं। स्वार्थ-साधन का अवसर हाथ में आने पर उनका लोभ छोड़ना किन्हीं विरलों का ही काम होता है।

तन्त्र अपने आप में कोई बुरी चीज नहीं है। वह एक विशुद्ध विज्ञान है। वैज्ञानिक लोग यन्त्रों और रासायनिक पदार्थों की सहायता से प्रकृति की सूक्ष्म शक्तियों का उपयोग करते हैं। तांत्रिक अपने अन्तर्जगत को ही ऐसी रासायनिक एवं यान्त्रिक स्थिति में ढाल लेता है कि अपने शरीर और मन को एक विशेष प्रकार से सञ्चालित करके प्रकृति की सूक्ष्म शक्तियों का मनमाना उपयोग करे। इस विज्ञान का विद्यार्थी कोमल परमाणुओं वाला होना चाहिए साथ ही साहसी प्रकृति का भी। कठोर बनावट और कमजोर मन वाले इस दिशा में अधिक प्रगति नहीं कर पाते। यही कारण है कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक आसानी से सफल तांत्रिक बनते देखी गई हैं। छोटी-छोटी प्रारम्भिक सिद्धियाँ तो उन्हें स्वल्प प्रयत्न से ही प्राप्त हो जाती हैं।

तन्त्र एक स्वतन्त्र विज्ञान है। विज्ञान का दुरुपयोग भी

हो सकता है और सदुपयोग भी। परन्तु इसका आधार गलत और खतरनाक है। शक्ति प्राप्त करने के उद्गम स्रोत अनैतिक अवांछनीय हैं साथ ही प्राप्त सिद्धियाँ भी अस्थायी हैं। आमतौर से तांत्रिक घाटे में रहता है, उससे संसार का जितना उपकार हो सकता है, उससे अधिक अपकार होता है इसलिए चमत्कारी होते हुए भी इस मार्ग को निषिद्ध एवं गोपनीय ठहराया गया है। अन्य समस्त तन्त्र साधनों की अपेक्षा गायत्री का वाम मार्ग अधिक शक्तिशाली है। अन्य सभी विधियों की अपेक्षा इस विधि से मार्ग सुगम पड़ता है, फिर भी निषिद्ध वस्तु त्याज्य है। सर्व-साधारण के लिए तो उससे दूर रहना ही उचित है।

यों तन्त्र की कुछ सरल विधियाँ भी हैं, अनुभवी पथ-प्रदर्शक इन कठिनाइयों का मार्ग सरल बना सकते हैं। हिंसा, अनीति एवं अकर्म से बचकर ऐसे लाभों के लिए साधन करा सकते हैं, जो व्यवहारिक जीवन में उपयोगी हों और अनर्थ से बचकर स्वार्थ-साधन होता रहे। पर यह लाभ तो दक्षिणमार्गी साधना से भी हो सकते हैं। जल्दबाजी का प्रलोभन छोड़कर यदि धैर्य और सात्विक साधन किए जाँय तो उनके लाभ भी कम नहीं हैं। हमने दोनों मार्गों का लम्बे समय तक साधन करके यही पाया है कि दक्षिण मार्ग का राज-पथ ही सर्व सुलभ है।

गायत्री द्वारा साधित तन्त्र-विद्या का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है। सर्प-विद्या, प्रेत-विद्या, भविष्य-ज्ञान, अदृश्य वस्तुओं का देखना, परकाया प्रवेश, घात-प्रतिघात, दृष्टि बन्ध, मारण, उन्मादीकरण, वशीकरण, विचार सन्दहीन, मोहनतन्त्र, रूपान्तरण, विस्तृत, सन्तान सुयोग, छाया पुरुष, भैरवी, अपहरण, आकर्षण, अभिकर्षण आदि अनेकों ऐसे-ऐसे कार्य हो सकते हैं, जिनको अन्य किसी भी तांत्रिक प्रक्रिया द्वारा किया जा सकता

है। परन्तु यह स्पष्ट है कि तन्त्र की प्रणाली सर्वोपयोगी नहीं है। उसके अधिकारी कोई विरले ही होते हैं।

दक्षिणमार्गी वेदोक्त, योग सम्मत गायत्री-साधना, किसान द्वारा अन्न उपजाने के समान धर्म-सङ्गत, स्थिर लाभ देने वाली और लोक-परलोक में सुख-शान्ति देने वाली है। पाठकों का वास्तविक हित इसी राज-पथ के अवलम्बन में है।

गायत्री का गोपनीय वाममार्ग

न देयं परं शिष्येभ्योह्यभक्तेभ्यो विशेषतः।
शिष्येभ्यो भक्ति युक्तेभ्योह्यन्यथामृत्युमाप्नुयात्॥

दूसरे के शिष्य के लिये विशेषकर भक्तिरहित के लिये यह मंत्र कभी न देना चाहिये। इसकी दीक्षा भक्तियुक्त शिष्य को ही देनी चाहिये अन्यथा मृत्यु की प्राप्ति होती है।

उपरोक्त प्रमाण में यह बताया गया है कि तन्त्र एक गुप्त विज्ञान है। उसकी सब बातें सब लोगों के सामने प्रकट करने योग्य नहीं होतीं। कारण यह है कि तान्त्रिक साधनाएँ बड़ी क्लिष्ट होती हैं। वे उतनी ही कठिन हैं, जितना कि समुद्र की तली में घुसकर मोती निकालना। गोताखोर लोग जान को जोखिम में डालकर पानी में बड़ी गहराई तक नीचे उतरते हैं, तब बहुत प्रयत्न के बाद उन्हें कुछ मोती हाथ लगते हैं। परन्तु इस क्रिया में अनेक बार उन्हें जल-जन्तुओं का सामना करना पड़ता है। नट अपनी कला दिखाकर लोगों को मुग्ध कर देता है और प्रशंसा भी प्राप्त करता है, परन्तु यदि एक बार चूक जाय तो खैर नहीं।

तन्त्र प्रकृति से संग्राम करके उसकी रहस्यमय शक्तियों का विजय लाभ करना है। इसके लिये असाधारण प्रयत्न करने

पड़ते हैं और उनकी असाधारण ही प्रतिक्रिया होती है। पानी में जोर से ढेला फेंकने पर वहाँ का पानी जोर से उछाल खाता है और एक छोटे विस्फोट जैसी स्थिति दृष्टिगोचर होती है। तान्त्रिक साधक भी एक रहस्यमय साधन द्वारा प्रकृति के अन्तराल में छिपी हुई शक्ति को प्राप्त करने के लिये अपनी साधना का एक आक्रमण करता है। उसकी एक प्रतिक्रिया होती है, उस प्रतिक्रिया से कभी-कभी साधक के भी आहत हो जाने का भय रहता है।

जब बन्दूक चलाई जाती है तो जिस समय नली में से गोली बाहर निकलती है, उस समय वह पीछे की ओर एक झटका मारती है और भयंकर शब्द करती है। यदि बन्दूक चलाने वाला कमजोर प्रकृति का हो तो उस झटके से पीछे की ओर गिर सकता है, धड़ाके की आवाज से डर या घबरा सकता है। चन्दन के वृक्षों के निकट सर्पों का निवास रहता है, गुलाब के फूलों में काँटे होते हैं, शहद प्राप्त करने के लिये मक्खियों के डङ्क का सामना करना पड़ता है, सर्पमणि प्राप्त करने के लिये भयङ्कर सर्प से और गजमुक्ता प्राप्त करने के लिये मदोन्मत्त हाथी से जूझना पड़ता है। तान्त्रिक साधनाएँ ऐसे ही विकट पुरुषार्थ हैं, जिनके पीछे खतरों की शृङ्खला जुड़ी रहती है। यदि ऐसा न होता तो उन लाभों को हर कोई आसानी से प्राप्त कर लिया करता।

तन्त्र एक उत्तेजनात्मक उग्र प्रणाली है। इस प्रक्रिया के अनुसार जो साधना की जाती है, उससे प्रकृति के अन्तराल में बड़े प्रबल कम्पन उत्पन्न होते हैं, जिनके कारण ताप और विक्षोभ की मात्रा बढ़ती है। गर्मी के दिनों में सूर्य की प्रचण्ड किरणों के कारण जब वायु-मण्डल का तापमान बढ़ जाता है तो हवा

बहुत तेज चलने लगती है। लू, आँधी और तूफान के दौरे बढ़ते हैं। उस उग्र उत्तेजना में खतरे बढ़ जाते हैं, किसी को लू सता जाती है, किसी की आँख में धूल भर जाती है, अनेकों के शरीर फोड़े-फुन्सियों से भर जाते हैं, आँधी से छप्पर उड़ जाते हैं, पेड़ उखड़ जाते हैं। कई बार हवा के भँवर पड़ जाते हैं, जो एक छोटे दायरे में बड़ी तेजी से नाँचते हुए डरावनी शक्ल में दिखाई पड़ते हैं। तन्त्र की साधनाओं से ग्रीष्म काल का सा उत्पात पैदा होता है और मनुष्य के वाह्य एवं आन्तरिक वातावरण में एक प्रकार की सूक्ष्म लू एवं आँधी चलने लगती है, जिसकी प्रचण्डता के झकझोरे लगते हैं। यह झकझोरे मस्तिष्क के कल्पना-तन्तुओं से जब संघर्ष करते हैं तो अनेकों प्रकार की भयङ्कर प्रतिमूर्तियाँ दृष्टिगोचर होने लगती हैं। ऐसे अवसर पर डरावने भूत, प्रेत, पिशाच, देव, दानव जैसी आकृतियाँ दीख सकती हैं। दृष्टि-दोष उत्पन्न होने से कुछ न कुछ दिखाई दे सकता है। अनेकों प्रकार के शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्शों का अनुभव हो सकता है। यदि साधक निर्भयतापूर्वक इन स्वाभाविक प्रतिक्रियाओं को देखकर मुस्कराता न रहे तो उसका साहस नष्ट हो जाता है और उन भयङ्करताओं से यदि वह भयभीत हो जाय तो वह भय उसके लिए सङ्कट बन सकता है।

इस प्रकार की कठिनाई का हर कोई मुकाबला नहीं कर सकता, इसके लिये एक विशेष प्रकार की साहसपूर्ण मनोभूमि होनी चाहिये। मनुष्य दूसरों के विषय में तो परीक्षा बुद्धि रखता है, पर अपनी स्थिति का ठीक परीक्षण कोई विरले ही कर सकते हैं। "मैं तन्त्र साधनाएँ कर सकता हूँ या नहीं" इसका निर्णय अपने लिए कोई मनुष्य स्वयं नहीं कर सकता। इसके लिए उसे किसी दूसरे अनुभवी व्यक्ति की सहायता लेनी

पड़ती है। जैसे रोगी अपनी चिकित्सा स्वयं नहीं कर सकता विद्यार्थी अपने आप शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकता, वैसे ही तांत्रिक साधनाएँ भी अपने आप नहीं की जा सकतीं, इसके लिये किसी विज्ञ पुरुष को गुरु नियुक्त करना होता है। वह गुरु सबसे पहले अपने शिष्य की मनोभूमि का निरीक्षण करता है और तब उस परीक्षण के आधार पर यह निश्चित करता है कि इस व्यक्ति के लिए कौन साधना उपयोगी होगी और उसकी विधि में अन्यों की अपेक्षा क्या हेर-फेर करना ठीक होगा। साधना काल में जो विक्षेप आते हैं उनका तात्कालिक उपचार और भविष्य के लिए सुरक्षा व्यवस्था बनाना भी गुरु के द्वारा ही सम्भव है। इसलिये तन्त्र की साधनाएँ गुरु परम्परा से चलती हैं। सिद्धि के लोभ से अनधिकारी साधक स्वयं अपने आप-उन्हें ऊट-पटांग ढङ्ग से न करने लग जाँय—इसलिए उन्हें गुप्त रखा जाता है। रोगी के निकट मिठाइयाँ नहीं रखी जातीं, क्योंकि पचाने की शक्ति न होते हुए भी यदि लोभ वश उसने उन्हें खाना शुरू कर दिया तो अन्ततः उसका अहित ही होगा।

तन्त्र की साधनाएँ सिद्ध करने के बाद जो शक्ति आती है उसका यदि दुरुपयोग करने लगे तो उससे संसार में बड़ी अव्यवस्था फैल सकती है, दूसरों का अहित हो सकता है, अनाधिकारी लोगों को अनावश्यक रीति से लाभ या हानि पहुँचाने से उनका अनिष्ट ही होता है। बिना परिश्रम के जो लाभ प्राप्त होता है, वह अनेक प्रकार के दुर्गुण पैदा करता है। जिसने जुआ खेल कर दस हजार रुपया कमाया है, वह उन रुपयों का सदुपयोग नहीं कर सकता और न उनके द्वारा वास्तविक सुख प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार ईश्वरीय या राजकीय विधि से मिलने वाले स्वाभाविक दण्ड विधान को

छोड़कर किसी को मन्त्र बल से हानि पहुँचाई जा सकती है इसलिये हर किसी को उनकी साधना करने का अधिकार नहीं दिया गया है। यह तो एक विशेष मनोभूमि के व्यक्तियों के लिए सीमित क्षेत्र में उपयोग होने वाली वस्तु है इसलिए उसका सार्वजनिक प्रकाशन नहीं किया जाता। हमारे घर सिर्फ उन्हीं व्यक्तियों के प्रयोग के लिए होते हैं, जो उसमें अधिकारपूर्वक रहते हैं। निजी घरों का उपयोग धर्मशाला की तरह नहीं हो सकता और न हर कोई मनुष्य किसी के घर में प्रवेश कर सकता है। तन्त्र भी अधिकार-सम्पन्न मनोभूमि वाले विशेष व्यक्तियों का घर है, उसमें हर व्यक्ति का प्रवेश नहीं है। इसलिये उसे नियत सीमा तक सीमित रखने के लिये गुप्त रखा गया है।

हम देखते हैं कि तन्त्र ग्रन्थों में जो साधन-विधियाँ लिखी गई हैं, वे अधूरी हैं। उनमें दो ही बातें मिलती हैं—एक साधन का फल, दूसरे साधन-विधि का कोई छोटा सा अङ्ग। जैसे एक स्थान पर आया है कि "छोंकर की लकड़ी हवन करने से पुत्र की उत्पत्ति होती है।" केवल इतने उल्लेख मात्र को पूर्ण समझकर जो छोंकर की लकड़ियों के गट्ठे भट्टी में झोंकेगा, उसकी मनोकामना कभी पूर्ण नहीं होगी। मूर्ख लोग समझेंगे कि साधना-विधि झूठी है। परन्तु इस शैली से वर्णन करने में तन्त्रकारों का मन्तव्य यह है कि साधना-विधि का संकेत कायम रहे, जिससे इस विद्या का लोप न हो, वह विस्मृत न हो जाय। यह सूत्र-प्रणाली है। व्याकरण आदि के सूत्र बहुत छोटे-छोटे होते हैं। उनमें अक्षर तो दस-दस या पाँच-पाँच ही होते हैं पर अर्थ बहुत लघु संकेत मात्र होते हैं, जिससे याद कम करना पड़े और समय पड़ने पर पूरी बात याद हो आवे।

"छोंकर के हवन से पुत्र प्राप्ति" इस संकेत सूत्र में एक

भारी विधान छिपा हुआ है। किस मनोभूमि का मनुष्य, किस समय, किन नियमों के साथ, किन उपकरणों के द्वारा, किन मंत्रों से, कितना हवन करे, तब पुत्र की प्राप्ति हो, यह सब विधान उस सूत्र में छिपाकर रखा गया है। छिपाया इसलिए है कि अनधिकारी लोग उसका प्रयोग न कर सकें। संकेत रूप से कहा इसलिए गया है कि कालान्तर में इस तथ्य का विस्मरण न हो जाय, आधार मालूम रहने से आगे की बात का स्मरण हो आना सुगम होता है। तन्त्र ग्रन्थों में साधना - विधियों को गुप्त रखने पर बार-बार जोर दिया गया है। साथ ही कहीं-कहीं ऐसी विधियाँ बताई हैं, जो देखने में बड़ी सुगम मालूम पड़ती हैं, पर उनका फल बड़ा भारी कहा गया है। इस दिशा में अनजान लोगों के लिए यह गोरखधन्धा बड़ा उलझन भरा हुआ है। वे कभी उसे अत्यन्त सरल समझते हैं और कभी उसे असत्य मानते हैं, पर वस्तुस्थिति दूसरी ही है। संकेत-सूत्रों की विधि से उन साधनाओं का वर्णन करके तन्त्रकारों ने अपनी रहस्यवादी मनोवृत्ति का परिचय दिया है।

गायत्री के दोनों ही प्रयोग हैं। वह योग भी है और तन्त्र भी। उससे आत्म-दर्शन और ब्रह्मप्राप्ति भी होती है तथा सांसारिक उपार्जन--संहार भी। गायत्री योग दक्षिण मार्ग है—उस मार्ग से हमारे आत्म-कल्याण का उद्देश्य पूरा होता है। गायत्री तन्त्र वाम मार्ग है--उससे सांसारिक वस्तुएँ प्राप्त की जा सकती हैं और किसी का नाश भी किया जा सकता है। तन्त्र का विषय गोपनीय है, इसलिए गायत्री तन्त्र के ग्रन्थों में ऐसी अनेकों साधनाएँ प्राप्त होती हैं, जिनमें धन, सन्तान, स्त्री, यश, आरोग्य, पद-प्राप्ति, रोग-निवारण, शत्रु नाश, पाप-नाश, वशीकरण आदि लाभों का वर्णन है और संकेत रूप से उन साधनाओं का एक

अंश बताया गया है। परन्तु यह भले प्रकार स्मरण रखना चाहिये कि इन संक्षिप्त संकेतों के पीछे एक भारी कर्मकाण्ड एवं विधि-विधान है। वह पुस्तकों में नहीं वरन् अनुभवी, साधना सम्पन्न व्यक्तियों से प्राप्त होता है।

तन्त्र ग्रन्थों से संग्रह करके कुछ संकेत आगे के पृष्ठों पर दिये जाते हैं, जिससे पाठकों को गायत्री द्वारा मिल सकने वाले महान् लाभों का थोड़ा-सा परिचय प्राप्त हो जाय।

—: अथ गायत्री-तन्त्रम् :—

नारद उवाच—

नारायण महाभाग गायत्र्यास्तु समन्वितः।
शान्त्यादिकान्प्रयोगांस्तु वदस्व करुणानिधे!

नारदजी ने प्रश्न किया—हे नारायण! गायत्री के शान्ति आदि के प्रयोगों को कहिये।

नारायण उवाच—

अति गुह्यमिदं पृष्टं त्वया ब्रह्मननूद्भव?
न कस्यापि वक्तव्यं दुष्टाय पिशुनाय च॥

यह सुनकर श्री नारायण ने कहा कि हे नारद! आपने अत्यन्त गुप्त बात पूछी है, परन्तु यह किसी दुष्ट या पिशुन (छलिया) से नहीं कहनी चाहिये।

अथ शान्तिर्यथोक्ताभिः समिद्भिर्जुहुयात्द्विजः।
शमी समिद्भिः शाम्यन्ति भूत रोग ग्रहादयः॥

द्विजों को शान्ति प्राप्त करने के लिये हवन करना आवश्यक है तथा शमी की समिधाओं से हवन करने पर भूत रोग एवं ग्रहादि की शान्ति होती है।

आर्द्राभिः क्षीर वृक्षस्य समिद्भिः जुहुयात्द्विजः।
जुहुयाच्छकलैर्वापि भूत रोगादि शान्तये ॥

दूध वाले वृक्षों की आर्द्र समिधाओं से हवन करने पर ग्रहादि की शान्ति होती है। अतः भूत रोगादि की शान्ति के लिये सम्पूर्ण प्रकार को समिधाओं से हवन करना आवश्यक है।

जलेन तर्पयेत्सूर्यं पाणिभ्यां शान्तिमाप्नुयात्।
जानुदघ्ने जले जप्त्वा सर्वान् दोषाञ्छमं नयेत् ॥

सूर्य का हाथों द्वारा जल से तर्पण करने पर शान्ति मिलती है तथा घुटनों पर्यन्त पानी में स्थिर होकर जपने से सब दोषों की शान्ति होती है।

कण्ठदघ्न जले जप्त्वा मुच्येत् प्राणान्तकाद्भयात्।
सर्वेभ्यः शान्ति कर्मेभ्यो निमज्याप्सु जपःस्मृतः ॥

कण्ठ पर्यन्त जल में खड़ा होकर जप करने से प्राणों के नाश होने का भय नहीं रहता, इसलिये सब प्रकार की शान्ति प्राप्त करने के लिये जल में प्रविष्ट होकर ही जप करना श्रेष्ठ है।

सौवर्णे राजते वापि पात्रे ताम्रमयेऽपि वा।
क्षीरवृक्षमये वापि निर्व्रणे मृन्मयेऽपि वा ॥
सहस्रं पञ्च-गव्येन हुत्वा सुज्वलितेऽनले।
क्षीरवृक्षमयैः काष्ठैः शेषं सम्पादयेच्छनैः ॥

सुवर्ण, चाँदी, ताँबा, दूध वाले वृक्ष की लकड़ी से बने या छेद रहित मिट्टी के वर्तन में पञ्चगव्य रखकर दुग्ध वाले वृक्ष की लकड़ियों से प्रज्वलित अग्नि में हवन करना चाहिये।

प्रत्याहुतिं स्पृशञ्जप्त्वा सहस्रं पात्रसंस्थिताम्।
तेन तं प्रोक्षयेद्देशं कुशैर्मन्त्रमनुस्मरन् ॥

प्रत्येक आहुति में पञ्चगव्य का स्पर्श करना चाहिये तथा

मन्त्रोच्चारण करते हुए कुशाओं द्वारा पञ्चगव्य ही से सम्पूर्ण स्थान का मार्जन करना चाहिये।

वलिं किरंस्ततूस्तस्मिन्ध्यायेत् परदेवताम्।
अभिचार समुत्पन्ना कृत्या पापं च नश्यति ॥

पश्चात् बलि प्रदान कर देवता का ध्यान करना चाहिये। इस प्रकार ध्यान करने से अभिचारोत्पन्न कृत्या की शान्ति होती है।

देव भूत पिशाचाद्या यद्येवं कुरुते वशे।
गृहं ग्रामं पुरं राष्ट्रं सर्वतेभ्यो विमुच्यते ॥

देवता, भूत और पिशाच आदि को वश में करने के लिये भी उपरोक्त कही हुई विधि करनी चाहिये। इस प्रकार की क्रिया के देवता, भूत तथा पिशाच सभी अपना-अपना घर, ग्राम, नगर और राज्य छोड़कर वश में हो जाते हैं।

निखनेन्मुच्यते तेभ्यो निखनेन्मध्यतोऽपि च।
मण्डले शूलमालिख्य पूर्वोक्ते च क्रमेऽपि वा ॥
अभिमन्त्र्य सहस्रं तन्निखनेत्सर्व शान्तये ॥

चतुष्कोण मण्डल में गन्ध से शूल लिखकर और पूर्वोक्त विधि द्वारा सहस्र गायत्री का जप कर गाढ़ देने पर सब प्रकार की सिद्धि मिलती है।

सौवर्णं, राजतं वापि कुम्भं ताम्रमयं च वा।
मृन्मयं वा नवं दिव्यं सूत्रवेष्टितमव्रणम् ॥
मण्डिले सैकते स्थाप्य पूरयेन्मन्त्रविज्जलैः।
दिग्भ्य, आहृत्य तीर्थानि चतसृभ्यो द्विजोत्तमैः ॥

सोना चाँदी, ताँबा, मिट्टी आदि में से किसी एक का छेद रहित घड़ा लेकर सूत्र से ढककर बालुयुक्त स्थान में स्थापित कर श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा चारों दिशाओं से लाये हुए जल से भरे।

एला, चन्दन, कपूर, जाती, पाटल, मल्लिकाः ॥
बिल्वपत्रं तथा क्रान्तां, देवीं व्रीहि यवांस्तिलान् ।
सर्षपान्क्षीर वृक्षाणां प्रवालानि च निक्षिपेत् ॥

इलायची, चन्दन, कपूर, जाती, पाटल, बेला, बिल्व-पत्र, विष्णुक्रान्ता, देवी (सहदेई), जौ, तिल, सरसों और दुग्ध निकलने वाले वृक्षों के पत्ते लेकर उसमें छोड़े।

सर्वाण्यभिविधायैवं कुश कूर्चं समन्वितम् ।
स्नातःसमाहितो विप्रः सहस्रं मन्त्रयेद्बुधः ॥

इस प्रकार सबको छोड़कर कुशा की कूँची बनाकर तथा उसे भी घड़े में छोड़कर स्नान करके एक हजार बार मन्त्र का जप करना चाहिये।

दिक्षु सौरनिधीयाराव् मंत्रान विप्रास्त्रयीविदः ।
प्रोक्षयेत्पाययेदेनं नीरं तेनाभिसिंचयेत् ॥

धर्मादि के ज्ञाता ब्राह्मण द्वारा मन्त्रों से पूतीकृत इस जल से भूत आदि की बाधा से पीड़ित पुरुष के ऊपर मार्जन करे तथा पिलावे तथा गायत्री मन्त्र के साथ इसी जल से अभिसिञ्चन करे।

भूत रोगाभिचारेभ्यः स निर्मुक्तः सुखी भवेत् ।
अभिषेकेण मुच्येत मृत्योरास्यगतोनरः ॥

इस प्रकार अभिसिञ्चन करने पर मरणासन्न हुआ मनुष्य भी भूत-व्याधि से मुक्त होकर सुखी होजाता है।

गुडूच्याः पर्वं विच्छिन्नः पयोक्ता जुहुयात्द्विजः ।
एवं मृत्युंजयो होमः सर्वं व्याधिविनाशनः ॥

जो द्विज गुर्च (गिलोय) की समिधाओं को दूध में डुबा डुबाकर हवन करता है, वह सम्पूर्ण व्याधाओं से विनिर्मुक्त होता है।

आम्रस्य जुहुयात्पत्रैः पयोक्तैःर्ज्वरशान्तये ।

ज्वर की शान्ति के हेतु दूध में डाल-डालकर आम्र-पत्तों से हवन करना चाहिये ।

वचाभिः पयसिक्ताभिः क्षयं हुत्वा विनाशयेत् ।
मधुत्रितय होमेन राजयक्ष्मा विनश्यति ॥

दुग्ध में वच को अभिसिक्त कर हवन करने से क्षय-रोग विनष्ट होता है तथा दुग्ध, दधि एवं घृत इन तीनों का अग्नि में हवन करने से राजयक्ष्मा का विनाश होता है ।

निवेद्य भास्करायान्नं पयसं होमं पूर्वकम् ।
राजयक्ष्माभिभूतं च प्राशयेच्छान्तिमाप्नुयात् ॥ २ ॥

दूध की खीर बनाकर सूर्य को अर्पण करे तथा इस हवन से शेष बची हुई खीर को राजयक्ष्मा के रोगी को सेवन करावे तो रोग की शान्ति होती है ।

कुसुमैः शङ्खवृक्षस्य हुत्वा कुष्ठं विनाशयेत् ।
अपस्मार विनाशः स्तादपामार्गस्य तण्डुलैः ॥

शङ्ख वृक्ष (कोडिला) के पुष्पों से यदि होम किया जाय तो कुष्ठ रोग विनाश होता है तथा अपामार्ग के बीजों से हवन करने पर अपस्मार रोग का विनाश होता है ।

क्षीरवृक्ष समिद्धोमादुन्मादोऽपि विनश्यति ।
औदुम्बर समिद्धोमादति मेह क्षयं व्रजेत् ॥

क्षीर वृक्ष की समिधाओं से हवन करने पर उन्माद रोग नहीं रहता तथा औदुम्बर (गूलर) की समिधाओं से हवन किया जाय तो महा प्रमेह विनष्ट होता है ।

मनसैव जपेदेनां बद्धो मुच्येत् बन्धनात् ॥

बन्धन में ग्रसित मनुष्य गायत्री मन्त्र का मन में ही जाप करने पर बन्धन-मुक्त हो जाता है ।

भूत रोग विषादिभ्यः स्पृशन् जप्त्वा विमोचयेत् ।
भूतादिभ्यो विमुच्येत जलं पीत्वाभिमन्त्रितम् ॥

भूत रोग तथा विष आदि से व्यथित पुरुष को गायत्री मन्त्र जपना चाहिये । कुश के जल को स्पर्श करता हुआ गायत्री मन्त्र का जप करे । फिर इस जल को भूत, प्रेत तथा पिशाच आदि की पीड़ा से पीड़ित मनुष्य को पिला दिया जाय तो वह रोगमुक्त हो जाता है ।

अभिमन्त्र्य शतं भस्मन्यसद्भूतादि शान्तये ।
शिरसा धारयेद्भस्म मंत्रयित्वा तदित्यृचा ॥

गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित भस्म लगाने से भूत प्रेत को शान्ति होती है । मन्त्र का उच्चारण करते हुए अभिमन्त्रित भस्म को पीड़ित पुरुष के मस्तक और शिर में लगाना चाहिये ।

अथ पुष्टिं श्रियं लक्ष्मी पुष्पै हुत्वाप्नुयात्द्विजः ।
श्री कामो जुहुयात् पद्मैः रक्तैः श्रियमवाप्नुयात् ॥

लक्ष्मी की आकांक्षा वाले पुरुष को गायत्री मन्त्रोच्चारण के साथ पुष्पों से हवन करना चाहिये । श्री और सौन्दर्य की कामना वाले पुरुष को रक्त कमल के फूलों से हवन करने पर श्री की प्राप्ति होती है ।

शतं शतं च सप्ताहं हुत्वा श्रियमवाप्नुयात् ।
लाजैस्तु मधुरोपेतैर्होमे कन्या मवाप्नुयात् ॥

मधुत्रय मिलाकर लाजा से सात दिन तक सौ-सौ आहुतियाँ देकर हवन करने पर सुन्दर कन्या की प्राप्ति होती है ।

अनेन विधिना कन्या वरमाप्नोति वाञ्छितम् ।

इस विधि से होम करने पर कन्या अति सुन्दर और अभीष्ट वर की प्राप्ति करती है ।

निवेद्यभास्करायान्नं पायसं होमपूर्वकम् ।
भोजयेत्तदृतुस्नातां पुत्रं परमवाप्नुयात् ॥

सूर्य को होमपूर्वक पायस अर्पण करके ऋतुस्नान की हुई स्त्री को भोजन कराने से पुत्र की प्राप्ति होती है ।

स प्ररोहाभिराद्र्राभिर्हुत्वाआयुरवाप्नुयात् ।
समिद्भिः क्षीरवृक्षस्य हुत्वायुषमवाप्नुयात् ॥

पलास की समिधा से होम करने पर आयु की वृद्धि होती है । क्षीर वृक्ष की समिधा से हवन किया जाय तो भी आयु-वृद्धि होती है ।

हुत्वा पद्मशतं मासं राज्यमाप्नोत्यकण्टकम् ।
यवागूं ग्राममाप्नोति हुत्वा शालिसमन्वितम् ॥

एक मास पर्यन्त यदि कमल से हवन किया जाय तो राज्य की प्राप्ति होती है । शालि से युक्त यवांगु (हलुआ) से हवन किया जाय तो ग्राम की प्राप्ति होती है ।

अश्व थ समिधो हुत्वा युद्धादौ जयमाप्नुयात् ।
अर्कस्य समिधो हुत्वा सर्वत्र विजयी भवेत् ॥

पीपल की समिधाओं से हवन करने पर युद्ध में विजय-प्राप्ति होती है । आक की समिधाओं से हवन करने पर सर्वत्र ही विजय होती है ।

संयुक्तैः पयसापत्रैः पुष्पैर्वा वैतसस्य च ।
पायसेन शतं हुत्वा सप्ताहं वृष्टिमाप्नुयात् ॥

वेत-वृक्ष के फूलों से अथवा पत्र मिलाकर खीर से हवन करने पर वृष्टि होती है ।

नाभिदघ्ने जले जप्त्वा सप्ताहं वृष्टिमाप्नुयात् ।
जले भस्म शतं हुत्वा महावृष्टिं निवारयेत् ॥

नाभि पर्यन्त जल में खड़े होकर एक सप्ताह तक गायत्री

जपने से वृष्टि होती है और जल में सौ बार हवन करने से अति वृष्टि का निवारण होता है।

पयोहुत्वाप्नुयान्मेधामाज्यं बुद्धिमवाप्नुयात्।
अभिमन्त्र्यपि वेद्ब्राह्मं रसं मेधामवाप्नुयात्॥

दूध का हवन करने से तथा घृत की आहुतियाँ देने से बुद्धि-वृद्धि होती है। मन्त्रोच्चारण करते हुए ब्राह्मी के रस का पान करने से चिर-ग्राहिणी बुद्धि होती है।

अथ चारुविधिर्मासं सहस्रं प्रत्यहं जपेत्।
आयुष्कामः शुचौ देशे प्राप्नुयादायुरुत्तमम्॥

उचित रीति से प्रतिदिन एक सहस्र जप एक मास तक करने से आयु की वृद्धि होती है तथा बल बढ़ता है तथा यह दीर्घायु और बल उत्तम देश में प्राप्त होता है।

मास शतत्रयं विप्रः सर्वान्कामानवाप्नुयात्।
एवं शतोत्तरं जप्त्वा सहस्रं सर्वमाप्नुयात्॥

इसी प्रकार एक मास तक ३०० मंत्र प्रतिदिन जाप करने पर सब कार्यों में सिद्धि प्राप्त करता है। इसी प्रकार ग्यारह सौ नित्य जपने से सब कार्य ही सम्पन्न हो जाते हैं।

एक पादो जपेदूर्ध्वं बाहुरुद्धानिलं वशः।
मासं शतमवाप्नोति यदिच्छेदिति कौशिकः॥

आकाश की ओर भुजाएं उठाये हुए एक पैर के ऊपर खड़ा होकर साँस को यथा शक्ति अवरोध कर एक मास तक १०० मन्त्र प्रतिदिन जपने से अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है।

नक्तमश्नन्हविष्यान्नं वत्सराद्दपिताभियात्।
नीरसोधा भवेदेन जप्त्वासम्वत्सर द्वयम्॥

इसी प्रकार एक पैर पर खड़ा होकर रात्रि में हविष्यान्न

खाकर एक सप्ताह तक जप करने से मनुष्य ऋषि हो जाता है। इसी प्रकार दो वर्ष तक जप करने से वाणी अमोघ होती है।

त्रिवत्सरं जपेदेवं भवेत्त्रैकालदर्शनम् ।
आयाति भवगांदेवश्चतुः सम्वत्सरं जपेत् ॥

तीन वर्ष तक इसी विधि के अनुसार जप करने से मनुष्य त्रिकालदर्शी हो जाता है और यदि चार वर्ष तक इसका जाप उक्त विधि से किया गया तो भगवान् ही निकट आ जाते हैं।

मुच्येरन्नंहसः सर्व महापातकिनो द्विजाः।
त्रिसहस्रं जपेन्मासं प्राणायामभ्य वाग्मतः ॥

शुद्ध होकर प्राणायाम करके ३००० मन्त्र एक मास तक जपने से महान् पातक से भी छूट जाता है।

अगम्यागमनस्तेय हननाभक्ष भक्षणे।
दश सहस्रमभ्यस्त गायत्री शोधयेत् द्विजम् ॥

अगम्य स्थान में गमन करना, चोरी, मारना, अभक्ष वस्तु का भक्षण कर लेना, इन दोषों के मिटाने निमित्त दस हजार गायत्री का जप करना चाहिए। इससे द्विज की शुद्धि होती है।

सहस्रमभ्यसेन्नमासं नित्यं जापी वने वसन्।
उपवास समंजप्य त्रिसहस्रं तदित्यृचः ॥

वन में वस कर हजार जप करता हुआ एक मास तक ठहरे इससे सभी किल्विष दूर होते हैं। तीन हजार जप करने से एक उपवास के समान पुण्य मिलता है।

चतुर्विंशति साहस्रमभ्यस्ता कृच्छ्र संज्ञिता।
चतुष्षाष्टिः सहस्राणि चान्द्रायण समानितु ॥

चौबीस सहस्र का जप करने से एक कृच्छ्र के समान और चौंसठ सहस्र का फल एक चान्द्रायण व्रत के समान होता है।

आचारः प्रथमो धर्मो धर्मस्य प्रभुरीश्वरी ।
इत्युक्तः सर्व शास्त्रेषु सदाचार फलं महत् ॥

आचार को प्रथम धर्म कहा है तथा धर्म की स्वामिनी देवी को कहा है । यही सम्पूर्ण शास्त्रों में बतलाया गया है कि सदाचार के समान कोई भी वस्तु महान फलदायिनी नहीं है ।

आचारवान्सदापूतः सदैवाचारवान्सुखी ।
आचारवान्सदा धन्यः सत्यं सत्यं च नारद ॥

सदाचारी पुरुष सदा पवित्र और सदा सुखी होता है । नारद ! इसमें असत्य नहीं कि सदाचार युक्त पुरुष धन्य होता है ।

देवी प्रसाद जनकं सदाचार विधानकम् ।
यद्यपि शृणुयान्मर्त्यो महासम्पति सौख्यभाक् ॥

जो देवी के प्रसाद सदाचार विधि को सुनता और सुनाता है वह सब प्रकार से धनी होता है ।

जप्यं त्रिवर्ग संयुक्तं गृहस्थेन विशेषतः ।
मुनिनां ज्ञान सिद्ध्यर्थं यतीनां मोक्षसिद्धये ॥

विशेषतः जप करने वाले गृहस्थों को त्रिवर्ग की प्राप्ति होती है । मुनियों को ज्ञान सिद्धि तथा यतियों को मोक्ष की सिद्धि होती है ।

सव्याहृतिका सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ।
ये जपन्ति सदा तेषां न भयं विद्यते क्वचित् ॥

जो मनुष्य प्रणव, व्याहृति तथा शिर सहित गायत्री मन्त्र का जाप करते हैं, उनको कहीं पर भी भय नहीं होता ।

अभीष्ट लोकमवाप्नोति प्राप्नुयात्काममीप्सितम् ।
गायत्री वेद जननी गायत्री पाप नाशिनी ॥

गायत्री वेदों की माता एवं पाप नाश करने वाली है । अतः गायत्री की उपासना करने वाला मनुष्य इच्छित लोकों को प्राप्त करता है ।

सावित्री जाप्य निरतः स्वर्गमाप्नोति मानवः।
गायत्री जाप्य निरतो मोक्षोपायं च विन्दति ॥

गायत्री जपने वाला पुरुष स्वर्ग को प्राप्त करता है और मोक्ष को भी प्राप्त करता है।

तस्मात्सर्व प्रयत्नेन स्नानः प्रयतमानसः।
गायत्रीं जपेद्भक्त्या सर्वपापप्रणाशिनी ॥

इस कारण से समस्त प्रयत्नों द्वारा स्नान कर स्थिर चित्त हो सर्व पाप नाश करने वाली गायत्री का जप करे।

सर्वकामप्रदा चैव सावित्री कथिता तत्।
अभिचारेषु तां देवीं विपरीतां विचिन्तयेत् ॥

यह सर्व कामों की मनोभिलाषाओं की प्रदायिनी सावित्री कही गई है इसके अभिचार में विपरीत चिन्तन करना चाहिए।

कार्या व्याहृतयश्चात्र विपरीता चरास्तथा।
विपरीताक्षरं कार्यं शिरश्च ऋषिसत्तम ॥

यहाँ विपरीताक्षर व्याहृतियों का उच्चारण करना चाहिए। हे ऋषि श्रेष्ठ! इसके शिर अक्षर को भी विपरीत करना चाहिये।

आदौ शिरः प्रयोक्तव्यं प्रणवोऽन्तेन वै ऋषे।
मतिस्थेनैव फट्कारं मध्य नाम प्रकीर्तितम् ॥

प्रारम्भ में शिर का प्रयोग करना चाहिये तथा प्रणव को अन्त में उच्चारण करना चाहिये और फट्कार को मध्य में प्रयुक्त करे।

गायत्री चिन्तयेत्तत्र दीप्तानलसमप्रभाम्।
घातयन्तीं त्रिशूलेन केशेष्वाक्षिप्यवैरिणम् ॥

प्रज्वलित अग्नि की आभा के समान आभा वाली

गायत्री देवी को चिन्तन करे और ऐसा ध्यान करे कि वह शत्रुओं के केशों को पकड़ कर अपने त्रिशूल द्वारा उनका घात कर रही है।

एवं विधा च गायत्री जप्तव्या राजसत्तम।
होतव्या च यथा शक्त्या सर्वकामसमृद्धिदा॥

सकल कामनाओं की देने वाली गायत्री को इस प्रकार जपना चाहिए और शक्ति के अनुसार होम करना चाहिए।

निर्दहन्ती त्रिशूलेन भ्रकुटी भूषिता ननाम्।
उच्चाटने तु तां देवीं वायु भूमां विचिन्तयेत्॥

अपने शूल से दहन करती हुई तथा चढ़ी हुई भृकुटी से सुशोभित मुख मण्डल वाली उस वायु भूत देवी को उच्चाटन काल में चिन्तन करे।

धावमानं तथा साध्यं तस्माद्देशात्तुदूरतः।
अभिचारेषु होतव्या राजिका विषमिश्रिताः॥

धावमान तथा साध्य को उस देश से दूर से ही अभिचार में विष मिश्रित होम करना चाहिए।

स्वरक्त मिश्रं होतव्यं, कटु तैल मथापि वा।
तत्राऽपि च विषं देयं होम काले प्रयत्नतः॥

अपने रक्त को कड़वे तेल में मिलाकर तथा उसमें विष मिलाकर यत्न पूर्वक होम काल में देना चाहिये।

महापराधं बलिनं देव ब्राह्मण कण्टकम्।
अभिचारेण यो हन्यान्न स दोषेण लिप्यते॥

महान् अपराध करने वाले बलवान को तथा देव और ब्राह्मण को कष्ट देने वाले को जो हनन करे उसे दोष नहीं लगता।

बहुना कण्टकं यस्तु पापात्मानं सदुर्म्मतिम् ।
हन्यात्प्राप्तापराधन्तु तस्य पुण्य फलं महत् ॥

जो पापात्मा तथा दुर्मति अनेकों के मार्ग में कण्टक बना हुआ है, उस अपराधी के हनन करने वाले को महान् पुण्य फल की प्राप्ति होती है।

गायत्री तन्त्र के अन्तर्गत कुछ थोड़े से प्रयोगों का संकेत ऊपर किया गया है, इन प्रयोगों के जो सुविस्तृत विधि-विधान, कर्मकाण्ड एवं नियम-बन्धन हैं, उनका उल्लेख यहाँ न करना ही उचित है, क्योंकि तन्त्र के गुह्य विषय को सर्व साधारण के सम्मुख प्रकट करने से सार्वजनिक सुव्यवस्था में बाधा उपस्थित होने की आशङ्का रहती है।

गायत्री अभिचार

मनुष्य एक अच्छा खासा बिजलीघर है। उसमें उतनी उष्णता एवं विद्युत शक्ति होती है कि यदि उस सब का ठीक प्रकार उपयोग हो सके तो एक द्रुत वेग से चलने वाली तूफान मेल रेलगाड़ी दौड़ सकती है, जो शब्द मुख में से निकलते हैं, वे अपने साथ एक विद्युत प्रवाह ले जाते हैं। फलस्वरूप उनके द्वारा सूक्ष्म जगत् में कम्पन उत्पन्न होते हैं और उन कम्पनों द्वारा अन्य वस्तुओं पर प्रभाव पड़ता है। देखा गया है कि कोई वक्ता अपनी वक्तृता के साथ-साथ ऐसी भाव विद्युत का संमिश्रण करते हैं कि सुनने वालों का हृदय हर्ष, विषाद, क्रोध, त्याग आदि से भर जाता है। वह अपने श्रोताओं को उँगलियों पर नचाता है। देखा गया है कि कई उग्र वक्ता

भीड़ को उत्तेजित करके उससे भयङ्कर कार्य करा डालते हैं। कभी किसी-किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के भाषण इतने प्रभावपूर्ण होते हैं कि उससे समस्त संसार में हल-चल मच जाती है।

आकाश के ऊँचे स्तर पर बर्फ का चूर्ण हवाई जहाजों से फैलाकर वैज्ञानिकों ने तुरन्त वर्षा कराने की विधि ढूँढ़ निकाली है। इसी कार्य को प्राचीन काल में शब्द विज्ञान द्वारा, मन्त्रबल से किया जाता था। उस समय भी उच्चकोटि के वैज्ञानिक मौजूद थे, पर उनका आधार वर्तमान आधार से भिन्न था। उनके लिए उन्हें मशीनों की जरूरत न पड़ती थी, इतनी खर्चीली खट-पट के बिना भी उनका काम चल जाता था। आज स्थूल से सूक्ष्म को प्रभावित करके तब वह शक्ति उत्पन्न की जाती है, जिससे आविष्कारों का प्रकटीकरण होता है। आज कोयला, तेल और पानी से शक्ति पैदा की जाती है। परमाणु का विस्फोट करके शक्ति उत्पन्न करने का अब नया प्रयोग सफल हुआ है। अमेरिकन साइंस एकेडेमी के प्रधान डाक्टर 'एविड' का कहना है कि आगामी तीन सौ वर्षों के भीतर विज्ञान इतनी उन्नति कर लेगा कि बाहरी किसी वस्तु की सहायता के बिना मानव शरीर के अन्तर्गत रहने वाले तत्वों के आधार द्वारा सूक्ष्म जगत् में हल-चल पैदा की जा सकेगी और जो लाभ आजकल मशीनों द्वारा मिलते हैं, वे शब्द आदि के प्रयोग द्वारा ही प्राप्त किये जा सकेंगे।

डाक्टर एविड भविष्य में जिस वैज्ञानिक उन्नति की आशा करते हैं, भारतीय वैज्ञानिक किसी समय उसमें पारंगत हो चुके थे। शाप और वरदान देना इसी शब्द विज्ञान की चरम उन्नति थी। शब्द का आघात मार कर प्रकृति के अन्तराल में भरे हुए परमाणुओं को इस प्रकार

आकर्षित-विकर्षित किया जाता था कि मनुष्य के सामने वैसे ही भले बुरे परिणाम आ उपस्थित होते थे। जैसे आज विशेष प्रक्रियाओं द्वारा, मशीनों की विशेष गति-विधि द्वारा विशेष कार्य किये जाते हैं। पर प्राचीन काल में अपने आपको एक महा शक्तिशाली यन्त्र मानकर उसी के द्वारा ऐसी शक्ति उत्पन्न करते थे, जिसके द्वारा अभीष्ट फलों को चमत्कारिक रीति से प्राप्त किया जा सकता था। वह प्रणाली, साधना, योगाभ्यास, तपश्चर्या, यन्त्र आदि नामों से पुकारी जाती है। इन प्रणालियों के भोग, जप, होम, पुरश्चरण, अनुष्ठान, तप, व्रत, यज्ञ, पूजन, पाठ आदि होते थे। विविध प्रयोजनों के लिए विविध कर्मकाण्ड थे। हवन में होमी जाने वाली सामिग्रियाँ, मन्त्रों की ध्वनि, ध्यान का मानसिक आकर्षण, स्तोत्र और प्रार्थनाओं द्वारा आकाँक्षा प्रदीप्ति विशेष प्रकार के आहार-विहार द्वारा मनः शक्तियों का विशेष प्रकार का निर्माण, तपश्चर्याओं द्वारा शरीर में विशेष प्रकार की उष्णता का उत्पन्न होना, देव पूजा द्वारा प्रकृति की सूक्ष्म शक्तियों को खींचकर अपने में धारण करना आदि प्रकारों से साधक अपने आपको एक ऐसा विद्युत पुंज बना लेता था कि उसका प्रवाह जिस दिशा में चल पड़े उस दिशा के प्रकृति के परमाणुओं पर उसका आधिपत्य हो जाता था और उस प्रक्रिया द्वारा अभीष्ट परिणाम प्राप्त होते थे।

बिना मशीन के चलने वाले जिन अद्भुत दिव्य अस्त्रों का भारतीय इतिहास में वर्णन है उनमें आग्नेयास्त्र भी एक था। इससे आग लगाई जाती थी, जलन; आँधी या तूफान पैदा किया जाता था। व्यक्तिगत प्रयोगों में इससे किसी व्यक्ति विशेष पर प्रयोग करके उसकी जान तक लेली

जाती थी। अग्निकाण्ड कराये जाते थे। इसे तान्त्रिक काल में 'अगीया वैताल' कहा जाता था। इसका प्रयोग गायत्री मन्त्र द्वारा भी होता था जिसका कुछ संकेत नीचे के प्रमाणों में वर्णित है। उलटी गायत्री को 'अनुलोप जप' कहते हैं। यही आग्नेयास्त्र है।

'त् या द चो प्र नः यो यो धि। हि म धी स्य व दे र्गो भ ण्यं रे र्वं। तु वि त्स त स्वः वः भु र्भूः ॐ। यह मन्त्र आग्नेयास्त्र है। इस विद्या का कुछ परिचय नीचे देखिए--

आग्नेयास्त्रस्य जानाति विसर्गादान कर्मणि।
यः पुमान् गुरुणा शिष्टस्तस्याधीनं जगत्त्रयम्॥

जो पुरुष इस आग्नेयास्त्र के छोड़ने तथा खींचने की विधि को जानता है और जो गुरु द्वारा शिक्षित है उसके अधिकार में त्रैलोक्य है।

आग्नेयास्त्राधिकारी स्यात्विधानमुदीर्यते।
आग्नेयास्त्रमिति प्रोक्त विलोम पठितो मनुः॥

और वह आग्नेयास्त्र का अधिकारी हो जाता है। अब आग्नेयास्त्र की प्रयोग विधि कहते हैं। आग्नेयास्त्र प्रतिलोम और अनुलोम दो प्रकार से कहा गया है।

अर्चनं पूर्ववत्कुर्याच्छक्तिस्तु प्रतिलोमतः।
सर्वत्र देशिकः कुर्यात् गायत्र्या द्विगुणं जपम्॥

प्रतिलोमता से शक्तियों का पूजन करे और सर्वत्र गायत्री का दूना जप करे।

क्रूरकर्माणि कुर्वीत प्रतिलोमधानतः।
शान्तिकं पौष्टिकं कर्म, कर्त्तव्यं अनुलोमतः॥

प्रतिलोम के विधान से जपादि क्रूरकर्मों की सिद्धि

के लिए करे और शान्तिमय एवं पुष्टिदायक कर्मों की सिद्धि के लिए अनुलोम के विधान से करे।

उपरोक्त विधि एक संकेत मात्र है। उसके साथ में एक विस्तृत कर्मकांड एवं गुप्त ,साधना-विधि है। उस सब का रहस्य गुप्त ही रखा जाता है क्योंकि उन बातों का सार्वजनिक प्रकटीकरण करना सब प्रकार निषिद्ध है।

मारण प्रयोग

तन्त्र ग्रन्थों में मारण, मोहन, उच्चाटन आदि के कितने ही प्रयोग मिलते हैं। शत्रु-नाश के लिए मारण प्रयोगों को काम में लाया जाता है। मारण कितने ही प्रकार का होता है। एक तो ऐसा है जिससे किसी मनुष्य की तुरन्त मृत्यु हो जाय। ऐसा प्रयोगों में "घात" या "कृत्या" प्रसिद्ध है। वह एक शक्तिशाली तांत्रिक अग्नि अस्त्र है जो प्रत्यक्षतः दिखाई नहीं पड़ता तो भी बन्दूक की गोली की तरह निशाने पर पहुँचता है और शत्रु को गिरा देता है। दूसरे प्रकार के मारण मन्द मारण कहे जाते हैं, इनके प्रयोग से किसी व्यक्ति को रोगी बनाया जा सकता है। ज्वर, दस्त, दर्द, लकवा, उन्माद, मतिभ्रम आदि रोगों का आक्रमण किसी व्यक्ति पर उसी प्रकार हो सकता है जिस प्रकार कीटाणु बमों से प्लेग, हैजा आदि महामारियों को फैलाया जाता है।

इस प्रकार के प्रयोग नैतिक दृष्टि से उचित हैं या अनुचित ? यह प्रश्न दूसरा है, पर इतना निश्चित है कि यह असंभव नहीं, संभव है। जिस प्रकार विष खिलाकर या शस्त्र चलाकर किसी मनुष्य को मार डाला जा सकता है वैसे ही ऐसे अदृश्य उपकरण भी हो सकते हैं जिनको प्रेरित करने से प्रकृति के घातक परमाणु एकत्रित होकर अभीष्ट लक्ष की ओर दौड़ पड़ते हैं और उस पर भयंकर आक्रमण करके उस पर चढ़

बैठते हैं और परास्त करके प्राण संकट में डाल देते हैं। इसी प्रकार प्रकृति के गर्भ में विचरण करते हुए किसी रोग विशेष के कीटाणुओं को किसी व्यक्ति विशेष की ओर विशेष रूप से प्रेरित किया जा सकता है।

'मृत्यु किरण' आज का ऐसा ही वैज्ञानिक आविष्कार है। किसी प्राणी पर इन किरणों को डाला जाय तो उसकी मृत्यु हो जाती है। प्रत्यक्ष देखने में उस व्यक्ति को किसी प्रकार का घाव आदि नहीं होता पर अदृश्य मार्ग से उसके भीतरी अवयवों पर ऐसा सूक्ष्म आघात होता है कि उस प्रहार से उसका प्राणान्त हो जाता है। यदि वह आघात हलके दर्जे का हुआ तो उससे मृत्यु तो नहीं होती, पर मृत्यु तुल्य कष्ट देने वाले या घुला-घुलाकर मार डालने वाले रोग पैदा हो जाते हैं।

शाप देने की विद्या प्राचीन काल में अनेक लोगों को मालूम थी। जिसे शाप दिया था उसका बड़ा अनिष्ट होता था। शाप देने वाला अपनी आत्मिक शक्तियों को एकत्रित करके एक विशेष विधि-व्यवस्था के साथ जिसके ऊपर उनका प्रहार करता था, उसका वैसा ही अनिष्ट हो जाता था जैसा कि शाप देने वाला चाहता था। तान्त्रिक अभिचारों द्वारा भी इसी प्रकार से दूसरों का अनिष्ट हो सकता है। परन्तु ध्यान रखने की बात यह है कि इस प्रकार के प्रयोगों में प्रयोगकर्ता की शक्ति भी कम नष्ट नहीं होती। बालक प्रसव करने के उपरान्त माता बिलकुल निर्बल, निःसत्व हो जाती है, किसी को काटने के बाद साँप निस्तेज, हत-वीर्य और शक्ति रहित हो जाता है। मारण, उच्चाटन के अभि-चार करने वाले लोगों की शक्तियाँ भी भारी परिणाम में व्यय हो जाती हैं और उसकी क्षति-पूर्ति के लिए उन्हें असाधारण प्रयोग करने होते हैं।

जिस प्रकार तन्त्र द्वारा दूसरों का मारण, मोहन, उच्चाटन आदि अनिष्ट हो सकता है उसी प्रकार कोई कुशल तांत्रिक इस प्रकार के अभिचारों को रोक भी सकता है। उन प्रयोगों को निष्फल भी कर सकता है। यहाँ तक कि उस आक्रमण को इस प्रकार उलट सकता है कि वह प्रयोगकर्त्ता पर उलटा पड़े और उसी का अनिष्ट करदे। घात, कृत्या, चौकी आदि को कोई भिन्न तांत्रिक उलट दे तो उसके प्रेरिक प्रयोक्ता पर विपत्ति का पहाड़ टूटा हुआ ही समझिए।

उपरोक्त अनिष्टकर प्रयोग अक्सर होते हैं—तन्त्र विद्या द्वारा हो सकते हैं। पर नीति, धर्म, मनुष्यता और ईश्वरीय विधान की सुस्थिरता की दृष्टि से ऐसे प्रयोगों का किया जाना नितान्त अनुचित और अवांछनीय है। यदि इस प्रकार की गुप्त हत्याओं का तांता चल पड़े तो उससे लोक-व्यवस्था में भारी गड़बड़ी उपस्थित हो जाय और परस्पर के सद्भाव एवं विश्वास का नाश हो जाय। हर व्यक्ति दूसरों को आशंका, संदेह एवं अविश्वास की दृष्टि से देखने लगे। इसलिए तन्त्र विद्या के भारतीय तांत्रिकों ने इन क्रियाओं को निषिद्ध घोषित करके उन विधियों को गोपनीय रखा है। आजकल परमाणु बम बनाने के रहस्यों को बड़ी सावधानी से गुप्त रखा जा रहा है ताकि उनकी जानकारी सर्व सुलभ हो जाने से कहीं उसका दुरुपयोग न होने लगे। उसी प्रकार इन अभिचारों को भी सर्वथा गोपनीय रखने का ही नियम बनाया गया है।

गायत्री तपोभूमि—एक महान् धर्म संस्थान

गायत्री तपोभूमि, मथुरा शहर से १ मील आगे—वृन्दावन रोड पर परम शांतिमय वातावरण में बना हुआ एक सुन्दर आश्रम है, जहाँ गायत्री माता का भव्य मन्दिर, भारतवर्ष के लगभग २४०० तीर्थों के जल-रज का एक तीर्थ सम्मेलन-गृह, १२५ करोड़ हस्तलिखित गायत्री-मन्त्रों का संग्रह-कक्ष, निवास के लिए २३ कमरे, एक प्रवचन हाल, तीन बड़ी यज्ञ-शालाऐं, प्रधान यज्ञशाला में कभी न बुझने दी जाने वाली अखण्ड-अग्नि की स्थापना, नित्य गायत्री-मन्त्र की एक हजार आहुतियों का हवन, तुलसी का उपवन, हजारों धार्मिक पुस्तकों का विशाल पुस्तकालय, लगभग ६० पत्र-पत्रिकाऐं आने वाला वाचनालय, बिना मूल्य चिकित्सा के लिए कल्प चिकित्सालय यह सब देखकर कोई भी दर्शक संस्था की गति-विधियों का सहज ही अनुमान लगा सकता है। गायत्री तपोभूमि में सदा अनेक धार्मिक भावना वाले व्यक्ति शिक्षा, तीर्थ-यात्रा, साधना, तपश्चर्या एवं विभिन्न कठिनाइयों के सम्बन्ध में आचार्यजी से परामर्श करने आते हैं। आगन्तुकों को तपोभूमि में निवास, भोजन आदि की समुचित सुविधा प्राप्त होती है।

गायत्री तपोभूमि द्वारा देश भर में गायत्री महायज्ञों एवं सांस्कृतिक सम्मेलनों की शृंखला भी चलाई जा रही है। सन् '५६ और '५७ में १००० बड़े गायत्री महायज्ञ तथा सांस्कृतिक सम्मेलन करने का निश्चय किया था। सो उस संकल्प से भारतवर्ष के कोने-कोने से हजारों यज्ञ हुए जिनमें से १०१ कुण्डों वाले, २५ कुण्डों वाले, ६ कुण्डों वाले विशाल यज्ञों की संख्या १००० थी। इनमें से कुछ यज्ञों में तो ५० हजार तक जनता एकत्रित हुई। ये यज्ञ अ० भा० गायत्री-परिवार की देश में फैली हुई १२०० शाखाओं द्वारा सम्पन्न हुये थे। इन यज्ञों और सम्मेलनों का उद्देश्य जनता में धर्म, सदाचार, नैतिकता,

मानवता, सदाचार, संयम आदि विश्व-कल्याणकारी सत्प्रवृत्तियों को बढ़ाना है।

गायत्री तपोभूमि द्वारा इन दिनों सामूहिक 'गायत्री ब्रह्मास्त्र अनुष्ठान' देश भर में गायत्री-उपासकों के सहयोग से चल रहा है, जिसके अन्तर्गत प्रतिदिन २४ करोड़ गायत्री-जप, २४ लाख आहुतियों का हवन, २४ लाख मन्त्र-लेखन, २४ लाख गायत्री पाठ एवं धर्म-प्रचार का कार्य-क्रम चल रहा है। इसकी पूर्णाहुति कार्तिक सुदी १२ से १५ सं० २०१५ में १००० कुण्डों की १०१ यज्ञशालाओं में १ लाख होताओं द्वारा होगी। आगुन्तकों के ठहरने तथा भोजन की निःशुल्क व्यवस्था रहेगी। इतना बड़ा यज्ञ इस युग में अभी तक कहीं नहीं हुआ है।

गायत्री-तपोभूमि के संचालक श्री आचार्यजी ने गायत्री सम्बन्धी हजारों ग्रन्थों के अध्ययन का सार, अपनी ३० वर्षों की साधना एवं व्यक्तिगत अनुभव का ज्ञान, सर्व साधारण के कल्याणार्थ लगभग ८० पुस्तकों के रूप में प्रकाशित कर दिया है। इन पुस्तकों के आधार पर साधारण व्यक्ति भी गायत्री महाशक्ति के रहस्यों एवं विधानों को जानकर घर रहते हुए योगियों की जैसी सफलताएँ प्राप्त कर सकता है। गायत्री-तपोभूमि की मुख-पत्रिका 'अखण्ड-ज्योति' विगत १६ वर्षों से मासिक रूप में निकल रही है और ग्राहक संख्या की दृष्टि से 'कल्याण' के बाद धार्मिक पत्रों में 'अखण्ड-ज्योति' का ही नम्बर है। गायत्री-तपोभूमि की सारी हल-चलों, योजनाओं तथा आचार्यजी की विचारधारा का परिचय 'अखण्ड-ज्योति' पढ़कर ही प्राप्त किया जा सकता है।

आपको मथुरा कभी पधारना हो तो तपोभूमि अवश्य देखिये। पत्र-व्यवहार द्वारा भी आप आवश्यक विषयों पर जवाबी पत्र भेजकर परामर्श प्राप्त कर सकते हैं।

पता—गायत्री तपोभूमि, म[illegible]रा।

मुद्रक—रमनलाल बंसल, पुष्पराज प्रेस, मथुरा।